

नलिकाओं द्वारा निरन्तर रक्त फेंकती और खींचती रहती है। इसकी घड़कन उस स्थान पर हाथ रखकर आसानी से पहचानी जा सकती है। इसी पर रक्तचाप की न्यूनाधिकता का प्रभाव पड़ता है और क्रिया-कलाप थोड़ी देर के लिए रुकते ही प्राणान्त हो जाता है।

अध्यात्म क्षेत्र की हृदय गुफा इससे भिन्न है। वह मेरुदण्ड में अनाहतचक्र के समीप है। पंचकोश गणना में यही विज्ञानमय कोश है। इसे भौतिक हृदय की सीध में तनिक पीछे हटकर अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाये रहने वाला माना गया है। संक्षेप में यही अन्तराल या अन्तःकरण है—भाव सम्वेदनाओं का केन्द्र। कविता में किसी को दिल दे बैठना उस पर निछावर होने को कहते हैं। उर्दू का एक शेर है—“दिल के आइने में है तसवीरे बार, जब जरा गरदन झुकाई देखली।” यह आइने जैसा दिल रक्त संचार ग्रन्थि से सर्वथा भिन्न है। हिम्मत, साहस, बहादुरी आदि के सन्दर्भ में भी उसी आत्मिक हृदय का उल्लेख किया जाता है।

भावनाओं का तो केन्द्र ही यह है। यहाँ भावनाओं से तात्पर्य आदर्शवादी, पुण्य-परोपकार में मिश्रित भाव सम्वेदनाओं से है। यह कार्य बुद्धि नहीं कर सकती। बुद्धि का आधार प्रत्यक्ष लाभ-हानि है। घाटा पड़ने पर उसे झटका लगता है और लाभ होने पर गर्व का उभार आता है। किसी वृद्धजन के मर जाने पर खुशी मनायी जाती, उसकी अर्थी को सजाया जाता है, मृत्युभोज में पैसा खर्चा जाता है। मानो कोई आकस्मिक लाभ हुआ हो। बुद्धि का यह निर्णय ठीक ही है कि बेकार आदमी घर घरे हुये था, पैसा खर्च करता था और आये दिन सेवा-सहायता की माँग करता था। ऐसे झंझट से पीछा छूटा तो अच्छा ही हुआ। उस घटना पर खुशी होनी ही चाहिए। किन्तु उसकी धर्मपत्नी को बिछोहजन्य जो दुःख होता है उसे वही जानती है। छोटे बच्चे भी बुद्धि की दृष्टि में व्यर्थ ही होते हैं। माता को सदा हैरान ही करते रहते हैं। खर्च भी कराते ही हैं पर उनकी मृत्यु पर माता को कितना कष्ट होता है, यह भावना है। किन्तु बिडम्बना यह है कि लड़की के मर जाने पर बाप मन ही मन प्रसन्न होता है कि एक बड़े ऋण-भार से छुटकारा मिला। यही है तार्किक बुद्धि लाभ देखने वाली बुद्धि और भावना का अन्तर, उस भावना का जो अन्तःकरण कहलाती और हृदय गुफा में रहती है।

बुद्धि को तर्क के आधार पर प्रभावित किया जा सकता है और प्रलोभन या दबाव से उसकी दिशा बदली जा सकती है किन्तु वह लुढ़केगी सदा स्वार्थ साधना की दिशा में ही। उसे मोड़ना इसी पक्ष में सम्भव है। घाटे

का सौदा वह नहीं करना चाहती। इसीलिए ऐसे उच्च आदर्शों के परिपालन में उसे कटिबद्ध नहीं किया जा सकता, जिसमें प्रत्यक्षतः घाटा पड़ता हो। कारण है कि बुद्धिवादी धर्मोपदेश आदर्शों की बड़ी-बड़ी बातें तो कहते हैं। उनके भाषण बड़े लच्छेदार होते हैं, पर जब उस कथन को निजी जीवन में कार्यान्वित करने के अवसर आते हैं तो पीछे हट जाते हैं। इसका कारण एक ही है कि उसने धर्मवर्चा को बुद्धि क्षेत्र में तो अपनाया है पर अन्तःकरण में, भावना-क्षेत्र में स्थान नहीं दिया।

संसार में अनेकों व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो आदर्शों को प्रमुखता देते हैं, उनकी भावनाएँ उस रंग में रंग जाती हैं और उस उत्कृष्टता को अपनाने में बड़े से बड़ा जोखिम उठाते हैं। शारीरिक कष्ट, पैसे की हानि, विरोधियों द्वारा हास-उपहास आदि की घटनाएँ उनके सामने आती हैं। यहाँ तक कि अपने पिछले कुसंस्कारों को उलटा-पुलटा करते देखा गया है। किसी के तनिक से बहकने पर बहक जाते हैं। स्वार्थ त्यागने, परमार्थ अपनाने का श्रेय तो लेना चाहिए, पर उसके लिए जो त्याग, बलिदान करना पड़ता है, उसके लिए कदम बढ़ाने का साहस नहीं करते। करते हैं तो कुछ ही दिनों में क्षणिक उत्साह का बबूला फूटते ही पीछे लौट जाते हैं। इस लौटने में अपनी कमजोरी स्वीकार न करके किसी न किसी अन्य पर दोषारोपण करते हैं। परिस्थितियों की मजबूरी बताते हैं। यह भावनाओं का अधूरापन ही है।

भाव-सम्वेदना का क्षेत्र यदि समुन्नत-सुसंस्कृत हो तो उसमें सच्ची सहानुभूति उपजती है। दूसरों के कष्ट बाँटा लेने और अपनी सुविधाओं को बाँट देने के लिए मन करता है, मन ही नहीं करता, साहस भी उभरता है और वे तथाकथित मित्र, स्वजनों को असहमत होते हुए भी वैसा आदर्शवादी साहस कर गुजरते हैं।

भाव सम्वेदनाओं की गंगोत्री

सूखने न पाए

मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन भावनाओं-सम्वेदनाओं से संचालित होता है। दुःख और आनन्द, घृणा और प्रेम, क्रोध और सहिष्णुता, कृपणता और उदारता, सन्देह और विश्वास आदि भावनायें अन्तःकरण से उपजती हैं तथा मन-मस्तिष्क को प्रभावित कर मनुष्य की विभिन्न गतिविधियों को संचालित-प्रेरित करती हैं। भावनाओं के क्रीड़ा केन्द्र को ही अन्तःकरण कहा जाता है। इन भावनाओं का मानव जीवन पर, उसके शारीरिक स्वास्थ्य एवं मानसिक स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ता है, मनोविज्ञानियों एवं मनःचिकित्सकों ने इस पर गहन

अनुसंधान किया है और पाया है कि विचारणा एवं भावना क्षेत्र की विकृतियाँ अनेकानेक बीमारियों को जन्म देती हैं, मनोविज्ञान की भाषा में जिन्हें “साइकोसोमैटिक” या “साइकोजैनेक” व्याधियाँ कहा जाता है। भावनाओं का विवेकयुक्त सुनियोजन ही शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मिक प्रगति का मूलधार है।

मानव मन किसी न किसी कल्पना की उधेड़बुन में सतत् लगा रहता है। विचारों की, भावनाओं की, असंख्यो तरंगें जीवन में ज्वार-भाटे की तरह उठती-दबती रहती हैं और शरीर तथा मनःस्थिति को प्रभावित करती हैं। इनके प्रभाव को मुख्य रूप से दो भागों में समझा जा सकता है। पहले प्रकार की भावनायें वे हैं जिनके कारण शरीर के विभिन्न भाग अतिरिक्त रूप से उत्तेजित हो उठते हैं तथा दुःख, संक्षोभ से लेकर तनाव, उद्वेग जैसे विकार उत्पन्न होने लगते हैं। इस श्रेणी की भावनाओं में क्रोध, चिन्ता, भय, शोक, ईर्ष्या, द्वेष आदि को रखा जा सकता है। दूसरी श्रेणी में उन भावनाओं को रखा जा सकता है जिनका प्रभाव मनःसंस्थान पर अच्छा व अनुकूल पड़ता है। इसमें आशा, उत्साह, विश्वास, प्रेम, साहस, प्रफुल्लता आदि भावनाओं को रखा जा सकता है।

पहले प्रकार की भावनायें शरीर में रोग और मन में तनाव अथवा अवसाद के लक्षण पैदा कर देती हैं, जबकि वास्तव में शरीर में रोग का कोई कारण नहीं होता। लम्बे समय तक अध्ययन, परीक्षण करने के पश्चात् मनःशास्त्री एवं जीवविज्ञानी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वे स्नायुओं तथा नलिकाविहीन ग्रंथियों द्वारा शरीर को प्रभावित करती हैं। हमारे शरीर में ऐच्छिक तथा अऐच्छिक दो तरह के स्नायु मंडल-तंत्रिका तंत्र होते हैं, जिनके द्वारा समस्त शारीरिक क्रिया-कलापों का संचालन होता है। ऐच्छिक स्नायु तंत्र (तंत्रिका तंत्र) से हम अपनी इच्छानुसार काम लेते हैं जैसे—उठना-बैठना, चलना-फिरना, किसी चीज को पकड़ना आदि। अऐच्छिक स्नायु तंत्र पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं होता। हृदय की धड़कन, फेफड़ों द्वारा श्वसन, पाचन, संवेदन, गुर्दे की क्रिया आदि कार्य अऐच्छिक स्नायुओं द्वारा ही सम्पादित होते हैं। भावनाओं का प्रभाव इन्हीं स्नायुओं पर होता है। भाव चिन्तन में विकृति आने पर आटोनामिक तंत्रिका तंत्र की क्रिया-प्रणाली गड़बड़ा जाती है और तनाव, उद्वेग, बेचैनी, सिरदर्द जैसी कितनी ही बीमारियाँ मनुष्य को घर दबोचती हैं। अनेकों बीमारियों का उदय भावनात्मक असंतुलन के कारण ही होता है। इन्हीं को ऋषि चरक ने प्रज्ञापराध की श्रेणी में माना है।

प्रख्यात मनश्चिकित्सक डब्ल्यू० बी० कैनन ने अपनी कृति ‘बाडिली चेन्जेज इन पेन हंगर, फियर एण्ड रेज’ में कहा है कि असंतुलित भावनायें, अव्यवस्थित कल्पनायें क्रयिक प्रणाली पर घातक प्रभाव डालती हैं। विचारणा एवं भावना का उत्कृष्ट-निकृष्ट जैसा भी स्तर होगा, स्वास्थ्य भी तदनु रूप ही होगा। उनका कहना है कि उत्तम भावनायें रोग-निवारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भावनात्मक उतार-चढ़ाव की स्थिति में व्यक्ति के स्नायु मंडल-तंत्रिका तंत्र की वैद्युतीय सक्रियता में भारी परिवर्तन होता है जिसे ई. ई. जी. जैसे यंत्रों के माध्यम से भी आंशिक रूप से देखा जा सकता है। मूलतः इसका प्रभाव अंतःस्त्रावी ग्रंथियों, एन्जाइम उत्पादक घटकों एवं सूक्ष्म जीवाणुओं के क्रिया-कलापों पर पड़ता है।

इस सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध मनःचिकित्सक एच. एफ. डनबार ने गहन अनुसंधान किया है। उन्होंने अपनी पुस्तक ‘इमोशन्स एण्ड बाडिली चेन्जेज’ में बताया है कि जिनके अन्तःकरण में सदैव सद्भावनायें ही हिलोरेँ मारती रहती हैं तथा मन-मस्तिष्क से सद्विचारणायें ही फूलती रहती हैं, जिनका मन सदैव प्रसन्नता-प्रफुल्लता से भरा रहता है, उनका शरीर स्वस्थ रहता है, चेहरे पर दीप्ति छाई रहती है। ऐसे व्यक्तियों की आँखों की चमक एवं चेहरे की प्रदीप्ति-आभा उनकी प्रचण्ड जीवनी-शक्ति का प्रमाण स्वयं उपस्थित कर देती है। इसके विपरीत क्रोधोन्माद, आवेश आदि मनोविकार शरीर को विषैले रासायनिक पदार्थों से भर देते हैं जिससे कोशिकाएँ एवं ऊतक समूह सूखने लगते हैं और त्वचा का रंग बदल जाता है। वह शुष्क पड़ जाती है। विकृत भावनाओं से हृदय स्पन्दन की गति तीव्र हो जाती है, ऊर्जा का अनावश्यक क्षरण आरम्भ हो जाता है, जिससे इच्छाशक्ति बुझ जाती है और मनोबल को लकवा मार जाता है। इस तरह की भावनाएँ शरीर पर भले-बुरे दोनों तरह के असर डालती हैं। महान् दार्शनिक अरस्तू ने कहा भी है कि “भावनाओं का काया पर उसी प्रकार आधिपत्य रहता है जिस तरह स्वामी का गुलाम पर, मालिक का नौकर पर।”

मूर्धन्य मनःशास्त्री एवं लेखक बेंजामिन वाकर ने अपनी पुस्तक ‘एनसाइक्लोपीडिया ऑफ एसोटेरिक मैन’ में कहा है कि मानवी क्रिया की व्याख्या मात्र उसके भौतिक, रासायनिक विश्लेषण या फिजियोलॉजी के आधार पर नहीं की जा सकती। वस्तुतः उसमें सन्निहित विचारणा, भावना, आस्था ही वह मूलभूत तत्व हैं जो समस्त शारीरिक क्रिया-कलापों, उसके क्रिया-व्यवहारों को दिशा देते, प्रेरित उत्तेजित करते रहते हैं। मन में उठी तीव्र भावना शरीर के स्नायु एवं हार्मोन प्राणाली को

प्रभावित करती है। ब्रिटिश मनोचिकित्सा विज्ञानी ए० ओ० लुडविंग के अनुसार मन में उठने वाली विभिन्न भावतरंगों शारीरिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करती है। उनका कहना है कि भावनाओं की शरीर पर क्या प्रतिक्रिया होती है? इन तथ्यों पर ध्यान देने से यह सहज ही समझा जा सकता है कि क्रोध के कारण व्यक्ति तनावग्रस्त हो जाता है, रक्तचाप बढ़ जाता है, शरीर से पसीना निकलने लगता है और वह पीला पड़ जाता है। इसी तरह कभी-कभी भय के कारण पेशाब छूट जाना, हृदय गति का बढ़ जाना, चेहरे का पीला पड़ना, घबराहट से पसीना छूटना, चिन्ता के कारण भूख न लगना, गुस्से में होने पर चेहरा तमतमा उठना, परेशानी से नींद न आना और लज्जा के मारे लाल हो जाना, चेहरा झुका लेना आदि स्थितियाँ दर्शाती हैं कि भावनाओं का प्रभाव मनुष्य शरीर के रक्त-प्रवाह और अन्दरूनी हलचलों पर अनिवार्य रूप से पड़ता है। इसकी पुष्टि प्रसिद्ध मनोविज्ञानवेत्ता ए० सिमन ने भी की है। अपनी पुस्तक “द फिजियोलॉजी आफ इमोशन्स” में उन्होंने कहा है कि साधारण सा भावात्मक उतार-चढ़ाव भी शरीर की फिजियोलॉजी को परिवर्तित कर देता है। वैज्ञानिक अनुसंधानों से भी इसकी पुष्टि हो गई है।

मनोकायिक चिकित्सा साइकोसोमैटिक मेडिसिन के जन्मदाता प्रख्यात मनोविज्ञानी जार्ज ग्रोडेक गहन अध्ययन के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि शारीरिक रोगों की जड़ें मन में होती हैं। उनका कथन है कि चिन्तन एवं भावना क्षेत्र की विकृति ही रोगों का प्रमुख कारण है। तनाव, उन्माद जैसे मनोविकार एवं उच्च रक्तचाप, इरीटेबल, बॉवेल, कोलाइटिस, त्वचा रोग, दमा यहाँ तक कि कैंसर भी विकृत भावनाओं की ही देन है। सिरदर्द, आधाशीशी का रोग भावनात्मक उत्पादन माने गये हैं। मूर्धन्य चिकित्साविज्ञानी वोल्फ हेराल्ड ने अपनी कृति “स्ट्रस एण्ड डिजीज” में इसका प्रमुख कारण कामुकता, विद्वेष, अप्रसन्नता, कुढ़न आदि की हीन भावनाओं को बताया है। उनके अनुसार हृदय की बीमारियों, उच्च रक्तचाप आदि के अनेकों कारण हैं, पर इस कोमल एवं संवेदनशील अंग पर सबसे अधिक गहरा प्रभाव भावनाओं का पड़ता है। क्रोध, तनाव, चिन्ता आदि के भाव यदि लम्बे समय तक मस्तिष्क पर छाये रहें तो इससे हृदय को भारी क्षति झेलनी पड़ती है। श्वसन तंत्र एवं पाचन तंत्र की अनेक बीमारियों के पीछे भाव-विकृतियाँ ही काम करती हैं।

प्रसिद्ध मनःचिकित्सक डेनियल हैक टूके ने अपनी पुस्तक “एम्प्लुएन्स ऑफ दी माइन्ड अपॉन दी बॉडी” के दूसरे खण्ड में कहा है कि विकृत भाव चिन्तन के

कारण व्यक्ति अनैतिक आचरण अपनाता और पापकर्म करता है। परिणामस्वरूप अनेकानेक मनोकायिक बीमारियाँ उसे घर दबोचती हैं। पापकर्मों को छिपाने से एक्जिमा, दमा, माइग्रेन जैसे रोग फूट कर व्यक्ति की मनोदशा का परिचय स्वयमेव दे देते हैं। सोरियेसिस रोग भी इसी की देन है। “साइको सोमैटिक मेडिसिन” नामक अपनी कृति में मनोचिकित्सक ड्रव्य ई० वीस एवं ओ० एस० इंग्लिस ने भी कहा है कि मानसिक एवं भावनात्मक विकृतियों का दबाव किसी भी रोग के रूप में फूट सकता है। वैज्ञानिक भी अब मानने लगे हैं कि कैंसर एवं क्षय जैसी घातक बीमारियों का कारण मानसिक-भावनात्मक अस्त-व्यस्तता है। जर्मन मनश्चिकित्सकों ने इस संदर्भ में गहन अनुसंधान किया है।

“साइकोसोमैटिक डिस्ऑर्डर्स” नामक अपनी कृति में प्रख्यात मनःचिकित्सा विशेषज्ञ शेल्डन जे० लेकमेन ने बताया है कि भावनात्मक उतार-चढ़ाव शारीरिक क्रिया-कलापों को निश्चित रूप से प्रभावित करते हैं और इनका असर देर तक बना रहता है। यह परिवर्तन रचनात्मक भी हो सकते हैं और विध्वंसक भी, जो भावनाओं की उत्कृष्टता-निकृष्टता पर निर्भर करते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष की दूषित भावनाएँ अपने लिए एवं अन्यो के लिए हानि प्रस्तुत करती हैं जबकि सद्भावनाओं से लबालब भरा हृदय और मस्तिष्क स्वयं के लिए तथा साथी-सहयोगियों सभी के लिए सुखदायी परिस्थितियाँ विनिर्मित करता है। शेल्डन ने अपनी उक्त पुस्तक में विचारणाओं, भावनाओं में होने वाले परिवर्तनों एवं उनके दूषण से होने वाले विभिन्न रोगों का विस्तृत वर्णन किया है। उनके अनुसार दुश्चिन्तन एवं विकृत भावनायें ही विभिन्न रोगों की उत्पत्ति के मूल कारण हैं। सर्वप्रथम इसी क्षेत्र का परिष्कार सुधार किये जाने की आवश्यकता है। बाह्य औषधियाँ कुछ तात्कालिक लाभ पहुँचा सकती हैं, रोग को दबा सकती हैं परन्तु वह स्थायी समाधान प्रस्तुत नहीं कर सकती। मनोकायिक रोगों से छुटकारा पाने एवं भावना क्षेत्र को परिष्कृत करने के लिए उनसे योगाभ्यास की ध्यान धारणा प्रक्रिया को महत्वपूर्ण बताया है।

यह बात निश्चित रूप से मानी जानी चाहिए कि मानवी जीवनचर्या भावनाओं की धुरी पर ही घूमती है। शरीर हमारे अन्तःकरण की बहिरंग में अभिव्यक्ति का एक माध्यम मात्र है। कामतंत्र में जो अव्यवस्थाएँ समय-समय पर उत्पन्न होती, रोगों के रूप में परिलक्षित होती हैं, वे अपने आप पर संतुलन स्थापित करने की चेतावनी मात्र हैं, रोग नहीं। चेतावनी पर ध्यान देकर रोग को अत्राकृतिक रूप से दबाने का प्रयास और जटिलताओं

को जन्म देता एवं अनेकानेक व्याधियों के रूप में सामने आता है। भावना तंत्र का श्रद्धा-समर्पण द्वारा अभिसिंचन करते रहने से जड़ें कभी सूखने नहीं पातीं। भावनाओं की उत्कृष्टता हर दृष्टि से जीवन में जरूरी है। सतत आत्मावलोकन मनुष्य को अपना मूल्यांकन करने में मदद करता है व यही निष्कर्ष उसे समझाता है कि बिना सरस भाव संवेदनाओं के न व्यक्ति का स्वस्थ एवं जीवनी शक्ति-मनोबल सम्पन्न रह पाना संभव है, न ही उसके जीवन की इसमें सार्थकता है। आवश्यकता है कि अन्तःकरण का उपचार किये जाने की महत्ता प्रतिपादित कर जनमानस को समझा जाय कि सरस, उदात्त भावनाओं की गंगोत्री कभी सूखने न पाये।

भावात्मक चेतना जीवन की सर्वोपरि सत्ता

मानव मस्तिष्क का एक और भाग है जिसकी ओर अभी बहुत कम ध्यान दिया गया है और जिसकी खोज का कार्य अभी नितान्त आरम्भिक अवस्था में ही माना जा सकता है। यह भाग है—भावनात्मक मस्तिष्क।

मस्तिष्क के भीतर मोटी और काफी लम्बाई तक फैली हुई अन्तस्त्वचा के भीतर विशिष्ट प्रकार की तन्त्रिकाएँ फैली हुई हैं। यद्यपि यह मस्तिष्क के प्रचलित वर्गीकरण में कोई महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं कर सकी है तो भी यह देखा जाता है कि सुख, दुख, भय, हर्ष, क्रोध, आवेश, करुणा, सेवा-स्नेह, कामुकता, उदारता, संकीर्णता, छल, प्रेम, द्वेष आदि भावनाओं का इसी स्थान से सम्बन्ध है और ये भावनाएँ ही हैं जो चेतन ही नहीं, अचेतन मस्तिष्क को भी प्रभावित करती हैं। इच्छा संचालित और अनिच्छा संचालित केन्द्रों में भारी उलट-पुलट प्रस्तुत करती हैं।

कुछ दिन पहले शारीरिक आवश्यकतानुसार मानसिक क्रिया-कलाप की गतिविधियों का चलना माना जाता था। भूख लगती है तो पेट भरने की चिन्ता मस्तिष्क को होती है और पैर वैसी सुविधा वाले स्थान तक पहुँचते हैं, हाथ खाद्य पदार्थों को प्राप्त करते हैं। मुँह चबाता है और पेट पचाता है। इसी प्रकार आहार के उपरान्त निद्रा, विश्राम के लिए, छाया-घर-निवास की, शैया, बिस्तर आदि की आवश्यकता अनुभव होती है। आत्मरक्षा के लिए वस्त्र, छाता, शस्त्र आदि संग्रह करने पड़ते हैं। काम-क्रीड़ा के लिए जोड़ीदार ढूँढ़ना पड़ता है और फिर सृष्टि संचालन के लिए सन्तान प्रेम की प्रेरणा से अन्य काम करने पड़ते हैं। इन्द्रिय रचनाएँ भी शारीरिक इच्छा, आवश्यकता की

श्रेणी में आती हैं। काया की ऐसी ही आवश्यकताओं के अनुरूप मस्तिष्क की उधेड़-बुन चलती रहती है।

अचेतन मन शरीर को जीवित रखने के लिए निरन्तर चलने वाले क्रिया-कलापों का संचालन करता है। सोते-जागते जो कार्य अनवरत रूप से होने आवश्यक हैं, उन्हें सँभालना उसी के द्वारा होता है। रक्त संचार, श्वास-प्रश्वस, हृदय की धड़कन, आकुंचन-प्रकुंचन, पाचन-विसर्जन आदि अनेक कार्य अचेतन मस्तिष्क अपने आप करता-करता रहता है और हमें पता भी नहीं लगता। जागते में पलक झपकने की और सोते में करवट बदलने की क्रिया सहज ही होती रहती है।

मस्तिष्क सम्बन्धी मोटी जानकारी इतनी ही है। प्रिय प्राप्ति पर हर्ष, अप्रिय प्रसंगों पर विषाद, भय, क्रोध, प्रेम-प्रसंग, छल, संघर्ष जैसी मानसिक क्रियाओं को भी सामाजिक एवं चेतनात्मक आधार पर विकसित माना जाता रहा है पर भूल उसके भी शरीर पर पड़ने वाले वर्तमान एवं भावी प्रभाव को ही समझा गया है। शरीरशास्त्रियों की दृष्टि में मस्तिष्क भी—शरीर में—शारीरिक प्रयोजनों की पूर्ति करने वाला एक अवयव ही है। मुँह में ग्रास जाने पर सहज प्रक्रिया के अनुसार रस ग्रन्थियों से स्राव आरम्भ हो जाता है। दाँत, जीभ आदि अपना काम सहज प्रेरणा से ही आरम्भ कर देते हैं। उसी प्रकार समझा जाता रहा है कि शरीर से सम्बद्ध समस्याओं को हल करने का उपाय ढूँढ़ने और उसकी व्यवस्था बनाने का कार्य मस्तिष्क करता है। विभिन्न अवयवों पर उसका नियन्त्रण है, तो पर क्यों है? किस प्रयोजन के लिए है? उसका उत्तर यही दिया जाता रहा है कि शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही मस्तिष्क का अस्तित्व है।

पर भावनात्मक प्रसंगों का जब सिलसिला आरम्भ होता है और उनका प्रभाव इतना अधिक होता है कि शारीरिक और मानसिक समस्त चेष्टाएँ उसी पर केन्द्रित हो जायें, वहाँ तक कि शरीर जैसे प्रियपात्र को त्यागने में भी संकोच न हो, तब उस भाव प्रवाह का विश्लेषण करना कठिन क्यों हो जाता है। जब हर चिन्तन और प्रयत्न शरीर की सुविधा के लिए ही नियोजित होना चाहिए, तो फिर उन भावों का अस्तित्व कहाँ से आ गया जिनका शारीरिक लाभ से कोई सम्बन्ध नहीं है वरन् और उल्टी हानि होती है। तब मस्तिष्क शारीरिक लाभ को, अपनी मर्यादा को छोड़कर हानि की सम्भावनाओं का समर्थन क्यों करता है? इस प्रश्न का उत्तर दे सकना भौतिक मनःशास्त्र के लिए अभी भी सम्भव नहीं हो सका है।

दूसरों को दुःखी देखकर दया क्यों आती है? किसी की सेवा करने के लिए रात-भर जागने को तैयार क्यों हो जाते हैं? अपने सुविधा-साधनों का दान-पुण्य क्यों किया जाता है? प्रेम पत्र के मिलने पर उल्लास और वियोग में वेदना क्यों होती है? समाज, देश, विश्व की समस्याएँ क्यों प्रभावित करती हैं? धर्म-रक्षा के लिए त्याग-बलिदान का साहस क्यों होता है? व्रत, संयम, ब्रह्मचर्य, तप, तीर्त्तिका जैसे कष्टकर आचरण अपनाने के लिए उत्साह और सन्तोष क्यों होता है? भक्ति भावना में आनन्द की क्या बात है? इस प्रकार के भावनात्मक प्रयोजन जिनके साथ शारीरिक आवश्यकता एवं अभाव की पूर्ति का कोई सम्बन्ध नहीं है, मनुष्य द्वारा क्यों अंगीकार किये जाते हैं और मस्तिष्क उनकी पूर्ति के लिए क्यों क्रियाशील हो उठता है?

भावनाएँ क्रियाशीलता उत्पन्न करती हैं सो ही नहीं वरन् कई बार वे इतनी प्रबल होती हैं कि आँधी-तूफान की तरह शरीर और मन की सामान्य क्रिया को ही अस्तव्यस्त कर देती हैं। किसी प्रिय पात्र की मृत्यु का इतना आघात लग सकता है कि हृदय की गति ही रुक जाय या मस्तिष्क विकृत हो जाय। किसी नृशंस कृत्य को देखकर भयभीत मनुष्य मूर्छित हो सकता है। आत्महत्या करने वालों की संख्या कम नहीं और वे भावोत्तेजना में ही वैसा करते हैं। ये भावनाएँ मात्र शारीरिक आवश्यकता को लेकर ही नहीं उभरी होतीं।

चिन्ता, भय, शोक, क्रोध, निराशा आदि आवेशों के द्वारा होने वाली निषेधात्मक हानियों से सभी परिचित हैं वे शारीरिक रोगों से भी भयावह सिद्ध होती हैं। चिन्ता को चिन्ता से बढ़कर बताया जाता है और कहा जाता है कि चिन्ता मरने पर जलाती है किन्तु चिन्ता जीवित को ही जलाकर रख देती है। यह भावना निषेधात्मक दिशा में गतिशील होने पर क्यों संकट उत्पन्न करती है और विषेयात्मक मार्ग पर चलकर क्यों अद्भुत परिणाम प्रस्तुत करती है। हमारे शरीर और मस्तिष्क क्यों उन्हें स्वीकार करता है जबकि प्रत्यक्षतः शरीर की आवश्यकताओं या सुविधाओं का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है।

इस प्रश्न का उत्तर खोजते-खोजते विज्ञान ने अब मस्तिष्क का भाव चेतना केन्द्र तलाश किया है। उसकी स्वल्प जानकारी अभी इतनी मिली है कि मस्तिष्क के भीतर जो मोटी और लम्बाई में फैली हुई अन्तस्त्वचा है उसकी तन्त्रिकाएँ अपने में कुछ ऐसे रहस्य छिपाये बैठी हैं जो कारणवश भावनाओं को उद्दीप्त करती हैं अथवा उनसे प्रभावित होकर उद्दीप्त होती हैं। इस संस्थान को 'भावनात्मक मस्तिष्क' नाम दिया गया है।

अमेरिका के राष्ट्रीय स्वास्थ्य अनुसंधान संस्था के डॉ. पाल मैक्लीन, येल विश्वविद्यालय के डॉ. जीसे डैलगेडी आदि प्रभृति वैज्ञानिकों ने मनःशास्त्र के गहन विश्लेषण के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला है कि शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक प्रखरता की कुंजी इस भावनात्मक मस्तिष्क में ही केन्द्रीभूत है। आहार-विहार का अपना महत्व है पर उतनी व्यवस्था ठीक रखने पर भी यह निश्चित नहीं कि स्वास्थ्य ठीक ही बना रहेगा। इसी प्रकार शिक्षा एवं संगति का मस्तिष्कीय विकास से सम्बन्ध अवश्य है पर यह निश्चित नहीं कि वैसी सुविधायें मिलने पर कोई व्यक्ति मनोविकारों से रहित और स्वस्थ मस्तिष्क सम्पन्न होगा ही। उन्होंने भावनाओं का महत्व सर्वोपरि माना है और कहा है सद्भाव-सम्पन्न मनुष्य शारीरिक सुविधाएँ और मानसिक अनुकूलताएँ न होने पर भी समग्र रूप से स्वस्थ हो सकता है। मनोविकारों से छुटकारा पाने से दीर्घजीवी बन सकता है और रोग-मुक्त रह सकता है।

कहना न होगा कि स्वास्थ्य को नष्ट करने में मनोविकारों का हाथ-विषाणुओं से भी अधिक है। साथ ही समग्र स्वास्थ्य के सम्पादन में भावात्मक उत्कृष्टता का असाधारण योगदान है। अस्तु, भावात्मक मस्तिष्क की गरिमा मानवीय सत्ता में सर्वोपरि सिद्ध होती है। अध्यात्म-विज्ञान इसी को अमृत घट मानता है और उसी के परिष्कार, अभिवर्धन की प्रक्रिया प्रस्तुत करता है।

भावनाओं का अमृत यों ही न बहायें

भाव समवेदनाओं से युक्त अन्तःकरण को मानव जीवन की एक महान उपलब्धि कहा गया है। ऐसे अन्तःकरण से युक्त व्यक्ति जिस भी समाज एवं देश में रहते हैं, उनकी सुख-शान्ति बढ़ाने में सहायक होते हैं। पवित्र अन्तःकरण एवं उच्चस्तरीय भावों का गुणगान संसार के सभी धर्म एवं शास्त्र करते हैं। भावनाओं की महिमा गाते शास्त्र नहीं अघाते। सन्तों ने तो यहाँ तक कहा है। "भावों के भूखे हैं भगवान्"। तत्त्वदर्शियों के अनुसार वह परमात्मा भावनाओं में निवास करता है, उसी के सहारे अन्तःकरण में दर्शन देता है। भावनाशील होना मानवी गरिमा के अनुकूल है एवं उत्कर्ष की ओर बढ़ने का प्रथम चिह्न है।

परन्तु भावों के प्रवेश पर विवेक का अंकुश न हो तो वह कितनी ही प्रकार की समस्याओं को जन्म दे सकता है। अनियन्त्रित भावनाएँ भावातिरेक कहलाती हैं। इनकी प्रतिक्रिया मनः असन्तुलन, मानसिक विक्षोभ, चिन्ता, आतुरता जैसे व्यतिरेकों के रूप में दिखायी पड़ती है। ये

असन्तुलन समूचे विचार तन्त्र को ही गड़बड़ा देते हैं। फलतः किसी भी विषय पर सही सोचते अथवा निर्णय लेते नहीं बनता। मनःशास्त्रियों ने भावनातिरेक को एक मानसिक रोग माना है। भावों पर अंकुश न रहने तथा उनमें औचित्य एवं दूरदर्शिता का समावेश न रहने से वे अति भावुकता के प्रवाह के रूप में प्रकट होते हैं।

उल्लेखनीय है कि मनोकायिक रोगों की चिकित्सा पद्धति में यह सर्वसम्मत से स्वीकार किया जाने लगा है कि शरीर के हार्मोनल स्त्रावों की न्यूनाधिकता में विचारों एवं भावनाओं का विशेष प्रभाव पड़ता है। वे सन्तुलित न होने के कारण मानसिक असन्तुलन को ही जन्म देते हैं। फलतः समूचे शरीर की संचार प्रणाली अव्यवस्था की शिकार हो जाती है। उसकी प्रतिक्रिया अनेकानेक शारीरिक-मानसिक रोगों के रूप में प्रकट होती दिखायी पड़ती है।

प्रख्यात चिकित्साशास्त्री डॉ. फ्लैन्ड्स डूनेवर ने अपने प्रयोग परीक्षणों का निष्कर्ष “इमोशनस एण्ड बॉडिली चेन्जेज” में प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक में ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं जिसमें यह सप्रमाण उल्लेख किया गया है कि भावनाओं का शरीर पर सीधा प्रभाव पड़ता है। भय, चिन्ता, क्रोध, आवेश जैसी उत्तेजनाओं से एड्रिनल ग्रन्थि के स्त्राव में कमी आती है। प्रायः देखा भी जाता है कि उत्तेजनाग्रस्त होने पर उसकी बाह्य प्रतिक्रिया जीभ सूखने, जीभ लड़खड़ाने के रूप में होती है। यह भी प्रयोगों में देखा गया है कि उत्तेजना से रक्त संचार की गति बढ़ जाती है। चेहरे का दमक उठना, आँखों का लाल हो जाना, उसका बाह्य संकेत है। ऐसी स्थिति में रक्त नलिकाओं के फटने तक की सम्भावना रहती है। अतिशय तनाव तथा बारम्बार इस तनाव की पुनरावृत्ति ब्रेन हैमरेज का भी कारण बन सकती है, कई बार बनती भी है।

नोबेल पुरस्कार विजेता डॉ. अलेक्सिस कैरेल ने अपने प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकाला है कि घृणा, भय, क्रोध, चिन्तातुरता जो भावनातिरेक के कारण पैदा होते हैं, जब हमारी आदत के अंग बन जाते हैं तो कई कायिक परिवर्तनों व रोगों को जन्म देते हैं। प्रख्यात चिकित्सा-शास्त्र की पुस्तक ‘पाथवेज ऑफ साइन्स’ में एक रूसी वैज्ञानिक ने रोगोत्पत्ति और भावनात्मक असन्तुलन में गहरा तादात्म्य स्थापित करते हुए कहा है कि “मनुष्य का भाव जगत एक वरदान है और एक तरह से अभिशाप भी। वरदान इसलिए कि इस क्षेत्र से निस्सृत उच्चस्तरीय भावनाएँ स्वयं व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक विकास के लिए न केवल हितकारी हो सकती हैं वरन् समस्त समाज के लिये कल्याणकारी सिद्ध हो सकती हैं। यह अभिशाप

उन स्थिति में साबित होता है जब व्यक्ति भाव असन्तुलन का शिकार होता है। ऐसी हालत में दूसरों का तो दूर, मनुष्य अपना स्वयं का विकास भी नहीं कर पाता। उल्टे ऐसी स्थिति मानसिक असन्तुलन को जन्म देती है। जिसकी परिणति शरीरगत एवं मनोगत रोगों के रूप में होती है।

‘पेशेन्ड्स एण्ड डाक्टर्स देयर इन्टरिलेशन’ पुस्तक के लेखक हैं—एक ब्रिटिश मेडिकल अधिकारी। उनका कहना है कि “भावनाओं की प्रतिक्रिया हम सम्पूर्ण शरीर में अनुभव कर सकते हैं। उन अनुभूतियों के आधार पर उचित, अनुचित का चयन भी कर सकते हैं। अर्थात् किस भाव को मन में स्थान देना चाहिए तथा किसे नहीं, इसका निर्धारण हर कोई कर सकने में सक्षम है। उदाहरणार्थ—किसी खतरे का अवसर सामने प्रस्तुत होते ही सम्पूर्ण शरीर में भय का संचार होने लगता है, रोंगटे खड़े हो जाते हैं। शरीर में कंपन, मुँह सूखना, त्वचा का पीला हो जाना, हृदय की धड़कन बढ़ना आदि शारीरिक संकेत मिलते हैं। देश-प्रेम की भावना से शरीर रोमांचित हो उठता है। त्याग, बलिदान, उत्सर्ग की प्रेरणाएँ उभरने लगती हैं। समाज-सेवा का भाव एक अद्भुत सन्तोष प्रदान करता है। ईर्ष्या, द्वेष के भावों से मन विक्षुब्ध हो उठता है। दया, करुणा, क्षमा से एक विशेष प्रकार की शान्ति मिलती है। सच्ची प्रेम भावना का प्राकट्य एक दिव्य मस्ती से मन को भर देता है। प्रतिस्पर्धा की भावना से शरीर एवं मन की गतिशीलता बढ़ जाती है। पुरुषार्थ में माँसपेशियाँ फड़कने लगती हैं।

भावनाओं का एक क्षेत्र वह है, जो विशेष प्रकार की प्रेरणाएँ उभारता तथा मनुष्य को एक दिशा विशेष में गतिशील होने को विवश करता है। दूसरा क्षेत्र वह है, जो स्वयं के शरीर एवं मन को प्रभावित करता है। स्वास्थ्य एवं सन्तुलन को बनाने अथवा बिगाड़ने में यही काम आता है। निषेधात्मक भावों की प्रतिक्रिया तत्काल मन एवं शरीर पर अनुभव की जा सकती है। ऐसा प्रतीत होता है कि शरीर की जीवनी-शक्ति चुक रही हो। मन की प्रफुल्लता, प्रसन्नता, उत्साह एवं उमंग धीरे-धीरे समाप्त हो रही हो। ऊब, थकान एवं अशक्तता की अनुभूति होती है। विषेयात्मक भाव भी अपनी प्रतिक्रियाएँ मानसिक प्रसन्नता, शान्ति एवं सन्तोष, शारीरिक तत्परता, सजगता के रूप में बहिरंग में दृष्टिगोचर होते हैं। शरीर में जीवनी-शक्ति का स्वतः उभार होने लगता है और ऐसा अनुभव होता है जैसे कहीं से अतिरिक्त शक्ति का निर्झर फूट पड़ा हो। निराशा की घड़ियों में जब कभी भी आशावादी विचार उमड़ते हैं तो प्रतिकूलताओं में भी ऐसा प्रतीत होता है कि करने वाले के लिए कुछ भी असम्भव

नहीं है। अपनी सामर्थ्य पहले से कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी नजर आने लगती है।

मनोवैज्ञानिक प्रणाली द्वारा भी ऐसे विधेयात्मक अथवा निषेधात्मक विचार उत्पन्न करके तदनुरूप प्रभाव प्रायः उन व्यक्तियों पर डाले जा सकते हैं जो कमजोर मनोभूमि के हैं। आज की मनःचिकित्सा प्रणाली भी इसी सिद्धान्त पर आधारित है। आटोसजेशन एवं हेट्रोसजेशन के इर्द-गिर्द वह घूमती है। मनःचिकित्सक विधेयात्मक निर्देशन द्वारा ही मानसोपचार में सफल होते हैं। यह प्रक्रिया निषेधात्मक रूप में किसी-किसी के लिए प्राणघातक भी सिद्ध हो सकती है यदि वह व्यक्ति निराशावादी तत्वों से युक्त है। वह घटना प्रख्यात है कि योरोप के किसी देश में एक व्यक्ति को फाँसी दी जानी थी। वह हत्या अभियोग का मुजरिम था। फाँसी निर्धारित तारीख को होनी थी। मनःशास्त्र विचारकों ने एक प्रयोग विचार-शक्ति की महत्ता का उस पर किया। उन्होंने अपने प्रयोग का प्रारूप न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करके उसे पूरा करने की अनुमति प्राप्त करली। इन विशेषज्ञों का ऐसा विश्वास था कि अपराधी को बिना किसी हथियार के मात्र विचार सम्प्रेषण द्वारा भी मारा जा सकता है।

प्रयोग आरम्भ हुआ। अपराधी की आँख पर पट्टी बाँध दी गयी। चिकित्सकों ने उससे कहा कि तुम्हारे हाथ की नस काट दी जायेगी। उससे होकर शरीर का सारा खून बह जायेगा। इस तरह तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी। प्रयोग में एक हल्का-सा चीरा हाथ में लगा दिया गया। पानी की एक ट्यूब इस ढंग से हाथ लगाकर रखी गयी कि अपराधी को उसका पता न चले, मात्र उससे नीचे एक बाल्टी में पानी के गिलास की आवाज सुनायी दे।

निर्देशन प्रक्रिया आरम्भ हुई। चिकित्सकों ने बताया कि तुम्हारी नस काट दी गयी है। पानी के हाथ के समीप हो रहे बहाव को धरारते हुए उसने तीव्र गति का रक्तस्राव समझा। नीचे बाल्टी में द्रव्य गिरने की आवाज उसे स्पष्ट सुनायी दे रही थी। चिकित्सक उसे हर क्षण यही बताते रहे कि शरीर से खून की कितनी मात्रा निकल चुकी है। आधे घण्टे तक यह प्रयोग चलता रहा। इस बीच उसके हृदय की गति दुगुनी हो गयी थी, होठ सूख चुके थे तथा भय के चिन्ह चेहरे पर प्रत्यक्ष दिखाई दे रहे थे। प्रयोग समाप्ति के पूर्व ही एकाएक उसके हृदय की गति अपने आप रुक गयी और सचमुच ही वह बिना किसी रक्तस्राव के मर गया। मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के इतिहास में विशेषज्ञों ने यह पहली बार अनुभव किया कि विचारशक्ति भी इतनी अधिक सामर्थ्यवान हो सकती है। भावनाओं की विधेयात्मक अथवा

निषेधात्मक दिशाधारा इतनी प्रभावशाली सिद्ध हो सकती है, इसे पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने स्वीकार किया। यह अनुभव किया गया कि दूसरे के ऊपर निर्देशन द्वारा इतना प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है तो स्वयं के ऊपर तो उनकी प्रतिक्रियाएँ असाधारण रूप से पड़ती ही होंगी। कम्युनिस्ट ने तो 'ब्रेन वाशिंग' की तकनीक में विशेष रूप से इसी पद्धति को अपनाया है। 'बायो फीड बैक' की आधुनिक योग-पद्धति भी इसी विधा की प्रशाखा है।

शरीर-संस्थान, बुद्धि-संस्थान की तरह भाव संस्थान भी मनुष्य के साथ जुड़ा हुआ है। शरीरबल बुद्धिबल की अपेक्षा भावबल कहीं अधिक सामर्थ्यवान है। व्यतिरेक होने अथवा बेलगाम छोड़ देने पर तो शरीर-तन्त्र और बुद्धि-तन्त्र दोनों ही बेलगाम घोड़ों की तरह हो जाते हैं। इन्द्रियों पर अंकुश न हो, उन्हें खुली छूट दे दी जाय तो शरीर का जर्जर, निर्बल अशक्त हो जाना सुनिश्चित है। बुद्धि की दिशाधारा निश्चित न हो, उसके चिन्तन को जहाँ-तहाँ बहने दिया जाय तो न केवल उसकी क्षमता मारी जाती है वरन् दुष्प्रयोजनों में निरत होकर कई बार तो अनेकों प्रकार के विग्रह, विक्षोभ उत्पन्न करती है। भाव सम्बेदनाएँ इन दोनों की तुलना में कहीं अधिक मूल्यवान हैं। वह जितनी सूक्ष्म है, उतनी अधिक गतिवान भी होती है। उनका उभार एवं उफान वेगवती नदी की भाँति उमड़ता है। अनियन्त्रित होने पर वे बुद्धि और शरीर को भी अपने साथ मनचाही दिशा में बहा ले जाती हैं। बाढ़ के पानी को रोकने के लिए बाँध बाँधे जाते हैं। गतिवान भाव-सम्बेदनाओं का नियन्त्रण भी होना चाहिए। उन्हें उपयुक्त दिशा देना भी उतना ही आवश्यक है। भावातिरेक की स्थिति की जाँच-पड़ताल विवेक की कसौटी पर भी करनी चाहिए। प्रयत्न यह हो कि वे हमेशा उच्चस्तरीय हों, महान प्रयोजनों से जुड़ी हों। यदि ऐसा सम्भव हो सके तो सचमुच ही भाव सरिता का अभिसिंचन पाकर जीवन रूपी उपवन में अगणित प्रकार के सदगुणों के रंग-बिरंगे पुष्प खिल सकते हैं। उस उद्यान की सुवास से व्यक्ति का जीवन महक उठेगा, उसे धन्य बनायेगा और अपने सौरभ से असंख्यों का जीवन महकानेगा।

भावनाओं को ऊर्ध्वगामी बनाया जाय

मानवीय जीवन की बाह्य गतिविधियाँ व विविध क्रिया-कलाप अन्तराल की जिन हलचलों से संचालित हों, तदनुरूप क्रियान्वित होते हैं, मनीषियों ने उसे भावना का नाम दिया है। यह भावना विचारणा के रूप में परिपक्व

होती तथा क्रिया के रूप में अपनी अभिव्यक्ति करती है।

मनस्तत्त्वविदों ने अपने अध्ययन में स्पष्ट किया है कि भावनाओं का उद्गम क्षेत्र मनुष्य का अपना अन्तराल है। इस अन्तराल में निहित संस्कारों तथा बाह्य उद्दीपनों की सम्मिश्रित क्रिया के आधार पर ही इनकी बाह्यभिव्यक्ति होती है। इस सम्मिश्रित प्रक्रिया के आधार पर ही इनके दो वर्ग किये गये हैं, सद्भावनाएँ व दुर्भावनाएँ। इनकी परिपक्वता के इसी तरह दो रूप हैं—सदविचार, दुर्विचार। परिपक्वता के साथ इनकी अभिव्यक्ति भी विविध रूपों में होती है, सत्कर्म—दुष्कर्म।

मनःशास्त्रियों तथा व्यवहारविज्ञानियों ने अपने व्यापक अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि यदि भावनाओं को परिष्कृत करना सम्भव बन पड़े तो व्यवहार भी उन्नत और प्रखर बन पड़ेगा। अध्येताओं ने बताया है कि विकास की प्रक्रिया के अनुरूप भावनात्मक क्षेत्र का विकसित होना भी अनिवार्य है।

अल्बर्ट आइन्स्टीन कालेज आफ मेडिसिन, न्यूयार्क में साइकियाट्री के प्राध्यापक तथा प्रोग्राम इवोल्यूशन एण्ड क्लीनिकल रिसर्च के निदेशक राबर्ट प्लुतचिक अपनी कृति 'ए जनरल साइको इवाल्यूशरी थ्योरी आफ इमोशन में बताते हैं कि भावनात्मक विकास की सामान्य गति पशुत्व से मनुष्य की ओर होती है। पाशविक भावनाओं का जिक्र करते हुए फिलाडेल्फिया के. डी. ओ. हेब 'द बुक आफ साइकोलाजी' में कहते हैं, पशुओं में भावनाओं का दायरा प्रायः कामुकता, घृणा, द्वेष, सन्तान के प्रति मोह आदि तक ही सीमित रहता है। इसी के अनुरूप उसकी अभिव्यक्ति अपनी जनसंख्या में वृद्धि करने, भोजन खोजने आदि में होती है। डार्विन ने पशु व्यवहार की व्याख्या इसी परिधि में की है।

विकास के परिणामस्वरूप मनुष्य पर भावनात्मक व व्यवहारिक क्षेत्र भी विकसित होते हैं। किन्तु इस विकास के दौरान ये पाशविक संस्कार पूर्णतया नष्ट नहीं होते अपितु अवशेषी रूप में मन के अवचेतन स्तर में सतत बने ही रहते हैं।

मनोविद् फ्रायड ने इसी कारण अवचेतन को गतिशील और आदिम कहा है। इसको उसने दमित इच्छाओं और स्मृतियों का भण्डार बताकर मानव को बर्बर, बालक और पशु का प्रतिनिधि के रूप में निरूपित किया है। फ्रायड की सीमित दायरे में सिमटी खोज को मनोविज्ञानी जुंग ने और अधिक फैलाया है। उनके अनुसार अचेतन व्यक्तिगत भी है और सामूहिक भी। व्यक्तिगत अचेतन में फ्रायड के अधोचेतन अवचेतन सम्मिलित हैं। सामूहिक अचेतन में मूल प्रवृत्तियाँ एवम् आर्चीटाइप्स हैं।

फ्रायड के अध्ययन की सीमाबद्धता इस कारण है कि उसने समूचे मानवीय व्यवहार को इसी अचेतन क्षेत्र से उपजी पाशविक भावनाओं के द्वारा संचालित बताया है। इसी को उसने मानवीय प्रकृति कहा है। जबकि वह मानवीय प्रकृति न होकर इसमें उत्पन्न विकृति है। कार्लजुंग ने उसकी विवेचना की संकीर्णता का कारण स्पष्ट करते हुए कहा है कि फ्रायड ने चूँकि सारे विकृत मानसिकता वाले मनोरोगियों का अध्ययन किया इसी कारण वह मात्र इसी पक्ष को देख सके।

तथ्य भी यही है अचेतन क्षेत्र जिसमें अवशेषी पाशविक संसार है, बाह्य उद्दीपन प्राप्त होने पर पाशविक भावनाओं को जन्म देते हैं। तदनुरूप विचारण व क्रिया में भी पाशविकता की झलक दिखाई देती है।

श्री अरविन्द ने इस स्तर को अवचेतन कहा है। उनके अनुसार यह अवचेतन सभी परिवर्तनों का विरोध करता है। वह उस आलस्य, दुर्बलता, अस्पष्टता और अज्ञान को सतत स्थिर रखता और वापस लाता है। जो कि भौतिक शरीर मानस और प्राण को प्रभावित करता है अथवा छिपे हुए भय, इच्छाओं, क्रोध और वासनाओं को जाग्रत करता है।

फ्रायड ने अपना सारा मनोविज्ञान इसी क्षेत्र तक सीमित कर दिया है। अवचेतन स्तर के उपर्युक्त परिणाम बाह्य उद्दीपनों की सम्मिश्रित क्रिया के बाद ही घटित होते हैं। इसी स्तर में निहित पाशविक संस्कारों को नष्ट करने की प्रक्रिया भारतीय चिन्तन में मानसिक विकास के नाम से जानी जाती है। इसी विनिष्टीकरण की प्रक्रिया को वेदान्त ने मनोनाश का नाम दिया है।

मनोविश्लेषणवादी यह मानते हैं कि यौन वासनाओं व कला, धर्म, साहित्य का एक ही समान क्षेत्र अचेतन है। इस विरोधाभासपूर्ण उक्ति का समाधान और औचित्यपूर्ण दिशा दर्शन देते हुए श्री अरविन्द स्पष्ट करते हैं कि मानव जीवन की उच्चतर प्रक्रियाएँ, कला, धार्मिक व गुह्य अनुभव अचितेन स्तर से सम्बन्धित हैं। वे 'पेसेज आफ योग' में बताते हैं कि अवचेतन नहीं अतिचेतन ही वस्तुओं का यथार्थ आधार है वस्तुतः यही हमारी वास्तविक प्रकृति है।

किन्तु वर्तमान परिवेश में भावनात्मक स्तर, व्यावहारिक क्रियाकलापों पर दृष्टि डालने से स्पष्ट होता है कि उनका संचालन क्षेत्र अवचेतन होकर रह गया है। इसका एकमात्र कारण है—तदनुरूप बाह्य उद्दीपनों की भरमार। सिनेमा और टेलीविजन द्वारा नंगे, फूहड़ दृश्यांकन, अश्लील साहित्य की बाढ़ चारों तरफ व्याप रहा प्रदूषित व तनाव पूर्ण वातावरण जो अवचेतन के

इन्हीं पशु संस्कारों को उद्दीप्त कर ऐसी भावनाओं का सृजन कर रहा है जिसे दुर्भावनाओं की संज्ञा दी जानी ही उचित है। परिणामस्वरूप दुर्विचार, दुर्निश्चयन में अभिवृद्धि हो रही है एवम् दुष्कर्म ही अबोध गति से मानव स्वभाव के अंग बनते रहे हैं।

मनोविदों ने भावनाओं की इस गति को रिट्रोग्रेसिव नाम दिया है। जिसका सीधा तात्पर्य है मनुष्य का पशुत्व की ओर उन्मुख होना। यदि यह गति देवत्व की ओर होती है तो इसे प्रोग्रेसिव कहा जाता है। किन्तु स्थिति की विपरीतता के कारण प्रथम लक्षण अधिक उभरता दिखाई देता है।

भौतिकवादी सभ्यता जिस राष्ट्र, जिस समाज व जिस क्षेत्र में जितनी अधिक बढ़ी है उतने ही अधिक अवांछनीय उद्दीपन जन-मानस के अवचेतन स्तर को प्राप्त हुए हैं। तदनु रूप विचार और व्यवहार भी अधोमुखी बना है। मनोविज्ञानियों ने भारत की स्थिति का सर्वेक्षण करने के उपरान्त बताया है कि यहाँ के बड़े नगर जो भौतिकता की दृष्टि से उन्नत व सक्षम माने जाते हैं, उसी अनुपात में पाशविक उद्दीपन निस्सृत कर रहे हैं। अवचेतन के ऊपर इनकी क्रिया उसी के अनुपात में पाशविक घटनाओं, अपराधों की बाढ़ पैदा कर रही है।

मनःशास्त्री इराप्रोगोफ ने अपने ग्रंथ "साइक्रेलाजी एल ए रोड टू पर्सनल फिलासफी" में कहा है कि भोगवादी संस्कृति जिस गति से बढ़ेगी उसी गति से जन मानस का अवचेतन सतत् पाशविक भावनाओं को जन्म देने वाले उद्दीपन प्राप्त करता रहेगा। परिणाम स्वरूप विचारणा व क्रिया भी पशुत्व की ओर गति करेगी। ऐसी स्थिति में हिंसा, अपराध, विघटन बढ़ते ही रहेंगे। इनको रोकने के लिए किये जा रहे सभी उपाय उसी तरह सिद्ध होंगे जैसे किसी पेड़ को बचाने के लिए उसकी जड़ को न सींचकर खाद-पानी पत्तियों को देकर उन्हें हरा-भरा रखने का प्रयत्न करना। भावनाओं की इस रिट्रोग्रेसिव गति के कारण मानव समुदाय पुनः पशुओं के झुण्ड के रूप में परिवर्तित हो जायेगा। अतः यह आवश्यक हो गया है कि जन मानस के चिन्तन की उल्टी दिशाधारा को उलटकर सीधा किया जाय। उसे सही दिशा में सोचने और करने को विवश किया जाय। भावनाओं के परिष्कार में हुई उज्ज्वल भविष्य की संभावनाएँ निहित हैं।

आत्म-शक्ति का उपार्जन एवं सुनियोजन

बाहर की वस्तुओं के सम्बन्ध में मनुष्य को बहुत सी जानकारीयों रहती हैं। उनके द्वारा होने वाली हानि तथा उठाए जा सकने वाले लाभों का भी सहज बुद्धि से

अता-पता रहता है, किन्तु आश्चर्य इस बात का है कि अपने आपके संबंध में नगण्य जानकारीयों ही रहती हैं। जो जाना जाता है उससे लाभ कैसे उठाया जाय और हानि से कैसे बचा जाय, इस सम्बन्ध में भी इतना ही परिचय होता है जिसे वस्तुस्थिति की तुलना में नगण्य ही कहा जा सके।

शरीर के छोटे-बड़े अंग-अवयवों को भली प्रकार देखा-समझा भी नहीं जाता, इतने पर भी उनकी सशक्तता आश्चर्यजनक होती है। किसी बड़े मिल कारखाने को चलाने में जितनी बिजली खर्च होती है उसकी अपेक्षा शरीर संचालन में उनके कल-पुर्जों को गतिशील रखने में ऊर्जा कहीं अधिक खप जाती है। फिर भी मोटी दृष्टि में इस उपयोग कुछ पता नहीं चलता और लगता है कि शरीर अपने आप जीवित है। इसका ढर्रा अपने आप चल रहा है। खाने-सोने का क्रम अनायास ही चलता रहता है। एक महिला घरेलू काम-काज करने में जितनी शरीर-शक्ति खर्च कर लेती है वह इतनी होती है कि उसके बल पर समूचे-भूमण्डल की कई परिक्रमाएँ लगाई जा सकती हैं। हृदय, आमाशय, गुर्दे आदि अवयव निरन्तर कार्यरत रहकर जितनी सामर्थ्य खर्च करते हैं, उसके सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि मोटी जानकारी की तुलना में वह हजारों गुनी अधिक होती है। इस विद्युत उत्पादन और उपयोग का लेखा-जोखा लिया जा सके तो प्रतीत होगा कि बाहरी दुनिया के बारे में हम भले ही कुछ आधा-अधूरा जानते हों, पर अपने सम्बन्ध में जितना समझा गया है उसे पर्वत की तुलना में अणुमात्र ही समझा जाना चाहिए।

मानसिक शक्ति के सम्बन्ध में भी यही बात है। सरकस में अनौखी करामातों दिखाने वाले, खेल के मैदानों में सामर्थ्य के कीर्तिमान स्थापित करने वाले जितने आश्चर्यजनक लगते हैं उससे कहीं अधिक मस्तिष्क की चेतन सत्ता है। वैज्ञानिक, दार्शनिक, कलाकार, मनस्वी जो प्रस्तुतीकरण करते रहते हैं उससे प्रतीत होता है कि मानसिक सूझबूझ लगती तो नगण्य है, पर उसकी कृतियों का चमत्कार किसी बड़े से बड़े कौतूहल से बढ़कर है। व्यसनी, प्रपंची अपराधी जैसी सूझ-बूझ का परिचय देते हैं उसे देखते हुए बाजीगर की उपमा दी जा सकती है। शरीर से लेकर मानसिक क्षमता का समग्र आकलन कर सकना तथाकथित समर्थ व्यक्ति के लिए भी कठिन है जो उनका धारणकर्ता, नियोक्ता, प्रयोक्ता माना जाता है। चेतना ही है जो कुछ क्षण के लिए अवरुद्ध हो जाय तो समझना चाहिए कि समूचा खेल देखते-देखते बिखर गया। कुछ क्षण पहले का जीवित व्यक्ति इस स्थिति में पहुँचते भी देखा गया है जिसे मरते ही जल्दी से दूर हटाने का

प्रयत्न किया जाय। शरीर अदभुत है, उसी का पुरुषार्थ और रसास्वादन है जो जड़ समझे जाने वाले पदार्थों को सचेतन से भी अधिक सरस अनुभव करता है। अशक्त को शक्तिशाली बना देता है। मनुष्य ही है जो परमाणु जैसी नगण्य इकाई को शक्ति सत्ता के रूप में प्रकट करता है। फिर सचेतन के सम्बन्ध में तो कहा ही क्या जाय? वह अदभुत है। स्रष्टा की असीम क्षमता उसकी छोटी सी दिखने वाली इकाई में लगभग पूरी तरह समाई हुई है। जड़ पदार्थों को सशक्त, सक्षम और अनुभूतिमय बना देने में उसी का कौतूहल काम करता देखा जा सकता है।

इस सचेतन सत्ता को प्राण कहते हैं। प्राणियों की चित्र-विचित्र हरकतें—हलचलें मात्र इसीलिए दृष्टिगोचर होती हैं कि उनमें प्राण की सशक्तता काम करती है। यदि वह क्षीण हो जाय तो समझना चाहिए कि अशक्ति के अतिरिक्त और कुछ शेष नहीं बचा। दुर्बल, दीन, असहाय, असमर्थ मात्र उन्हें कहते हैं जिनकी चेतना लड़खड़ा जाती है। तब फिर शरीर के अंग-अवयव भी जीवित रहने पर भी निजीवित दीख पड़ते हैं। इसको शरीर से सम्बन्ध छूट जाना कहते हैं, जिसे जीवन का अन्त कहा जाता है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि यदि चेतना शरीर और मन पर अपना समुचित आधिपत्य बनाए हुए हो तो फिर काय-कलेवर के दुर्बल रहने पर भी व्यक्ति असीम सामर्थ्य का धनी बना रहता है। गान्धी जी की ऊँचाई पांच फुट दो इंच थी और वजन मात्र ९६ पाउण्ड। इतने पर भी उनकी चेतना इतनी समर्थ थी कि करोड़ों जनसाधारण में प्रचण्ड प्राण फूँका। व्यापक जन-मानस का स्तर कुछ से कुछ बनाकर दिखाया। समर्थ शासकों को धूल चटाने में सफल रहे। विश्व के कोने-कोने से अपने ढंग की अनौखी चेतना का संचार किया। यह शरीर या बुद्धि का नहीं प्राण चेतना की समर्थता का ही चमत्कार था। ऐसे उदाहरणों की इस संसार में कमी नहीं, जिनकी प्राण चेतना ने साधनों का एक प्रकार से अभाव रहते हुए भी असाधारण उपलब्धियों का पर्वत खड़ा कर दिखाया। तपस्वियों और सिद्ध पुरुषों द्वारा व्यक्तियों, परिस्थितियों एवं वातावरण को किस प्रकार समय-समय पर पलटा और सुधारा है यह विवरण भी इतिहास का सर्वविदित प्रसंग है।

मनुष्य को शक्ति का स्रोत कहा जा सकता है। वह प्राणियों को भी इच्छानुसार परिवर्तित करता और पदार्थों को भी कुछ से कुछ बना देता है। घटनाएँ दुख सुख की, हानि-लाभ की निमित्त कारण प्रतीत होती हैं। पर वास्तविकता इससे भिन्न है। चेतना की अनुभूतियाँ ही चित्र-विचित्र अनुभव करतीं और तरह-तरह के अनुभव

कराती रहती हैं। घटनाएँ एवं वस्तुएँ तो उस प्रसंग में नाममात्र की भूमिका निभा पाती हैं।

शास्त्रकारों का कथन है कि जिसने अपने को जान लिया उसने सब कुछ जान लिया। जिसने अपनी सत्ता और महत्ता का परिचय प्राप्त करने से लेकर प्रयोग करने तक की विद्या को जान लिया उसे समग्र सत्ता-सम्पन्न एवं अति महत्वपूर्ण ही समझना चाहिए।

सम्पदा किसके पास कितनी है? कहाँ है? उसे किस प्रकार प्राप्त किया जाय? पाने के उपरान्त उसका सर्वश्रेष्ठ उपयोग क्या है? यह सब जान लेना ही सम्पदा का होना और लाभ उठाना कहलाता है। जिनके पास यह जानकारी-लाभ पाने का उपक्रम है, जिन्हें ऐसी कुछ जानकारी नहीं है, उससे पैरों तले खजाना दबा पड़ा हो तो भी उसका कोई उपयोग नहीं। रत्नराशि पास में होने पर भी यदि उसे काँच का टुकड़ा भर समझा जाय तो व्यक्ति घनाध्यक्ष होते हुए भी गरीबी के दिन गुजारेगा। मनुष्य की सबसे बड़ी सम्पदा चेतना पास होने का कारण आत्मशक्ति ही है। शरीर बल, बुद्धि आदि सभी उसके सामने तुच्छ हैं।

सही उपयोग विदित होने पर साधारण सी घास-पात भी संजीवनी बूटी सिद्ध हो सकती है। जानकारी के अभाव में सब कुछ निरर्थक सा है। सही उपयोग ही समुचित लाभ उठाने की स्थिति विनिर्मित करता है। बखेरते चलने पर तो सब कुछ बरबाद हो जाता है। छलनी में दूध दुहने पर तो दुधारू गाय का मालिक भी हाथ मलता और दुर्भाग्य को कोसता है।

आत्मबल भी अन्य बलों की तरह लोगों के पास होता है, पर उसे संभालना, सँजोना न बन पड़े तो कुछ लाभ उठ सकना संभव नहीं। आतिशी शीशे पर सूर्य की किरणों को एकत्रित कर लेने पर आग जलने लगती है। बन्दूक की नली द्वारा सही निशाने पर छोड़ी गई बारूद भयंकर विस्फोट करती और अपनी शक्ति का परिचय देती है। आत्मशक्ति होने पर भी उसको एकत्र किए बिना सामर्थ्य की वृद्धि नहीं होती। इसीलिए योग साधनाओं, तपश्चर्याओं द्वारा आत्मशक्ति को उभारना, एकत्रीकरण करना और वरिष्ठता का परिचय देना संभव होता है। एकग्रता, एकान्त साधना, मौन साधना जैसे प्रयोग इसीलिए किए जाते हैं कि आत्म-शक्ति का चमत्कारी उपयोग बन पड़े। इसी आधार पर सिद्ध पुरुष, अनेकों दिव्य विभूतियों के अधिष्ठाता बनते हैं और वह कर दिखाते हैं जो सामान्यजनों की कल्पना से भी बाहर होता है। नर पशु के समतुल्य विचरण करने वाले भी

यदि ऋद्धि-सिद्धियों के अधिष्ठाता बन सकें तो समझना चाहिए कि उनसे देव पुरुष की स्थिति प्राप्त कर ली।

योगीजन अपनी दिव्य शक्ति का एक कण भी बिखरने नहीं देते। उसे संभाल-सँजोकर रखते हैं। जबकि साधारण जन अपना समय निरर्थक क्रियाकलापों में बर्बाद करते हैं। साधन वनों में एकान्तसेवी, गुफा निवासी प्रयोगरत सिद्ध पुरुषों द्वारा असाधारण क्षमताएँ कैसे प्राप्त की जाती हैं? इसका लम्बा इतिहास है। ऋषि-महर्षि यही करते थे। विगत दिनों भी योगी महर्षि रमण आदि ने इसी मार्ग पर चलते हुए सिद्धियाँ पाई। अपना, दूसरों का, विश्व की विविध समस्याओं का समाधान किया। अनुभवी बताते हैं कि जिसका प्राण वश में है, उसके लिए सब कुछ उसकी मुट्ठी में है। विभूतियों की उसके पास कुछ कमी नहीं रहती। पार्वती, भागीरथ, ध्रुव आदि की तपस्याओं के प्रतिफल सर्वविदित हैं।

वह राजमार्ग अभी भी सभी के लिए खुला हुआ है। तप साधना के सत्परिणामों की परम्परा अभी भी यथावत् है। यह दूसरी बात है कि उन उपलब्धियों को कोई क्षुद्र प्रयोजनों में बाजीगरी जैसे कौतुक-कौतूहल दिखाये जायें अथवा उसके साथ जन समस्या के हितार्थ लोक-कल्याण के महान प्रयोजन पूरा कर सके। युग परिवर्तन की इस बेला में ऐसी ही संग्रहीत परिष्कृत और प्रखर आत्मशक्ति के प्रयोग की आवश्यकता समझी गई है।

मानवी अन्तराल में प्रसुप्त दिव्य-क्षमता

सामान्य मनुष्यों में न पाई जाने वाली आध्यात्मिक विशेषताओं को अतीन्द्रिय चेतना कहते हैं। प्रयत्न करने पर इन्हें हर कोई जगा सकता है, मनुष्य की विदित क्षमता सीमित है किन्तु अविज्ञात सामर्थ्यों का कोई अन्त नहीं। शरीर साधारणतया अन्न, जल और वायु पर जीवित रहता है, पर यदि उसकी असाधारण क्षमताओं को जगाया जा सके तो अदृश्य जगत की वायवीय स्थिति में विद्यमान आहार सामग्री को आकर्षित करने से काम चल सकता है और जिस अन्न, जल और हवा के ऊपर सामान्य प्राणी जीवित रहते हैं उन्हें अनावश्यक सिद्ध किया जा सकता है।

स्वामी विवेकानन्द ने तत्कालीन एक महात्मा “पौहारी बाबा” का विवरण प्रकाशित किया था कि वह बिना अन्न, जल के मुद्दतों से जीवित है। उनकी घोषणा को जाँचा गया और सही पाया गया था। समाधि लेकर कई हठयोगी गुफा में बन्द हो जाते हैं और लम्बी अवधि तक बिना अन्न, जल एवं हवा के जीवित रहते हैं। जिस

स्थिति में बैठे थे उसी स्थिति में बने रहते हैं। मल-मूत्र विसर्जन करने एवं सोने, उठने की उन्हें कुछ भी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। कितने ही हठयोगी रक्त-संचार एवं हृदय की धड़कन बन्द करके भी जीवित रहने के प्रमाण विशेषज्ञों के परीक्षणों के साथ दे चुके हैं। सामान्य मनुष्य जीवन से कई गुनी आयु वाले तथा असह्य शीत में निर्द्वन्द्व निवास करने वाले योगी अभी भी विद्यमान हैं।

योगशास्त्र में शरीर को असाधारण रूप में हल्का या भारी बना लेने, अदृश्य हो जाने जैसी सिद्धियों का वर्णन है। यदा-कदा इनके प्रमाण भी मिल जाते हैं। सामान्य अभ्यास में नट, बाजीगर शरीर साधना के ऐसे कौतुक, कौतूहल दिखाते हैं जिन्हें देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। यह ‘अतिरिक्त’ वस्तुतः सामान्य ही होता है। मूर्छित स्थिति में ऐसी अगणित विशेषताएँ मानवी काया में विद्यमान हैं जो दैनिक जीवन में दृष्टिगोचर न होने से असामान्य अथवा चमत्कारी दीखती हैं, पर वस्तुतः यहाँ चमत्कार कुछ भी नहीं है। जो कुछ हो रहा है, हो सकता है वह प्रकृति की नियत विधि-व्यवस्था के अन्तर्गत ही होता है।

परमाणु शक्ति कहीं आकाश से नहीं टपकती है, सृष्टि के आरम्भ से ही उस अदृश्य कण में वह विद्यमान थी। मूर्छित होने के कारण वह विदित नहीं होती थी। वैज्ञानिक उसे प्रयत्नपूर्वक जागृत करते हैं। फलतः वह अणु विस्फोट जैसे अवसरों पर अपनी जागृत क्षमता का परिचय देती है। समूचे शरीर के सम्बन्ध में यही बात है उसकी अतिरिक्त, असामान्य एवं विशिष्ट शक्तियों का कोई ठिकाना नहीं। जड़ परमाणु की शक्ति को देखकर चकित रह जाना पड़ता है फिर चेतना जीवाणु के भीतर कितनी क्षमता हो सकती है इसका अनुमान इसी गणित से लगाया जा सकता है कि जड़ की तुलना में चेतना को कितना अधिक महत्व दिया जा सकता है और समर्थ माना जा सकता है।

शरीर के उपरान्त मन का क्षेत्र आता है। मस्तिष्क उसका केन्द्र है और नाड़ी संस्थान के माध्यम से विस्तार सम्पूर्ण शरीर में देखा जा सकता है। ज्ञानेन्द्रियों में अपने-अपने स्तर की सरसता और अनुभूतियाँ होती हैं। कर्मेन्द्रियों में अपने-अपने ढंग की कार्यक्षमता देखी जाती है। यह सब कुछ मन मस्तिष्क का ही चमत्कार है। आँखों के माध्यम से मस्तिष्क ही दृश्य देखता और उनसे किसी प्रकार का निष्कर्ष निकालता है। मस्तिष्क यदि अस्त-व्यस्त हो तो आँखों के खुले रहने और घटना-क्रम सामने से गुजरने पर भी दृश्य का समुचित निष्कर्ष न

निकाला जा सकेगा। सौन्दर्य बोध आँखों का काम नहीं वरन् विकसित कलात्मक सम्वेदना की अनुभूति है। एक ही वस्तु को देखकर एक मनुष्य उसकी आकृति-प्रकृति मात्र को समझ पाता है जबकि दूसरा भावुक या अन्वेषक उसमें से सौन्दर्य सम्वेदना अथवा अन्यान्य विशेषताएँ अनुभव करता है। यह अन्तर आँखों की दृश्य शक्ति का नहीं वरन् मस्तिष्कीय चेतना की स्तर भिन्नता का है।

यही बात अन्य इन्द्रियों के सम्बन्ध में है। उनकी सामान्य सम्वेदनाओं का अनुभव भी स्थानीय नहीं, मस्तिष्कीय होता है। ज्ञान तन्तुओं को सुन्न कर देने पर रसास्वादन तो दूर, काट-पीट तक का पता नहीं चलता। कर्मेन्द्रियाँ भी मस्तिष्क का आदेश पाने पर सक्रियता एवं शिथिलता प्रकट करती हैं। यह तथ्य अब दिन-दिन अधिक स्पष्ट होता जाता है कि शरीर पर मन का पूर्णतया शासन है। आरोग्य शास्त्र अब धीरे-धीरे इस निष्कर्ष पर पहुँचता जाता है मनोविकार ही शारीरिक दुर्बलता एवं रुग्णता के प्रधान कारण होते हैं। विषाणुओं से, वात-पित्त-कफ से, अपच से, ऋतु प्रभाव से आहार-विहार से जितना प्रभाव शरीर पर पड़ता है उन सबके सम्मिलित प्रभाव की अपेक्षा अकेला मनोबल कहीं अधिक प्रभावित करता है। नवीनतम 'शोधों' ने मानसिक सन्तुलन को—हँसती-हँसाती, हलकी-फुलकी जिन्दगी को—आरोग्य रक्षा का सबसे बड़ा कारण और आधार माना है। रोगियों में से अधिकांश की मनःस्थिति ही विकृत एवं डाँवाडोल होती है। समर्थता प्रकट करने वालों में से कितने ही शारीरिक दृष्टि से दुर्बल होते हुए भी मनस्वी एवं ओजस्वी होने के कारण शूरवीरों जैसे पराक्रम दिखाते हैं।

शरीर और मन का अविच्छिन्न सम्बन्ध होने से आरोग्य, दीर्घजीवन, पुरुषार्थ, सौन्दर्य, प्रतिभा, स्फूर्ति जैसे अनेक लक्षणों से मानसिक स्थिति का परिचय मिलता है। मन गिरा, हारा होने पर शरीर का गठन सही होने पर भी उसमें निर्वीरता, निराशा, थकान, उदासी छाई दीखती है और आकर्षण न जाने कहाँ चला जाता है। इसके विपरीत काली-कलूटी और गठन की दृष्टि से गई-गुजरी आकृति होने पर भी भीतरी उत्साह उस काया को असाधारण रूप से तेजस्वी और आकर्षक बना देता है। मुर्दों की आकृति देखकर उनकी मनःस्थिति जानना कठिन है, पर जीवित व्यक्ति का चेहरा देखकर उसकी आन्तरिक स्थिति का बहुत कुछ परिचय सहज ही मिल जाता है। यह मन का शरीर के माध्यम से अपनी स्थिति प्रकट करने का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

शरीर को कठपुतली की तरह नचाने वाला मन उसका केन्द्र-संस्थान मस्तिष्क अपने आप में कितना विचित्र

और विलक्षण है यह उसके गठन और क्रिया-कलाप को देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। सामान्य बुद्धि-वैभव का विकास-विस्तार जीवन की अनेकानेक सफलताओं का द्वार खोलता है। उसमें त्रुटि रह जाने पर मनुष्य को पिछड़ी स्थिति में रहना पड़ता है और पग-पग पर असफलताओं का मुँह देखना पड़ता है। ऐसे ही लोग उपेक्षित एवं उपहासास्पद स्थिति में पड़े हुए गुजर करते हैं; जीवन की बहिरंग परिस्थितियों को मनःस्थिति ही प्रभावित करती है। उसी की प्रतिक्रिया से व्यक्ति आकर्षित एवं उदासीन बनते हैं। सहयोग एवं असहयोग का सिलसिला भी इसी आधार पर चलता है। सफलताओं एवं असफलताओं के चक्र भी इसी धुरी पर घूमते हैं।

यह चर्चा शरीर पर, दैनिक जीवन पर पड़ने वाले मनःस्थिति के प्रभाव की है। आगे की बात और भी अधिक गम्भीर एवं महत्वपूर्ण है। प्रकट व्यक्तित्व और उसके व्यापक प्रभाव की आधारभूत सत्ता, मानसिक चेतना का अपना स्वरूप देखने, समझने का प्रयत्न किया जाता है तो आश्चर्य चरम सीमा तक पहुँच जाता है। छोटे से शरीर में कैद तनिक सी चेतना हर दृष्टि से नगण्य है। उसका प्रभाव और कार्यक्षेत्र अपनी छोटी-सी सत्ता तक सीमित दीखता है, पर अन्वेषण यह बताता है कि यह समष्टि मनःतत्त्व के साथ भी अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है और चेतना के समुद्र में से जब जितना—जिस स्तर का-आदान-प्रदान चाहती है उतना निर्बाध रूप से उपलब्ध कर लेती है।

मस्तिष्कीय संरचना लगभग उसी स्तर की है जैसी कि पृथ्वी के ध्रुव प्रदेशों की। अन्तर्ग्रही आदान-प्रदान के लिए इन दोनों छोटे क्षेत्रों की असाधारण रूप से अद्भुत होती है। मस्तिष्क की स्थिति भी ऐसी है। उसके सामान्य दीखने वाले वसा कण-वस्तुतः अनौखे चुम्बकत्व से भरे पूरे हैं। उनकी विद्युतीय ऊर्जा यों थोड़ी बहुत तो इलेक्ट्रोकार्डियोग्राम जैसे छोटे उपकरणों से भी जानी, नापी जा सकती है, पर वस्तुतः वह चेतना स्तर की होने के कारण यान्त्रिक पकड़ एवं परख से बहुत आगे की है। यन्त्रों में जीवात्मा, जीवन तथा उसके सम्वेदनात्मक उतार-चढ़ावों को जताने का कोई उपकरण निकल नहीं सका है और भविष्य में वैसी संभावना भी नहीं है। क्योंकि भौतिक यंत्र मात्र पंचभूत प्रकृति के बने जड़ शरीर की हलचलें भर नाप सकते हैं। चेतना का स्वरूप और सम्वेदनाओं का प्रभाव यन्त्रों की पकड़ में नहीं आता।

मस्तिष्क घटकों का चुम्बकत्व जीवाणु को जितना प्रभावित करता है उतना तो प्रत्यक्ष से जाना भी जाता है और उतने को भी ऐसा माना गया है जिसकी तुलना में

यान्त्रिक विद्युत का स्तर बहुत ही घांटया बैठता है। इसकी गहरी परतें तो दो ही प्रकार से जानी जा सकती हैं। एक तो उसी स्तर की विकसित चेतना, योग दृष्टि—उसे परख सकती है। दूसरे उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया के चमत्कारी घटना-क्रमों को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस सामान्य के पीछे कुछ असामान्य काम कर रहा है।

इस विश्व के कण-कण में अजस्र शक्ति का भण्डार भरा पड़ा है, पर वह है प्रसुप्त स्थिति में। छोटे स्तर के प्राणी उसमें से बहुत ही स्वल्प मात्रा की जानकारी रखते हैं। शरीर यात्रा के लिए प्रकृत पदार्थ जिस प्रकार काम आते हैं वे उतना भर जानते हैं। विकसित मानवी चेतना ने अग्नि का उपयोग, कृषि, चिकित्सा आदि प्रयोजनों में काम आने वाले रहस्यों को प्रयत्नपूर्वक जाना और लाभ उठाया। अब तो विज्ञान की गगनचुम्बी प्रगति हो चुकी है और एक के बाद एक दैत्य उपकरण उसके हाथ में आ गये हैं। भविष्य में इससे भी अनेक गुनी शक्ति हाथ में आ सकती है। इन उपलब्धियों के पीछे तथ्य इतना ही है कि विकसित चेतना ने प्रकृत पदार्थों के पीछे प्रसुप्त स्थिति में पड़ी शक्ति को पहचाना और उसे जाग्रत करके अपना काम बनाया। जीवाणु सत्ता के बारे में भी यही बात है। शरीर में विद्यमान विभिन्न वर्गों के जीवाणुओं पर शोध हो रही है और टैस्ट ट्यूबों में मनचाही आकृति-प्रकृति के मनुष्यों के अभिनव-सृजन का प्रयत्न चल रहा है। यह प्रसुप्ति के जागरण की चेष्टा भर है। मस्तिष्कीय क्षेत्र के प्रधान रूप से परिलक्षित होने वाली चेतना को जिन घटकों में काम करते देखा गया है वहाँ की खोजबीन भी उसी उत्साहपूर्वक चल रही है। अतीन्द्रिय चेतना के चमत्कार प्रत्यक्ष होने लगे हैं और समझा जाने लगा है कि मस्तिष्क की स्थिति जीवनयापन के सामान्य क्रिया-कलाप पूरे करने जितनी सीमित नहीं है अपितु उसके पीछे एक से एक बड़ी अद्भुत सम्भावनाएँ झाँकती देखी जा सकती हैं।

साधारणतया परमाणु में भार, घनत्व, विस्फुटन, चुम्बकीय क्षेत्र आदि भौतिक परिचय देने वाले लक्षण होते हैं। पर अब किशोरावस्था में प्रवेश करते हुए विज्ञान की पकड़ में ऐसे सूक्ष्म विद्युतीय कण आ गये हैं जिनमें भौतिक परमाणु में पाया जाने वाला एक भी लक्षण नहीं है। फिर भी वे प्रकाश की गति से शरीरों के भीतर और पोले आकाश में निर्बाध भ्रमण करते रहते हैं। वे भौतिक परमाणुओं को वेधकर आर-पार निकल जाते हैं। पदार्थ की कोई दीवार उन्हें रोक तो नहीं पाती, पर यदा-कदा उनमें टकराव उत्पन्न होते देखा गया है। इस

टकराव के अवसर पर ही उनका अस्तित्व अनुभव में आता है। गणितशास्त्री एड्रियाइब्स आदि मूर्धन्य वैज्ञानिकों ने उनको 'न्यूट्रिनी' कहा है। दूसरे वैज्ञानिकों ने इसी जाति के 'साइन्नोन' कणों के अस्तित्व का प्रतिपादन किया है। यह सोचा जा रहा है कि सम्भवतः न्यूट्रिनी एवं साइन्नोन कण ही मस्तिष्क के सामान्य न्यूरोन कणों के साथ साँठ-गोँठ करके अतीन्द्रिय चेतना उभारने का पथ-प्रशस्त करते हैं।

अब न्यूट्रिनी कणों का प्रभाव मनुष्य की मस्तिष्कीय चेतना और तन्तु समूह पर क्या हो सकता है इसकी गहरी खोजें चल रही हैं। वैज्ञानिक एक्सेल फरसेफिल का कथन है कि मानसिक चेतना पर वे जब प्रभाव डालते हैं और वहाँ एक नई जाति के ऊर्जा कणों का जन्म होता है जिन्हें 'माइन्जेन' नया नाम दिया गया है। अनुमान है कि यदि इनका उद्भव और विकास मस्तिष्क में होने लगे तो मनुष्य का अवचेतन मन ब्रह्माण्डीय ऊर्जा के साथ सम्बद्ध होकर अपनी ज्ञान परिधि और क्रियाशक्ति असीम कर सकता है। तब शरीर बन्धनों के कारण उसकी सीमित क्षमता के असीम बनने में कोई कठिनाई न रहेगी।

जीव विज्ञानवेत्ता प्रो. फेंक ब्राउन की लम्बी शोषें इस निष्कर्ष पर पहुँची हैं कि जिस प्रकार हमारे इर्द-गिर्द हवा भरी है उसी प्रकार इस ब्रह्माण्डव्यापी ऊर्जा के समुद्र में सृष्टि का प्रत्येक प्राणी जीवन प्राप्त करता है। उस महान प्रसारण की प्रत्येक प्राणी एक छोटे रेडियो रिसेवर की तरह अपनी पात्रता के अनुरूप ग्रहण करता है और उसमें अपना उपार्जन सम्मिलित करता है। इस प्रकार हर प्राणी अथवा पदार्थ अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हुए एक ही संयुक्त सत्ता का अंश है। भिन्नता के बीच एकता के वेदान्त सिद्धान्त को अब क्रमशः विज्ञान के क्षेत्र में भी मान्यता मिलती चली जा रही है।

मनुष्यों में जो अन्य प्राणियों से इतर दृष्टिगोचर होती है, जिसे शरीर संवेदना से आगे की चेतना कहा जा सकता है। यह आखिर है क्या? इस सम्बन्ध में शोधकर्ताओं ने कई निष्कर्ष निकाले हैं। न्यूयार्क विश्वविद्यालय के डॉ० राबर्ट वेकर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ब्रह्माण्डव्यापी विद्युत चुम्बकीय शक्ति विश्व के प्रत्येक पदार्थ को, जड़ चेतन को, अपने साथ जकड़े हुए है। विश्व की प्रत्येक इकाई उसी समष्टि की एक घटक है। अस्तु, पृथक्ता के बीच सघन एकता विद्यमान है और उस एकता के कारण ही पदार्थों और प्राणियों में दृश्य-अदृश्य आदान-प्रदान होता है। जो क्रम आये दिन अनुभव में आता रहता है वह सामान्य और जो यदा-कदा

दीख पड़ता है वह असामान्य, अतीन्द्रिय या चमत्कार कहा जाता है।

सृष्टि के रहस्यों की गहरी परतों के ऊपर चढ़े हुए आवरणों को उठाते हुए मनुष्य प्रकृति की अद्भुत क्षमताओं का अधिपति किस आधार पर बनाता चला जाता है? उसने जल, धूल और नम्र पर आधिपत्य स्थापित करने में सफलता क्यों कर पाई? मानवी मस्तिष्क के विकास की सम्भावना किस आधार पर बन सकी, जबकि अन्य प्राणियों के मस्तिष्क अपने क्षेत्र में मनुष्य से भी अधिक विशिष्ट स्तर के होने पर भी निर्वाह परिधि से आगे किसी विकास क्षेत्र में प्रवेश न कर सके? मानवी मस्तिष्क को प्रस्तुत उपलब्धियाँ कहाँ से क्यों कर प्राप्त हो सकीं? इस प्रश्न के सम्बन्ध में सामान्य से समाधान नहीं होता उसके पीछे कुछ असामान्य होने की बात सोचनी पड़ती है।

परा मनोविज्ञान अनुसंधान की दिशा में विधिवत् प्रयत्न लगभग एक शताब्दी से चल रहे हैं। इसका श्रीगणेश, लन्दन सोसाइटी फॉर साइकिकल रिसर्च के रूप में हुआ। इसके तीन वर्ष बाद वैसी ही शोध सभा अमेरिका में भी गठित हुई उसका नाम रखा गया—‘अमेरिकन सोसाइटी फॉर साइकिकल रिसर्च’ इंग्लैण्ड में हेनरी लिजविक, सर कनन डायल, सर अलीवर लाज, सर विलियम कुक्स जैसे मनीषियों ने इन प्रयोगों में गहरी दिलचस्पी ली। अमेरिका में हुए शोध प्रयत्नों में पिछली पीढ़ी के मनीषियों में विलियम जेम्स, मैक्डोनेल का नाम अग्रिम पंक्ति में है। रूस के शरीर शास्त्री बी. एम. वेखोरेफ की खोजों ने परा मनोविज्ञान शोध को आगे बढ़ाने में भारी प्रयत्न किये हैं।

इन दिनों कितने ही विश्वविद्यालयों में परा मनोविज्ञान सम्बन्धी शोध कार्य बड़े उत्साहपूर्वक चल रहे हैं। कैलीफोर्निया की स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी, नीदरलैण्ड की ग्रोनिंगन यूनिवर्सिटी, हारवर्ड यूनिवर्सिटी शिकागो यूनिवर्सिटी, इयूक यूनिवर्सिटी आदि में चल रहे शोध प्रयत्नों ने इस विज्ञान के नये अध्याय आरम्भ किये हैं और ऐसे प्रमाण एकत्रित किये हैं। जिससे प्रतीत होता है कि मनुष्य के क्रम-चलाऊ व्यवहार बुद्धि के अतिरिक्त और ऐसा भी बहुत कुछ है जिसे असामान्य और अद्भुत कहा जा सके। ऐसा क्यों होता है। अचेतन और उपचेतन मन की विलक्षण क्षमताओं का स्वरूप और कारण समझने में इन शोध प्रयत्नों से बहुत सहायता मिली है और भविष्य में अधिक जान सकने की सम्भावना का पथ-प्रशस्त हुआ है।

‘फाउण्डेशन ऑफ रिसर्च ऑन दि नेचर ऑफ मैन’ से सम्बद्ध इन्स्टीट्यूट फार पैरासाइकोलोजी ने परा मनःशक्ति के संदर्भ में अति महत्वपूर्ण शोध सामग्री एकत्रित की है।

इयूक विश्वविद्यालय के डॉ० जे० वी० राइन द्वारा लिखित पुस्तक ‘न्यू फ्रंटियर्स आफ माइण्ड’ में मस्तिष्कीय विलक्षणता पर गम्भीर प्रकाश डाला गया है। इन को विकसित करने पर प्राप्त हो सकने वाले लाभों की ओर अँगुलि निर्देश किया है।

परा मनोविज्ञान कभी जादुई कौतूहल समझा जाता था पर अब उसे संसार भर में विशुद्ध विज्ञान का दर्जा मिल गया है और प्रायः सभी देशों में अपने-अपने स्तर के शोध-संस्थान सरकारी और गैर सरकारी स्तर पर यह तलाश कर रहे हैं कि रहस्य मानस के पीछे क्या सिद्धान्त और कौन तत्त्व काम करते हैं?

यह सारा ब्रह्माण्ड सामान्य भी है और असामान्य भी। आकाश की नीली छत में टिमटिमाते जुगनू उड़ रहे हैं और दो बड़े झाड़-फानूस उजाले बखरेने की इयूटी पूरी तरह कर रहे हैं। इतनी छोटी सामान्य व्याख्या अन्तरिक्ष की कर देना बालबुद्धि के लिए पर्याप्त है। असामान्य को जब खोजा जाता है तो ग्रह-तारकों और नीहारिकाओं की आकृति-प्रकृति का विस्तार देखते हुए चकित रह जाना पड़ता है। उनकी दूरी-चाल, कक्षा और विस्तृति का विवरण सामने आता है तो सहसा उन पर विश्वास करने को जी नहीं करता। सौर-मण्डल के सदस्यों का पारस्परिक आदान-प्रदान इतना महत्वपूर्ण है कि उसे देखकर लगता है जैसे एक ही शरीर के विभिन्न अवयव मिल-जुलकर किसी कार्य-व्यवस्था को पूरी करने में संलग्न हों।

सामान्य दृष्टि से मानवी शरीर और मस्तिष्क भी सामान्य है-उसे भौतिकी विश्लेषण के अनुसार चलता-फिरता पौधा अथवा कोटि-कोटि जीवधारियों की सैन्य शृंखला का एक नगण्य सा घटक कहा जा सकता है, पर जब उसके अन्तराल में प्रसुप्त क्षमता का थोड़ा सा परिचय मिलता है तो लगता है यह अद्भुत है, असामान्य है। यदि यह प्रसुप्ति जागृति में बदली जा सके तो बीज के वृक्ष बन जाने की तरह नर को नारायण स्तर की भूमिका निभा सकने की पूरी-पूरी सम्भावना विद्यमान है।

मनश्चेतना के उच्चस्तरीय आयाम

मानव मस्तिष्क की क्षमता असीम एवं अप्रत्याशित है। उसे समस्त शक्तियों, अतीन्द्रिय क्षमताओं का केन्द्र माना गया है। उसका पूरा नियंत्रण सारे शरीर पर होता

है। उसकी इच्छा से ही नाड़ी- संस्थान काम करता है और ज्ञानतंतुओं के माध्यम से उसी का वर्चस्व छोटे से लेकर बड़े अंगों पर छाया रहता है। मस्तिष्क के अरबों स्नायु-कोषों में से प्रत्येक की अपनी विशेषता, अपनी दुनिया और अपनी संभावनाएँ हैं। वे प्रायः अपना अभ्यस्त काम निपटाने भर में दक्ष होते हैं। उनकी अधिकांश क्षमता प्रसुप्त स्थिति में पड़ी रहती है। काम न मिलने पर हर चीज निरर्थक रहती है। इसी प्रकार इन ज्ञान-तंतुओं से स्नायु कोषों से दैनिक जीवन की आवश्यकताएँ पूरा कर सकने के लिए आवश्यक थोड़ा सा काम कर लिया जाता है, तो उतना ही करने में वे दक्ष रहते हैं। यदि अवसर मिला होता, उन्हें उभारा और प्रशिक्षित किया गया होता तो वे अबकी अपेक्षा लाखों गुनी क्षमता प्रदर्शित कर सके होते। इस रहस्य को यदि जाना-समझा जा सके तो अबकी अपेक्षा मनुष्य हजारों गुनी अधिक विभूतियों से भरा-पूरा हो सकता है।

हमारे मस्तिष्क के भीतर जिस ऊर्जा का सतत निर्माण होता रहता है, उसका क्रियाशीलता में उपयोग होना आवश्यक है, किन्तु जब उसकी क्रियाशीलता पर अंकुश लगाकर उसे अवरुद्ध कर दिया जाता है तो उसके परिणाम अनेकानेक मनोरोगों के रूप में सामने आते हैं। इस संदर्भ में सुविख्यात मनोवेत्ता मैस्लो का कहना है कि किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत विकास को अवरुद्ध करने से उसमें न्यूरोसिस जैसे रोग विकसित होते हैं। उनके अनुसार मस्तिष्क को स्वस्थ क्रियाशीलता के लक्ष्य को प्राप्त करने की चाह होती है, कोई योग्य कार्य करने का भाव जाग्रत होता है और जब व्यक्ति को उस योग्य और उचित कार्य करने से वंचित किया जाता है अथवा उसकी प्रगति में बाधा उत्पन्न की जाती है, तो न केवल उसका मानसिक संतुलन बिगड़ता है, वरन् वह रोग का आकार ग्रहण कर लेता है। मस्तिष्कीय क्षमताएँ कुंठित होने लगती हैं और वह व्यक्ति ऊब, निराशा, निष्क्रियता एवं अकर्मण्यता जैसी मनोविकृतियों की चपेट में जकड़ने लगता है। इसका विस्तार क्रमशः उसी प्रकार होता जाता है, जिस प्रकार से कि एक तालाब के बँधे हुए जल पर काई का विस्तार होता है।

सुप्रसिद्ध मनोविज्ञानी एल्डुअस हक्सले ने मानव मस्तिष्क की संभावनाओं पर विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि मानवी मस्तिष्क अनेकानेक विभूतियों एवं क्षमताओं का भाण्डागार है। शरीरशास्त्री एवं चिकित्साविज्ञानी अभी तक मात्र उसके स्नायुकोषों और ज्ञानतंतुओं की चेतन परतों में सन्निहित क्षमताओं का ही थोड़ा-बहुत आकलन भर कर पाये हैं, पर उन विशिष्ट क्षमताओं को नहीं खोज पाये हैं, जो मस्तिष्क की अविज्ञात अचेतन परतों में

छिपी दबी पड़ी हैं। उनके अनुसार मानव मस्तिष्क का एक भाग चेतन है तो दूसरा अचेतन। जिसमें अतीन्द्रिय सामर्थ्य से लेकर मनुष्य के जन्म-जन्मान्तरों के भूले-बुरे संस्कार दबे हुए रहते हैं। इस परत को सामान्यतया देखा नहीं जा सकता। इसी तरह उसका सर्वोच्च स्तर परम चेतन है, जिसकी पिटारी में पराशक्तियाँ, दिव्य विभूतियाँ बंद हैं। परम चेतन की प्रक्रियाओं का रुचिकर उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उनसे बताया है कि आर्कविशप वॉटले ने पाँच वर्ष की आयु में ही परिकलन की एक असामान्य क्षमता का विकास कर लिया था। वह कठिन से कठिन गणितीय प्रश्नों को अपने मस्तिष्क में हल कर लिया करता था, किन्तु नौ वर्ष की आयु में उसमें इस क्षमता का पूर्णतः लोप हो गया। प्रोफेसर सेफोर्ड दस वर्ष की आयु में इसी तरह गणित के कठिन प्रश्नों को मानसिक रूप से हल कर दिया करते थे जिनके उत्तर ३६ अंकों तक हुआ करते थे। उन्होंने भी इस सामर्थ्य को कुछ वर्षों में ही खो दिया था। बेंजामिन-फ्रैंकलिन ने जबकि उसकी आयु छः वर्ष की ही थी, अपने पिता से पूछा था कि उसके जन्म का ठीक समय क्या है? उत्तर मिलने पर उसने मौखिक रूप से अपनी आयु की अवधि को सेकण्डों में रूपांतरित कर दिया था। इस गणना में दो लीप ईयर के हिसाब का भी ध्यान रखा गया था। इसी तरह की कितनी ही घटनाएँ सामने आती हैं, जिनमें पूर्व जन्म की स्मृतियाँ भी सम्मिलित हैं।

अब प्रश्न उठता है कि एक छः वर्ष के बच्चे में इतनी क्षमता कैसे विकसित हो सकती है? इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि वह क्षमता उसमें पूर्व से ही विद्यमान थी, जो कि हम सब में भी विद्यमान है, किन्तु हम उसका उपयोग नहीं कर सकते। यही बात हमें मानसिक चेतना के उच्चस्तरीय आयामों के अस्तित्व में होने का बोध कराती है। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे मस्तिष्क में कुछ 'हायर सर्किट्स' भी होते हैं। वाटले, सेफोर्ड, फ्रैंकलिन जैसे बच्चों का आकस्मिक रूप से इस सर्किटों से सम्बन्ध जुड़ गया था, किन्तु जैसे-जैसे उनकी आयु बढ़ती गयी, वे जीवन की वास्तविक समस्याओं, आवश्यकताओं के निकट पहुँचते गये और वह क्षमता क्षीण होती गयी। यद्यपि इस क्षमता का सर्वथा लोप नहीं हो जाता, वरन् वह मानसिक चेतना की किन्हीं अज्ञात परतों में जा छिपती है। इस तथ्य का रहस्योद्घाटन करते हुए विश्वविख्यात, भौतिकविद् आइन्स्टीन ने कहा था कि जब वे एकांत में शांतचित्त होकर किसी पर गहराई से विचार मंथन करते हैं तो उन्हें चेतना की उच्चस्तरीय गहन परतों में छिपे गूढ़तम सूत्रों की जानकारी हस्तगत हो जाती है।

भारतीय ऋषि-मनीषियों ने आदिकाल से ही ऐसे उपाय-उपचार खोज लिये थे और कहा था कि योग, साधना, तप तथा एकग्रतापरक ध्यान की प्रक्रियाओं से मानव की मस्तिष्कीय क्षमताओं-मानसिक शक्तियों में असीम वृद्धि हो जाती है। इससे मस्तिष्क में विशेष प्रकार के रसायनों का उत्पादन होने लगता है, जिससे मानसिक क्षमताओं का विकास स्वतः बढ़ जाता है। आज विज्ञान भी एक ऐसे कगार पर आ खड़ा हुआ है जहाँ पर मस्तिष्कीय विकास के विभिन्न पक्षों पर व्यापक शोध कार्य चल रहा है। मानवजाति इन दिनों एक अद्भुत मानसिक क्रांति के दौर से गुजर रही है। आवश्यकता मात्र सही और विधेयात्मक दिशा देने की है।

सामर्थ्य सम्पदा से भरा-पूरा मानवी

अन्तराल

अदृश्य सूक्ष्म शक्तियों का ज्ञान न होने से मनुष्य उनका लाभ नहीं उठा पाता। शरीर बल, बुद्धि बल तथा अन्यान्य भौतिक सम्पदाएँ जो प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती हैं, प्रायः उन्हें ही करतलगत करने का प्रयास किया जाता है। शरीर और उससे जुड़ी इन्द्रियों की बनावट ही ऐसी है कि मनुष्य दृश्य अथवा प्रत्यक्ष लाभ देने वाले घटकों को ही अधिक महत्त्व देता है। फलतः उनसे सीमित ही लाभ उठा पाता है। इतने पर भी प्रकृति एवं चेतना से समन्वित, सर्वांगपूर्ण काय-संरचना में सन्निहित सूक्ष्म शक्ति स्रोतों का महत्त्व कम नहीं हो जाता। उनकी गरिमा एवं सामर्थ्य यथावत् है।

शरीर एवं बुद्धि की तुलना में मन अधिक सूक्ष्म, विलक्षण एवं सामर्थ्यवान् है। जीवन पर प्रमुख रूप से यही छाया रहता है। इसी कारण मनःसंस्थान को मनुष्य के व्यक्तित्व का सबसे महत्वपूर्ण घटक माना गया है। पर उसकी क्षमता का विकास विरले कर पाते तथा विरले ही उससे लाभ उठा पाते हैं। व्यक्तित्व के सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं समर्थ घटक उच्च चेतन मन के उपेक्षित पड़े रहने से ही अधिकांश व्यक्तियों का जीवन व्यर्थ भटकन में व्यतीत होता है। शरीर एवं बुद्धि से समर्थ होते हुए भी वे अपने जीवन को सही दिशा एवं प्रेरणा देने में प्रायः असमर्थ सिद्ध होते हैं।

भारतीय ऋषियों की पहुँच प्रकृति एवं चेतना की गहन परतों तक थी। उन्होंने भौतिक जगत एवं उससे जुड़े उपादानों को उतना ही महत्त्व दिया जितना कि शरीर व्यापार को गतिशील रखने के लिए आवश्यक था। शरीर और बुद्धि का मन न केवल संचालक है, वरन् मनुष्य के उत्थान-पतन का कारण भी है, यह वे भली-भाँति जानते

थे। तभी उनका यह उद्घोष था—“जीव के बन्धन और मोक्ष के विधान में मन ही प्रधान कारण है।” यदि उसका सुधार, सम्भाल एवं विकास कर लिया जाय तथा उसकी शक्ति को जीवन लक्ष्य की दिशा में नियोजित कर लिया जाय तो मनुष्य के लिए कुछ भी असंभव न रह जाये। यही कारण था कि उनकी अधिकांश चेष्टाएँ जप, तप की प्रक्रियाएँ मानसिक परिष्कार, शोधन अभिवर्धन एवं विकास के लिए चला करती थीं। अतिमानवी शक्तियों का प्राकट्य भी उस युग में इसी कारण संभव हो सका था।

मनःशास्त्री भी अब इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि व्यक्तित्व की उत्कृष्टता-निकृष्टता का केन्द्र-बिन्दु मानसिक चेतना के गहन अन्तराल में सन्निहित है। मनःसंस्थान की इस सबसे गहरी अन्तिम परत को उन्होंने ‘सुपर चेतन’ कहा है। सुपर इसलिए कि उसकी मूल प्रवृत्ति मात्र उत्कृष्टता से भी भरपूर है। उसे यदि अपने वास्तविक रूप में रहने दिया जाय- अवांछनीयताओं के घेरे में जकड़ा न जाय तो वहाँ से अनायास ही ऊँचे उठने-आगे बढ़ने की ऐसी प्रेरणाएँ मिलेंगी जिन्हें आदर्शवादी या उच्चस्तरीय ही देखा जा सके। प्रकरणान्तर से सुपर चेतन को ईश्वर के समतुल्य ही माना जा सकता है। वेदान्त में जिसे परिष्कृत अन्तःकरण माना जाता है, उसी को विज्ञान की भाषा में ‘सुपर चेतन’ कहते हैं।

मनोविज्ञान के अनुसार मानव मन के तीन स्तर होते हैं, जिन्हें क्रमशः अचेतन मन-अनकान्शासमाइण्ड, अवचेतन मन-सबकान्शासमाइण्ड तथा चेतन मन-कान्शास माइण्ड के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इससे आगे उच्चस्तरीय विकसित परत को अतिचेतन सुपर कान्शास या सुपर माइण्ड कहा जाता है। अचेतन से अवचेतन और अवचेतन से चेतन मन को प्रेरणा और प्रकाश मिलता है, ठीक उसी तरह जिस तरह कि कारण से सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्म से स्थूल शरीर प्रेरित होता तथा प्राण ऊर्जा प्राप्त करता है।

महर्षि अरविन्द के अनुसार सुपर चेतन उच्चतम् कोटि की आध्यात्मिक चेतना है। उनका कहना है कि उच्चतर मन, प्रकाशित मन, संबुद्ध मन और ओवर माइण्ड से भी ऊपर सुपर माइण्ड का स्तर है। यह मन का ऐसा उच्चतम सोपान है, जिसका उपयोग अभी तक विरले लोग ही कर सके हैं। बुद्धि के घरातल से ऊपर उठकर मन के उच्चतम सोपान अतिमन पर पहुँचकर ही मनुष्य सर्वज्ञ बन सकता है।

वस्तुतः सूक्ष्मातिसूक्ष्म कहे जाने वाले मन का अस्तित्व अब मात्र कोरी कल्पना नहीं रह गया है। राकफेलर यूनिवर्सिटी न्यूयार्क के प्रख्यात न्यूरोसाइंटिस्ट

जोनाथन विन्सन ने कई वर्षों के लगातार अथक् प्रयास और श्रम-साध्य अनुसंधान करने के पश्चात् मानव मस्तिष्क में मन के निवास स्थान को खोज निकालने में सफलता पाई है। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक “ब्रेन एण्ड साइक” में लिखा है कि मन का निवास स्थान “लिम्बिक सिस्टम” के भीतर होता है। यह तंत्र ही मन का प्रधान कार्यालय है, जो यह निर्णय करता है कि किन स्मृतियों, घटनाओं, आँकड़ों तथा किन बातों को सुरक्षित रखना है और किन्हें विस्मृति के गर्त में धकेलना है? उनके अनुसार अचेतन की परत मन के हृदय केन्द्र में स्थित होती है। यह मानसिक अनुभवों को अपने अंदर संकलित-संग्रहीत करता रहता है और अपनी अभिव्यक्ति योजनाबद्ध तरीके से समयानुसार सांकेतिक भाषा में प्रकट करता रहता है। विन्सन का कहना है कि अचेतन से भी असंख्य गुनी उच्चस्तरीय संभावनाओं से भरा-पूरा सुपर चेतन है। उसको नये सिरे से समझा-खोजा और उसके अभ्युदय का अभिनव प्रयास किया जाना चाहिए।

मनोविज्ञानी, नीतिशास्त्री, तत्वविज्ञानी, समाज-शास्त्री आदि सभी इस मिले-जुले निष्कर्ष पर पहुँच रहे हैं कि पतन पराभव से छूटने और वरिष्ठता, उत्कृष्टता उपलब्ध करने के लिए अतिमन की-सुपर चेतन की उच्चस्तरीय परतें खोजी-कुरेदी जानी चाहिए। पैरासाइकोलाजी, सुपर साइकोलाजी, मेटाफिजिक्स आदि माध्यमों से पिछले दिनों अचेतन की महत्ता बखानी जाती रही है और जगाने-उभारने के लिए तरह-तरह के प्रयोग-परीक्षणों की चर्चा होती रही है। दूरदर्शन, दूर श्रवण, विचार-संप्रेषण, प्राण प्रत्यावर्तन, भविष्य ज्ञान जैसे कितने ही कला-कौशल इस सन्दर्भ में खोजे और परखे गये हैं। इस दिशा में प्रयास चालू रखते हुए भी मूर्धन्य स्तर के मनीषी इस बात पर जोर दे रहे हैं कि चेतना के उस उच्चतर परत की कुरेद-बीन की जानी चाहिए, जिस क्षेत्र की उपलब्धियाँ व्यक्ति और समाज में उच्चस्तरीय परम्पराओं का समावेश और नये युग का नया सूत्रपात कर सकने में समर्थ हो सकती है।

प्रख्यात मनःशास्त्री कॉलिन विल्सन का कहना है कि मन की परतों को समझने में कुछ गलती हुई है। दृश्य पक्ष चेतन के क्रिया-कलापों के रूप में सामने आता है, जो बहिर्मुखी इन्द्रियों का प्रायः पक्षधर रहता है। इन्द्रियों का रुझान उपभोग में होता है। वह चेतन मन को भी अपने अनुरूप खींचती है। फ्रायड ने यह देखकर ही प्रतिपादित किया था कि मनुष्य अन्य पशुओं की तरह मूल प्रवृत्तियों का गुलाम तथा इन्द्रियों का दास है। पर विल्सन का मत है कि अदृश्य पक्ष अचेतन तथा सुपर-चेतन की चमत्कारी सामर्थ्य से अपरिचित होने तथा

उपयोग में न आने के कारण ही ऐसा सोचा जाता है। बोध हो सके तो मनुष्य अपनी हर विकृत इच्छा, आकांक्षा तथा उनसे संचालित होने वाले अवांछनीय क्रिया-कलापों पर नियंत्रण स्थापित कर सकता है।

प्रचलित फ्रायडवादी मनोविज्ञान से अलग सुपर साइकोलाजी का प्रतिपादन करने वालों में अमरीकी मनोवैज्ञानिक अब्राहम मैस्लो का नाम प्रमुख है। उनका मत है कि मनुष्य के अन्तराल में सुपर चेतन केन्द्र का अस्तित्व विद्यमान है, जो प्रसुप्त पड़ा है। इस प्रसुप्ति का कारण है उस केन्द्र से उठने वाली दिव्य प्रेरणाओं की उपेक्षा। इस केन्द्र से दिव्य प्रेरणाएँ कभी न कभी उभरती हैं, पर अचेतन का अभ्यस्त स्वभाव उन्हें दबा देता तथा व्यवहार में आने से रोक देता है। यदि उन्हें सुना और तदनुरूप क्रिया-कलाप अपनाया जा सके तो मनुष्य अपनी सामर्थ्य को कई गुना बढ़ा सकता है। मैस्लो से ही मिलता-जुलता प्रतिपादन प्रसिद्ध विद्वान मित्या करागाजोव का भी है। उनके अनुसार श्रेष्ठता की भावना का उद्भव ही मानवी विकास का सही अर्थों में कारण बनता है। ऐसी संभावनाएँ सुपर चेतन से समय-समय पर निस्सृत होती रहती हैं, जिसे अधिकांश व्यक्ति प्रायः अनसुनी कर देते हैं। फलतः व्यक्तित्व विकास की संभावनाएँ धूमिल पड़ी रहती हैं।

“साइकोलाजी ऑफ इन्ड्यूशन” नामक अपनी पुस्तक में एमिली मारकाल्ट ने कहा है कि उच्च चेतन मन, शरीर एवं व्यक्तित्व का अतिसूक्ष्म एवं उच्चस्तरीय भाग है। ज्ञानेन्द्रियों और तर्क बुद्धि से जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं उससे भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण समाधान सुपर चेतन मन की सहायता से मिल सकता है। इस तंत्र को उजागर कर लेने का अर्थ है एक ऐसे देवता का साथ पा लेना जो उपयोगी सलाह ही नहीं देता वरन् महत्वपूर्ण सहायता भी करता है।

प्रख्यात मनोविश्लेषक जुंग कहते हैं कि मात्र अचेतन ही सब कुछ नहीं है, वरन् इससे भी आगे की परत ‘उच्च चेतन’ का भी अलग अस्तित्व है। आदर्शवादी प्रेरणाएँ एवं उमंगें वहीं से उठती हैं। अचेतन तो अभ्यस्त आदतों का संग्रह-समुच्चय भर है। ये बुद्धि एवं साहसिकता से भी अधिक अग्रणी संकल्प शक्ति का गुणगान करने हैं और कहते हैं कि व्यक्तित्व को विनिर्मित करने में मनुष्य के विश्वासों का ही प्रमुख योगदान रहता है।

एडलर के मतानुसार, अचेतन की सुदृढ़ता देखते हुए उसके सुधार संदर्भ में किसी को निराश नहीं होना चाहिए। स्वसंचित संकल्प, आत्म-विश्वास और आदर्शों के

प्रति आस्थावान बनने से उन मूल प्रवृत्तियों में भी परिवर्तन कर सकना संभव है, जिन्हें चिरसंचित, दुराग्रही एवं अपरिवर्तनशील माना जाता है।

मन:शास्त्री विलियम मैकडूगल कहते हैं कि अचेतन से भी ऊँची परत 'अतिचेतन' या 'उच्च चेतन' की अभी जानकारी भर मिली है। अगले दिनों उसे अच्छी तरह जाना समझा जा सकेगा और यह कहा जायगा कि सामान्य जीवन-क्रम का सूत्र संचालन करने वाले अचेतन की कुंजी इस 'अति चेतन' के पास ही है। अगले दिनों जब उच्चचेतन का स्वरूप और उपयोग ठीक प्रकार समझा जा सकेगा तब व्यक्तित्वों में क्रान्तिकारी परिवर्तनों से सम्बन्ध में वैसी कठिनाई न रहेगी जैसी आज है।

मानवी अन्तराल में सन्निहित उच्च चेतन की महत्ता एवं उसकी महान संभावनाओं का प्रतिपादन विभिन्न मनीषियों ने अपने-अपने ढंग से किया है। जर्मन दार्शनिक फ्रेडरिक नीत्शे ने घोषणा की थी कि "स्वयं से परे हटकर स्वयं को देखना ही वस्तुतः सही ज्ञान की प्राप्ति है।" पर क्या यह संभव है ?, क्या हम स्वयं को अपने शरीर चिन्तन की परिधि से निकाल बाहर कर सकते हैं ? जो शान्त चुपचाप खड़ा हो हमारी हर गतिविधि-हर परिस्थिति का अवलोकन करता रहे ? वस्तुतः यह क्षमता हमारे भीतर है जिसे हम 'सुपर माइण्ड' कहते हैं, जो एक लाइट हाउस की तरह दूर-दूर तक अपनी घुमावदार किरणें छोड़ता रहता है, पर स्वयं शान्त, बिना विचलित हुए खड़ा रहता है।

दार्शनिक हेनरी वर्सो का कथन है कि समय की जटिलताओं को न सुविधा सम्बर्धन से सुलझाया जाय और न दौंव-पेंच से। प्रवीण बुद्धि कौशल ही पतन पराभव का निराकरण कर सकेगा। प्रस्तुत जटिलताओं और विभीषिकाओं का समाधान पाने के लिए उस 'महाप्रज्ञा' को जगाने की आवश्यकता है, जो अन्तःकरण की गहराई में बसती है और ईश्वरीय प्रेरणाओं से मनुष्य को अवगत करती है।

'मैन द अननोन' और 'रिफ्लेक्शन ऑफ लाइफ' के नोबुल पुरस्कार प्राप्त लेखक अलेक्सिस कैरेल ने कई स्थानों पर एक ही बात को दुहराया है कि प्रकृति के दोहन से भी बड़ा संसाधनों का क्षेत्र अन्तःकरण की गरिमा उभारने का है। उस उपेक्षित क्षेत्र को नये सिरे से समझा एवं समुन्नत बनाया जाना चाहिए। विचार-बुद्धि की उपयोगिता कितनी ही क्यों न हो पर वह रहेगी सीमित है। मनुष्य के उच्च चेतना का विकास होने पर ही समस्याओं के समाधान और अभ्युदय, उत्थान का आधार खड़ा होगा। विश्व मनीषा को अपना ध्यान एक ही केन्द्र

पर एकत्रित करना चाहिए कि मनुष्य को सहृदय बनाने के लिए उसकी प्रसुप्त उच्च चेतना को किस प्रकार जागृत किया जाय?

'हाट मेक्स ए लाइफ सिग्नीफिकेण्ट' पुस्तक में सुप्रसिद्ध मन:शास्त्री विलियम मोक्स ने मनुष्य की सुपर चेतन परतों पर प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि मनुष्य के भीतर अतिमानवी सामर्थ्य विद्यमान है, जिन्हें करतलगत कर सकना संभव है। इसका आरम्भिक क्रियात्मक चरण है ढर्रे की गतिविधियों को उलटने तथा सूझ-बूझ से भरी दूरदर्शिता युक्त महानता के मार्ग का अवलम्बन करने के लिए संकल्पों को परिपुष्ट तथा दृढ़ करना। इच्छा शक्ति-संकल्प शक्ति की प्रबलता पशुवत् अभ्यस्त स्वभावों से छुटकारा पाने तथा आत्म विजय प्राप्त करने का प्रमुख आधार है। इसका सम्पादन तथा अभिवर्धन निरन्तर के अभ्यास से ही संभव है।

बाह्य परिस्थितियों एवं बुद्धि-वैभव को ही सब कुछ मानने की अपेक्षा भीतर झाँका जा सके तो मालूम होगा कि कितनी ही प्रकार की सूक्ष्म शक्तियाँ अपने ही अन्दर मौजूद हैं जिनका प्रायः सदुपयोग नहीं हो पाता। आत्मविस्मृति के कारण इच्छाओं, आकांक्षाओं का सुनियोजन नहीं हो पाता। वे मात्र सामान्य प्रयोजन पूरा करने तक रह जाती हैं। सुपर चेतन की दिव्य प्रेरणाओं के अनुरूप उन्हें गतिशील किया जा सके तो महानतः को वरण कर सकना हर व्यक्ति के लिए सुगम हो सकता है।

अन्तराल की प्रचण्ड ऊर्जा

पृथ्वी की गहराई में प्रवेश करते जाने पर पता चलता है कि वहाँ अनादिकाल जैसी गर्मी अभी भी मौजूद है। आरम्भ काल में पृथ्वी भी अन्य ग्रहों के जन्म काल में पाई जाने वाली स्थिति में थी। उन दिनों वह आग का गोला थी। ठंडी होने का क्रम चला तो छोटी बड़ी दरारें बन गईं। वर्षा ने उन्हें भरा और जलाशय बना दिया। यह हलचलें ऊपर परतों को ही प्रभावित करती रहीं। वनस्पति और प्राणियों का उद्भव तथा विकास इसी ऊपरी परत पर हुआ।

पृथ्वी, वायु और पानी के कारण क्रमशः ठंडी हुई है। उसके मध्यवर्ती अन्तराल में प्रचण्ड गर्मी मौजूद है। वह बहते हुए गर्म लाल लोहे की तरह है। ऊपर से ठंडा घेरा उस गर्मी को कैद किये हुए है। उसकी मोटाई और मजबूती भी बहुत है। इतने पर भी प्रकृति के नियम उस आतप को भी प्रभावित किये बिना नहीं रहते। गर्मी से हर वस्तु फैलती है। पृथ्वी का गहरा भीतरी भाग भी

स्वभावतः फैलना, आगे बढ़ना चाहता है। ऊपरी परत उसे कसे रहती है। फिर भी भीतर का लावा चैन से नहीं बैठता और वह अपने विस्तार के लिए रस्सा-कसी करता रहता है। बाहर निकलने के लिए कोई खिड़की चाहता है। यह प्रयास निरन्तर चलता है। तनाव की यह खोज रहती है कि उसे फूट पड़ने के लिए अवसर मिले। जहाँ वह कमजोरी देखता है वहीं चढ़ दौड़ता है और छेद बनाकर बाहर निकलता है। ज्वालामुखी इसी स्थिति का नाम है। वे जब फटते हैं तो लावा उगलते हैं। भीतर की आग ऊपर की ठंडी परतों को ऊपर उछालती है तो जमीन पर लावा बहने लगता है। वह सुरंग फटने की तरह आकाश में भी उछलता है और बड़े क्षेत्र को अपनी चपेट में ले लेता है, वहाँ विनाशालीला खड़ी हो जाती है। वृक्ष, वनस्पति, मकान, आप्रय, जलाशय सभी उस मलवे से भर जाते हैं।

इस विस्फोट के समय प्रभावित होने वाले क्षेत्र थरथरते भी हैं। उस हड़कम्प को भूकम्प कहते हैं। धरती काँपती जैसी प्रतीत होता है। जमी हुई वस्तुएँ उलट-पलट जाती हैं। इस उलट-पलट में जो गिरता है, वह नीचे वालों को दाब दबोच देता है। साथ ही यह भी होता है कि जो कुछ भला-बुरा नीचे दबा था, वह उलटकर ऊपर आ जाय और धरातल की स्थिति इतनी बदल जाय कि पूर्व स्वरूप का अता-पता भी न चले।

आँका गया है कि हर वर्ष प्रायः २४ हजार सशक्त भूकम्प आते हैं। एक हजार के करीब ज्वालामुखी फटते हैं। चूँकि समुद्र पृथ्वी का दो तिहाई हिस्सा घेरे हुए हैं, इसलिए ज्वालामुखियों से भूकम्पों की संख्या में अनुपात क्रम की अपेक्षा वहाँ कुछ अधिक ही रहता है। कारण कि समुद्र की गहराई वाला जल मध्य भूतल की आग्नेय परत के समीप पड़ता है, वहाँ से सीलन, नमी, रिसन क्रमशः नीचे उतरती रहती है। आग में पानी का स्पर्श होने से भाप बनती है। भाप में अपेक्षाकृत दबाव अधिक होता है। यही कारण है कि भाप से बादल, रेलगाड़ियों के इंजन एवं घरेलू प्रेसर कुकर तक छोटे उपकरण काम करते हैं। भाप स्नान से मूल फूलने और छूटने का अधिक उपयुक्त लाभ मिलता है। उससे रोमकूप खुलते और स्वेद बिन्दु निकलते हैं। इसी को जमीन द्वारा साँस लिया जाना कहते हैं। मात्र ऊपर से ही हवा के झौंके, अन्धड़, चक्रवात नहीं आते, अविज्ञात रूप से धरती भीतर से भी उफनती रहती है। झरने फूटते हैं। नदियों के स्रोत खुलते हैं। बहुत जगह गर्म जल के स्रोत भी पाये जाते हैं। खोदने पर जलने वाली गैसों निकल पड़ती हैं। खनिजों की जो परतें कभी बहुत गहरी थीं वे नीचे के दबाव से ऊपर उठती हैं और धरातल के इतनी

समीप आ जाती हैं कि उनका आसानी से पता लगाया जा सके। खोदकर खनिजों को ऊपर निकाला जा सके।

उपरोक्त वस्तुस्थिति को भूगर्भ विद्या के उच्च कक्षाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थी भली प्रकार जानते हैं। भूकम्पों, ज्वालामुखियों एवं अन्य प्रकार से नीचे की सम्पदा ऊपर आने के विषय में बहुत कुछ जान सकते हैं। पर यह रहस्य किन्हीं विरलों को ही प्रतीत है कि विराट ब्रह्म की तरह मनुष्य की एकाकी सत्ता भी पृथ्वी की तरह ही विशाल रहस्यमय और समानान्तर है।

पृथ्वी की भीतरी आग्नेय परत ही बाहर आकर समीपवर्ती स्थिति को प्रभावित करती है और उसी से गुरुत्वाकर्षण उत्पन्न होता है। गुरुत्वाकर्षण न केवल धरातल पर चलने वाली गतिविधियों को प्रभावित करता है वरन् स्वयं पृथ्वी को भी अपनी धुरी पर घूमने तथा सूर्य परिक्रमा के लिए चल पड़ने के लिए आगे धकेलता है। उस परिभ्रमण की एक कक्षा भी बनती है ताकि सौरमण्डल के अन्यान्य ग्रहों के मार्ग में व्यवधान न पड़े, टकराव न हो। यह गतिशीलता ही पदार्थों में प्रवेश करके उनके अणु-परमाणुओं को गति देती है और संसार का उत्पादन-अभिवर्धन-परिवर्तन क्रम चलाती है। संसार में जो कुछ सम्पदा, प्रगति, सुन्दरता दीख पड़ती है, उसका निमित्त कारण पृथ्वी के अन्तराल की ऊर्जा और उसके कारण उत्पन्न होने वाले दबाव को ही माना जाना चाहिए।

मनुष्य के अन्तराल में भी ऊर्जा केन्द्र हैं। उन्हें शरीर क्षेत्र में हृदय एवं मन-क्षेत्र में ब्रह्मरंध्र कहा जा सकता है। यह ऊर्जा जब प्रबल-प्रखर होती है तो शरीरगत समर्थता, बलिष्ठता, सुन्दरता के रूप में उगती है। मस्तिष्क क्षेत्र में जब वह सक्रिय होती है तो बुद्धिमत्ता, गुणवत्ता और विवेकशीलता के रूप में काम करते देखा जा सकता है। मानवी अन्तराल में दबी ऊर्जा को ही आत्म चेतना, प्रेरणा के रूप में समझा जा सकता है। वही उमंग, आकांक्षा, भावना के रूप में उभरती है। जब उसका स्तर उत्कृष्ट एवं ऊर्ध्वगामी होता है तो उसे श्रद्धा, प्रज्ञा, निष्ठा के रूप में भाव संवेदन स्तर की देखा जाता है। शरीर क्षेत्र में वही पराक्रम, कौशल, संयम बनकर काम करती है, उसकी समग्रता ओजस, तेजस् और वर्चस्व के रूप में जानी जाती है। यह उसका सौम्य पक्ष है—सृजनात्मक। यही जब विद्रूप होने लगता है तो शरीर में आधि-व्याधि बनकर फूटता है। स्वभाव एवं चरित्र में दुष्टता, भ्रष्टता, अनाचार, आतंक, दुर्व्यसन, जैसे आसुरी कहे जाने वाले लक्षणों के रूप में प्रकट होता है। इस प्रकार का प्रकटीकरण ज्वालामुखी या भूगर्भ के भयावह उपद्रवों के समतुल्य समझा जाता है।

भीतरी अग्नि अन्तःचेतना है। यही प्राण है जिसके रहने तक शरीर जीवित रहता है। उसमें सौम्य पक्ष चिन्तन चरित्र और व्यवहार में उत्कृष्ट आदर्शवादिता बनकर छलकता है। उसी के परिपोषण हेतु व्रत नियमों का निर्धारण, परिपालन आध्यात्मिक अग्नि क्षेत्र कहा जाता है।

पृथ्वी के अन्तराल के अग्नि का किस दिशा में निष्क्रमण हो यह प्रकृति परमेश्वर के हाथ में है। वह उसके सौम्य, भयावह निष्क्रमण की उपयोगिता समझता और व्यवस्था बनाता है। किन्तु मनुष्य अपनी ऊर्जा और उसकी दिशाधार का इच्छित उपयोग करने में स्वतंत्र है। वह अनुशासन में रहकर अपने जीवन काल और बुद्धिबल का उत्साहवर्धक उपयोग भी कर सकता है और उसके लिए यह भी सम्भव है कि घुटन असंयम, विद्रोह का मार्ग अपनाकर न केवल अपने लिए संकट उत्पन्न करे वरन् सम्बन्धित लोगों को भी उस विनाशशैली की चपेट में ले ले। आत्मिक अग्नि ही मनुष्य की वास्तविक शक्ति और सम्पदा है उसे सही दिशा देना विवेकशील मनुष्य का अपना कर्म है।

अन्तराल में निहित सिद्धि वैभव

बीज में प्राण तत्व होता है। वही नमी और आरंभिक पोषक अनुकूलता प्राप्त करके अंकुरित होने लगता है। इसके उपरान्त वह बढ़ता, पौधा बनता और वृक्ष की शक्ति पकड़ता है या नहीं, यह इस बात पर निर्भर है कि उसे जड़ें जमाने का आवश्यक खाद, पानी व पोषण प्राप्त हुआ या नहीं। यदि उसकी आवश्यकताएँ पूरी होती चले, तो बढ़वार रुकती नहीं, किन्तु यदि बीज अपने स्थान पर बोरे में ही बन्द रखा रहे, उसे सुखाया और कीड़ों से बचाया जाता रहे तो वह मुद्दतों तक यथास्थिति अपनाये रहेगा। बहुत पुराना हो जाने पर काल के प्रभाव से वह हतवीर्य हो जायेगा अथवा धुन जैसे कीड़े लगकर उसे नष्ट कर देंगे।

बीज में उगने की शक्ति होती है, यदि वह पका हुआ हो। यदि उसे कच्ची स्थिति में ही तोड़ लिया गया है तो वह खाने के काम भले ही आ सके, बोने और उगने की क्षमता विकसित न होगी। वह देखने में तो अन्य बीजों के समान ही होगा पर परखने पर प्रतीत होगा कि उसमें वह गुण नहीं है, जो परिपक्व स्थिति वाले बीजों में पाया जाता है।

हर मनुष्य में प्राणशक्ति होती है पर उसकी मात्रा में न्यूनाधिकता बनी रहती है। यह इस बात पर निर्भर रहता है कि प्राणरूपी बीज को प्रौढ़ बनाने के लिए

जानकारी अथवा गैर-जानकारी में परिपक्वता लाने वाले प्रयत्न होते रहे या नहीं।

मानवी प्राणशक्ति का विकास और परिपाक इस बात पर निर्भर है कि उसमें पूर्व संचित संस्कारों का समूह था या नहीं। गर्भधारण करते समय माता-पिता के रज-वीर्य में अभीष्ट उत्कृष्टता या परिपक्वता थी या नहीं ? उसे आरंभिक पोषण मिला या नहीं ? प्राण प्रक्रिया के अनुदान समुचित मात्रा में मिले या नहीं ? यह सब भ्रूणावस्था में पूरी की जाने वाली आवश्यकताएँ हैं। इसके बाद जब परिपक्व बालक संसार के खुले वातावरण में साँस लेता है और समीपवर्ती लोगों द्वारा विनिर्मित वातावरण का प्रभाव ग्रहण करता है तब भी उस स्थिति में मनुष्य प्रभाव ग्रहण करता है। खान-पान से, जलवायु से स्थूल शरीर के स्तर का निर्माण होता है किन्तु प्राण प्रभाव समीपवर्ती लोगों की चेतना से ही उपलब्ध होता है। छोटे और ओछे लोगों के सम्पर्क से व्यक्ति स्तर की दृष्टि से ऊँचा नहीं उठ सकता। मौसलता की दृष्टि से वह मोटा, पतला या सुन्दर, कुरूप हो सकता है, पर व्यक्ति में जो प्रतिभा पाई जाती है, विशिष्ट स्तर की विशेषता देखी जाती है। वह इस बात पर निर्भर रहती है कि सम्पर्क-वातावरण में किस स्तर की जीवट एवं क्षमता विद्यमान थी। अन्न-जल से रक्त-माँस बनता है किन्तु व्यक्तित्व विकसित करने की क्षमता उन लोगों में होती है, जो अपने बड़प्पन के कारण छोटों पर प्रभाव छोड़ते हैं। मनुष्य का स्वयं का चिन्तन-मनन भी इस संदर्भ में काम करता है। वह अपनी इच्छाशक्ति और संकल्प शक्ति से भी अपने आप को प्रभावित करता है। पूर्व संचित संस्कार भी ऐसा वातावरण पाकर स्वतः उभरते हैं। ग्रीष्म ऋतु में घास सूख जाती है फिर भी जमीन के अन्दर उसकी जड़ों में किसी प्रकार नमी बनी रहती है। वर्षा होते ही वह जड़ें अनायास ही अंकुरित हो चलती हैं और तेजी से अपना विस्तार करती हुई जमीन पर फैलकर हरीतिमा बिखेरती हैं।

यह सब वे कारण हैं जिनके बलबूते विशेष साधन न बन पड़ने पर भी मनुष्य का आत्मबल विकसित स्थिति में देखा जा सकता है और उसे भी सिद्ध पुरुषों जैसी विभूतियाँ अनायास ही प्रकट होती हुई, प्रकाश में आती दृष्टिगोचर हो सकती हैं। कई व्यक्ति योग, तप, साधना, अनुष्ठान जैसे कृत्य प्रयास न करने पर भी सूक्ष्म विशेषताओं से सम्पन्न पाये जाते हैं। यह उपहार उन्हें जन्मजात रूप से भी मिलता है अथवा नितान्त बचपन से आगे बढ़ती हुई दृष्टिगोचर होने लगती है। यह अनायास का प्रकटीकरण भी संयोगवश नहीं होता। उसके पीछे ऐसे कारण सन्निहित होते हैं, जिन्हें घटनाएँ या प्रयास तो नहीं

कहा जा सकता पर अदृश्य और अविज्ञात कारण ऐसे होते हैं जिनके कारण कुछ विशेष व्यक्ति अपने में चमत्कारी क्षमताएँ प्रकट करते हैं किन्तु उनके साथी पड़ोसी उन विशेषताओं से वंचित बने रहते हैं।

प्रयत्न करने पर तो उसका लाभ कोई भी उठा सकता है। साहित्यकार, संगीतज्ञ, शिल्पकार, चिकित्सक, इंजीनियर आदि विशेषज्ञ अपने में यह विशेषताएँ अभ्यास द्वारा अर्जित करते हैं। पहलवान व्यायामशालाओं में, विद्वान पाठशालाओं में, शिल्पी कारखाने में आवश्यक अभ्यास करते हुए समयानुसार सुयोग्य बनते हैं। किन्तु आश्चर्य तब होता है जब प्रशिक्षण के अभाव में अथवा स्वल्प प्रशिक्षण के सहारे किसी-किसी की प्रतिभा अनायास ही फूट पड़ती है। उदाहरण के लिए मोजार्ट ८ वर्ष की अल्पायु में ही संगीतज्ञ बन गये थे। पास्कल १२ वर्ष की उम्र में प्रख्यात गणितज्ञों की श्रेणी में गिने जाने लगे थे। १३ वर्ष की किशोरावस्था में वुडरफ प्रसिद्ध कलाकार बन गये थे। संत ज्ञानेश्वर ने १६ वर्ष की आयु में गीता का भाष्य किया था तो सिख धर्म के प्रवर्तक गुरुनानक देव १० वर्ष की छोटी अवस्था से ही भावपूर्ण सबद की रचना करने लगे थे। इन प्रतिभाओं को देखने पर मोटी दृष्टि से सुयोग, संयोग, भाग्य वरदान आदि समझा जाता है पर वस्तुतः उस अनायास के पीछे भी कारण होते हैं। भले ही यह प्रत्यक्ष घटनाक्रम सामने आया हो या न आया हो।

प्रयास-अभ्यास तो कई लोगों का सफल होता है। मनोयोगपूर्वक कड़ा परिश्रम करने पर तो कालिदास और वरदराज जैसे मूर्ख समझे जाने वाले व्यक्ति भी उच्चकोटि के विद्वान बन गये थे। सेन्डो और चाँदगी राम ने अपने गये-गुजरे स्वास्थ्य को ऐसा बना लिया था कि उनकी गणना विश्व के मूर्धन्य पहलवानों में होने लगी। अमेरिका का जैक ब्लाटिन पिछले दिनों कई वर्ष तक कैसर से पीड़ित रहने के उपरान्त जब किसी तरह रोगमुक्त हुआ तो वह पहलवानी पर उतर आया। संकल्प, साहस और अभ्यास के सहारे उसने अपना शरीर बल इस स्तर तक बढ़ा लिया कि ओलंपिक कुश्ती की सुपर हैवीवेट का खिताब जीतकर न केवल अपने राष्ट्रीय गौरव को ऊँचा उठाया वरन् समूची मानव जाति के लिए एक अनूठा और प्रेरणाप्रद उदाहरण प्रस्तुत किया। यह प्रयास का प्रत्यक्ष प्रभाव है।

किन्तु आश्चर्य तब होता है, जब प्रत्यक्ष घटनाक्रमों के रूप में अभ्यास न किये जाने पर भी दिव्य क्षमताएँ विकसित होती हैं। विश्व में ऐसे अनेकों व्यक्ति हुए हैं जिनमें यह प्रतिभा जन्मजात रूप से विकसित पाई गई है।

हालैण्ड का क्रोसेट नामक एक बालक बचपन से ही भविष्यवाणियों करने के लिए विख्यात था। उसके द्वारा किये गये भविष्य कथन शत-प्रतिशत सही उतरते थे। इजराइल का यूरीगेलर अपनी अतीन्द्रिय क्षमताओं के लिए प्रसिद्ध है। भविष्य दर्शन की विशेषता के कारण संसार भर में जिन लोगों ने विशेष ख्याति अर्जित की है उनमें एण्डरसन, सेमवैजोन, पीटर हरकौस, हंसक्रैजर आदि के नाम प्रमुख हैं। नास्त्रेदमस तो अपनी भविष्यवाणियों के लिए विश्वविख्यात ही है। फ्लोरेस स्टर्न फेल्स नामक ८ वर्षीय बालिका में दिव्य दर्शन की क्षमता अनायास ही फूट पड़ी थी। इसका पता लोगों को तब लगा जब उसने सदियों पुरानी टूटी-फूटी एक कब्र के खोदे जाने की न केवल तिथि व समय बता दिया था वरन् उसमें सोये हुए व्यक्ति का नाम भी बता दिया था। वह कब्र विलियम जान्सन की थी जिस पर किसी का नाम तक नहीं खोदा गया था और न किसी को उसकी जानकारी थी। रजिस्टर के पुराने पन्नों को पलटने पर फ्लोरेस द्वारा दी गई जानकारी सही निकली।

वस्तुतः इस संसार में अनायास कुछ भी नहीं होता है। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस असाधारण प्रक्रिया के पीछे कोई अविज्ञात कारण रहे हैं, जिन्हें प्रत्यक्ष रूप में नहीं देखा जा सकता है।

विशिष्ट क्षमताओं हेतु अन्तः का

परिशोधन अनिवार्य

“राष्ट्रीय पूर्वाभास विभाग।” यह अतीन्द्रिय क्षमता सम्बन्धी न्यूयॉर्क, अमेरिका में शोधशाला का वह प्रभाग है, जिसमें घटना से पूर्व उसका सही-सही आभास कैसे प्राप्त किया जा सकता है, इस पर अनुसंधान कार्य चल रहा है। संस्था के संस्थापक एवं निदेशक डब्ल्यू. ई. कॉक्स ने इसी संदर्भ में अपनी एक आत्मकथा लिखी है। इसके “प्रिकॉग्नीशन बिफोर इन्सिडेन्स” अर्थात् घटना से पूर्व पूर्वाभास नामक अभ्यास में ऐसी ढेरों घटनाओं का वर्णन है, जिनकी उन्हें घटना से पूर्व ही जानकारी मिल जाती है।

ऐसी बात नहीं कि वे कोई अतीन्द्रिय क्षमता सम्पन्न व्यक्ति हों। थे तो वे सामान्य व्यक्ति ही, फिर घटनाओं का पूर्वाभास कैसे हो जाता था? इस संदर्भ में वे लिखते हैं कि कुछ अनहोनी होने से पहले ही उन्हें स्वतः इसकी अन्तःप्रेरणा हो जाती थी। यह प्रश्न किये जाने पर की क्या हर कोई इस प्रकार की अन्तःप्रेरणा प्राप्त कर सकता है? सकारात्मक उत्तर देते हुए वे लिखते हैं कि अवश्य ही ऐसा संभव है, पर इसके लिए

जीवनक्रम में चिन्तन चेतना और भावना में तनिक परिवर्तन करने, उन्हें उच्चस्तरीय बनाने की आवश्यकता है। ऐसा बन पड़ने पर यह संभव है, अपने दीर्घ अनुभव के आधार पर वे लिखते हैं।

इस निष्कर्ष पर वे इसलिए पहुँचे हैं क्योंकि वे स्वयं एक सन्त-सज्जन पुरुष हैं। अपनी आत्मकथा में इस आशय का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि उत्तरार्ध जीवन में उन्होंने किसी व्यक्ति को कोई हानि पहुँचायी हो, यह बात तो दूर, उनसे ऐसा विचार भी किया हो अथवा कभी कटु वाणी का प्रयोग किया हो, ऐसा कोई प्रसंग किसी को स्मरण नहीं है। अपनी पुस्तक “माइ लाइफ एण्ड दि ग्रेस ऑफ प्रोविडेंस” में जीवन की एक आरंभिक घटना का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं कि जब एक ट्रेन दुर्घटना का शुरू में मुझे पूर्वाभास हुआ, तो मैंने इसे मन का भय मात्र माना, पर कुछ दिन बाद जब वह दुर्घटना सचमुच घटित हुई तभी मुझे अपनी मनःशक्ति पर विश्वास हो सका।

वे कहते हैं कि इस घटना के बहुत दिनों तक सब कुछ सामान्य रहा। पूर्वाभास अथवा अन्तःप्रेरणा जैसी कोई विशेष घटना नहीं घटी। इसका आत्मविश्लेषण करते हुए वे लिखते हैं कि संभवतः ऐसा उनकी तामसिकता की ओर रुझान के कारण हुआ हो, क्योंकि इन्हीं दिनों कॉक्स अपने एक मित्र की बुरी संगत में पड़ गये थे। शराब और माँस भोजन के अभिन्न अंग बन गये थे और देर रात तक क्लबों में समय बिताना एवं महिलाओं के साथ नृत्य करना यही उनका नित्य का कार्यक्रम था।

एक दिन उनके एक परिचित ने उनकी यह दुर्दर्शा देखकर कहा, “कॉक्स ! तुम कहाँ थे और कहाँ पहुँच गये। क्या तुम्हारे दिवंगत माता-पिता को तुम्हारी यह दशा देखकर कष्ट नहीं पहुँच रहा होगा?”

वे लिखते हैं “यह वाक्य क्या थे, दिन-रात मेरे मर्म को काँटे की तरह चुभते रहते थे और मैं छटपटाता रहता था, अपनी बुराइयों से त्राण पाने के लिए। बड़ी मुश्किल से धीरे-धीरे कर मैं अपनी बुराइयों से छुटकारा पा सका। जब पूर्णरूपेण मैंने उन पर विजय प्राप्त कर ली, उच्च जीवन की ओर अग्रसर हुआ, तो मुझे इतनी खुशी हुई, जितनी शायद नेपोलियन को आलप्स विजय पर भी न हुई हो। इसी के बाद से मेरी खोयी क्षमता पुनः प्राप्त हो गई और फिर मुझे घटनाओं का नियमित रूप से पूर्वाभास होने लगा।”

यह कॉक्स की आत्मकथा पुस्तक से उद्धृत कुछ अंश हैं, जो इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं कि यदि आत्मशोधन कर अपनी भाव संवेदनाओं को परिष्कृत और

उच्चस्तरीय बना लें, तो वह भी पूर्वाभास की क्षमता को अर्जित कर सकता है इसमें जरा भी संदेह नहीं है।

अंतःशक्ति की विलक्षणता के

तथ्य-प्रमाण

समुद्र की ऊपरी सतह पर ज्वार, सीपें और घोड़े ही मिलते हैं पर तल में इतनी मूल्यवान् सम्पदा छिपी पड़ी है कि उसे प्राप्त कर लिया जाय तो पाने वाला मालामाल हो सकता है। समुद्री गोताखोर सतह पर नहीं गहराई में गोता लगाकर तह से मोती बीन लाते हैं। घरती की ऊपरी परत कूड़े-कचरे, धूल-मिट्टी और कंकड़ पत्थरों से भरी हुई है, पर उसे गहरे खोदते जाते हैं तो पानी से लेकर अनेकानेक प्रकार की बहुमूल्य खनिज सम्पदाएँ मिलती चली जाती हैं। रेत के एक कण का स्थूल मूल्य नगण्य जैसा है। बाजार में उसकी कीमत कुछ भी नहीं है, पर जब उसकी भीतरी शक्ति की कुरेद-बीन की जाती है तो सहज ही इस बात का पता चल जाता है कि पदार्थ का वह तुच्छाति-तुच्छ घटक शक्ति का महान् और अजस्र शक्ति भांडागार अपने में दबाये पड़ा है। परमाणु विस्फोट के समय उसकी शक्ति का लाखवाँ हिस्सा ही प्रयोग में आ पाता है, शेष भाग अन्तर्निक्षिप्त में विलीन हो जाता है। परन्तु परमाणु शक्ति के लाखवें हिस्से का भी जो प्रभाव और परिणाम देखने में आता है, उसी से पदार्थ की महान् शक्ति के बारे में पता चलता है। परमाणु में निहित यदि सम्पूर्ण शक्ति का प्रयोग किया जा सके और उसे ध्वंस में लगाया जाय तो उतने से ही सारे भूमण्डल का विनाश हो सकता है। इसी प्रकार यदि उस शक्ति का प्रयोग सृजन कार्य में किया जाय तो इतनी ऊर्जा प्राप्त हो सकती है जितनी कि सूर्य से पृथ्वी को मिली है।

परमात्मा की यह सृष्टि विचित्र रहस्यों और अनबूझ पहलियों से भरी पड़ी है। उन्हीं में से एक रहस्य यह भी है कि गहराई में जाकर जो कुछ खोज-बीन की जा सकती है, उससे इतना अधिक उपलब्ध किया जा सकता है, जितने की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। स्थूल और बाह्य के प्रभाव तथा परिणाम स्वल्प हैं। स्थूल की गहराई में उतरकर जैसे-जैसे सूक्ष्म से सम्पर्क किया जाता है, उसी स्तर के अनुदान-वरदान मिलने लगते हैं।

मनुष्य यों दिखाई देने में अन्य प्राणियों की तुलना में बहुत ही स्वल्प सामर्थ्य वाला दिखाई पड़ता है, पर उसके पास बुद्धि के रूप में एक ऐसी सूक्ष्म शक्ति विद्यमान है, जिसके बल पर ही वह अपने से बलवान्, भीमकाय प्राणियों को पीछे छोड़ने के समर्थ हुआ और

अन्य प्राणियों की तुलना में अपनी दुनिया को अधिक उन्नत और विकसित बना सका है। मनुष्य समाज में ही कितने ही लोग बुद्धिबल के द्वारा सामान्य तथा पिछड़ी हुई हालत में आगे बढ़े, ऊँचे उठे और समर्थ-सम्पन्न व्यक्तियों की अग्रिम पंक्ति में जा बैठे। इसके विपरीत विरासत में प्राप्त हुई उच्च स्थिति में भी लोग बुद्धि बल के अभाव में पतन के गर्त में जा गिरे।

बुद्धि बल की सूक्ष्म सत्ता का यह आंशिक परिचय हुआ। मनुष्य में उससे भी चमत्कारी और रहस्यमयी क्षमताएँ विद्यमान हैं। यदि उन्हें उबार और अर्जित किया जा सके तो सचमुच ही मनुष्य ईश्वर तुल्य बन सकता है। उस शक्ति को मनुष्य की अन्तःशक्ति कहा जा सकता है। यह शक्ति प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान है, आवश्यकता उसे प्राप्त भर करने की है। योग साधनाओं का उद्देश्य मनुष्य की अन्तःशक्ति को अनगढ़ स्थिति से उबारकर उसे शुद्ध एवं प्रखर बनाना ही है। इस शक्ति को अर्जित और परिष्कृत कई-कई प्रकार की अलौकिक क्षमताएँ उत्पन्न की जा सकती हैं और उसका उपयोग सत्प्रयोजनों में करके अपना व समाज का इतना बड़ा हित साधन किया जा सकता है, जितना सामान्य भौतिक क्षेत्र में सम्पन्न किये जाने वाले पुरुषार्थ द्वारा सम्भव नहीं है।

समय-समय पर कई उदाहरण देखने में आते हैं, जिनसे मनुष्य की अन्तर्निहित इस क्षमता के प्रमाण मिलते हैं। विश्व-इतिहास में ऐसे अनेकों प्रसंग बिखरे पड़े हैं जिनसे यह प्रमाणित हो जाता है कि मनुष्य सर्व-समर्थ और सर्व-शक्तिमान परमात्मा का पुत्र है तथा उसे अपने पिता द्वारा कई एक अमूल्य वरदान प्राप्त हैं। इनमें से कुछ प्रसंग तो इन दिनों काफी चर्चित रहे हैं। उदाहरण के लिए फ्रांस की एक लड़की ऐनेट फ्रेलन की पिछले दिनों प्रायः चर्चा होती रही। जब वह बारह वर्ष की आयु में थी उसकी चमड़ी पर सामने वाले व्यक्ति के मन की बातें, उसके विगत और भावी के बारे में कई बातें इस तरह उभर आती थीं, जैसे किसी ने कागज पर कलम से लिख दिया हो। यह अक्षर अपने आप ही उभरते थे और कुछ ही मिनट में गायब हो जाते थे।

दक्षिण अफ्रीका का एक साधारण-सा युवक पीटरवाम डेनवर्ग योग विद्या के अपने चमत्कारों के लिए काफी दिनों तक प्रसिद्ध रहा। २८ जुलाई, १९६९ को उसने न्यूकेसिल नगर में एक बड़ी भीड़ के सामने अपने इन चमत्कारों का प्रदर्शन किया। इसके कुछ वर्ष पूर्व वह चाय का एक छोटा-सा होटल चलाता था। वहीं से उसके हाथ में योग विद्या की एक पुस्तक लग गई। जिसे पढ़कर उसने योग के बारे में जाना। उस पुस्तक ने

डेनवर्ग की उत्सुकता बढ़ा दी और वह ऐसे ग्रन्थों को खोज-खोजकर पढ़ने लगा। अपने इसी स्वाध्याय क्रम में उसने भारत को योगियों के देश के नाम से जाना। उसकी उत्कण्ठा इतनी बढ़ गई कि अपनी सारी जमा पूँजी समेटकर वह भारत चल दिया और हिमालय क्षेत्र में भ्रमण करता हुआ चमत्कारी योग विद्याएँ सीखता रहा।

हिमालय के अनेक योगियों से सम्पर्क कर, उसने सानिध्य में रहकर डेनवर्ग ने अनेक विद्याएँ सीखीं। जब वह अपने देश लौटा तो वहाँ के लोगों ने उसे चमत्कार दिखाने के लिए कहा। पहले तो वह मना करता रहा, पर जब लोगों ने चुनौती, उलाहने दिये और व्यंग्य-परिहास किया तो वह एक तरह से विवश हो गया। न्यूकेसिल नगर में प्रदर्शन की व्यवस्था की गई। एक लम्बे-चौड़े चबूतरे पर पत्थर के दहकते कोयलों की लपटों में डेनवर्ग को देर तक चहलकदमी करनी थी। प्रदर्शन के लिए जोरदार विज्ञापन किया गया अस्तु, उसे देखने के लिए दूर-दूर से हजारों लोग एकत्रित हुए। भारी संख्या में उपस्थित दर्शकों से प्रदर्शन का विस्तृत मैदान भर गया। नियत समय पर प्रदर्शन हुआ और डेनवर्ग ज्वालाओं के बीच नंगे पैर करीब ४५ मिनट तक टहलता रहा। निकला तो उसके शरीर पर कहीं एक छाला भी नहीं था।

अन्तःशक्ति को जागृत करने में मन्त्र विद्या भी बड़ा महत्व रखती है। यों मन्त्र विद्या के नाम पर धूर्तता और ठगी भी कम नहीं है, उसकी आड़ में धूर्त लोग अपना स्वार्थ भी कम सिद्ध नहीं करते, पर इतने मात्र से ही यह नहीं मान बैठना चाहिए कि इस क्षेत्र में कुछ भी तथ्य नहीं है। एक अंग्रेज शिकारी डेविड लेजली ने अपनी अफ्रीकी शिकार यात्राओं के विवरणों की एक पुस्तक लिखी है। “जुलुओं के बीच” इस पुस्तक में एक तांत्रिक से सम्बन्धित घटना भी है। लेजली ने लिखा है कि एक बार उसके साथी हाथियों के शिकार में घेरबन्दी कर रहे थे। घेरबन्दी के बाद देखा गया कि उनके कुछ साथी गायब हो गये। बहुत ढूँढ़-खोज की गई, पर एक का भी कहीं पता नहीं चला। अन्त में किसी के परामर्श पर तलाश के लिए एक जुलु तांत्रिक की सहायता ली गई। तांत्रिक ने अपने मन्त्र बल से उन सभी साथियों को शकलें, नाम, वस्तुएँ और उनसे सम्बन्धित अनेक बातों को बताया जो अक्षरशः सही थीं। इसके बाद उसने यह भी बता दिया कि वे सभी साथी अमुक स्थान पर हैं। बताये हुए स्थान पर जाकर उन्हें खोज लिया गया।

युगांडा के एक आतंकवादी संगठन ‘दि नीबा मंसाबूबा’ जो छिपकर अपनी गतिविधियाँ चलाता था, का पता लगाने के लिए नियुक्त एक ब्रिटिश गुप्तचर

अधिकारी ने भी अपनी संस्मरण पुस्तक में इसी तरह की विभिन्न घटनाओं का उल्लेख किया है। उक्त ब्रिटिश अधिकारी जानक्राफ्ट अन्धविश्वासों से सर्वथा मुक्त, प्रगतिशील विचार रखने वाले, कुशाग्र बुद्धि और साहसी व्यक्ति हैं। उन्हें जादू-टोनों पर भी रंचमात्र विश्वास नहीं था। जब वे आतंकवादी संगठन का पता लगाने के लिए सक्रिय हुए तो उन्हें चेतावनी दी गई कि वे इस कार्य में हाथ न डालें। गुप्तचरों को इस तरह की धमकियाँ तो प्रायः अपने प्रत्येक अभियान में उन्हें मिलती रहती हैं। जानक्राफ्ट पर उस धमकी का कोई प्रभाव नहीं होना था सो नहीं हुआ। जब वे न माने तो उनके ऊपर आतंकवादियों ने अप्रत्याशित व अस्वाभाविक ढंग से महा विषैले सर्पों के आक्रमण की योजना बनाई।

जानक्राफ्ट एक बार कहीं से लौट रहे थे। जिस स्थान से वे लौट रहे थे, वहाँ से और भी कई व्यक्ति आ जा रहे थे पर क्रफ्ट जैसे ही सीढ़ियाँ उतरने लगे न जाने कहाँ से सीढ़ियों पर एक विषधर साँप उन पर झपटा। संयोग ही कहना चाहिए कि क्रफ्ट तुरन्त उछलकर कई सीढ़ियाँ फलाँग गये। नहीं तो उस समय उनकी मृत्यु निश्चित थी। एक बार वे अकस्मात् एक सहयोगी के यहाँ पहुँचे तो वहाँ भी एक भयंकर फणिधर ने तीखी विषधर उनकी आँखों की ओर छोड़ी। सहकर्मी सतर्क व चुस्त था। उसने तुरन्त क्रफ्ट को नीचे गिरा दिया और जहरीली धार ऊपर से निकल गई। अन्यथा उनका वहीं प्राणांत हो जाता या वे जन्म भर के लिए अन्धे हो जाते। फिर एक बार उन्हें अपनी कार में दरवाजे के पास, दूसरी बार बिस्तर पर ही भयंकर विषैले सर्प दीखे। एक बार साँप उनके दफ्तर में एक अंधेरे कोने से निकलकर क्रफ्ट पर झपटा।

इस तरह की घटनाएँ कई बार घटीं और क्रफ्ट संयोग अथवा सौभाग्यवश हर बार बच गए। इन घटनाओं का विश्लेषण करते हुए स्वयं जानक्राफ्ट ने लिखा है कि प्रत्येक बार घटी यह घटनाएँ संयोग मात्र नहीं हो सकती थीं। उनके अकस्मात् दूर कहीं पहुँचने की सूचना उनके शत्रुओं को तुरन्त नहीं मिल सकती थी, इसलिए इस बात की भी बहुत कम सम्भावना थी कि वे लोग चुपके से ये साँप छोड़ जाते थे। फिर जहाँ अनेक लोग आ-जा रहे हों वहाँ केवल क्रफ्ट पर ही साँप क्यों झपटा ? घटनाओं का विश्लेषण करते हुए जान क्रफ्ट ने युगांडा में प्रचलित इस मान्यता की पुष्टि की है कि वहाँ के तान्त्रिक सर्पों को वश में करके उनका इस तरह मनचाहा प्रयोग कर सकते हैं।

हिन्दी के प्रसिद्ध समाचार-पत्र 'नवभारत टाइम्स' में प्रकाशित एक लेख के अनुसार 'मध्य प्रदेश' के सरगुजा नरेश के सामने सन् १९३४-३५ में एक ऐसी महिला की पेशी हुई, जिसके बारे में आरोप लगाया गया था कि उसने मारण मन्त्र द्वारा कई लोगों की हत्याएँ की हैं तथा सरगुजा में एक वर्ष तक जलवृष्टि न होने का कारण भी उक्त महिला द्वारा किया गया मन्त्र प्रयोग ही था। उस आदिवासी महिला ने भरे दरबार में अपना अपराध स्वीकार कर लिया। आदिवासियों का यह स्वभाव होता है कि वे अपने द्वारा किये गये भले-बुरे कर्मों को निस्संकोच स्वीकार कर लेते हैं। जब सरगुजा नरेश ने उसके मारण मन्त्र की शक्ति का प्रदर्शन देखना चाहा तो एक स्वस्थ हृष्ट-पुष्ट मुर्गा, एक निश्चित दूरी पर खड़े होकर घास का एक तिनका अपने हाथ में पकड़ा और मन्त्र बोलकर उस तिनके को बीच से तोड़ दिया। तिनका टूटने के साथ ही राजकर्मचारी की गोद में बैठा स्वस्थ मुर्गा सहसा ऐंठा, छटपटाया और निष्प्राण हो गया।

मन्त्र साधनाओं या योग विद्या के चमत्कार और कुछ नहीं मनुष्य की अन्तःशक्ति के ही परिणाम हैं। यदि वह बढ़ाई या विकसित की जा सके तो मनुष्य शरीर चलते-फिरते बिजलीघर के रूप में परिणत हो सकता है। इस शक्ति का प्रयोग योगीजन भले कार्यों में और दुष्ट प्रकृति के लोग बुरे प्रयोजनों में करते हैं। आग से भोजन भी बनाया जा सकता है और घर भी जलाया जा सकता है। यही बात साधना द्वारा उत्पन्न अन्तःशक्ति के बारे में भी लागू होती है। इसीलिए योग विद्या के आचार्यों ने यम, नियमों द्वारा अपने स्वभाव, प्रकृति और आदतों को परिमार्जित करने के बाद अगली सीढ़ियों पर कदम रखने का निर्देश दिया है।

शास्त्रों से भी अधिक सामर्थ्यवान

मन की शक्ति

सन् १९१० में जर्मनी की एक ट्रेन में एक सोलह वर्षीय किशोर यात्रा कर रहा था। पैसे के अभाव में वह टिकट न ले सका। टिकट निरीक्षक को देखते ही उसने सीट के नीचे छिपने की कोशिश की। पर वह टिकट निरीक्षक की निगाहों से बच न सका। उसने किशोर से टिकट माँगा। टिकट तो उसके पास था नहीं। पास में अखबार का टुकड़ा पड़ा था। किशोर ने उसे हाथ में उठाया, मन में संकल्प किया कि यह टिकट है और उसने टिकट निरीक्षक के हाथों में वह टुकड़ा धमा दिया। मन ही मन यह संकल्प दुहराता रहा है ! परमात्मा उसे वह कागज का टुकड़ा टिकट दिखायी पड़ जाय। उसके

आश्चर्य का तब ठिकाना न रहा जब देखा कि निरीक्षक ने उस कागज के टुकड़े को वापस लौटाते हुए यह कहा कि “क्या तुम पागल हो गये हो। तुम्हारे पास जब टिकट है तो सीट के नीचे छिपने की आवश्यकता क्या है ?”

“एबाउट माई सेल्फ” पुस्तक में बुल्फ मैसिंग नामक एक रशियन परामनोवैज्ञानिक उपरोक्त घटना का उल्लेख करते हुए लिखता है कि “उस दिन से मेरा पूरा जीवन बदल गया। पहले मैं अपने आप को असमर्थ, असहाय तथा मूर्ख मानता था पर उस घटना के बाद यह विश्वास पैदा हुआ कि मेरे भीतर कोई महान शक्ति सोयी पड़ी है जिसे जगाया-उभारा जा सकता है। उन प्रयत्नों में मैं प्राणपण से लग गया तथा सफल भी रहा।”

सन् १९१० से १९५० तक मैसिंग को दुनिया भर में ख्याति मिली। उसकी संकल्प शक्ति की विलक्षणता का परीक्षण अनेकों बार विशेषज्ञ, वैज्ञानिकों के समक्ष किया गया। स्टालिन जैसा मनोबल सम्पन्न व्यक्ति भी मैसिंग से डरने लगा। भयभीत होकर स्टालिन ने उसे गिरफ्तार करा लिया। स्टालिन को सुनी हुई बातों पर विश्वास न था। मैसिंग की परीक्षा उसने स्वयं ली। उसने मैसिंग से कहा “तुम मेरे सामने अपनी सामर्थ्य का परिचय दो। वह सहर्ष इसके लिए राजी हो गया।”

स्टालिन ने आदेश दिया “बन्द कमरे से कल दो बजे तुम्हें छोड़ा जायेगा। एक व्यक्ति तुम्हें मास्को के एक बड़े बैंक में ले जायेगा। तुम्हें बैंक के कैशियर से एक लाख रुपये निकलवाकर लाना होगा। पर ध्यान रहे तुम मात्र अपनी वाणी का प्रयोग कर सकते हो किसी शस्त्र का नहीं।”

दूसरे दिन पूरी बैंक को सैनिकों से घिरवा दिया गया। दो व्यक्ति पिस्तौलें लिए छद्म वेश में मैसिंग के पीछे-पीछे चल पड़े ताकि वह किसी प्रकार की चाल न चल सके। ट्रेजरर के सामने उसे खड़ा कर दिया गया। मैसिंग ने जेब से एक कोरा कागज निकाला, एकाग्र नेत्रों से देखा तथा ट्रेजरर को दे दिया। ट्रेजरर गौर से उस कागज को उलट-पुलट कर देखकर आश्चर्य को गया कि वह एक चैक है एवं सही है। उसे अपने पास रखकर उसने एक लाख रुपये मैसिंग को दे दिए। उसे लेकर वह स्टालिन के पास पहुँचा तथा सौंप दिया। सारा विवरण जानकार स्टालिन के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

इतने पर भी स्टालिन को उसकी संकल्प शक्ति पर पूर्ण विश्वास न हुआ। उधर मैसिंग वह धनराशि लेकर खजान्ची के पास पहुँचा—पूरी बात बतायी। उसने चैक

समझकर रखे हुए कागज को दुबारा देखा तो वह अब मात्र कोरा कागज था। धन राशि को वापस करते हुए मैसिंग ने खजान्ची से कहा “महोदय! क्षमा करें, यह संकल्प शक्ति का यह एक छोटा-सा प्रयोग था। आपको इसका दण्ड न भुगतना पड़े, इस कारण लौटाने आया।” वह क्लर्क इस घटना से इतना अधिक हतप्रभ हुआ कि उसे हार्ट अटैक का दौरा पड़ा और कई दिनों तक भयावह सपने आते रहे।

इस रहस्य की और भी पुष्टि करने की दृष्टि से उधर स्टालिन ने मैसिंग को दूसरा आदेश दिया कि सैनिकों की देखरेख में बन्द कमरे से निकलकर वह ठीक बारह बजे रात्रि को स्टालिन से मिले। स्टालिन के लिये सैनिकों की कड़ी सुरक्षा वैसी भी रखी जाती थी लेकिन यह व्यवस्था और कड़ी कर दी गयी ताकि किसी प्रकार मैसिंग निकलकर स्टालिन तक पहुँचने न पाये। पर इन सबसे बावजूद भी निर्धारित समय पर वह स्टालिन के समक्ष पहुँचकर वह मुस्कुराने लगा। स्टालिन को अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था, पर जो सामने घटित हुआ था उससे इन्कार भी कैसे कर सकता था ? भय मिश्रित स्वर में उसने मैसिंग से पूछा कि यह असंभव कार्य तुमने किस प्रकार, किस शक्ति के सहारे किया, थोड़ा विस्तार में बताओ।

मैसिंग बोला—यह और कुछ भी नहीं संकल्प बल का एक छोटा चमत्कार है। मैंने मात्र इतना किया कि मन को एक विचार एक लक्ष्य के लिए एकाग्र किया। तत्पश्चात् दरवाजे पर आकर सैनिक से निर्देश के स्वर में बोला “मैं वेरिया हूँ” ज्ञातव्य है कि तब वेरिया को रूसी फ़ौज का सबसे बड़ा अधिकारी, स्टालिन के बाद सर्वशक्तिमान अधिकारी माना जाता था।

“आपसे मिलने की इच्छा जाहिर करते ही सैनिकों की पहली कतार ने मुझे एक कमरे का नम्बर बताया। वहाँ पहुँचने पर मैंने पुनः अपना परिचय पहले की भाँति दिया। सुरक्षा पर तैनात सैनिकों ने एक दूसरे दिशा वाले कमरे की ओर संकेत किया। वहाँ भी सशस्त्र सैनिकों की एक टोली मौजूद थी। जनरल वेरिया का नाम सुनकर व उन्हें प्रत्यक्ष सामने देखकर उन सैनिकों ने भी अभिवादन करते हुए आगे का रास्ता बताया। इस प्रकार सैनिकों की सात टोली पार करने के बाद निश्चित रूप से यह मालूम हुआ कि आप कहाँ हैं। अपना पूर्व की भाँति परिचय देकर मैं यहाँ आ सकने में सफल हुआ।

मैसिंग के द्वारा स्टालिन को एक नया सूत्र हाथ लगा कि मनुष्य के भीतर कोई ऐसी अविज्ञात शक्ति विद्यमान है जो प्रत्यक्ष सभी आयुधों से भी अधिक समर्थ

है। उसके द्वारा असम्भव स्तर के कार्य भी पूरे किये जा सकते हैं। स्टालिन ने मैसिंग की अतीन्द्रिय सामर्थ्य के परीक्षण के लिए 'नामोर' नामक एक मनःशास्त्री को नियुक्त किया जो अपने समय का मनोविज्ञान का मूर्धन्य विशेषज्ञ माना जाता था। लम्बे समय तक उसने मैसिंग का अध्ययन किया। अन्ततः उसने घोषणा की कि "मन की अचेतन शक्ति चेतन की तुलना में अधिक सबल है। उसे उभारकर अच्छे-बुरे दोनों ही तरह के काम लिए जा सकते हैं। मैसिंग के भीतर का अचेतन प्रचण्ड रूप से जाग्रत है। उसी के माध्यम से वह प्रचण्ड संकल्प की प्रेरणा देकर दूसरों को सम्मोहित कर लेता है तथा अपने प्रयोजन में सफल हो जाता है।"

संकल्प शक्ति के एक छोटे से भाग को जाग्रत करते मनःशास्त्री अगणित प्रयोग करते हैं। इन दिनों सम्मोहन के माध्यम से उपचार की एक नयी 'पैथी' विकसित हुई है। बच्चों के मानसिक विकास के लिए भी उसका प्रयोग मानसविद् करने लगे हैं। विचार सम्प्रेषण की प्रक्रिया में भी संकल्प शक्ति का ही प्रयोग निहित है। दैनन्दिन जीवन में भी उस सामर्थ्य का एक छोटा पक्ष देखने को मिलता है। कितने ही व्यक्ति दूसरों को अपनी बातों, अपने विचारों से प्रभावित कर असम्भव कार्य करा लेते हैं। इच्छानुरूप दिशा में दूसरों को मोड़ने में भी सफल हो जाते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि वे प्रभावित व्यक्तियों की तुलना में कहीं अधिक संकल्पवान हैं।

वह शक्ति बीज प्रत्येक में विद्यमान है। उसे अंकुरित एवं विकसित किया जा सकता है। साधना के, तप-तितीक्षा के छोटे-बड़े प्रयोग इसलिए किये जाते हैं कि किसी प्रकार संकल्प शक्ति के जगने एवं सुदृढ़ होने का अवसर मिले। भौतिक क्षेत्र में अभीष्ट स्तर की सफलता के लिए तदनु रूप प्रयास करने पड़ते हैं। मनःक्षेत्र आत्मिकी की परिधि में आता है। किसी-किसी में संस्कारोंवश सहज ही उभर आता है। जबकि किसी-किसी को पुरुषार्थ साधना करनी पड़ती है आवश्यकता अपने पुरुषार्थ को पहचानने, आत्मशोधन एवं आत्मविकास के प्रयोजन पूरे कर संकल्प शक्ति के सुनियोजन भर की है।

इनका कारण ढूँढ़ना अभी शेष है

लन्दन के नीरवेक कालेज में भौतिकी के प्राध्यापक जान हस्टेड ने इस प्रसंग में भी रुचि लेनी आरम्भ की कि क्या मानवी चेतना में कुछ ऐसी विलक्षणताएँ भी हैं जिन्हें प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सके। इस सन्दर्भ में उनसे तथाकथित कितने ही गूढ़ विद्या विशारदों से सम्पर्क

स्थापित किया कि वे अपने सम्बन्ध में तथाकथित किम्बदन्तियों के सम्बन्ध में निराकरण करें और जन-साधारण को यथार्थता से अवगत करने के सम्बन्ध में अवसर प्रदान करें।

इस चुनौती को अधिकांश ख्यातिनामाओं ने टाल दिया। कइयों ने अपनी तलाशी देने और जिन उपकरणों का वे प्रयोग करते हैं, उनकी पूर्व परीक्षा करने के अवसर दें, इस बात को भी उनसे अस्वीकार कर दिया। इससे हस्टेड को निराशा हुई, उसने समझा जादूगरी के हथकण्डों को सिद्धि कहा और विश्वासी भावुकों की श्रद्धा का दोहन किया जा रहा है।

किन्तु एक सज्जन ने अपने को उनकी शर्त के अनुरूप अपनी परीक्षा करने और जो वे अदभुत दिखा सकते थे उसके लिए तैयार हुए। उनका नाम था यूरी गेलर। इस इजराइली युवक ने अपने को क्रेम्बिज यूनिवर्सिटी को प्रस्तुत किया और विभिन्न विचारों के तथा विभिन्न योग्यताओं के निरीक्षकों की एक मण्डली बुलाये जाने का अनुरोध किया। इनमें हस्टेड प्रमुख थे।

यूरी गेलर ने आत्मिकी क्षेत्र का भौतिक पदार्थों पर प्रभाव सिद्ध करने के लिए कुछ वस्तुएँ प्रस्तुत कीं।

(१) उसने एक अति कठोर काँच का गोला कपड़ों में लपेटकर बक्से में बन्द कराया। स्वयं उससे एक फुट दूर रहे। सिर्फ उसे घूरते भर रहे। थोड़ी देर में बक्से में छेदकर उसी गोले में से छोटी-छोटी गोलियाँ निकलीं। जिन्हें बीन लिया गया। अब गोला खाली गया। वह अपने पूर्व रूप में ही था। पर वजन घट गया था। बाहर उछली हुई गोलियों को गोले के साथ रखा गया तो उसका पूर्व वजन पूरा हो गया। उपस्थित निरीक्षकों को इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ा कि इस प्रयोग में कोई चालाकी नहीं हुई है।

(२) दूसरा प्रयोग उसने एक हाथी दाँत की माला आकाश से टपकने का वायदा किया। अपने हाथ पीछे की तरफ बँधवा लिए और लेबोरेटरी की पूरी तरह सफाई कराली कि कहीं उस तरह की माला छिपी हुई तो नहीं है। उनके कपड़े भी बदल दिये गये। इस पर उनके कथनानुसार मेज पर तीन फुट ऊपर से माला गिरी। उसे भी परीक्षण के लिए इसलिए भेजा गया कि कहीं हिप्नोटिज्म के आधार पर मति भ्रम तो उत्पन्न नहीं किया गया है। माला असली पाई गई।

(३) एक क्लॉक घड़ी कमरे में टाँगी गई उसमें चाबी नहीं। जिस फिनर के दबाव से घड़ी चलती है उसे

भी हटा दिया गया। पर नियत समय पर घण्टे बजते रहे। जबकि टाइम बताने वाली सुई स्थिर ही बनी रही।

(४) चौथा प्रयोग उनने लन्दन से शिकागो की लैबोरेटरी में भेजा। वहाँ भी निरीक्षकों की एक मण्डली बैठी थी। हवा में तैरता हुआ एक पार्सल वहाँ पहुँचा। इस पार्सल को लन्दन के निरीक्षकों ने स्वयं ही अपने हाथ से बन्द किया था। उसमें एक गुलदस्ता, एक टमाटर और एक छोटा टेलीविजन सैट था। वह सभी वस्तुयें आघे घण्टे के भीतर उड़कर पहुँच गई। जबकि इतनी तेजी से उड़कर और किसी साधन से उन्हें नहीं पहुँचाया जा सकता था।

इसके अतिरिक्त इसी जाँच-पड़ताल में कुछ स्वतन्त्र घटनाएँ और भी जुड़ गई। पश्चिम जर्मनी के अन्वेषक प्रो. हैन्स जैण्डर ने बताया कि एक बार उनके कमरे में जमीन से छत तक गरम पत्थर उछलने-गिरने का सिलसिला चला। उन्होंने किसी की दुष्टता हो तो उसे पकड़ने के लिए कई गार्ड नियुक्त किये। पर उनके होते हुए भी जब घटना न रुकी तो उन्हें वह मकान बदलना पड़ा। उनका कहना था कि इन घटनाओं को भूतों का उपद्रव समझने के अतिरिक्त और किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके।

इसी प्रकार उनने यह भी बताया कि उनकी ताला बन्द अलमारी में रखी हुई वस्तुएँ अलमारी बन्द रहते हुए भी उड़ीं, एक-एक करके सारे मकान में बिखर गई।

यह दो घटनाएँ यद्यपि यूरी गेलर से सम्बन्धित नहीं पर वे इतना तो बताती ही हैं कि भौतिकी के नियमानुसार सारा जगत चलता हो ऐसी बात नहीं है। उसमें ऐसी विलक्षणताएँ भी मौजूद हैं जिनका कारण ढूँढ़ निकालना अभी विज्ञान के लिए शेष है।

मानव में अन्तर्निहित रहस्यमय शक्तियाँ

मनुष्य के अन्तराल में अनेकानेक रहस्यमयी गुप्त शक्तियों का भाण्डागार विद्यमान है। स्थूल क्रिया की अपेक्षा सूक्ष्म एवं कारण शरीर में अनुपम दिव्य क्षमताएँ भरी पड़ी हैं। पर हैं ये सभी प्रसुप्त स्थिति में दबी हुई। यदि इन्हें जागृत और विकसित किया जा सके तो वह उन अलौकिक शक्तियों का स्वामी बन सकता है, जिनहें सामान्यजन आश्चर्यजनक कहते समझते हैं।

इस तरह की घटनाएँ कभी-कभी प्रकाश में भी रहती हैं जिनसे मानवी काया में अन्तर्निहित असीम क्षमताओं का परिचय मिलता है। एक घटना सत्रहवीं सदी की है। मूर्धन्य वैज्ञानिक एवं अनुसंधानकर्ता लार्ड एडोर ने

एक व्यक्ति को हवा में पक्षियों की तरह उड़ते और तैरते हुए देखा था। इस विलक्षण विवरण को उन्होंने “रिपोर्ट आफ दि डायलेक्टिकल सोसायटी आन स्प्रिचुएलिज्म” नामक पत्रिका में प्रकाशित कराया था। प्रारम्भ में तार्किकों, प्रत्यक्षवादियों एवं वैज्ञानिकों को इस तथ्य पर विश्वास ही नहीं हुआ कि कोई व्यक्ति हवा में ही उड़ सकता है। किन्तु इसी तरह की जब एक घटना इटली नगर में सन् १६६३ में घटी तो समस्त विचारकों, तार्किकों एवं वैज्ञानिकों को चमत्कृत कर दिया। हुआ यह कि इटली के पादरी जोसेप अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व ही चिकित्सा कर रहे एक डाक्टर को भी अपने साथ लेकर आकाश में उड़ गये। उस चिकित्सक ने अपने संस्मरण में लिखा कि “जब मैं फादर जोसेप की देखभाल कर रहा था तो अचानक उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा और हवा में तैरने लगे। उनसे जकड़ा हुआ मैं भी हवा में उड़ रहा था। वह मुझे उड़ाते हुए फ्रांस के गिरजाघर तक ले गये और वहाँ उतरकर प्रार्थना की। इसके बाद बोले, अब मुझे आपकी चिकित्सा की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अब मेरे शरीर त्यागने का समय आ गया है। मैं जल्दी ही भगवान के पास जाने वाला हूँ। यह सुनकर मैं सन्न रह गया। इसके बाद दूसरे ही दिन उनकी मृत्यु हो गयी।”

एडोर द्वारा प्रकाशित विवरण की यथार्थता को जानने के लिए “द रॉयल एस्ट्रोनामिकल सोसायटी” के मूर्धन्य अनुसंधानकर्ताओं ने व्यापक गवेषणाएँ कीं। इन शोधकर्मियों ने अपनी गहन खोजों के आधार पर पता लगाया कि इटली के सरकारी कागजातों में श्री जोसेप के हवा में तैरने के एक नहीं, अनेकानेक प्रसंग रिकार्ड हैं, जो कि पुलिस वालों तथा अन्य कई प्रत्यक्षदर्शियों ने संग्रह किये थे। जोसेप के सम्बन्ध में पूरे इटली भर में यह ख्याति फैल चुकी थी कि प्रार्थना-उपासना करते वह हवा में उड़ने लगते हैं। हवा में उड़ने वाला साधु के नाम से प्रसिद्ध इस पादरी गिसप देसा जोसेप का जन्म १६०३ में इटली के कापरटिनो नामक स्थान पर हुआ था। पिता बड़ईगीरी का काम करते थे। बचपन से ही अन्तर्मुखी जोसेप घण्टों पूजावेदी के सामने बैठे उपासना किया करते थे।

एक दिन चर्च में प्रार्थना करते समय तीव्र गर्जन करते हुए वह हवा में ऊपर उठ गए तथा दोनों बाँहों को फैलाकर अघर में तैरने लगे। थोड़ी देर बाद वह मोमबत्तियों व फूलों से सुसज्जित पूजा वेदी पर उतर आए। कुछ समय पश्चात् पुनः उसी तरह गर्जन करते हुए उड़े और वापस नीचे उतरकर अपने स्थान पर पहुँचकर प्रार्थना करने लगे।

एक बार रोम में पोप अर्बन अष्टम को देखकर जोसेप भावावेश में इतना उत्साहित हो गए कि आधार छोड़कर हवा में उड़ चले तथा तब तक उड़ते ही रहे जब तक कि पोप ने उन्हें नीचे उतरने का संकेत नहीं दिया। रोम से वापस लौटने पर चर्च में अंकित चित्रों से प्रभावित होकर जोसेप ने एक चित्रकार के साथ लगभग १५ गज ऊँची उड़ान भरी। उसके बाद जोसेप ने एसेसी तथा कोपरटिनो में भी अनेकानेक उड़ानें भरीं। यह सब वह भावावेश में आने पर ही करते थे, प्रदर्शन के लिए नहीं। दूसरों को साथ लेकर भी जोसेप कभी-कभी उड़ाने भरा करते थे। उनके बाल्यकाल की घटना है। एक बार जब वह अपने पिता का हाथ पकड़ हुए थे एकाएक उन्हें लेकर आकाश में उड़ गए। इसी प्रकार का समय वह किसी पागल की आध्यात्मिक चिकित्सा कर रहे थे, तभी उसके सिर के बालों को हाथ से पकड़े हुए वह उड़ गए तथा काफी समय तक इसी तरह उड़ते रहे।

फादर जोसेप की उड़ान देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते थे। जर्मनी के ड्यूक आफ ब्रन्सविक ने छिपकर देखा कि जोसेप कहीं सामान्य जनता को सम्मोहित तो नहीं करते ? वह अभी इसी ऊहापोह में उलझे थे कि गर्जन करते हुए वह प्रार्थना की मुद्रा में घुटना मोड़े हुए ही हवा में उड़ने लगे। दूसरे दिन पुनः उनसे इस उड़ान की पुनरावृत्ति देखी। तब उन्हें इस साधु की अलौकिक सामर्थ्य पर विश्वास हो गया।

दरअसल ये प्रसंग उस विभूति का परिचय देते हैं जिसका उल्लेख अणिमा, लघिमा जैसी सिद्धियों के रूप में एवं पवनपुत्र हनुमान की आकाश यात्रा व सुरसा से उनकी भेट रूप में पौराणिक आख्यानों में आता है। पूर्व जन्मों के संचित संस्कार या साधना-पराक्रम से जब अन्तर्निहित क्षमताएँ जाग उठती हैं तो असंभव चमत्कारी कृत्य मानवी क्रिया द्वारा संभव होते देखा जाने लगता है।

अठारहवीं शताब्दी के एक बौद्ध भिक्षु बेनेडिक्टाइन के बारे में प्रख्यात है कि वह हवा में उड़ जाते थे। एक बार वह संघाराम में चहल-कदमी कर रहे थे तभी उपस्थित जन-समूह के सामने वह हवा में विहंगवत् उड़ने लगे। ऊँचाई पर वह उठते ही जा रहे थे कि जैतून की शाखाओं से टकरा गये और घंटों अधर में ही लटके रहे। शिष्यों ने सीढ़ी लगाकर प्रयत्नपूर्वक उन्हें धरती पर उतारा फिर भी वे जमीन से ६ इंच ऊपर ही टँगे रहे और उनको संबोधित करते रहे।

उन्नीसवीं सदी में वैज्ञानिकों का ध्यान उपरोक्त आध्यात्मिक विभूतियों की ओर आकृष्ट हुआ। जब ये चमत्कारिक घटनाएँ लोकचर्चा का विषय बनने लगी थीं

और संशयवादी इस पर अविश्वास व्यक्त करते हुए इसे अफवाह और धोखा-धड़ी की संज्ञा दे रहे थे। उस समय की इन घटनाओं से प्रभावित हो महान अध्यात्मवेत्ता एवं सुप्रसिद्ध रसायनशास्त्री सर विलियम क्रुक्स ने एक शोध समिति बनाई। उन्होंने इन चमत्कारिक प्रदर्शनों की व्यापक छानबीन की एवं तत्सम्बन्धित अनुसंधानों-परीक्षणों की विशद व्याख्या अपने प्रसिद्ध शोधग्रन्थ “रिसर्च इन द फेनामेना ऑफ स्मिचुएलिज्म” में प्रकाशित किया। होम नामक एक व्यक्ति की विलक्षणताओं का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है कि “जब मैं उससे वार्तालाप कर रहा था, तभी वह जिस कुर्सी पर बैठा हुआ था उस कुर्सी सहित हवा में तैरने लगा।” एक अन्य दूसरे साक्षात्कार का विवरण इस प्रकार दिया है “मेरी उपस्थिति में कुर्सी पर बैठी हुई एक महिला को भी उसने हवा में काफ़ी ऊँचाई तक उठा दिया था। इस स्थिति में वह महिला लगभग दस सेकण्ड तक रही। इसके बाद धीरे-धीरे जमीन पर अपनी कुर्सी सहित वापस आई।”

क्रुक्स ने अपने एक अन्य शोध ग्रन्थ “मिसलीनियस अक्रेन्सेस आफ ए कॉम्पलेक्स करैक्टर” में एक सौ से अधिक आकाशगामिता की अद्भुत घटनाओं का वर्णन किया है।

‘मास्टर ऑफ लिडेन्सी’ नाम से प्रख्यात एक अन्य शोधकर्मी वैज्ञानिक ने इस तथ्य को प्रमाणित किया है कि व्यक्ति अपनी सूक्ष्म शक्तियों को जाग्रत करके कई ऐसे कार्य कर सकता है जो स्थूल क्रिया से बन पड़ना संभव नहीं है। एडोर द्वारा और होम के साथ बैठा आकाशगमन पर चर्चा कर रहा था, तभी एकाएक श्री होम धरती से आकाश की ओर उठने लगे। देखते-देखते वह जमीन से पचासी फीट ऊँचाई तक पहुँचकर हवा में स्थिर हो गये। काफी समय तक इस स्थिति में रहने के पश्चात् वह धीरे-धीरे जमीन पर उतर आये।

उपरोक्त प्रदर्शन अथवा अद्भुत कही जाने वाली घटनाएँ सदा से वैज्ञानिकों, भौतिकशास्त्रियों एवं प्रत्यक्षवादियों के लिए चुनौती बनी रही हैं। उनके समाधान खोजने में भी उनसे कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी परन्तु शोध परिधि स्थूल शरीर तक ही सीमित होने के कारण उनकी खोजें अधूरी ही रहीं। इस संदर्भ में “साइन्स एण्ड रिलीजन बाई सेविन मैन आफ साइन्स” के लेखक प्रो. डब्ल्यू. बी. वाटमाली द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त ध्यान देने योग्य है। उनके अनुसार, “भौतिक अथवा रासायनिक विज्ञान मनुष्य को संतुष्ट नहीं कर सकता है। स्थूल से बढ़कर और भी कोई सूक्ष्म सत्ता है। हममें से प्रत्येक के हृदय में ऐसी कोई गुप्त शक्ति है जो उच्च उद्देश्यों की

और प्रेरित करती है। इसकी व्याख्या विवेचना विज्ञान के द्वारा नहीं हो सकती।”

भारतवर्ष में स्वामी विशुद्धानंद तथा स्वामी निगमानंद भी अपनी ऐसी अनुभूतियों को प्रत्यक्ष प्रमाणित कर चुके हैं। कहा जाता है कि तैलंग स्वामी को नंगे फिरने के अपराध में काशी के एक अंग्रेज अधिकारी ने हवालात में बन्द करा दिया। लेकिन दूसरे दिन वे जेल से बाहर टहलते हुए देखे गए। उन्हें किसी ने कभी कुछ खाते-पीते नहीं देखा फिर भी प्रतिवर्ष उनका वजन १ पाउंड बढ़ जाता था। इस ३०० वर्ष की अवस्था में उनका वजन ३०० पाउंड हो गया था। ऐसे अनेकानेक उदाहरणों का नाथ सम्प्रदाय के मछीन्द्रनाथ, गोरखनाथ, जालन्धर नाथ, कण्ठ्या आदि योगियों के जीवन-प्रसंगों में भी ऐसा उल्लेख पाया जाता है। अभी भी हिमालय की दुर्गम एवं सामान्य जनों की पहुँच से दूर निर्जन गुफाओं में ऐसे कितने ही योगी तपस्वी साधनारत हैं।

वस्तुतः विशिष्ट साधनाओं और तपस्या द्वारा साधक, योगीजन अनादि काल से उन विभूतियों एवं ऋद्धि-सिद्धियों के स्वामी बनते रहे हैं जिन्हें अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राक्त्रम्य, वाशित्व आदि नामों से जाना जाता है। छोटे-बड़े आकार धारण करने, अदृश्य और प्रकट होने आकाश-गमन करने अपने कार्यक्षेत्र को प्रभावित करके इच्छित दिशा में जन-मानस को मोड़ने- मरोड़ने आदि कार्य से सहजता से सम्पन्न कर लेते हैं। इस तरह के उदाहरणों से भारतीय अध्यात्मशास्त्र के पन्ने भरे पड़े हैं। आवश्यकता इस बात की है कि सूक्ष्म की सामर्थ्य को महत्व दिया जाय एवं ऐसे घटनाक्रमों को कपोल कल्पित अथवा कौतूहल न मानकर सूक्ष्म को साधने का प्रयास किया जाय। उड़ने की कला तो मक्खी-मच्छरों को भी आती है। उसे सीखने के लिये जीवन खपाना जरूरी नहीं। जरूरी तो यह है कि अध्यात्म अनुशासनों को महत्व देने हेतु जन साधारण को सहमत किया जाय। इन्हें बताया जाय कि साधना द्वारा इस काया में वांछित परिवर्तन कर बहुत कुछ कर दिखाना मनुष्य के लिए संभव है। असीम संभावनाओं से भरे इस पिण्ड में कितना कुछ भरा पड़ा है, इसे जाना व आत्मसात् किया जा सके तो भौतिकी की दिशा में अग्रसर मानव को आत्मिकी के अवलम्बन हेतु भी सहमत किया जा सकता है।

विलक्षण मानसिक शक्तियाँ और उनका

आधार

मास्को (रूस) की एक अघेड़ महिला नेल्या मिखाइलोवा सिर्फ घड़ी की ओर देखकर उसका चलना

रोक सकती है। वह मेज पर रखे बर्तनों और भोज्य पदार्थों को भी खिसका सकती है। दिशासूचक यन्त्र (कम्पास) की सुई जो केवल चुम्बकीय शक्ति (मैग्नेटिक फील्ड) से ही प्रभावित होती है उसे भी अपनी इस शक्ति से घुमा देती है।

रूसी ‘मास्कोवास्काया’ समाचार-पत्र ने इस महिला की गहरी ध्यानशक्ति पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि “मनुष्य के मन में वस्तुतः विज्ञान से परे विलक्षण शक्तियाँ विद्यमान हैं। उनका विकास करके वर्तमान वैज्ञानिक उपकरणों को ही नहीं पछाड़ा जा सकता, मानव से सम्बन्धित गहन आध्यात्मिक तथ्यों का भी पता लगाया जा सकता है।”

प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान लुई जकालियट जो भारतवर्ष में बहुत दिन रहे और योगविद्या का गहन अन्वेषण किया। उन्होंने गोविन्दस्वामी नामक एक दक्षिणी योगी के सम्बन्ध में लिखा है—“पानी से भरे हुए घड़े को वह दूर बैठकर अपनी मानसिक या दैवी शक्ति से आगे-पीछे और ऊपर हवा में उठा देता था। उसके आदेश पर जल से भरा हुआ घड़ा भी अघर में लटक जाता हुआ मैंने देखा है। भारतीय योगियों के इन विलक्षण करतबों को कई लोग मनोरंजन की दृष्टि से देखते हैं पर मुझे उस कौतूहल से पीछे किसी बड़े रहस्य की अनुभूति होती है, ऐसा लगता है मनुष्य के मन में वह शक्तियाँ हैं, जिनका विकास यदि किया जा सके तो मनुष्य जीवन के अनेक दार्शनिक सत्यों का रहस्य जान सकता है।”

वैज्ञानिक और डाक्टर भी यह मानते हैं कि शरीर में इन्द्रियों की चेतना भी अस्थायी महत्व की है। स्थायी रूप से दृष्टि, श्रवण, घ्राण, प्रेरक और सम्वेदन सभी क्षमतायें मस्तिष्क में विद्यमान हैं। गैलामस नामक एक ग्रन्थि (ग्लैण्ड) भीतरी मस्तिष्क में होती है और जो सिर के केन्द्र में अवस्थित है, यही स्थान सभी तन्मात्राओं के ठहरने का स्थान (स्टेशन) है, यहीं से पीनियल ग्रन्थि निकलती है, जो देखने का काम करती है। पीनियल ग्लैण्ड को तीसरा नेत्र भी कहते हैं। पिट्यूटरी ग्लैण्ड्स और सुषुम्ना शीर्षक (मेडुला ऑब्लेगाटा) जो शरीर के सम्पूर्ण अवयवों का नियन्त्रण करती है वे सब भी मन से ही सम्बन्धित हैं मस्तिष्क का यदि यह केन्द्र काट दिया जाये तो शरीर के अन्य सब संस्थान बेकार हो जायेंगे।

विज्ञान और शरीर रचना शास्त्र (एनाटॉमी) की उपरोक्त आधुनिक जानकारीयों का यद्यपि काफी विस्तार हो चुका है किन्तु योग पद्धति और भारतीय तत्त्वदर्शन की जानकारी की तुलना में यह उपलब्धियाँ समुद्र में एक बूँद की तरह ही हैं। भारतीय तत्त्ववेत्ताओं ने मन की

सर्वशक्तिमय इन्द्रियातीत ज्ञान का आधार और अनन्त परमब्रह्म का ही लघुरूप माना है। मन की शक्तियों को ही ब्रह्म में तादात्म्य कर देने से हाड़-पाँस का मनुष्य भगवान् हो जाता है। उसकी शक्तियों का आश्चर्यजनक और चमत्कारिक विकास इसी अवस्था पर होता है। मन की अनन्त सामर्थ्यों का उल्लेख करते हुए योगवासिष्ठ में बताया गया है—

मनो हि जगतां कर्तुं मनो हि पुरुषः स्मृतः । ३।९।१४,
स्वरूपं सर्वकृत्वं च शक्तत्वं च महात्मनः । ३।९।१६,
प्रतिभासमुपायाति यद्यदस्य हि चेतसः ।

तत्तत्प्रकटतामेति स्थैर्यं सफलतामपि ॥ ३।९।१७,
कल्प क्षणीकरोति क्षणं नयति कल्पताम् ।

मनस्तदार्यत्तमतो देशकाल क्रमे बिदुः ॥ ३।१०।३।१४,

अर्थात्-संसार को रचने वाला पुरुष भी स्वयं मन ही है, मनमें सब प्रकार की शक्तियाँ हैं। मन अपने भीतर जैसी भावना करता है, क्षण भर में वैसा ही हो जाता है। देश-काल का विस्तार और क्रम भी मत के आधीन ही है। मन ही कल्प को क्षण, क्षण को कल्प बना देता है।

इस तरह की महत्वपूर्ण शक्ति का स्वामी होकर भी खेद है कि मनुष्य तुच्छ भोग-वासनाओं पर पड़ा हुआ निरन्तर अपनी आध्यात्मिक शक्तियों का विघटन करता रहता है। यदि मानसिक शक्तियों के उत्थान का मार्ग मनुष्य ढूँढ़ ले, उसे संतुलित कर ले, साध ले, असंयम के द्वारा नष्ट होने से बचाकर उसे आदि पुरुष ब्रह्म के साथ तादात्म्य कर ले तो फिर संसार का जीवन का रहस्य अपने आप ही प्रकट हो जाये। तब मनुष्य दीन न रहे वरन् स्वयं ब्रह्म हो जाये।

हमारे मन में चूँकि ईश्वरीय शक्ति का बड़ा बढ़ा-चढ़ा रूप है। इसलिये इन बातों पर एकाएक विश्वास नहीं होता। मन की शक्तियों से सम्बन्ध न होने के कारण यह बातें कुछ भ्रम-सी लगती हैं और सहसा यह समझ में नहीं आता कि प्रत्येक मनुष्य के मन में सब कुछ जान लेने, दूसरों के अन्तरंग के मनोभाव तक पढ़ लेने, जो कुछ संसार में है उसे प्राप्त कर लेने, ब्रह्माण्ड के विस्तार को जिससे किसी प्रकाश की गति से चलने पर भी करोड़ों मनुष्य संसार में जो कुछ है, उसे कैसे जान सकता है। दूसरों के अन्तरंग में क्या भाव है उसे कैसे पढ़ा जा सकता है, मनोवांछित वस्तुओं को कैसे प्राप्त किया जा सकता है? ब्रह्माण्ड का विस्तार इतना अनन्त है कि प्रकाश की गति से चलकर भी उसे लाखों प्रकाशवर्षों में नहीं नापा जा सकता। उस अनन्तता को

ज्ञान में, अनुभव में दृष्टि में छोटा-सा मन किस प्रकार ला सकता है।

इससे पूर्व कि इसका संक्षिप्त वैज्ञानिक रहस्य, समझाया जाये, इन सम्भावनाओं की संक्षिप्त घटना-परक जानकारी बड़ी उपयोगी होगी।

५ अक्टूबर, १९५० को लन्दन में एक भारतीय महिला शकुन्तला देवी जिन्हें गणित की जादूगरनी (विजार्ड आफ मैथेमेटिक) कहा जाता है, टेलीविजन पर अपना कार्यक्रम प्रस्तुत कर रही थीं। तभी एक सज्जन ने उन्हें एक गणित का प्रश्न हल करने को कहा। बिना एक क्षण का विलम्ब किये हुये उन्होंने कहा यह प्रश्न गलत है। यह प्रश्न ब्रिटेन के बड़े-बड़े गणिताचार्यों ने तैयार किया था, इसलिये सब लोग एकदम आश्चर्य में डूब गये प्रश्न गलत कैसे हो सकता है ? बी. बी. सी. कार्यक्रम के आयोजनकर्ता ने प्रश्न की जाँच कराई तो वह विस्मित रह गया कि प्रश्न सचमुच गलत है। उसने भी यह माना कि “हम जितना समझ पाये हैं, मन की शक्ति और सामर्थ्य उससे बहुत अधिक है।”

कम्प्यूटर मशीन (संगणक) को आज बड़ी आश्चर्य की दृष्टि से देखा जाता है किन्तु मन की शक्ति की तुलना में उसका मूल्य और महत्व एक कौड़ी से अधिक नहीं है। यह लोगों ने तब जाना, जब श्रीमती शकुन्तला देवी से एक सज्जन ने पूछा “८ फरवरी, १९३६ को रविवार था या शनिवार” कोई और व्यक्ति होता तो इतनी गणना (कैलकुलेशन) करने में उसे पूरे दो घण्टे लगते, कम्प्यूटर भी १०-१५ सेकिण्ड तो लेता ही, किन्तु शकुन्तला जी को बताते एक सेकिण्ड समय भी नहीं लगा होगा।

शकुन्तला देवी बँगलौर के एक प्रतिष्ठित परिवार में जन्मीं। अन्नामलाई विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री बी. एस. शास्त्री ने उन्हें “जीते-जागते आश्चर्य” का विशेषण दिया है। सिडनी (ऑस्ट्रेलिया) स्थित न्यू साउथ वेल्स विश्वविद्यालय में उनकी प्रतिद्वन्द्विता २० हजार पौण्ड मूल्य के संगणक (कम्प्यूटर) से हुई। यह कम्प्यूटर विद्युत चालित था और उसका आपरेशन प्रसिद्ध गणितज्ञ श्री आर. जी. स्मार्ट और बेरी थार्नटन कर रहे थे, किन्तु जब भी कोई प्रश्न पूछा जाता था, शकुन्तला उसका तुरन्त उत्तर दे देती थी, जबकि मशीन के उत्तर की प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। शकुन्तला के उत्तर शत प्रतिशत (सेन्ट-पर-सेन्ट) सही पाकर वे सब चौंक पड़े और कहने लगे “सचमुच मन में ऐसी कोई विलक्षण क्षमता है, जिसका विकास भारतीय योग पद्धति से करके मनुष्य सर्वज्ञ बन सकता है।” शकुन्तला जी अब तक ४२

अंकों की संख्याओं का २०वाँ रूट (वर्गमूल) तक निकालने में सफल हुई है। यह गणित जगत् के लिये लोहा मनवाने जैसी बात है। किन्तु शकुन्तला जी की मान्यता है कि यह विकेंद्रित मन की साधारण-सी शक्ति है। मन की नाप-तौल करना कठिन है। वह एक सर्वसमर्थ तत्व जैसा कुछ है।

इन्हीं बातों को देखकर ही वैज्ञानिक शरीर में आत्मा जैसी किसी सर्वव्यापक शक्ति के अस्तित्व की बात स्वीकार करने लगे हैं, भले ही अभी उसका विस्तृत अध्ययन वे लोग न कर पाये हैं। अमेरिका के एक हृदय विशेषज्ञ डॉ. एम. डी. कुले ने चारलोट्सविल (वर्जीनिया) में डाक्टरी का अध्ययन करने वाले सैकड़ों छात्रों के सामने बोलते हुए बताया कि 'मनुष्य की आत्मा का वास मस्तिष्क में है।' उन्होंने मृत्यु के सम्बन्ध में अपना स्पष्टीकरण देते हुए बताया कि मृत्यु एक अकेली घटना नहीं बल्कि वह एक प्रक्रिया है और वह मस्तिष्क के मरने के बाद आरम्भ होती है, शरीर के कई अंग जैसे—दिल तो मृत्यु के कई मिनट बाद तक जीवित रह सकता है किन्तु मस्तिष्क के अणुओं की चेतना समाप्त होते ही मनुष्य का जीवन समाप्त हो जाता है।

इस बात को को हमारे पितामह, ऋषि और योगी काफी समय पूर्व जान गये थे। समाधि अवस्था में आत्म-चेतना को ब्रह्माण्ड (खोपड़ी) में चढ़ाकर बिना साँस लिये हुए कहीं भी दबे पड़े रहने के अनेक प्रयोग भारत में हुए हैं, उनका कहीं अन्यत्र वर्णन करेंगे। यहाँ डॉ. एम. डी. कुले की बात का समर्थन करते हुए यदि यह कहा जाये कि मनुष्य शरीर के प्रत्येक सेल के अन्दर जो चेतना है, उस सामूहिक प्रक्रिया का ही नाम मन या जीवन है और उसमें सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता जैसे विलक्षण गुण भी विद्यमान हैं।

योगवासिष्ठ में भगवान राम को वसिष्ठ ने बताया—

यथा बीजेषु पुष्पादि मृदौराशी घटोयथा ।

तथान्तः संस्थिता सत्त्वी स्थावरेषु स्व वासना॥

६।११०।१९,

एतच्चित्तशरीरत्वं विद्धि सर्वगतोदयम् ।३।४० ।२०,

चिच्छक्तिर्वासना बीज रूपिणी स्वायत्तमिणी।

स्थिता रस तथा नित्यं स्थावरादिषु वस्तुषु॥

६।११०।२३,

बीजेषुल्लास रूपेण जाड्येन जडरूपिषु।

द्वेषु द्रव्यभावेन काठिन्येनेतरेषु च॥

६।१। १०। २४,

प्रारणी वीर्य रसान्तस्था संविज्जंगममाततम्।

तनोति लतिकान्तस्थो रसः पुष्पफल यथा ॥

६। २ । २८।१८,

हे राम ! जैसे बीज के भीतर पुष्प डाल, पत्ते तथा मिट्टी में घड़े आदि की सम्भावनायें छिपी रहती हैं। जड़ पदार्थों के भीतर भी वासना छुपी रहती है। जड़ की वासना की तरह ही संसार की सब वस्तुओं के भीतर चित्त (मन) विद्यमान है। यह शक्ति सम्पूर्ण जड़-चेतन में वासना के रूप में सोई हुई उसके रस के रूप में सदैव वर्तमान रहती है। यह शक्ति बीजों में उल्लास, जड़ पदार्थों में जड़ता, द्रव्यों में द्रव्य भाव और ठोस में ठोस भाव से बना रहता है। जिस प्रकार लता के भीतर रहने वाला रस ही फूल और फल आदि के आवरण में विकसित होता है, उसी प्रकार प्राणियों के वीर्य के रस के भीतर वास करती हुई यह चेतन सत्ता ही सब वस्तुओं का विकास करती है।

इन पंक्तियों में शास्त्रकार ने जहाँ गहन दार्शनिक सत्य का उद्घाटन किया है वहाँ उसकी वैज्ञानिक व्याख्या करने का भी प्रयत्न किया है। अर्थात् संसार में जितनी भी घातुयें या पदार्थ हैं, चेतना (मन) उन सब से सूक्ष्मतरंग है। वह यद्यपि मनुष्यों में वासना रूप में सोई रहती है, किन्तु यदि उसे संयमित कर लिया जाये तो मनुष्य अपने में उन सभी शक्तियों को विकसित देख सकता है, जिनकी कल्पना हम परमात्मा, ईश्वर या ब्रह्म में करते हैं अर्थात् वासनाओं से उन्मुक्त मन ही ईश्वर है। जो भी मनोभूमि में रम गया वह ईश्वर हो गया। नरतन में ऐसे अनेक महापुरुष भगवान् हुए हैं, जिनकी विलक्षण शक्तियों के बारे में इन्कार नहीं किया जा सकता है।

भारतवर्ष की बात नहीं करते-अमेरिका के अलाबामा राज्य में गाड्स डेन नगर के समीप रहने वाले श्री फ्रैंक रेन्स में ऐसी ही एक विलक्षण शक्ति है, जो व्यक्ति में ईश्वरीय शक्ति के अस्तित्व को प्रमाणित करने में सहायक ही सिद्ध होगी।

श्री फ्रैंक रेन्स अंग्रेजी अच्छी तरह बोल सकता है। शेष दुनिया की भाषाओं से वह पूर्णतया अनभिज्ञ है, किन्तु आप दुनिया की कोई भी भाषा किसी भी लहजे में बोलें बिना एक सेकिण्ड का अन्तर किये हुए वही शब्द उसी लहजे में आपके साथ बोलते चले जायेंगे। होठों की फड़कन देखकर भी कोई यह अनुमान नहीं लगा सकता कि यह व्यक्ति क्या बोलेगा, फिर यदि उस भाषा का ज्ञान न हो जिसमें वक्ता बोले तब तो वह क्या कहेगा, इसका बिल्कुल भी अनुमान नहीं लगाया जा सकता पर

आप चाहे पीठ फेरकर खड़े हो जायें या बीच में पर्दा लगाकर, फ्रैंक रेन्स आपके साथ ही उन शब्दों को दोहराते हुए (कौन्सीडेन्स) चले जायेंगे। देखने में ऐसा लगेगा जैसा एक ही ग्रामोफोन से दो लाउडस्पीकों का सम्बन्ध हो। टेलीविजन के कुछ कार्यक्रमों में वक्ता बोलने के साथ गाने भी लगे तो श्री फ्रैंक रेन्स ने उसी तान और स्वर में गा भी दिया। एक बार विख्यात हास्य अभिनेता जेरी ल्यूविस ने एक कार्यक्रम संचालित किया, उसमें लोलो ब्रिगिडा ने भी भाग लिया। उक्त महिला कई भाषाएँ बोल सकती थी। फ्रैंक रेन्स उन सब भाषाओं को दोहराते गये। लोलो ब्रिगिडा ने कुछ बनावटी शब्द जिनका न तो कुछ अर्थ हो न किसी भाषा के हों बोलना प्रारम्भ किया तो लोग आश्चर्यचकित रह गये कि फ्रैंक रेन्स वह शब्द भी उसी तरह स्वर मिलाकर बोलता-चला जा रहा है।

दूसरा अमुक शब्द बोलेगा इसकी इन्द्रियातीत जानकारी फ्रैंक रेन्स को क्यों हो जाती है? भाषा न जानने पर भी वह अनजाने शब्द किस तरह बोल लेता है? यह दो विलक्षण आश्चर्य हैं, जिनकी व्याख्या करने में डाक्टर, वैज्ञानिक और अनेक विशेषज्ञ भी असफल रहे हैं। फ्रैंक रेन्स कहते हैं मैं स्वयं भी नहीं जानता कि इस विलक्षण शक्ति का स्रोत क्या है पर यह भारतीय तत्ववेत्ताओं और सिद्ध पुरुषों के लिये बहुत छोटी-सी बात है। मन की एक धारा का विकास ही इस सामर्थ्य का आधार है और कुछ हो या न हो पर इससे इतना तो सिद्ध हो ही जाता है कि मन में कोई ऐसी अज्ञात शक्ति है अवश्य, जो दूसरों के मन में जो कुछ है और जो कुछ नहीं भी है, वह सब जान सकती है।

मन में ऐसी-ऐसी असंख्य सामर्थ्यों का भण्डार छुपा हुआ है। मन जीवन है, मन ही सब सिद्धियों का साधन है, मन ही भगवान है, मन का पूर्ण विकास ही एक दिन मनुष्य को अनन्त सिद्धियों, सामर्थ्यों का स्वामी बना देता है पर इसके लिये गहन संयम, साधना और तपश्चर्या के बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता।

ऊर्ध्वगामी मन की सामर्थ्य

मैस्मेरेजम के आविष्कर्ता डॉ. मैस्मर ने लिखा है “मन को यदि संसार के पदार्थों और तुच्छ इन्द्रिय भोगों से उठाकर ऊर्ध्वगामी बनाया जा सके तो वह ऐसी विलक्षण शक्ति और सामर्थ्यों से परिपूर्ण हो सकता है, जो साधारण लोगों के लिये चमत्कार सी जान पड़े। मन आकाश (स्पेस) में भ्रमण कर सकता है और उन

घटनाओं को ग्रहण करने में समर्थ हो सकता है, जिन्हें हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ ग्रहण न कर सकें और हमारा तर्क जिन्हें व्यक्त करने में असमर्थ हो।”

अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. जे. बी. राइन ने भी उक्त तथ्य की बाद में विस्तृत खोज की और पाया कि विचार चिन्तन और किसी भी अभ्यास द्वारा यदि मन को विचारणाओं के सामान्य धरातल से ऊपर उठाकर आकाश में घुमाया जा सके तो वह भूत और भविष्य की अनेक घटनाओं को बेतार के तार के सन्देश की तरह प्राप्त कर सकता है। ‘न्यू फ्रान्चियर्स ऑफ माइन्ड’ नामक पुस्तक में उन्होंने ऐसी अनेक घटनाओं का विवरण भी दिया है, जो उक्त कथन की सत्यता प्रतिपादित करती हैं।

‘अनुभव से अभ्यास तक’ (फ्रॉम एक्सपीरियन्स टू एक्सपेरिमेन्ट्स) नामक प्रथम अध्याय में पश्चिमी राज्य के एक बैंकर का महत्वपूर्ण प्रसंग उन्होंने इस प्रकार दिया है—

बैंकर एक अध्ययनशील धार्मिक मनोवृत्ति का व्यक्ति था। ईश्वर चिन्तन के लिये वह प्रतिदिन कुछ समय निकालता। एक दिन शाम आठ बजे उसे एकाएक ऐसा लगा कि ‘विला कैथर्स’ की पुस्तक ‘डेथ कम्स फार दि आर्क विशप’ पढ़नी चाहिये। इसके प्रसंग पाठक की अन्तर्वेदना का स्पर्श करते हैं। यह उपन्यास बैंकर पहले भी पढ़ चुका था। फिर अकारण वही पुस्तक दुबारा पढ़ने का मन क्यों हुआ यह उसकी समझ में नहीं आया। तो भी उसने पुस्तक निकाली और उसे पढ़ने में तल्लीन हो गया।

आर्क विशप की मृत्यु का विवरण इस उपन्यास में बहुत ही कर्तुणिक है। उसे पढ़ते-पढ़ते बैंकर का हृदय आर्द्र होता गया। आँखों में आँसू झरने लगे। संवेदना के एकाकार में भगवान जाने क्या विज्ञान है, मनुष्य दूसरे के दुःख को अपना दुःख जैसा समझने लगता है। आत्म-चेतना के विकास की भारतीय आध्यात्मिक और योग प्रणाली लगता है उसी का विकसित रूप है, जब व्यक्ति व्यक्ति न रहकर अपने को समष्टिगत अनुभव करने लगता है।

बैंकर जी भर कर रो लिया, तब जी हल्का हुआ। तभी एकाएक उसे ध्यान आया, एक बार जब उसकी माँ की मृत्यु हुई थी तब यह उपन्यास पढ़ा था और इसी प्रकार रोया था, कहीं ऐसा तो नहीं यह अकारण वेदना पिता की मृत्यु का सन्देश या अनुभूति हो। आशंका विश्वास में बदलती गई। रात भर वह इसी चिन्ता में डूबा रहा।

प्रातः बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स की मीटिंग थी। बैंकर ने उस मीटिंग को अपना शाम का अनुभव सुनाया। डाइरेक्टरों ने सत्य जानने की जिज्ञासा से वहीं पत्र लिखाया। उसका उत्तर चौथे-पाँचवें दिन आया तो सभी आश्चर्यचकित थे कि ठीक उसी दिन उसी समय सवा आठ बजे सचमुच उसके पिता की मृत्यु हो गई थी।

हमारे यहाँ जप और ऊर्ध्वगामी चिन्तन का उद्देश्य वैज्ञानिक मन को विकसित करना ही रहा है। उसके द्वारा अनेक अज्ञात बातें साधक को सिनेमा के पर्दे की भाँति मालूम हो जाती हैं। पर उस विज्ञान को आज लोग भूलते जा रहे हैं। जप से हमारे भीतर भरा आकाश तत्व शुद्ध होता है और ऐसी अनेक अनुभूतियों का द्वार खुलता है, जिसका संकेत डा. मैस्मर ने किया और इस घटना द्वारा पुष्टि डा. राइन ने की।

बड़ा विलक्षण-अद्भुत है, मानवी मन

यदा-कदा व्यक्ति को ऐसी सद्प्रेरणाएँ मिल जाती हैं, जिनसे उसका कोई बड़ा नुकसान टल जाता है, प्रियजन अथवा स्वयं उसकी आत्मरक्षा हो जाती है। इसे वह बड़ा चमत्कार मानने लगता है और तरह-तरह की संज्ञा-संबोधन इसे देने लगता है। कभी भगवान की अहैतुकी कृपा मान बैठता है पर इस बात को भुला देता है कि जिसे वह अचम्भा मान बैठा है वस्तुतः इसमें वैसा कुछ है नहीं। परिष्कृत अन्तःकरण ही वह कारण है, जिसकी उपलब्धि बन पड़ने पर ऐसी घटनाएँ घटने लगती हैं, किन्तु तनिक उच्च भाव-भूमि की उपलब्धि हो जाने पर यह घटनाएँ सामान्य जीवनक्रम का अभिन्न अंग बन जाती हैं और फिर व्यक्ति अनवरत् रूप से ऐसी सूक्ष्म तरंगों से संबंध स्थापित बनाये रह सकता है।

आये दिन ऐसी घटनाएँ घटित होती ही रहती हैं। एक घटना साउथ गेट, कैलिफोर्निया की है। वहाँ के एक सज्जन समाजसेवी श्री आर. एल. बेनेडिक्ट अपनी एक सहयोगिनी श्रीमती एम. बी. जीन के साथ फिलाडेल्फिया के लिए अपनी कार में यात्रा कर रहे थे। कुछ खराबी के कारण एक स्थान पर कार खड़ी करनी पड़ी। कार पार्किंग के लिए वहाँ विशाल क्षेत्र था। श्रीमती जीन कार खड़ी कर रही थीं तभी अचानक श्री बेनेडिक्ट के अन्तःकरण में एक प्रवाह आया और वह स्वाभाविक रूप से कहने लगे “कृपया यहाँ गाड़ी खड़ी न करें कुछ अनर्थ हो जायेगा।” जीन उस पर विश्वास करती थीं, उन्होंने स्थान बदल दिया। सभी उतरकर आवश्यक वस्तुएँ खरीदने लगे इसमें काफी समय लग गया जब वे लोग वापस लौटे तो दृश्य देखकर आश्चर्य का ठिकाना न

रहा। जिस स्थान पर कार खड़ी करने के लिए मना किया गया था उसे स्थान पर खड़ी दूसरी कार बिल्डिंग गिरने से चक्काचूर हो गई। सभी बाल-बाल बच गये। यह दैवी प्रेरणा का ही मार्गदर्शन था।

दूसरी घटना का उल्लेख करते हुए श्री आर. एल. बेनेडिक्ट बताते हैं कि “हम सभी परिवार के सदस्यगण यात्रा कर रहे थे और एक ऊँचे पहाड़ी एवं घनघोर जंगल से गुजर रहे थे। मेरा छोटा लड़का कार चला रहा था। अनायास ही मैं अनुभव करने लगा कि कुछ दुर्घटना होने वाली है मैं जोरों से चिल्लाया” मिक्, तुरन्त गति कम करो, ऐसा न करने पर कोई बड़ी दुर्घटना होने वाली है, इसके कारणों की व्याख्या करने के लिए समय नहीं है।” तुरन्त ही मिक् ने आज्ञा का पालन किया और गति कम की। दूसरे मोड़ पर तीस फीट सामने हिरणों का झुण्ड गुजर रहा था। यदि गति कम नहीं की जाती तो सुनिश्चित रूप से दुर्घटना घटती। ब्रेक लगाने पर कुछ इन्च ही दूरी पर अपनी गाड़ी रुक गई और बड़ी दुर्घटना टल गई।” ऐसे ही अनेकों विधेयात्मक निर्देश प्रत्येक मनुष्य को कोई महत्वपूर्ण कार्य करने से पहले प्राप्त होते हैं, किन्तु जो अपने स्वच्छ अन्तःकरण के पट को खोले रहते हैं ऐसे निश्छल हृदयों को इसका लाभ मिलता रहता है, कषाय-कल्मष एवं लोभ-मोह, अहंकार जैसी वृत्तियाँ स्फुरणा के उन रास्तों को बन्द कर देती हैं, जहाँ से दिशा निर्देश का प्रवाह फूटता है।”

मनुष्य के मस्तिष्क क्षेत्र में इतनी क्षमता है कि वह अपने मित्र ‘परिजन’ सम्बन्धी अथवा वैचारिक साम्यता वाले लोगों तक अपनी सूक्ष्म संवेदना का अंश भेज सकता है, जिससे उन्हें मार्गदर्शन मिले एवं गलत कदम न उठाकर परिस्थितियों से लड़ने की शक्ति प्राप्त करें। इसी आधार पर ऋषि, मनीषी अपने परिकर में जुड़े लोगों को वैचारिक दबाव देकर सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते थे। यही है विचार सम्प्रेषण पूर्वाभास, अब पूर्णतः विज्ञान-सम्मत माना जाता है। एरलिंगटन टेक्सेस की श्रीमती बी. एन. केन्योन अपने जीवन में घटी घटनाओं से इसकी पुष्टि करती हैं। वे लिखती हैं मेरे पति वैचारिक तनाव से गुजर रहे थे। उन्हें महत्वपूर्ण कार्य के लिए बैंक से लोन लेना पड़ा, जिसको समय पर पूरा करने के लिए उनके बड़े भाई ने आश्वासन दिया किन्तु समय पर पूरा न होने के कारण बैंक मैनेजर दबाव देने लगे। परिस्थिति इतनी बिगड़ गई कि मेरे पति को कुछ सूझ ही नहीं पड़ता था। वे रात्रि में देर तक काम करते रहे और फिर कमरे से बाहर चले गये किन्तु उनका यह व्यवहार मुझे विचित्र नहीं लगा, क्योंकि वे प्रायः ऐसा किया करते थे। रात्रि में टहलने के लिए पास के पार्क में चले जाया

करते थे किन्तु उस रात जब पुत्र सो गया मुझे ऐसा लगने लगा कि कुछ अनर्थ होने वाला है। मैं उठ बैठी और जोर से कहने लगी 'देवी कृपया ऐसा मत करो।' अचानक उठने वाले ये भाव अत्यन्त गहराते चले गये और अपना विचार प्रवाह उन तक पहुँचाने की मन:स्थिति बनाकर कहने लगी देवी! जल्दी घर आओ, हमें इस तरह छोड़कर न जाओ। अपने बच्चों के बारे में सोचो, ऐसा मत करो। मुझे आपकी आवश्यकता है, जल्दी आओ। मैं ऐसा अनुभव करने लगी कि उन्हें बुला रही हूँ। इतने में दरवाजा खुला और उनके आते ही मैं बोल पड़ी। 'कृपया वादा कीजिए ऐसा कभी नहीं करने के लिए सोचेंगे।' उन्हें आश्चर्य हुआ पूछा 'तुम कैसे जानती हो, तुम्हें कैसे मालूम कि यहाँ से दूर में क्या योजना बना रहा था।' 'मैंने उनसे कहा कि मैं नहीं जानती कि मुझे कैसे भान हुआ पर कुछ अनिष्ट होने वाला है। इसकी स्पष्ट अनुभूति हो रही थी।' उन्होंने बताया कि उनके टेबिल की दराज में पिस्तौल थी और वे योजना बना रहे थे कि इससे आत्म-हत्या की जाय किन्तु अचानक एक तीव्र प्रवाह आया और ऐसा लगा मानो कोई उन्हें खींच रहा है। इस तीव्रता से कि रुकते ही नहीं बना और वे घर की ओर चल पड़े।

इन घटनाओं से सुस्पष्ट है कि मनुष्य चाहे तो दूसरों तक अपना विचार प्रवाह सम्प्रेषित कर उसे आवश्यक मार्गदर्शन दे सकता है एवं स्वयं मौका पड़ने पर इस तरह की विचार तरंगें ग्रहण कर सकता है। यह क्षमता हर व्यक्ति में सन्निहित है पर भाव-संस्थान अनगढ़ होने के कारण यदा-कदा ही संयोग अथवा भाग्यवश अपनी इस क्षमता का व्यक्ति लाभ उठा पाता है। यदि वह अपनी भावनाओं को तनिक उच्चस्तरीय बना ले तो फिर अनायास ही उसे इस प्रकार के सूक्ष्म मार्गदर्शन एवं प्रेरणाएँ मिलते रह सकते हैं जिससे आड़े समय में वह इससे लाभ उठा सके। इतना बन पड़ने पर वह न सिर्फ दूरस्थ व्यक्ति से ही सम्पर्क साधने में समर्थ हो सकेगा वरन् आस-पास उमड़ते-धुमड़ते उन समस्त श्रेष्ठ विचार प्रवाह के अतिरिक्त ब्रह्मी चेतना से भी तादात्म्य स्थापित करने में सफल हो सकेगा, जो उसके आत्मिक विकास में सहायक हो सके।

मन में निहित विलक्षण अतीन्द्रिय सामर्थ्य

मानव शरीर दिव्य शक्तियों का भाण्डागार है। योग साधनाओं के द्वारा इन्हें जाग्रत करके मनुष्य त्रिकालज्ञ बन जाता है और भूत, वर्तमान एवं भविष्य की सब बातें जान लेता है। उसके लिए देश, काल और समय की

दूरी समाप्त हो जाती है। भारतीय दर्शन के अनुसार तत्कालीन सभी ऋषि-मुनि इस स्तर को प्राप्त थे।

मानव सुषुम्ना में स्थित कुण्डलिनी षट्चक्र, ग्रन्थियाँ एवं उपग्रन्थियाँ रूपी विभूतियों का भण्डार है। अनेक जन्मों के जमे कषाय-कल्मषों को योग उपासना के माध्यम से मिटाने पर ये प्रज्वलित अग्नि की तरह दिव्य प्रकार एवं ज्ञान से चमक जाते हैं और सारे ज्ञान का रहस्य व्यक्त कर देते हैं। तप, संयम एवं सादगी से कोई साधारण-सा मनुष्य भी ऐसा कर सकता है। आधुनिक जगत में भी अनेक लोगों ने यह सफलता पाई है।

गेरार्ड क्राइसे को यह अतीन्द्रिय शक्ति बाल्यकाल से ही मिली थी। संभवतः यह उसके पूर्व जन्मों के सत्कर्मी एवं उपासना का परिणाम था जो बिना प्रयास के उसे इस जन्म में मिली। परामनोविज्ञानी होनहॉफ ने गेरार्ड की अतीन्द्रिय शक्ति की परीक्षा ली, जिसमें वह सफल पाया गया। सिनेमा हाल के एक निश्चित नम्बर की सीट पर पाँच दिनों तक बैठने वाले व्यक्तियों का नाम एवं हुलिए को सीट को स्पर्श करके गेरार्ड ने बता दिया। इस छोटी-सी परीक्षा के बाद वह अधिक लोकप्रिय हो गया और सर्वत्र उसकी चर्चा होने लगी।

हालैण्ड की पुलिस ने गेरार्ड की अतीन्द्रिय शक्ति से अनेक क्लिष्ट अपराधियों का पता लगाया। २३ मई, १९५० को एक नवयुवती के हत्यारे का पता गेरार्ड की अतीन्द्रिय शक्ति के द्वारा लगाया गया। उन्होंने नवयुवती के कपड़ों को स्पर्श करके सब बातें बता दीं, जिससे अपराधी पकड़ा गया। एक अमरीकी महिला ने अपनी चप्पलें दूसरे व्यक्ति के द्वारा गेरार्ड के पास भेजीं और उसके पहनने वाले का परिचय पूछा। चप्पल को स्पर्श करके उन्होंने उस युवती का नाम, पता एवं हुलिया बता दिया। एक जर्मन सेनाधिकारी के कंकाल को छूकर उन्होंने एक दिन बताया कि यह अधिकारी जर्मन सेना का है, उसके गर्दन पर घातक हमला करके एक व्यक्ति ने उसकी हत्या की थी क्योंकि उसने उसकी बेटी के साथ पाशविक बलात्कार किया था।

फ्रांस के प्रतिष्ठित वैज्ञानिक काउन्ट एगनर डि गैस्पैरिन ने 'सुपर नेचुरल' कहे जाने वाले विलक्षण प्रदर्शनों एवं परीक्षणों का संकलन किया है। उन्होंने सत्य एवं प्रमाणित अनेक घटनाओं का इसमें वर्णन दिया है। रूस के मूर्धन्य वैज्ञानिकों ने भी सुपर नेचुरल घटनाओं का संकलन किया है। अमेरिका के शोधकर्ता डा. विलियम ए. मैकगेरे अपने अनेक सहयोगियों के साथ १९७० में रूस में साइकिक रिसर्च हेतु आए। वहाँ उन्होंने परीक्षण में यह सत्य पाया कि श्रीमती सार्जेन्ट

नेल्या मिरबाहलोवा की दृष्टि में बेधक-क्षमता है। इसे टेलीकाम ने 'सीस' नाम दिया गया है।

रेडियोमीटर के निर्माता मूर्धन्य वैज्ञानिक सर विलियम क्रुक्स ने डेनियल डगलस होम की संकल्प शक्ति की परीक्षा ली। उनहोंने पाया कि डगलस अपनी संकल्प शक्ति से भारी-भरकम मेज को अपने स्थान से हटाने एवं उछल-कूद कराने में पूर्ण सफल रहे। इसमें किसी तरह का छल-कपट या जादूगरी उन्होने नहीं पायी। १९७२ में क्रुक्स ने होम के ५२ प्रदर्शनों को वैज्ञानिक कसौटी पर कसने के बाद घोषणा की कि डगलस होम में विलक्षण संकल्प-शक्ति कार्य करती है, जिसका पता नहीं लगाया जा सकता। जाली के कटघरे में रखे खाद्य यंत्रों को स्पर्श किए बिना मात्र दृष्टि डालने से होम ने अनेक स्वर, लय एवं मधुर ध्वनियाँ निकालीं। जिनेवा के प्रोफेसर यूरी ने भी 'मैटर ओवर दि माइन्ड' विषय पर अत्यधिक अनुसंधान एवं शोध परीक्षण किया है। उन्होने भी अतीन्द्रिय शक्ति की विलक्षण सामर्थ्य को अनेक परीक्षणों में सत्य पाया है। वस्तुतः इस चिरन्तन सत्य को स्वीकार करने हेतु अब क्रमशः सभी बाध्य हो रहे हैं।

मनोनिग्रह और आत्मिक उत्कर्ष

मानसिक एकाग्रता के सुनियोजित अभ्यास से हर व्यक्ति अपने अन्दर छिपी उन विभूतियों को जगा सकता है, जिन्हें अतीन्द्रिय कहा जाता है। लोग जिन्हें चमत्कार समझते हैं वे वस्तुतः शारीरिक योगाभ्यास की अनेकों परिणतियों का एक छोटा-सा भाग भर है। इसमें ऐसा कुछ नहीं है जो असम्भव माना जा सके।

मैरीक्रेग किमब्रो अमेरिका की एक जानी-पहचानी अतीन्द्रिय क्षमता-सम्पन्न महिला रही है। उनके पति अगट्टान सिनक्लेयर भी इस विषय पर एक जाने-माने लेखक के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। दोनों पति-पत्नी ने मिलकर दूरानुभूति (टेलीपैथी) सम्बन्धी अनेकों प्रयोग-परीक्षण कर उन्हें सही पाया है। अपने लम्बे अनुभव के उपरान्त उन्होने पाया है कि मन की क्षमता अपार है। यदि थोड़ा भी इसे साध दिया जाय तो इससे अनेकों करतब दिखाए जा सकते हैं जो सामान्य व्यक्तियों की दृष्टि में चमत्कार होते हैं। वस्तुतः ऐसी बात है नहीं। ये मानसिक चेतना की परिधि में आने वाली क्षमताओं का विस्तार भर है।

एक प्रयोग में मैरीक्रेग को एक बन्द लिफाफा दिया गया और उसके अन्दर बन्द तस्वीर के बारे में पूछा गया। क्रेग ने थोड़ी देर तक उसे अपने शरीर से चिपकाये रखा, ध्यानावस्था में चली गयी। १५ मिनट

पश्चात् उसने कागज पर घोंसले की एक तस्वीर बनायी। इसके बाद लिफाफा खोला गया। उसके अन्दर भी पक्षी के घोंसले का चित्र बना हुआ था।

दक्षिणी कैलिफोर्निया में एक अन्य विदेशी युवक 'जान' रहता था, जो घूम-घूमकर ऐसे ही विलक्षण मानसिक करतब दिखाता था। जब वह गहरे ध्यान की स्थिति में जाता तो उसका सम्पूर्ण शरीर कठोर व ठण्डा हो जाता था। ऐसी स्थिति में उसके सिर को एक कुर्सी पर तथा टांग के अन्तिम सिरे को दूसरी कुर्सी में रखकर कोई उसके ऊपर खड़ा हो जाय, तो उसे कुछ पता नहीं चलता था। अनेक अवसरों पर समाधि की स्थिति में जान के पेट पर भारी-भरकम चट्टान रखकर वजनी हथौड़े के प्रहार से तोड़ा जाता पर इसका भी उसकी समाधि पर कोई प्रभाव पड़ता नहीं देखा गया, न ही उसे कोई तकलीफ अनुभव होती। इतना ही नहीं इस स्थिति में वह वायुरुद्ध ताबूत में बन्द होकर अनेक घण्टों तक जमीन के अन्दर पड़ा रह सकता था।

'जान' के इन प्रदर्शनों में किसी प्रकार की धोखाधड़ी अथवा छल-कपट की कोई गुंजायश नहीं थी, क्योंकि सारी नुमाइशें योग्य वैज्ञानिकों व मूर्धन्य शरीर-शास्त्रियों के तत्वावधान में सम्पन्न होतीं, प्रदर्शन किसी कमरे में न होकर इसके लिए किसी पार्क अथवा खुले मैदान का चयन किया जाता, ताकि प्रदर्शक के लिए हाथ की सफाई का कोई अवसर ही न रह जाय।

इसी प्रकार का एक कौशल जान ने अपट्टान सिनक्लेयर के घर पर अनेक वैज्ञानिकों एवं डाक्टरों की उपस्थिति में दिखाया था। वह एक बेंच पर लेट गया। कोई हाथ की सफाई प्रस्तुत न करे इसलिए जान के हाथ-पैरों को सिनक्लेयर के कुछ मित्र दृढ़ता से पकड़े हुए थे। उसने आँखें बन्द कीं और थोड़ी देर पश्चात् सामने पड़ी ३४ पौण्ड वजनी मेज हवा में धीरे-धीरे ऊपर उठने लगी। शनैः-शनैः वह चार फुट ऊपर उठकर अघर में लटक गयी फिर मन्थर गति से हवा में वह तैरने लगी और दर्शकों के सिर के ऊपर करीब आठ फुट की दूरी तय की।

इसके अतिरिक्त जान में टेलीपैथी और फेस रीडिंग की अद्भुत क्षमता विद्यमान थी। इस प्रदर्शन के दौरान वह कमरे से बाहर आ जाता और उपस्थित लोगों में से किसी एक से कमरे की कोई वस्तु मानसिक रूप से चुन लेने व उसे स्वयं तक सीमित एवं अप्रकट रखने को कहता। इसके बाद वह कमरे में प्रवेश कर उक्त व्यक्ति को अपने पीछे खड़ा होने तथा उस वस्तु पर विचार करते हुए पीछे-पीछे आने का निर्देश देता। कुछ देर तक

वह कमरे का चक्कर लगाता रहता, फिर कमरे से उस वस्तु को उठाकर दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत कर देता, जिसका उस व्यक्ति ने मानसिक रूप से चयन किया था।

जॉन जब अपट्टान के घर से चला गया, तो क्रेग एक दिन ध्यान करने को बैठी। उसने अपने अचेतन मन से कहा, कि इस वक्त जॉन कहाँ है और क्या कर रहा है ? इसकी सूचना उसे दे। थोड़ी देर पश्चात् श्यान में क्रेग को जॉन सड़क पर गुलदस्ता लेते हुए कहीं जाता दिखाई पड़ा। बाद में जॉन को टेलीफोन कर क्रेग ने तथ्य का पता लगाया। उसने बताया कि सचमुच उस समय वह लॉस एन्जिल्स की सड़कों पर गुलदस्ता लिए अपने एक मित्र को भेंट करने जा रहा था। इसके बाद क्रेग ने जॉन पर इस प्रकार के ढेर सारे प्रयोग किये।

एक ऐसे ही प्रदर्शन में कुछ लोगों ने सैकेण्ड की जानकारी रखने के लिए स्टॉप वॉच रख रखी थी। जितने समय में जान ने समाधि से उठ बैठने का वचन दे रखा था, बिल्कुल उतने ही समय में समाधि तोड़ी एक सैकेण्ड का भी आगे-पीछे नहीं हुआ।

मनोनिग्रह के दो रूप हैं। एक उथला—जिसमें मन की अनावश्यक दौड़ धूप की उच्छ्वलता को रोका, निर्धारित उपयोगी क्रिया-कलाप में केन्द्रित किया जाता है। यह विशुद्ध भौतिक है। हाथ, पैर आँख कान को प्रयोजन विशेष में लगाये रहने के समान।

इससे भी कई उपयोगी कार्य सम्पन्न होते हैं। गणितज्ञों, साहित्यकारों, वैज्ञानिकों, मदारियों, बाजीगरों, बन्दूक का निशाना लगाने वालों में इस विशेषता के कारण ही प्रवीणता पाई जाती है। सृजन प्रयोजनों में, अध्ययन में यह एकाग्रता आवश्यक होती है और पहलवान, सरकस के नट नायक प्रायः इसी कला में अभ्यस्त होते हैं। रस्सी पर चलना, खेल दिखाना इसी प्रवीणता का प्रतिफल है।

व्यावहारिक मन की ही तरह अचेतन मन भी मस्तिष्क के ही एक के एक स्तर विशेष हैं। उसका नियमन अभ्यास करने से वे क्षमताएँ जागृत होती हैं जिन्हें अतीन्द्रिय क्षमताएँ कहते हैं। इसके द्वारा सम्पन्न होने वाले कार्य भी भी मन में सन्निहित सूक्ष्म इन्द्रिय शक्ति से ही सम्पन्न होते हैं। आँखों से एक सीमित दूरी तक ही देखा जा सकता है। कानों से अमुक स्तर की आवाजें सुनी जा सकती हैं पर उनके साथ यदि निग्रह मन का संयोग बन पड़े तो दूर के दृश्यों को देख सकना और दूरवर्ती वार्तालाप को सुन सकना सम्भव हो सकता है। इसी प्रकार से एक इन्द्रिय का काम दूसरी इन्द्रिय से भी लिया जा सकता है। आँखों का काम नाक, कान या अँगुलियों से

भी लिया जा सकता है। एक इन्द्रिय के न होने पर उस कार्य को अचेतन मस्तिष्क शरीर में किसी भी संवेदनशील अंग से पूरा करा सकता है। इस अभ्यास से प्राण शक्ति जासूसी कुत्तों जैसी भी हो सकती है। इसके सहारे किसी खोये या अविज्ञात व्यक्ति को ढूँढ़ा या पकड़ बुलाया जा सकता है। अन्य जीव जन्तुओं में कई प्रकार की विलक्षणताएँ देखी जाती हैं। मकड़ी, बिल्ली आदि में मौसम ढलने या किसी दुर्घटना के घटित होने की पूर्वाभास क्षमता पाई जाती है। इस स्तर की विशेषताओं के लिए भौतिक मन का केन्द्रीकरण एक ज्ञानविधि का अभ्यास ही पर्याप्त है। मैस्मेज्म, हिनोटिज्म जैसे खेल सामान्य स्तर के लोग भी विकसित कर लेते हैं। कइयों में ये बिना किसी अभ्यास के जन्मजात रूप में भी पाई जाती हैं। पैरासाइकोलाजी—परामनोविज्ञान के आधार पर ऐसी ही क्षमता-सम्पन्न मनुष्यों की खोज-बीन की जा रही है। जिससे जाना जा सके कि किनमें अनायास ही यह विभूतियाँ प्रकट हुईं और किनने इसके लिए कुछ साधन या अभ्यास किया। इस सन्दर्भ में मस्तिष्क को और भी तीव्रशामी परिवर्तित स्थिति का बनाने के लिए कतिपय विश्व-विद्यालयों द्वारा शोध प्रयास चल रहे हैं। इनमें सफलता भी मिल रही है। पर यह समझा जाना चाहिए कि यह समस्त घटनाक्रम मानसिक चतुर्य तक ही सीमित हैं। मनुष्य के कण-कण में विलक्षणताएँ भरी पड़ी हैं। एक शुक्राणु अपने जैसा एक नया मनुष्य गढ़ सकता है। इसे क्षमता के अन्तर्गत ही समझा जाना चाहिए। मस्तिष्क शरीर का ही एक अंग है।

कितने ही व्यक्ति कई प्रकार के आश्चर्यजनक शारीरिक पराक्रम दिखाते हैं। खेल प्रतियोगिताओं में ऐसा बहुत कुछ देखने को मिलता है। कई व्यक्ति अनौखेपन के कई कीर्तिमान स्थापित करते हैं। यह शारीरिक पुष्टाई का प्रमाण है। इसी प्रकार मन भी शरीर का ही एक अंग-अवयव है। वह भी ग्यारहवीं इन्द्रिय है। उसके चमत्कारों को भी भौतिक विशेषताओं की परिधि में लाना पड़ेगा। बहुत से छोटी आयु के बच्चे, संगीत बजाते और प्रवचन रट लेते हैं यह उनकी बौद्धिक प्रवीणता है। इन्हें आश्चर्यजनक मानते हुए भी शारीरिक या मानसिकता की नैतिक दासता ही कहा जायगा।

आध्यात्मिक उत्कर्ष इससे आगे का चरण है। उसमें चित्त का नहीं, चित्त-वृत्तियों का निरोध करना पड़ता है। चित्त वृत्तियाँ अर्थात् दुष्प्रवृत्तियाँ संयम से लेकर योगाभ्यास तक यही विषय प्रधानता पाता रहा है। इस स्थिति से उबरने पर ही मनचाही आध्यात्मिक साधना बन पड़ती है। जिसमें वासना के लिए ही नहीं, तृष्णा के लिए भी कहीं कोई गुंजाइश नहीं है। फिर अहन्ता की गहवाही लूटने

की, दूसरों पर छाप छोड़ने, किसी को नीचा दिखाने की गुंजाइश कैसे हो सकती है। माँसाहार, मद्यपान जैसे आत्मा पर कषाय-कल्मष चढ़ाने वाले व्यवहारों की भी गुंजाइश नहीं है। ऐसे लोगों को आध्यात्मिक वातावरण में ही रहना पड़ता है। उन्हें मदारी, नट, बाजीगर एवं अविश्वासी तार्किकों के बीच में निर्वाह कर सकना कठिन होता है।

जादूगरी प्रत्यक्षतया हाथ की सफाई या छल है। भले जादूगर इस बात को प्रकट भी कर देते हैं कि यदि उनके पास सिद्धियाँ रही होतीं तो तमाशा दिखने का व्यवसाय क्यों अपनाते। अध्यात्मवेत्ता छल क्यों करेगा और किसलिए आत्म-प्रवचना अपनाकर धूर्तों की बिरादरी में सम्मिलित होगा ?

आध्यात्मिक सिद्धियाँ वे हैं जिनमें वे उच्चस्तरीय व्यक्ति किसी को अपना संचित विभूतियों का एक अंश देकर उसे अपनी बिरादरी में घसीट ले जाता है। ऊँचा उठाता और आगे बढ़ाता है। दोष-दुर्गुणों से छुड़ाता और कष्टों पर बिठाकर गहरी नदी में तैरते हुए अपने प्रियजनों को पार लगाता है।

मणि-मुक्तकों से भरा चेतन शक्ति का

भाण्डागर-मानव मन

सामर्थ्य का असीम भण्डार हमारे चारों ओर बिखरा पड़ा है। जड़ परमाणु का लघुतम घटक परमाणु अपने में कितनी प्रचण्ड ऊर्जा छिपाये हुए है, इसका परिचय उसके विस्फोट का लेखा-जोखा लेने पर किसी महादैत्य जैसा लगता है। परमाणु में छिपे बैठे न्यूट्रॉन, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन एवं उसमें भी समाये न्यूट्रिनो जैसे सूक्ष्मतम कण कितने सामर्थ्यवान होंगे, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। एक इंच की परिधि में ऐसे अरबों-खरबों महादैत्य सटे बैठे होते हैं। समूचे भूमण्डल पर वे कितने होंगे और उन सबकी संयुक्त शक्ति कितनी प्रचण्ड होगी, इसका अनुमान लगाना मानवी मस्तिष्क के लिये सम्भव नहीं।

चेतना का संसार और भी अद्भुत है। जीवकोष, बीजकोष अपने में एक अनौखा लीला-जगत सँजोये बैठे हैं। उनकी सामर्थ्य काया को गतिशील रहने में तनिक सा सहयोग करते जितनी ही अनुभव में आती है, पर यदि उनकी निजी सत्ता और विस्तार क्षमता का परिचय किया जाय तो प्रतीत होता है कि सुई की नोक पर सहस्रों की संख्या में बैठ सकने जैसे छोटे आकार के इन चेतना घटकों में से प्रत्येक की दुनिया कितनी अद्भुत, रहस्यमय एवं रोमांचकारी है। फिर एक शरीर में कितनी बीजकोष व जीवकोष होते हैं, कोटि-कोटि मानवों में वे कितने

होंगे ? सृष्टि में मनुष्यों के अतिरिक्त प्राणियों की जातियों और उनमें से प्रत्येक की संख्या की गणना नहीं हो सकती। अगणित जीवकोषों से भरे इस जीव-जगत की विशेषताओं को देखते हुए उसे देवोपम मानने में कोई अत्युक्ति नहीं। तैतीस कोटि देवताओं के प्रतिपादन को कभी असंगत माना जाता था पर अब तथ्यों के प्रकाश में आने पर जब प्रत्येक घटक-बीजकोष मान्यता प्राप्त देवताओं से भी अधिक विभूति सम्पन्न सिद्ध हो रहा है तो उन्हें असीम, अनन्त, अचिन्त्य, कल्पनातीत ही कहा जा सकता है।

जड़-जगत के परमाणुओं को महादैत्य और चेतन जगत के जीवकोषों को महादेव कहा जा सकता है। उनके बीच जो सहयोग चल रहा है उसे समुद्र मन्थन की उपमा दी जा सकती है। साथ ही अदृश्य क्षेत्र में उनकी जो विग्रह प्रक्रिया चल रही है, उसे अनादि काल से अनन्त काल तक चलने वाले देवासुर संग्राम के समतुल्य ठहराया जा सकता है। इस संयोग-वियोग की पेण्डुलम क्षमता जितनी प्रकार की जिस-जिस स्तर की शक्ति सामर्थ्य उपजाती-बखेरती है उसका तनिक-सा आभास मिलने पर हतप्रभ होना पड़ता है और उसे 'अणोरणीयान महतो महीयान्' से रोमांचित होकर उसी प्रकार नेत्र बन्द करके नमन करना पड़ता है जैसा कि विराट् दर्शन से भयाक्रान्त हुए अर्जुन को करना पड़ा था।

जड़-जगत से चेतन और चेतन से जड़-जगत की शक्ति सत्ता की तुलना नहीं हो सकती। दोनों ही अपने आप में परिपूर्ण एवं महान हैं। इस विश्व-ब्रह्माण्ड में पराप्रकृति और परब्रह्म की आँख-मिचौनी जितनी सुन्दर लगती है उतनी ही हतप्रभ कर देने वाली भी है।

इसी विभूतियों से भरे-पूरे संसार में हम सब अपने जीवन संकट घसीटते हैं। जीवित तो सभी हैं और इसके लिये जितनी सुविधा सामग्री चाहिये उतनी किसी प्रकार जुट भी जाती है। इतने पर भी मनःस्थिति और परिस्थिति को देखते हुए प्रतीत यही होता है कि इन जीवितों में से कई अभावग्रस्त, दरिद्र-पतित, पीड़ितों, असहाय, असमर्थ जैसी स्थिति में रह रहे हैं। दरिद्रता और आशंका से कईयों को उद्विग्न देखा जा सकता है। उल्लास से उछलते हुए हँसता-हँसाता समर्थ सम्पन्न जीवन जीने वाले कठिनाई से ही कहीं कोई विरले मिलेंगे।

व्यक्ति के भीतर और बाहर सामर्थ्य का असीम भण्डार, सुविधा-साधनों से भरा-पूरा अनन्त वैभव जब इस समूचे ब्रह्माण्ड में संव्याप्त है और उसी के बीचों-बीच मनुष्य निवास-निर्वाह कर रहा है तो फिर यह कैसी विडम्बना है कि अप्रसन्नता की मनःस्थिति घिरी रहे और

दैत्य-दारिद्र्य से, पतन-पराभव से घिरी परिस्थितियों में गुजारा करना पड़े। ईश्वर के युवराज को अपने पिता के इस नन्दन वन जैसे सुरम्य उद्यान में आनन्द और उल्लास से भरे-पूरे दिन बिताने चाहिए थे, तब क्यों उसे शोक-सन्तापों से युक्त जीवन जीना होता है ? विपत्तियों और समस्याओं का पग-पग पर सामना करना पड़ता है ?

गुत्थी का कारण और निवारण ढूँढ़ने पर एक ही निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि मनुष्य है तो चेतन किन्तु उसे चेतना की सुरक्षा एवं प्रगति की वैसी जानकारी नहीं जैसी होनी चाहिए। वस्तु उपलब्ध तो हो पर उसका उपयोग विदित न हो तो दुरुपयोग ही बन पड़ेगा। दुरुपयोग का दुष्परिणाम होता ही है। वही हो भी रहा है। साधनों की न पहले कमी थी, न अब है। इतने पर भी सर्वत्र हाहाकार मचा हुआ है। यह स्थिति तब तक बनी रहेगी जब तक कि चेतन शक्ति, जो पिण्ड व ब्रह्माण्ड में समायी है, के उत्पादन, वितरण एवं उपयोग की प्रक्रिया को जाना न जायेगा। इस प्रक्रिया को ही 'साधना' कहते हैं जो पदार्थ के सदुपयोग से आरम्भ होते हुये चेतना के परिष्कार एवं व्यष्टि तथा समष्टि चेतन शक्ति में परस्पर आदान-प्रदान के क्रम के बनने तक सतत क्रियाशील रहती है। यही है वह मूलभूत तत्वदर्शन, जिसकी जानकारी के अभाव में आत्म-विस्मृति बनी रहती है एवं सामान्य अधवा निम्न स्तर का जीवन जीते हुए अधिकांश व्यक्तियों द्वारा जैसे-तैसे जीवन-यात्रा पूरी कर ली जाती है।

अपने अन्दर क्या छिपा पड़ा है ? यह जानने का प्रयास करने पर बहुमूल्य मणि-मुक्तकों से भरा चेतनशक्ति का भाण्डागार दिखाई देने लगता है। बाहर से सामान्य व एक से ही दृष्टिगोचर होने वाले व्यक्ति कैसे असम्भव कर दिखाते हैं एवं ऋद्धि-सिद्धियों से सम्पन्न बन जाते हैं। इसका मूल कारण खोजते हैं, तो एक ही तथ्य हाथ लगता है कि उन्होंने अपने अन्दर छिपे 'महान' तत्व को पहचान साधना द्वारा उसे जगाया एवं स्वयं को ऊँचा उठाया। ऋषि, देवदूत, महामानव स्तर तक पहुँचने में उन्हें आत्म-परिष्कार-व्यक्तित्व निर्माण की जीवन-साधना से लेकर अपने सुपर चेतन को जगाने की साधना करनी पड़ी और उन्होंने वह सब कुछ पा लिया जिसे मानव के लक्ष्य की चिरन्तन प्यास एवं समय की तत्कालीन आवश्यकता कह सकते हैं।

कैसा है यह विराट्-विलक्षण जो अपने ही भीतर समाया है और हम स्वयं ही उससे अनजान बने हुए हैं। जानकारी होने पर इस भाण्डागार के सदुपयोग की व्यवस्था बनायी जाने पर पिण्ड के चेतन पक्ष को ऊँचा

उठाया जा सकना एवं ब्राह्मी चेतना के विराट समुद्र से उसका सम्बन्ध जोड़ पाना सम्भव है।

योग वाशिष्ठ में उपदेश देते हुए महर्षि वशिष्ठ भगवान राम से कहते हैं—

“रभ्येय देह नगरी राम सर्व गुणान्विता ।

अज्ञस्येय मनन्तानां दुःखानां कोशमालिका॥

अस्यत्विद्य मनन्तानां सुखानां कोशमालिका॥”

अर्थात् हे राम ! यह देह नगरी बड़ी सुरम्य और गुण-सम्पन्न है। यह ज्ञानियों के लिये सुख और अज्ञानियों के लिये दुःख देने वाली है।

कुछ वर्षों पूर्व बम्बई के एक विद्वान श्री वी. जे. रेल्ले ने एक पुस्तक लिखी थी ‘दी वैदिक गॉड्स एज फिगर्स ऑफ बायोलाजी।’ इस पुस्तक में उन्होंने सिद्ध किया था कि वेदों में वर्णित आदित्य, वरुण, मरुत, मित्र, अग्नि, आदि मस्तिष्क के स्थान विशेष में सन्निहित दिव्य शक्तियाँ हैं, जिन्हें जागृत करके अद्वितीय क्षमता-सम्पन्न एवं विशिष्ट बना जा सकता है। डॉ. नाडगिर एवं एडगर जे. टामस ने संयुक्त रूप में पुस्तक की भूमिका लिखते हुए कहा है कि वैदिक ऋषियों के इस शरीरशास्त्र सम्बन्धी गहन ज्ञान पर आश्चर्य होता है। उस साधन हीन समय में कैसे उन्होंने इतनी जानकारीयाँ प्राप्त की होगी, यह शोध का विषय है।

मस्तिष्कीय संरचना पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि यह एक माँसपिण्ड नहीं है वरन् जीवन्त विद्युत भण्डार है। उसमें चल रही हलचलें ठीक वैसी ही हैं जैसी किसी शक्तिशाली बिजलीघर की होती हैं। जितने हमारी आकाशगंगा में तारे हैं, करीब उतने ही (एक खरब से भी अधिक) न्यूरोन्स (स्नायुकोष) मस्तिष्क में हैं। इन तन्त्रिकाओं को आपस में जोड़ने वाले तन्तु और उनके इन्सुलेशन खोपड़ी में खचाखच भरे हैं। एक तन्त्रिका कोशिका का व्यास एक सेन्टीमीटर के हजारवें भाग से भी कम है और उसका वजन एक औंस के साठ अरबवें भाग से अधिक नहीं है। तन्त्रिका तन्तुओं से होकर बिजली के जो इम्पल्स दौड़ते हैं, वही ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से आवश्यक सूचनाएँ उस केन्द्र तक पहुँचाते हैं। इन्द्रियों द्वारा उपलब्ध सूचनाओं और विचारों की हलचलें हर क्षण सोते-जागते मस्तिष्क को इतना अधिक व्यस्त रखती हैं कि इन्हें इलेक्ट्रो एनसेफैलोग्राम (ई. ई. जी.) द्वारा विद्युतीय तूफान की तरह देखा जा सकता है।

मानव निर्मित सर्वोत्तम कम्प्यूटर में अधिक से अधिक दस लाख इकाइयाँ होती हैं और प्रत्येक इकाई के पाँच-छः से अधिक सम्पर्क सूत्र नहीं होते। किन्तु मस्तिष्क

की अरबों कोशिकाएँ और उनमें से प्रत्येक के लाखों लाख सम्पर्क सूत्र और उनके भीतर प्रवाहित न्यूरोट्रांसमीटर्स की भिन्नता वैज्ञानिकों को इसी निष्कर्ष पर पहुँचाती है कि इन अद्भुत शक्तियों को समाहित करने वाले कम्प्यूटर को बनाने लायक सामर्थ्य मानव में नहीं है। यदि सैद्धान्तिक स्तर पर एक ढाँचा भी ऐसा खड़ा करने का प्रयास किया जाय तो वह इतना बड़ा होगा कि उसके लिये यह पृथ्वी भी छोटी पड़ेगी।

मस्तिष्क रूपी इस चेतन शक्ति भण्डार के न्यूरान समूहों में से यदि एक को भी किसी प्रविधि द्वारा सजग-सचेत किया जा सके तो दस अरब न्यूरान्स-दस अरब डायनोमों का काम कर सकते हैं। उस गर्मी-प्रकाश एवं विद्युत क्षमता का अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। इसी कारण वैज्ञानिक कहते हैं कि अभी वे मस्तिष्क के कुल सत्रह प्रतिशत भाग को जान पाये हैं एवं शेष ८३ प्रतिशत के बारे में उन्हें कुछ जानकारी नहीं है। इस सत्रह प्रतिशत में से भी दैनन्दिन जीवन में मात्र सात प्रतिशत विद्युत-क्षमता उपयोग में आ पाती है शेष का या तो प्रयोग ही नहीं हो पाता या प्रयासों के अभाव में वह व्यर्थ ही नष्ट हो जाती है।

जिस मस्तिष्क रूपी संसार में इस पृथ्वी पर बसे मनुष्यों से भी कई गुनी अधिक स्नायुकोषों की आबादी बसी हुई है, उसकी सामर्थ्य कितनी विलक्षण है, इसका अनुमान इन व्यक्तियों की उपलब्धियों को देखकर लगाया जा सकता है जिन्होंने अपने प्रतिभा के बलबूते वैज्ञानिकों को भी आश्चर्यचकित किया है।

कैपटाउन में एक इन्जीनियर वानवाण्डे निवास करते हैं। उनके बारे में कहा जाता है कि समय उनकी इच्छा के अनुसार चलता है। उनका दिमाग उन्हीं निर्देशों का पालन करता है जो वे स्वयं को देते हैं। वे सोने जा रहे हों और आप कहें महोदय ! अभी आठ बजे हैं, आप ठीक बारह बजकर सात मिनट, उनसठ सैकिण्ड पर उठें। “एक सैकिण्ड का भी अन्तर किये बिना वे उसी समय जग जाते हैं। इसका रहस्य बताते हुए वे कहते हैं” मैंने अपने मस्तिष्क को इस प्रकार साधा है कि अचेतन-चेतन दोनों ही स्थिति में मैं अपने क्रिया-कलाप नियन्त्रित कर सकता हूँ।

लार्डमैकाले ने इंग्लैण्ड का इतिहास आठ जिल्दों में लिखा। इसके लिये उन्हें किसी सन्दर्भ पुस्तक की आवश्यकता नहीं पड़ी। लोग उन्हें चलता-फिरता पुस्तकालय कहते थे। उन्हें सैकड़ों घटनाएँ, तिथियाँ, व्यक्तियों के नाम जबानी याद थे। इसी प्रकार ब्रिटिश संग्रहालय के अधीक्षक रिचर्ड गार्नेट अपनी स्मरण शक्ति, सैकड़ों सन्दर्भों व

अनेकों भाषाओं को कण्ठस्थ रखने के कारण विश्वविख्यात हैं। इन्हें अपने पुस्तकालय की सहस्रों पुस्तकों के नाम एवं रखने का स्थान तक याद थे।

एक बार फ्रांस की अदालत में एक मुकदमा पेश हुआ जिसमें प्रस्तुत सक्षियों व कानूनी तथ्यों के कारण अपराधी के बचने की कोई आशा न थी। एकमात्र आशा की किरण थी, राजा का क्षमादान। परन्तु राजा ५ दिनों के लिए बाहर थे। अपराधी के एटार्नी प्रख्यात विधिवेत्ता लुई बर्नार्ड ने अपराधी के पक्ष में तर्क देने आरम्भ किये और जूरी के समक्ष वह १२० घण्टे तक अर्थात् पाँच दिन पाँच रात तक बराबर बोलता रहा। इस अवधि में उसने कानून शास्त्र के दुनिया भर के पन्ने जबानी अदालत के सामने रखकर अपनी आश्चर्यजनक बौद्धिक क्षमता का सिक्का जमा दिया। इसी बीच राजा आ गये, अपराधी को राजा के समक्ष प्रस्तुत होने का अवसर मिला और तदुपरान्त क्षमादान भी।

‘गणित की जादूगरनी’ कही जाने वाली भारतीय महिला शकुन्तला देवी अपनी अद्वितीय मानसिक शक्ति के कारण विश्वभर में जानी जाती हैं। जितनी तेजी से वे गणित की गुत्थियों का हल निकालती हैं, उस शीघ्रता से कम्प्यूटर भी काम नहीं कर पाता। अपनी मनःशक्ति के बारे में उनकी मान्यता है कि “यह केन्द्रित मन की मात्र छोटी-सी शक्ति का नमूना भर है। यदि समग्र मनःसामर्थ्य का सुनियोजन किया जा सके तो इससे भी विलक्षण उपलब्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं।”

उपरोक्त उदाहरण पिण्ड के एक घटक मस्तिष्क की सामर्थ्य की एक छोटी-सी झाँकी भर देते हैं। चेतन जगत से प्रत्यक्ष जुड़े इस माँसपिण्ड को भानुमती का पिटारा कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी। मस्तिष्क में भरे एक खरब से भी अधिक स्नायुकोषों को अद्भुत विशेषताओं से सम्पन्न महादेव कहा जा सकता है। इनमें संचित स्मृतियाँ माइक्रोफिल्म की भाँति सुरक्षित रहती हैं और उत्तेजित किये जाने पर वे उभरकर आती हैं। डॉ. पेनफील्ड एवं डा. डेलगार्डों के इस विषय में मनुष्यों व पशुओं पर प्रयोग पहले ही ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। उनसे ज्ञात होता है कि मस्तिष्क का टेम्पोरल कॉर्टेक्स, पेराइटललॉव व लिम्बिक सिस्टम इतना रहस्यमय, तिलिस्मों से भरा हुआ है कि इस विषय में किये गये अनेकानेक प्रयोगों ने वैज्ञानिकों को अपनी अज्ञानता का बोध तो कराया ही है, एक अद्भुत रोमांचकारी लीला जगत भी दिखाया है जो इस पिण्ड में विद्यमान है।

काया की सूक्ष्म संरचना का वर्णन करते हुये ऋषि-गणों ने एक ऐसे विद्युत प्रवाह के मस्तिष्क में

अवस्थित होने की कल्पना की है, जो मस्तिष्क के अनेकानेक महत्वपूर्ण केन्द्रों, स्नायुकोषों की परतों तथा स्नायु-रसायन सन्देश वाहकों के रससावों को उत्तेजित करता है। मस्तिष्क में स्थित इस फब्बारे को वांछित केन्द्रों तक भेजकर उन्हें उत्तेजित कर प्रसुप्त को जगाया जा सकना सम्भव है, इससे अब वैज्ञानिक भी मानने लगे हैं। सम्भवतः इस तथ्य को उपनिषद्कार ने इस तरह अभिव्यक्त किया है।

“तस्य सर्वेष लोकेष कामचारो भवति।” छान्दोग्य

अर्थात्-सहस्रार को प्राप्त कर लेने वाला योगी सम्पूर्ण भौतिक विज्ञान का अधिष्ठाता बन जाता है, सर्व-समर्थ हो जाता है।

विपुल सम्पदा से भरे-पूरे इस पिण्ड में बहुत कुछ भरा पड़ा है। ‘साधना से सिद्धि’ के समस्त उदाहरण इसी एक तथ्य के साक्षी हैं कि साधकों ने इसी चेतना घटक को सामर्थ्यवान बनाया और बदले में ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ पायीं। यह सिद्धान्त सदा से ही शाश्वत रहा है और आगे भी जब भी किसी को इस मार्ग पर चलना होगा-इसी को अपना आधार बनाना होगा।

विराट् मन ही इस विश्व का नियामक

अदृश्य जगत न अब उतना अविश्वस्त रहा है और न अप्रामाणिक, जैसा कि एक शताब्दी पूर्व वैज्ञानिकों द्वारा कहा जाता था। कभी उसे कपोल कल्पित एवं उपहासास्पद ठहराया जाता था और कहा जाता था कि प्रकृति की परिधि से बाहर और कुछ नहीं है। यहाँ तक कि मानवी चेतना भी कुछेक रासायनिक पदार्थों एवं विद्युत तरंगों का सम्मिश्रण होने के कारण प्रकृति का ही एक अनौखा घटक है। उन दिनों इसी आधार पर आत्मा और परमात्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व से भी इन्कार किया जाता था, पर अब समय बहुत आगे बढ़ गया। प्रकृति का लघुतम घटक कभी परमाणु माना जाता था। पर उसके अन्तराल में भी एक अणु परिवार स्वीकृत हो चुका। इतना ही नहीं अणु की स्वतन्त्र सत्ता भी समाप्त हुई और उसे विद्युत तरंगों का एक गुच्छक मात्र स्वीकार किया गया।

प्रकृति अनुसंधान की गहराई में उतरने वालों ने एक समानान्तर विश्व का, समानान्तर परमाणु का अस्तित्व खोज निकाला है जो प्रत्यक्ष उपकरणों की पकड़ में तो नहीं आता पर गणितीय सिद्धान्तों के आधार पर उसे जो मान्यता मिली है उससे इन्कार भी नहीं किया जा सकता। पदार्थ का प्रतिद्वंद्वी प्रति पदार्थ एन्टी मैटर अब एक तथ्य है। इसी प्रकार विश्व के प्रतिद्वंद्वी प्रति विश्व एन्टी

यूनिवर्स की जो जानकारी मिली है, उसे कपोल-कल्पना ठहराने का साहस कोई भी नहीं कर सकता है। अदृश्य जगत का यही क्षेत्र है। वह काया और छाया की तरह परस्पर घनिष्ठ है। दृश्य जगत और अदृश्य जगत दोनों ही जुड़वाँ भाई बनकर विज्ञान जगत की नवीनतम मान्यताओं में सम्मिलित हो चुके हैं।

विज्ञान जगत में अब ‘न्यूट्रिनो’ एवं ‘साइकोट्रॉन’ नामक ऐसे विद्युतीय कणों का पता चल गया है, जिनकी गति निर्बाध है, पदार्थ की एक भी दीवार उसे रोक नहीं पाती। सम्भवतः इन्हीं कणों के सहकार से मस्तिष्क के न्यूरोन्स में अतीन्द्रिय चेतना की सामर्थ्य आ जाती है। परामनोवैज्ञानिक भी अब धीरे-धीरे इसी निष्कर्ष पर पहुँचते जा रहे हैं।

‘प्रो. फ्रेंक ब्राउन’ की लम्बी शोधें इस निष्कर्ष पर पहुँची हैं कि चारों ओर हवा की तरह एक बह्मण्ड व्यापी ऊर्जा विद्यमान है जिससे अपनी पात्रता के अनुसार सभी का सम्पर्क जुड़ा रहता है। सभी आवश्यकतानुसार एवं अपनी आकर्षण सामर्थ्य के अनुरूप उससे शक्ति खींचते और सामर्थ्यवान बनते हैं।

साधारणतया परमाणु में भार, घनत्व, विस्फुटन, चुम्बकीय क्षेत्र आदि भौतिक परिचय देने वाले लक्षण होते हैं। पर अब विज्ञान की पकड़ में ऐसे सूक्ष्म विद्युतीय कण आ गये हैं जिनमें भौतिक परमाणुओं में पाया जाने वाला एक भी लक्षण नहीं है। फिर भी वे प्रकाश की गति से शरीरों के भीतर और पोले आकाश में निर्बाध परिभ्रमण करते हैं। वे भौतिक परमाणुओं को बेधकर आर-पार निकल जाते हैं। पदार्थ की कोई दीवार उन्हें रोक तो नहीं पाती, पर यदा-कदा उनमें टकराव उत्पन्न होते देखा गया है। इस टकराव के अवसर पर ही उनका अस्तित्व अनुभव में आता है। अब यह सोचा जा रहा है कि सम्भवतः पल्सार्स से आने वाले न्यूट्रिनो एवं साइकोट्रॉन जैसे कण ही मस्तिष्क के सामान्य न्यूरोन्स कणों के साथ साँठ-गाँठ करके अतीन्द्रिय चेतना उभारने का पथ-प्रशस्त करते हैं। अब न्यूट्रिनो कणों का प्रभाव मनुष्य की मस्तिष्कीय चेतना और तन्तु समूह पर क्या हो सकता है? इसकी गहरी खोजें चल रही हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार मानसिक चेतना पर वे जो प्रभाव डालते हैं और जिन नई जाति के ऊर्जा कणों का जन्म होता है उस कम से उन्हें माइन्जेन नामक नाम दिया जाना चाहिए। अनुमान है कि यदि इनका उद्भव और विकास मस्तिष्क में होने लगे तो मनुष्य का अवचेतन मन ब्रह्माण्डीय ऊर्जा के साथ सम्बद्ध होकर अपनी ज्ञान परिधि और क्रियाशक्ति

असीम कर सकता है। तब शरीर बन्धनों के कारण उसकी सीमित क्षमता के असीम बनने में कोई कठिनाई न रहेगी।

जीवविज्ञान वेत्ता प्रो. फ्रेंकब्राउन की लम्बी शोधें इस निष्कर्ष पर पहुँची हैं कि जिस प्रकार हमारे ईर्द-गिर्द हवा भरी है उसी प्रकार ब्रह्माण्ड-व्यापी ऊर्जा के समुद्र से सृष्टि का प्रत्येक प्राणी जीवन प्राप्त करता है। उस महान प्रसारण को प्रत्येक प्राणी एक छोटे रेडियो रिसीवर की तरह अपनी पात्रता के अनुरूप ग्रहण करता है और उसमें अपना उपार्जन सम्मिलित करता है। इस प्रकार हर प्राणी अथवा पदार्थ अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हुए भी एक ही संयुक्त सत्ता का अंश है। भिन्नता के बीच एकता के शास्त्रवर्णित सिद्धान्त को अब क्रमशः विज्ञान के क्षेत्र में भी मान्यता मिलती जा रही है।

ब्रह्माण्ड विराट् है, पिण्ड स्वल्प सीमित। इतने पर भी विभु की समग्र सत्ता अणु में विद्यमान है। दावानल की विकरालता कैसी ही क्यों न हो। चिन्गारी में उसकी मूलभूत क्षमता का अस्तित्व पूरी तरह समाविष्ट है। विराट् मन ही इस विश्व का सृजेता एवं नियामक है। काया में सीमाबद्ध मन भी उन समस्त सम्भावनाओं से भरा-पूरा है जिन्हें परमात्मसत्ता में देखा एवं पाया जाता है।

मन की अद्भुत और अलौकिक सामर्थ्य इतनी है कि वह सामान्य व्यावहारोपयोगी बुद्धि से कहीं अधिक ही क्षमता-सम्पन्न स्वयं को बना सकता है। इस दिशा में काफी अन्वेषण कार्य चल रहा है। कैलीफोर्निया की “स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी, नीदरलैण्ड की ग्रोनिंगन यूनिवर्सिटी, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी, शिकागो यूनिवर्सिटी, ड्यूक यूनिवर्सिटी इत्यादि स्थानों पर इस सम्बन्ध में बड़े स्तरों पर शोध प्रयत्न जारी है। वस्तुतः अतीन्द्रिय-सामर्थ्य मनःशक्ति की ही दृश्यमान हो सकने वाली सामर्थ्य है जिसे इतना असम्भव, दुर्लभ नहीं मानना चाहिए जितना कि समझा जाता रहा है।”

यह एक अद्भुत एवं विचारणीय तथ्य है कि जितने हमारी आकाशगंगा में तारे हैं, लगभग उतने ही स्नायुकेश हमारे मस्तिष्क में भी फैले हुए हैं। पिछले दिनों वैज्ञानिकों का सर्वाधिक ध्यान इन स्नायुकेशों को परस्पर मिलाने वाले सन्धि केन्द्रों (सिनेप्सों) पर स्रवित होने वाले रसायन पदार्थों न्यूरो ट्रांसमीटर्स पर गया है। अब प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित किया जा रहा है कि सिरोटोनिन, डोपामीन, एसिटाइल कोलीन तार एड्रीनेलिन के रूप में विराजमान ये रसायन ही सारी विद्युत-संचार

प्रणाली के लिये जिम्मेदार हैं। बौद्धिक क्षमता की घट-बढ़ में इनका महत्वपूर्ण योगदान है।

इसी के साथ-साथ एक और विद्युत्स्फुल्लिंग के फब्बारे की मस्तिष्क में अवस्थित होने की ऋषिगणों द्वारा वर्णित सहस्रार की कल्पना अब वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा प्रमाणित की जाने लगी है। उनके अनुसार एसेन्डिन्ग रेटीकुलर एक्टिवेटिंग सिस्टम (ए. आर. ए. एस.) नामक यह तन्तु-जाल रसायन सन्देश वाहकों एवं प्रसुप्त पड़े केन्द्रों को उत्तेजित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

समझा जाता है कि मस्तिष्क की सीमा स्वल्प है और वह थोड़े से श्रम में थक जाता है पर वास्तविकता ऐसी है नहीं। वह लम्बे समय तक बिना विराम विश्राम के अनवरत श्रम कर सकता है और यथावत् स्वस्थ सक्षम बना रह सकता है। कुछ व्यक्ति मस्तिष्क की उपयोगिता मात्र रोजमर्रा के काम आने हेतु व्यवहार तथा निद्रा तक सीमित मानते हैं। लेकिन वे यह भूल जाते हैं कि इसकी अपनी भी एक महती भूमिका है। नींद आहार की तरह ही आवश्यक मानी जाती है। ‘थकान उतारने का यही एक प्रमुख साधन है।’

आवश्यकता है ईश्वर प्रदत्त अनन्त विभूतियों के भाण्डागार-इस सृष्टि से अनुपम उपहार मस्तिष्क को विकारग्रस्त, असन्तुलित न होने दिया जाय और उपयुक्त दिशाधारा में नियोजित करके वह लाभ उठाया जाय जिससे मानवी काया में देवत्व की सम्भावनाओं का प्रत्यक्ष दर्शन सम्भव हो सके।

चेतना की उदात्तीकरण प्रक्रिया

आदिमकाल में मनुष्य बन्दरों, वन-मानुषों की तरह रहता था और शारीरिक श्रम के आधार पर ही निर्वाह के साधन जुटाता था। तब उसके पास सम्पदा के नाम पर मिट्टी के बर्तन और पत्थरों के उपकरण भर थे। लम्बे पत्तों से काया को ढकता और ऋतु प्रभाव से अपने को बचाता था। निवास के लिए पेड़ों के झुरमुट और पहाड़ों की गुफा खंदक ही उसका आश्रय थे। यह स्थिति चिरकाल तक चली।

कालान्तर में इच्छाशक्ति उभरी, प्रगति की कामना जगी, तो बुद्धि के कल-पुर्जे अधिक सक्रिय हो गये। अग्नि जलाना, पहिए बनाना, कृषि करना, पशु-पालन, आवास खड़े करना, बस्ती बनाना जैसी जीवनोपयोगी कलाएँ सीखीं। भाषा और लिपि का विकास हुआ। आयुध एवं औजार बने। इसी प्रकार क्रमशः भौतिक विज्ञान की

प्रगति होती गई। सहकार बढ़ा। कुटुम्ब बने और एक का ज्ञान अनुभव दूसरे को हस्तान्तरित होने लगा। यही प्रक्रिया बढ़ते-बढ़ते आज उस स्थिति तक आ पहुँची है कि मनुष्य विद्युत शक्ति का दैनिक प्रयोजनों में, व्यावसायिक उद्देश्यों में भरपूर प्रयोग कर रहा है एवं प्रकृति के अनेकों अविज्ञात रहस्य उसने खोज लिए हैं।

अद्यावधि 'हस्तगत हुई उपलब्धियों तथा भावी सम्भावनाओं की विभूतियाँ क्यों कर हाथ लगीं ? इसका उत्तर देते हुए यही कहना होता है कि यह विज्ञान का चमत्कार है। यदि इस विश्व में प्रगति न हुई होती तो यह किसी भी प्रकार सम्भव न था कि वन-मानुषों की बिरादरी से आगे बढ़कर सृष्टि का मुकुट-मणि बनने की स्थिति तक पहुँच सकना बन पड़ता तथा सम्पदा, सुविधा और साधनों के अम्बार उसके सामने खड़े होते।

भौतिक विज्ञान की जितनी प्रशंसा की जाय, जितनी महिमा बखानी जाय, उतनी ही कम है। पदार्थ प्रकृतितः अनगढ़ और अस्त-व्यस्त था। उसे सुनियोजित मानवी बुद्धि, श्रमशीलता और कुशलता ने ही संभव किया है। विज्ञान पदार्थों के अनुकूलन की विद्या सिखाता है। इसके लिए गतिशील रहा गया तो भविष्य में इस प्रत्यक्ष प्रगति के और भी अधिक आधार हाथ लगेगे। इतने पर भी यह सब रहेगा एक पक्षीय ही। उससे सुविधा-साधनों के अतिरिक्त और कुछ मिलने वाला नहीं है। शरीर पंच तत्वों का, पदार्थों का बना है। उसे सुविधा प्रदान करने तक की पदार्थ विज्ञान की सीमा नियत, निर्धारित है।

इतने पर भी यह सब अपूर्ण, अधूरा है। क्योंकि मानवी सत्ता का एक पक्ष चेतना का भी है। चेतना जहाँ अपने प्रभाव से शरीर को जीवित सक्रिय रखती है। वहाँ वह नीति-निष्ठा, भाव, संवेदना, धर्मधारणा, आदर्शवादिता से भी भरी-पूरी है। मानवी गरिमा उसकी सुसंस्कारिता पर निर्भर है। उसी के संकल्प से संयम बरतते बन पड़ता है। मर्यादा पालन एवं वर्जनाओं का अनुशासन भी उसी की प्रेरणा से निभता है। चरित्र-निष्ठा का निर्वाह उसी के संकेतों पर अवलम्बित है। गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता जिस अन्तःकरण के संवेदनशील होने पर निर्भर है, उसे परिष्कृत चेतना के साथ सघन रूप से जुड़ा हुआ समझा जा सकता है। मानव जीवन का विचार पक्ष उसी पर अवलम्बित है। उच्चस्तरीय प्रगति उसी पर निर्भर है। महापुरुषों जैसी महानता उसी क्षेत्र से उद्भूत होती है। व्यक्तित्व का निखार, प्रतिभा का उभार इसी उद्गम से होता है। दृश्य शरीर की तुलना में चेतना का अदृश्य पक्ष सहस्रो गुना अधिक श्रेष्ठ एवं वरिष्ठ है।

चेतना यों रहती तो सभी जीवधारियों में है। उसी की उपस्थिति तक जीवन रहता है। विलग होते ही मरण निश्चित है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि प्रखर, परिष्कृत होने पर वह अन्तःकरण की भाव-संवेदना की, मस्तिष्क की दूरदर्शी-विवेकशीलता और शरीर की तन्मय, तत्परता का विकास संभव कर दिखाती है। चेतना का उत्कर्ष ही नर-पशु को महामानव बनाता है।

इस ब्रह्माण्ड की संरचना दो भागों में बँटी हुई है—एक जड़ तथा दूसरा चेतना। एक प्रकृति दूसरा पुरुष। सब जानते हैं कि बिना संचालक के ऑटोमेटिक मशीनें भी नहीं चल सकतीं और न कम्प्यूटर, रोबोट ही काम कर सकते हैं। प्रकृति को भी सचेतन परब्रह्म ने ही बनाया है। अस्तु यह तथ्य स्पष्ट है कि जड़ से चेतन का मूल्य-महत्व असंख्य गुना होना चाहिए। जड़ पदार्थों के सहारे जब अनेकानेक सुख-साधन विनिर्मित हो सकते हैं तो चेतन की बुद्धिमत्ता एवं भाव-संवेदना कितनी अधिक श्रेय, साधना सम्पादित कर सकती है ? इसे सहज ही समझा जा सकता है।

भौतिक विज्ञान पदार्थों के अनुकूलन पर आधारित है। उसमें वस्तुओं को इच्छानुरूप स्थिति में बनाने की क्रिया-प्रक्रिया सीखी-सिखाई जाती है। दूसरा समानान्तर विज्ञान है चेतना का। उसके परिशोधन, उन्नयन का। इसे अध्यात्म कहते हैं। इसका प्रथम चरण है—चिन्तन। विचार पद्धति का सुसंतुलन। सर्वविदित है कि क्रियाकलापों के मूल में विचारणा ही काम करती है। विचार प्रवाह यदि अनुपयुक्त दिशा में बह रहा है तो उसके सूत्र-संचालन पर निर्भर क्रिया-कलाप भी हेय स्तर के ही बन पड़ेगे, हेय कृत्यों का प्रतिफल दुःखद संकटापन्न एवं अपयश, विरोध विग्रह के रूप में ही सामने आना चाहिए। उस कुचक्र में फँसे मनुष्य खिन्न, विपन्न से बने रहते हैं और वर्जनाओं का उल्लंघन नहीं करते। चरित्र में गुण, कर्म, स्वभाव के सभी पक्ष आते हैं। निज की विनम्रता, संयमशीलता और दूसरों को सम्मान प्रदान करते रहने, मधुरता का पुट लगाते रहने, प्रसन्नता-सफलता व्यक्त करने वाली हल्की मुस्कुराहट चेहरे पर बनाये रहने पर व्यक्तित्व का स्तर प्रकट होता है। इस चुम्बकत्व से जनसाधारण का सहयोग, सद्भाव खिंचता चला आता है। वैसे चरित्र-निष्ठा के आवश्यक अंग समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, बहादुरी के रूप में जाने जाते हैं।

तीसरा पक्ष व्यवहार का है। जैसा सोचा जाता है वैसा ही व्यक्तित्व बनता है, चरित्र ढलता है। चरित्र अपनी गरिमा के अनुरूप लोकोपयोगी कामों में हाथ डालता है। उदार, परमार्थ-परायणता का परिचय देता है।

मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा के रूप में दूसरों से यथोचित व्यवहार बन पड़ता है। योजना ऐसा कुछ कर गुजरने की रहती है, जिसका प्रभाव ग्रहण करने वाले-हर किसी को ऊँचा उठने, आगे बढ़ने की प्रेरणा मिल सके।

आत्मीयता की स्नेह-संवेदनाओं से भरा-पूरा उदारसेवी सहयोग, सम्मिश्रित सद्व्यवहार हर किसी से नहीं बन पड़ता। ओछे व्यक्ति तो अहंकार भरी अशिष्ट उजड़ता बरतते देखे गये हैं। सज्जनता, चरित्र-निष्ठा का ही एक अंग है। नीतिवान मानवी गरिमा का मनुष्य जन्म का मूल्य-महत्व समझते हैं। अस्तु, अपना व्यक्तित्व ऐसा बनाये रहते हैं जिससे अन्तरात्मा प्रफुल्लता-प्रसन्नता अनुभव करे और सम्पर्क क्षेत्र के लोग सराहना करते रहें। किसी को किसी भी कारण उँगली उठाने का अवसर न मिले। शत्रु भी लोहा मानें और उसका मूल्यांकन अज्ञातशत्रु के रूप में करें। चरित्र चिन्तन का परिणाम है। चिन्तन बीज है, उसमें चरित्र और व्यवहार का खाद-पानी लगाने से जीवन कल्पवृक्ष जैसा फलता है, चन्दन जैसा महकता है। चिन्तन आमतौर से अचिन्त्य चिन्तन की रँगौली उड़ाने उड़ता और आवारागदी में भटकता देखा गया है। पर जब उसे आदर्शवादिता का अवलम्बन मिलता है तो सही मार्ग पर चलने लगता है। उच्छृंखलता अवरुद्ध होती है और निर्धारित उद्देश्यों के लिए वह एकनिष्ठ, तन्मयता अपनाता है। ऐसों की एक भी विचार तरंग अनगढ़ नहीं होती। न उनमें भटकता देखा जाता है और न ही असंयमी, स्वच्छंदता का दौर उभरता है। विचारों का मूल उद्गम अन्तःकरण में उत्कृष्ट स्तर का होता है, वहाँ विचार तरंगों का उत्पादन भी आदर्शवादी अभिव्यंजनाओं से आपूरित रहता है। अन्तःकरण ही है जिसमें संस्कार जड़ जमाये रहते हैं। जहाँ कुसंस्कारों का उन्मूलन करके सुसंस्कारों को आरोपित कर लिया गया है, वहाँ चिन्तन, चरित्र और व्यवहार के सभी स्तर आदर्शों से भरे-पूरे रहते हैं।

चेतना का उदात्तीकरण जीवन के अन्तरंग और बहिरंग क्षेत्रों का परिशोधन, परिष्कार करने की प्रक्रिया जारी रखने पर सहज संभव है। इसके लिए आत्म-निरीक्षण, आत्म-सुधार, आत्म-निर्माण और आत्म-विकास के चार कदम उठाने पड़ते हैं। एकान्त में बैठ एक एकाग्र मन से अपने गुण, कर्म, स्वभाव में घुसी हुई अवांछनीयता को समझने, पहचानने का प्रयत्न करना पड़ता है। जो अनुपयुक्तता समझ में आवे, उसे कूड़े-कचरे की तरह बुहार फेंकने का साहस भरा प्रयत्न करना चाहिए। प्रबल इच्छा शक्ति के सामने कोई दुष्प्रवृत्ति टिक ही नहीं

सकती। यह परिशोधन हुआ। यह आवश्यक है किन्तु पर्याप्त नहीं। दुष्प्रवृत्तियों के हटाने पर जो स्थान खाली हुआ है उसे रिक्त नहीं रहने देना चाहिए वरन् उसमें सत्प्रवृत्तियों का आरोपण करना चाहिए। उन्हें स्वभाव का अंग बनाने के लिए, अभ्यास में उतारने के लिए तदनुरूप आचरण करने की क्रमबद्ध योजना बनानी चाहिए और उसे कार्यान्वित करते रहने के निश्चय पर आरुढ़ रहना चाहिए।

आत्म विकास का अर्थ है—अपने “स्व” का दायरा बढ़ाना। जिस शरीर, परिवार में अपनी ममता सँजो रखी है। उसे सुविस्तृत करते हुए “आत्मवत् सर्व भूतेषु” की, “वसुधैव कुटुम्बकम्” की मान्यता अपनानी चाहिए। दूसरा तात्पर्य है, स्वार्थ को परमार्थ में विकसित करना। विराट ब्रह्म का विशाल विश्व के रूप में दर्शन करना। लोक-सेवा का व्रत लेना और सत्प्रवृत्ति संवर्धन में जुट जाना।

इस स्थिति तक पहुँचने के लिए अध्यात्मवादी तत्व दर्शन के अनुरूप अपने श्रद्धा, विश्वास को उकृष्टता के ढाँचे में ढाला जाना चाहिए। इसके लिए स्वाध्याय, सत्संग, सेवा और साधना के चारों आधार जीवन-चर्या के अविच्छिन्न अंग बनाये जाने चाहिए। चिन्तन और मनन की प्रक्रिया में अधिकाधिक समय लगाना चाहिए। चिन्तन का प्रयोजन होना चाहिए परिशोधन तथा मनन का उद्देश्य रहे-भावी गतिविधियों को सत्प्रवृत्तियों में सुनियोजित करने की उमंग भरी विचारणा रहनी चाहिए।

मन में निहित विकास की उच्चतर

अवस्थाएँ

मानव विकास की समस्त संभावनाओं का उद्गम स्थल उसका अपना मन है। अध्यात्मवेत्ता इसे ही बन्धन-मोक्ष का कारण बताते हैं। मनोविज्ञानी भी अब इस तथ्य को स्वीकारने लगे हैं और मनःस्थान की गहन खोज में निरत हैं। उन्होंने इसे सचेतन, अचेतन और अतिचेतन के स्तरों में विभाजित किया है। सचेतन वह स्तर है, जिससे जाग्रत अवस्था में रोजमर्रा के सारे कामों का संचालन होता है। अचेतन में संस्कार, आदतें समायी होती हैं। सोते-जागते अंतरंग की गतिविधियों का संचालन भी इसी से होता है। इन दोनों से परे सबसे गहरी और आखिरी परत को अतिचेतन कहा गया है।

इस अतिचेतन की मूल प्रवृत्ति उत्कृष्टता से भरपूर है। श्री अरविन्द ने अपनी अनुभूतियों के आधार पर इसे पाँच भागों में निरूपित किया है। पहला है, 'उच्च मन' जो ज्योतिर्मय चिन्तन के माध्यम से प्रकट रूप से संसार में समाये सत्य को अनुभव कराता है। दूसरी ऊँची परत प्रबुद्ध मन है, जिसके द्वारा शान्ति, शक्ति, ज्योति एवं सत्य प्रतिफलित होता है। इसके द्वारा सत्य को देखा या सुना जा सकता है। इसके ऊपर तीसरा स्तर है—'प्रज्ञा मानस' का, जहाँ ज्ञान-ज्ञाता व ज्ञेय में कोई भेद नहीं रह जाता। व्यक्ति सत्य के साथ गहन तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

इसके भी ऊपर जो स्तर है—अरविन्द ने उसका नाम रखा है—'अधिमानस' (ओवर माइण्ड) यहाँ तक विकास करने पर पहले अनुभूति में—फिर उपलब्धि में परम तत्त्व का साक्षात् होता है। इस समीपता के बाद सायुज्यता का भाव आता है। इस एकता के बाद चेतना के सबसे गहरे स्तर 'अतिमानस' (सुप्रामेण्टल) की ओर बढ़ा जाता है। इस स्तर को पाने पर सभी कुछ सत्य व संगतिपूर्ण है, इसका साफ-साफ अनुभव होने लगता है। वैदिक ऋषियों ने इसी स्तर में पहुँच कर "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" का अनुभव किया था।

भारतीय चिन्तन में बताये गये मानसिक विकास के इस क्रम को अब पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक भी स्वीकारने लगे हैं। उन्होंने सचेतन-अचेतन के उलझाव से परे अतिचेतन के उच्चस्तरीय स्तरों की बात को भी स्वीकारा है और इस उपलब्धि को जीवन का ध्येय भी माना है। वस्तुतः कार्य-कौशल से लोक-व्यवहार बनता है। बुद्धि-विवेक से ठीक-ठीक निर्णय होते हैं। पर अन्तराल तो समूचे व्यक्तित्व का अधिष्ठाता है। इसकी परिष्कृत और विकसित स्थिति सामान्य मनुष्य को ऋषि-देवमानव स्तर तक पहुँचाने में समर्थ होती है। अपने भीतर विद्यमान इस देवलोक का माहात्म्य अध्यात्मवेत्ता सदा से बताते चले आ रहे हैं। उन्होंने उसकी अनुकम्पा उपलब्ध करके जीवन लाभ देने वाले अनेक प्रतिपादनों को समझाया है। सिद्धान्त और प्रयोग दोनों को उन्होंने गढ़ा, परखा और प्रचलित किया है।

मानव-जीवन में विकास की उच्चस्तरीय सम्भावनाएँ मन की उच्चस्तरीय परत अतिचेतन की असीम क्षमता को, आज जिसे पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक खोजने में लगे हैं, ऋषियों ने हजारों वर्ष पूर्व अपने अनुभवों और प्रयोगों के आधार पर जान लिया था। आधुनिक युग में मानसिक विकास की उन अवस्थाओं की सिलसिले वार व्याख्या श्री अरविन्द ने अपनी कृतियों "लाइफ डिवाइन" "सिन्थेसिस

ऑफ योग" आदि में करके ऋषि चिन्तन को एक वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित किया है। उनके अनुसार मन में निहित विकास की इन उच्च अवस्थाओं को प्रकट करने के लिए शारीरिक, मानसिक एवं व्यावहारिक परिष्कार करने की जरूरत पड़ती है। गुण, कर्म, स्वभाव में उत्कृष्टता का समावेश करना पड़ता है। महर्षि अरविन्द की सहयोगिनी श्री माँ के शब्दों में इसके लिए सरल तरीका है— अपनी एकाग्रता को प्रगाढ़ बना लेना। काम-छोटा हो या बड़ा, उसे समूची एकाग्रता के साथ किया जाय। यह बढ़ी हुई एकाग्रता पहले अचेतन की शक्तियों को प्रकट करती है। धीरे-धीरे इसके अन्तर्मुख होने पर अतिचेतन की एक-एक परतों के रहस्य उजागर होते जाते हैं।

इस तरह प्रत्येक क्षण का उपयोग विकास के साधन के रूप में किया जा सकता है। जीवन के सामान्य कार्यों में भी इसकी पवित्रता, प्रखरता की झलक आने लगती है।

परमात्मा ने हमें उच्चस्तरीय मानसिक एवं आत्मिक चेतना के जिस अगाध सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनाया है, उसे यो ही कुसंस्कारों की मिट्टी-धूल से ढँका रहना ठीक नहीं है। इसके लिए ऋषियों-महामानवों द्वारा बताये गये कारगर, परिष्कार उपायों को सतत् अभ्यास, उपयोग में लाकर देव मानव स्तर का विकसित जीवन प्राप्त किया जा सकता है। नर से नारायण बनने का जीवन लक्ष्य साधा जा सकता है।

योगी अरविन्द का अतिमानस और

धरती पर स्वर्ग

श्री अरविन्द के दर्शन की विशिष्टता यह है कि वे किसी अतिवादी मार्ग पर चलकर लक्ष्य तक पहुँचने को गलत मानते हैं और बुद्ध दर्शन पर ही विश्वास करते हैं, जिन्होंने हर क्षेत्र में मध्यम वर्ग को ही औचित्य पूर्ण बताया है, जैसा कि उनके दर्शन से स्पष्ट होता है। महर्षि अरविन्द योग एवं भोग दोनों की समन्वयात्मक मध्य स्थिति को ही सही मानते व अपनाने पर जोर देते हैं। इसी में पूर्वार्त और पाश्चात्य दोनों जगत का हित साधन है। उनके विचार में योग के लिए घर-संसार छोड़ना जरूरी नहीं है। वे दैनन्दिन कर्म को ही योग मानते हैं और गीता के "योग कर्मसु कौशलम्" सूत्र का समर्थन करते हैं। उनका मानना है कि योग साधना जिस तन्मयता से मन्दिर-मस्जिद गिरजाघरों में भिन्न रूपों में चलती है, उसी तत्परता व लगन से वह ऑफिस-कारखानों में दैनिक दिनचर्या के साथ भी चलती रह सकती है। आवश्यकता

है सिर्फ इसमें रस लेने की, अभिरुचि अन्तः से पैदा करने की।

अरविन्द-दर्शन की सबसे बड़ी खासियत यही है कि उन्होंने अपनी कल्पना में आध्यात्मिक जीवन को पूरी मनुष्य जाति के लिए संभव बताया है और कहा है कि यह शक्ति हर व्यक्ति के अन्दर विद्यमान है और प्रयत्नपूर्वक उसे प्रकट किया जा सकता है। उनसे अपने दर्शन में न सिर्फ इसी संभावना को अभिव्यक्त किया है वरन् इससे भी आगे की बात कही है कि सम्पूर्ण पृथ्वी को अतिमानवी, अतिमानस से अभिपूरित किया जा सकता है। सम्पूर्ण मानव जाति को अध्यात्मजीवी जाति के रूप में परिणत कर देव-स्तर तक पहुँचाया जा सकता है। फिर वह इसी मानव शरीर में इसी लोक में उन समस्त सुखों व आनन्द को भोग सकेगा, जिसे अभी धरती पर अलभ्य, स्वर्ग में उपलभ्य माना जाता है। इस तथ्य का उद्घाटन उन्होंने अपने महाकाव्य “सावित्री” में किया है। उसमें उनसे दावा किया है कि यह रूपान्तरण आयेगा और अवश्य आयेगा, परन्तु यह कोई दैवी चमत्कार के रूप में घटित नहीं होगा, न ही आकस्मिक रूप में आयेगा, वरन् इसकी प्रगति धीमे-धीमे होगी। वे कहते हैं कि “मनुष्य का रूपान्तरण अवश्यम्भावी है। वह होकर रहेगा और मनुष्य अध्यात्मजीवी अवश्य बनेगा। परम चेतना के भीतर जो अद्भुत शक्तियाँ छिपी हैं, उसका प्रकटीकरण मानव में होकर रहेगा।” महर्षि अरविन्द ने इसी जीवन को दिव्य जीवन की संज्ञा दी है।

वस्तुतः यह कोरी कल्पना नहीं, अपितु एक ऐसा सर्वांगपूर्ण जीवन दर्शन है, जो आत्मिकी के मूलभूत सूत्रों से जनसाधारण को परिचित कराता है। यह दर्शन यह सिखाता है कि अध्यात्म कायों का नहीं, हिम्मत वालों, जीवन्त वालों के लिये है। अध्यात्म का अवलम्बन किसी को पराश्रित, निठल्ला नहीं बनाता बल्कि उसे नरमानव से देव मानव बनाता, ऊँचे सोपानों पर चढ़ाता है।

योगीराज अरविन्द का “अतिमानस” वस्तुतः भगवद्चेतना का ही पर्याय है जो कि कालक्रम में निकट भविष्य में प्रकट होने वाला है। यह विकास की अन्तिम स्थिति होगी। चरम विकास का अन्तिम सोपान। इससे पूर्व मन के चार निम्न सोपानों का योगीराज ने उल्लेख किया है—उच्चतर मन, प्रकाशित मन, संबुद्ध मन तथा ओवर माइण्ड। अतिमानस इन सभी से ऊपर की व अन्तिम स्थिति है।

अरविन्द कहते हैं कि आज जो गहन अन्धकार मानवी बुद्धि के सामने अज्ञानवश छाया हुआ है, उसे दूर कर पाना मानव के बस की बात नहीं। जब कभी यह

धुंधलका छँटेगा तो वहाँ कोई चिन्तक अथवा विचारक नहीं होगा, होगा सिर्फ एक दृष्टा मानव-आत्म दृष्टा। फिर उसके लिए कुछ भी जानना, समझना असंभव न होगा। योगीराज के अनुसार ज्ञान का अरुणोदय बुद्धि के अवसान के बाद ही होता है। अगले दिनों यही क्रम चलेगा और इससे अतिमानव की उत्पत्ति होगी।

बुद्धि के धरातल से ऊपर उठने के बाद मनुष्य में तीन प्रकार के रूपान्तरण का उल्लेख श्री अरविन्द ने अपने दर्शन में किया है—चैत्तिक, आध्यात्मिक और अतिमानसिक। अहं के विसर्जन को उनसे चैत्तिक अथवा “साइकिक” रूपान्तरण कहा है। ज्ञान के अवतरण को आध्यात्मिक परिवर्तन के अन्तर्गत रखा, जबकि आरोह-अवरोह के अवलम्बन द्वारा अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति को उनसे अतिमानसिक उत्थान बताया है। संभवतः यही धरातल तैतिरीयोपनिषद् का विज्ञानमय कोश है।

यद्यपि श्री अरविन्द को इस रूपान्तरण-प्रक्रिया की पूर्णता की कोई निश्चित अवधि नहीं बतायी है, किन्तु यह उनसे स्पष्ट रूप से कहा है कि आरम्भ में यह रूपान्तरण स्वल्प लोगों को प्राप्त होगा। बाद में यही लोग समाज की धुरी साबित होंगे, जिसके गिर्द सारा समाज, सारा विश्व परिभ्रमण करेगा और अन्ततः उसका भी रूपान्तरण हो जायेगा।

यह तो उनसे भविष्य-दर्शन के आधार पर कहा है, पर वस्तुतः श्री अरविन्द के योग का मूल उद्देश्य क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने एक बार कहा था—“पूर्ण योग उस शक्ति को, उस प्रकाश को, उस चेतना को, उस वास्तविकता को पृथ्वी पर अवतरित करता है, जो पार्थिव चेतना को ऊपर उठा सके, उसे सामान्य से असामान्य बना सके और जो कुछ भी इस धरती पर है, उसे पूर्ण रूप से परिवर्तित कर सके। एक ऐसा देवोपम वातावरण बनाने में समर्थ हो, जो धरती पर ही स्वर्ग की अनुभूति करा सके।”

वे कहते हैं कि “किसी अन्य लोक की झलकी प्राप्त करना, ज्योति दर्शन होना, कोई आध्यात्मिक अनुभूति होना, ‘स्व’ की स्थिति से ऊपर उठ जाना, सार्वभौम आत्मा का अनुभव होना, यह तो हमारी आत्मिक प्रगति के आरम्भिक सोपान भर हैं। प्राचीन योगी इसी को इतिश्री मानकर स्वर्ग-मुक्ति की कल्पना करते थे, यही उनका परम लक्ष्य होता था।”

“पर हमारा उद्देश्य तो इससे बहुत उँचा है। हम चाहते हैं कि महत् चेतना, बाह्य चेतना को उतार कर शरीर स्तर तक लाया जाय, जिससे हममें सार्वभौमता पूर्ण रूप से संव्याप्त हो सके। यदि यह प्रथम शर्त ही पूरी न

हो सकी तो रूपान्तरण का पहला ही अनुबन्ध अधूरा रह जायेगा।”

रूपान्तरण की इस प्रक्रिया में प्रकृति मानव से महामानव, नर से नारायण, क्षुद्र से महान बनाने के लिए अपने ताने-बाने बुनने लगी है, मगर श्री अरविन्द का विचार है कि चूँकि मनुष्य इस सृष्टि का सबसे श्रेष्ठ प्राणी है, उसमें सोचने-समझने की क्षमता है, अस्तु, अगले विकास-क्रम में उसे प्रकृति के साथ कंधे-से कंधा मिलाकर चलना पड़ेगा, तभी ऐसा संभव हो सकेगा। उनका कहना है कि अब तक की विकास-प्रक्रिया में पदार्थ से जीवन एवं जीवन से मन प्रादुर्भूत हो चुके हैं। अब अतिमन की बारी है, जो मन के भीतर अन्तर्निहित है। विकास के अगले क्रम में मनुष्य को इसी सोपान पर पहुँचना है।

वे आगे कहते हैं कि बुद्धि की क्रिया-प्रतिक्रिया मनुष्य बहुत देख चुका है। अब उसे ऊँचा उठाने में बुद्धि असमर्थ है, किन्तु फिर भी यदि मनुष्य उसी पर निर्भर रहा तो फिर संभव है कि आगे उसका अस्तित्व ही न बच पाये। उनका विश्वास है कि प्रकृति की ओर से बुद्धि मानव को सहायक के रूप में प्रदान की गयी थी, परन्तु यह उसका दुर्भाग्य ही है कि वह बुद्धि को ही अपना सर्वस्व मान बैठा और आज वही बुद्धि उसे पतन-पराभव के गर्त में धकेल रही है। वे कहते हैं कि यदि मनुष्य को अपना अस्तित्व बचाना है तो उसे अतिमन, अतिमानस को अपने अन्तःकरण में उतारना ही पड़ेगा। यही उसका दैवी अनुग्रह का अगला पड़ाव है और संकेत भी। बुद्धि का आश्रय छोड़कर प्रज्ञा में प्रवेश करना ही अब मनुष्य के लिए अभीष्ट है एवं यह उसे करना ही पड़ेगा।

इस संदर्भ में अरविन्द-दर्शन की सबसे अधिक समानता पियरे टेलहार्ड द चार्डिन के चिन्तन के रूप में देखी जाती है। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक “दि फिन्मिना ऑफ मैन” में अनेक संपाद्यताओं के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मानवी विकास की अगली पद-यात्रा चेतना की ओर होगी और समाज अध्यात्मजीवी बनेगा, जिसमें न तो पारस्परिक विद्वेष होगा न आपसी वैमनस्य। वह अपनी समस्त विपत्तियों, समस्त समस्याओं-संघर्षों से मुक्त होकर रहेगा। किन्तु टेलहार्ड का विश्वास है कि यह सब कुछ विज्ञान ही सम्पन्न करेगा, जबकि श्री अरविन्द इसका प्रतिवाद करते हैं। उनके विचार में विज्ञान में वह सामर्थ्य नहीं कि वह समाज को बदल सके, रूपान्तरण अध्यात्म ही कर सकने में समर्थ है, ऐसा वे मानते हैं।

“मैन दि अननोन” “रिफ्लेक्शन्स ऑफ लाइफ” के बहुचर्चित लेखक अलेक्सिस कैरल की मूर्धन्य वैज्ञानिकों में गणना है। अनेकानेक तथ्यों-आँकड़ों के आधार पर वे भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि मानवी सभ्यता बड़ी तेजी से विनाश की ओर अग्रसर हो रही है और सर्वनाश अब सिर्फ बुद्धि पर निर्भर रहकर नहीं टाला जा सकता। यहाँ पर वे भी योगी अरविन्द के स्वर-में-स्वर मिलाकर बोलते हैं कि यदि आगे विनाश को रोकना है, तो मनुष्य को बुद्धि से आगे विकास करना पड़ेगा। उसे आत्मा और चेतना की ओर लौटना पड़ेगा और उन देवोपम गुणों को फिर से अपने अन्दर प्रतिष्ठापित करना होगा, जो कभी धर्म और अध्यात्म के साथ पुष्पित, पल्लवित हुए थे।

कुछ बिन्दुओं पर नीत्से की भी श्री अरविन्द के साथ समानता देखी जा सकती है। कहा जाता है कि महर्षि से पूर्व सुपरमैन की कल्पना नीत्से ने ही की थी। किन्तु दोनों की इस संबंध में अवधारणा में जमीन-आसमान का अन्तर है। किन्तु एक अन्य स्थान पर दोनों का मतैक्य स्पष्ट झलकता है। योगिराज ने अब तक की विकास-यात्रा को अतिमानस के अवतरण की तैयारी मात्र कहा है, जबकि नीत्से का कथन भी इसी से मिलता-जुलता है। उसने स्वीकारा है कि अब तक सम्पूर्ण मानवी इतिहास सुपरमैन के पदार्पण की पूर्व तैयारी भर है। नीत्से ने इस बात को बार-बार दोहराया है कि मनुष्य का विकास अधूरा है और उसका अतिक्रमण होना ही है।

हेनरी बर्से और मार्टिन हेडेगर की तरह प्रसिद्ध उर्दू शायर मुहम्मद इकबाल ने भी मानवी बुद्धि को विकास का रोड़ा कहा है और सम्पूर्ण मनुष्य जाति को उससे आगे बढ़ने का संदेश दिया है। उनकी निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है—“गुजर जा अक्ल से आगे कि यह चिरागे-राह है, मंजिल नहीं है।” और कहना न होगा कि अरविन्द के भी लगभग यही शब्द हैं।

एक पूर्ण मनुष्य की कल्पना करते हुए कबीर कहते थे—“पाछे-पाछे हरि फिरँ कहत कबीर कबीर”। यह उक्ति पूर्णतः परिपूर्ण रूप से विकसित मानव पर चरितार्थ होती है। इकबाल ने अध्यात्मवादी विकास की परिकल्पना कर मुहम्मद साहब के “तखल्लुकुबी अखलाक अल्ताह” अर्थात् “देवत्व को धारण करो” का पुरजोर समर्थन किया है। स्वयं वे कहते हैं—“खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तदबीर के पहले खुदा बन्दे से खुद पूछे, बता तेरी रजा क्या है।” यही वह पूर्ण मनुष्य है जिसे अरविन्द ने अध्यात्मजीवी महामानव कहा है और मार्टिन

हेडेगर ने “आर्थेटिक बिइंग”। इकबाल ने इसी को “नायबे इलाही” की संज्ञा दी है।

वस्तुतः आने वाला समय मनुष्य के चरम विकास, परिस्थितियों के आमूलचूल परिवर्तन का युग है। दार्शनिक, दूरदृष्टा मनीषी यह कहते ही आ रहे हैं, हमें अपनी भूमिका पहचाननी व निभानी भर है।

हमें प्रज्ञा का आश्रय लेना पड़ेगा

भौतिक विज्ञान के जन्म से ही जीवन सत्ता में मन को और उसी के साथ बँधी हुई प्राण विद्युत को महत्व दिया जाता रहा है। मन को विचारों का स्रोत माना गया है और समझा गया है कि मनुष्य की प्रगति और अवगति का कारण वही है।

मन का परिष्कृत पक्ष है—बुद्धि। बुद्धि के द्वारा समस्याओं और योजनाओं पर हम विचार करते हैं और उनका समाधान ढूँढ़ने में समर्थ होते हैं। वैज्ञानिक आविष्कारों का उद्गम भी यह बुद्धि संस्थान है। समझा जाता है कि सामाजिक, राजनैतिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान भी बुद्धि विवेचना से ही संभव है।

तत्त्वदर्शी बुद्धि से भी ऊँची एक परत को समझते हैं, उसे प्रज्ञा नाम देते हैं। यह मन, बुद्धि चित्त से ऊँची और अन्तःकरण की दिव्य चेतना के समीप है।

विश्व की अतीव उलझी हुई अड़चनों को सुलझाने में तत्त्वदर्शी प्रज्ञा की शक्ति का प्रयोग आवश्यक मानते हैं। उनका ल्थन है कि धरती पर स्वर्ग का अवतरण इसी आधार पर संभव है कि प्रज्ञा को उच्चस्तरीय व्यक्तित्वों में अवतरित, प्रखर, प्रचंड किया जाय और फिर उसे व्यापक वातावरण में प्रकीर्ण किया जाय। मानवी चेतना को मन, बुद्धि तक सीमित न रहने देकर प्रज्ञा के साथ जोड़ा जाय।

योगी अरविन्द ने उच्च मन, प्रकाशमान मन एवं संबुद्ध मन की कल्पना इस रूप में की है कि मन-शरीर की अपेक्षा आत्मा के अधिक निकट है। ऐसा लगता है कि जब योगी अरविन्द यह समझने लगे थे कि अब आगे का मानवी विकास बुद्धि और मन के वश की बात नहीं और यह विकास इस धरातलों से ऊपर उठकर ही संभव है, तो उनमें अतिमानस का अनुसंधान किया, उसी प्रकार शायद अब विज्ञान भी यह मानने लगा कि मात्र बुद्धि के बल पर इस विश्व-ब्रह्माण्ड का रहस्य जाना-समझा नहीं जा सकता, न ही इससे मानवी गुणियों का समाधान ही निकाला जा सकता है।

विज्ञान चाहे माने या न माने इसे, पर उन्नीसवीं-बीसवीं सदी के दार्शनिकों ने तो इसे करीब-करीब स्वीकार ही लिया है कि बुद्धि का चरमोत्कर्ष आ पहुँचा है। अब आगे की प्रगति की आशा बुद्धिवाद से नहीं की जा सकती। उनका कहना है कि अब आगे भी यदि बुद्धिवाद पर ही आश्रित रहा गया तो दुनिया का सर्वनाश सुनिश्चित है। इसीलिए अनेक दार्शनिकों ने बुद्धि की बड़ी कटु आलोचना की है। आरम्भ में इस क्षेत्र में महर्षि अरविन्द एककी थे, किन्तु बाद में अन्य अनेकों के साथ मूर्धन्य दार्शनिक पारस्करल और किर्केगार्ड भी इसी पंक्ति में आ खड़े हुए। इनने भी एक स्वर से यही कहा कि आज के बुद्धिवाद का एकमात्र विकल्प यही है कि व्यक्ति ईश्वर के उस स्वरूप पर विश्वास करे जिसकी शिक्षा वर्षों से आर्ष ग्रन्थ देते आ रहे हैं।

फ्रांस के मूर्धन्य दार्शनिक हेनरी बर्सों ने मानवी बुद्धि को अनुपयोगी और अपंग बताया है। उनका मानना है कि इण्ड्युशन अथवा संबुद्धि स्तर का विकास किये बिना मनुष्य की गति नहीं। उनका कहना है कि इससे कम में उसका उद्धार हो नहीं सकता। बर्सों ने स्पष्ट कहा है कि “मनुष्य जीवनधारा के साथ बहते हुए ईश्वर में समाहित हो जाय, यही उसकी अन्तिम नियति है, भाग्य है। इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं।”

मार्टिन हेडेगर और महर्षि अरविन्द समसामयिक थे, किन्तु वे एक-दूसरे को जानते नहीं थे, फिर भी उनके विचारों में काफी साम्यता देखी जाती है। महर्षि की तरह हेडेगर भी तर्क-बुद्धि को पर्याप्त नहीं मानते थे। उनका मत था कि मात्र विचारणा-कल्पना से हम सत्य की प्राप्ति नहीं कर सकते। सत्य को हमें जानना पड़ेगा, अपने जीवन में उतारना पड़ेगा, उसकी अनुभूति प्राप्त करनी पड़ेगी, तभी वह सत्य सही अर्थों में सत्य कहलायेगा। वैयक्तिक मोक्ष की कामना को श्री हेडेगर भी हेय मानते हैं और स्वीकारते हैं कि दुःख-तकलीफ से मुक्ति पाने के लिए मनुष्य के पास अब एक और अन्तिम उपाय ही शेष है और वह है, धरित्री का रूपान्तरण। अरविन्द के “नास्तिक बीइंग” (अध्यात्म जीवी मनुष्य) को हेडेगर ने “आर्थेटिक बीइंग” (प्रामाणिक जीव) के नाम से पुकारा है।

मूर्धन्य दार्शनिक हेनरी काल्डरवुड ने भी कुछ इसी प्रकार का मन्तव्य अपनी पुस्तक “इवाल्थूशन एण्ड मेन्स प्लेस इन नेचर” में प्रकट किया है। वे लिखते हैं कि “प्रतीत ऐसा होता है कि परिवेश की अपनी सीमाएँ हैं और विकास की पूर्णता तभी संभव है जब इसके लिए अभ्यान्तरिक प्रयास हों।” तात्पर्य यह है कि विकास का

कर्मक्षेत्र अब शरीर नहीं, चेतना है। मनुष्य को अब प्रकृति पर आश्रित न रहकर परिवेश की सरहदों से बाहर निकलने के लिए अन्दर से जोर लगाना पड़ेगा।

हेनरी बर्षों ने यह स्वीकारते हुए लिखा है कि “प्रकृति और जीवन के सारे रहस्यों को भौतिकी और रसायन शास्त्र के माध्यम से ही नहीं समझा जा सकता। इनकी एक निश्चित सीमा है, जिस सीमा तक विज्ञान पहुँच चुका है। अब आगे के रहस्यों को समझना चेतना-स्तर पर ही संभव है। वे यह भी स्वीकारते हैं कि चेतना विकास के आरम्भ से ही सृष्टि में विद्यमान है।”

पर विज्ञान इसे नहीं स्वीकारता और जड़ से ही चेतन के विकास सिद्धान्त को मानता है। आरम्भ से ही वैज्ञानिक मानते आये हैं कि सृष्टि के प्रारम्भ में संभवतः परमाणु, विद्युत, वाष्प, ईश्वर स्तर का कोई तत्व रहा हो। उसमें भीतर अथवा बाहर से कोई ऊर्जा प्रकट हुई हो, जिससे वह द्रव्य विकास की ओर अग्रसर हो चला।

किन्तु योगी अरविन्द विकास के इस सिद्धान्त से संतुष्ट नहीं हुए और इसका प्रतिवाद यह कहकर किया कि “नधिग केन इवाल्व द्विच इज नाट इनवाल्वड” अर्थात् जो जिसमें विद्यमान है ही नहीं उसकी उत्पत्ति उससे कैसे हो सकती है? और इसी के साथ उन्ने विज्ञान के सम्मुख कुछ मूलभूत प्रश्न उठाये कि यदि द्रव्य के भीतर ऊर्जा उत्पन्न हुई तो वह कहाँ से आई? अचानक प्रकट क्यों हो उठी और इतने काल तक निष्क्रिय क्यों पड़ी रही?

विज्ञान को मौन पाकर इसका उत्तर वे स्वयं देते हुए कहते हैं कि “अब हमें यह स्वीकारना ही पड़ेगा कि चेतना पदार्थ में पहले से ही सक्रिय अथवा निष्क्रिय अवस्था में विद्यमान थी, यह हो सकता है वह प्रच्छन्न रही हो। आत्मा जो आज शरीर में दिखाई पड़ती है, निश्चित रूप से वह प्रारम्भ से ही मैटर में विद्यमान थी। इसी प्रकार जीवन, मन और यहाँ तक कि उससे भी आगे कि शक्तियाँ, जिसका अभी उद्घाटन होना है, सब उसी मैटर में छिपी पड़ी हैं। यदि आदिम द्रव्य जड़ होता तो उससे चेतन उत्पन्न होने का कोई प्रश्न ही पैदा नहीं होता।” श्री अरविन्द का विकासवाद इसी उद्भावना पर आधारित है।

मानवी सत्ता का उद्भव कोशिकाओं से नहीं दिव्य चेतना से हुआ है। दिव्य चेतना की अनेक परतों में से हम प्रज्ञा को अपेक्षाकृत सरलतापूर्वक समझा और प्रयत्नपूर्वक प्रयुक्त कर सकते हैं। प्रस्तुत दल-दल में से निकलकर समूची मनुष्य जाति को उज्ज्वल भविष्य की ओर ले जाकर इसी आधार पर जिया जा सकता है।

चेतना का सर्वोच्च आयाम एवं उसकी

प्राप्ति

मानव जीवन को स्रष्टा का सर्वोत्तम उपहार कहा गया है। इस निर्माण में परमात्मा ने अपना सारा कला-कौशल सँजो दिया है। प्राणियों में इसके समकक्ष और कोई नहीं है। उसे विशिष्ट काया, मन, बुद्धि, प्रतिभा, सुविधा सभी कुछ उपलब्ध है। विकास क्रम में भी वह समस्त जीवधारियों से आगे है। इतना सब कुछ होने पर भी अभी मनुष्य का विकास अधूरा रह गया है। उसके पास जो बुद्धि-वैभव है, वह जीवन को सुव्यवस्थित रखने, चेतना के उच्चतम स्थिति तक पहुँचाने के लिए पर्याप्त नहीं है। सामान्य बुद्धि के रहते वह सृष्टि के मुकुटमणि के शीर्षस्थ पद से सम्मानित नहीं हो सकता। मन के जिस घरातल पर वह आज खड़ा है उससे भी अधिक उच्चस्तरीय चेतना की परतें उसके अन्तराल में विद्यमान हैं जिन्हें अब तक कुरेदा नहीं गया है। पूर्णता की प्राप्ति के लिए उसे मन के उच्चतर घरातल अतिमानसिक चेतना की ओर छलाँग लगानी होगी जिस पर पहुँचकर मनुष्य सर्वज्ञ बन जाता है। मानव से अतिमानव, महामानव, पुरुष से पुरुषोत्तम बनना, यही उसके विकास की अगली मंजिल है।

परमेश्वर के दस या चौबीस अवतारों की मान्यता में मत्स्य, कच्छप, बारह, नृसिंह, वामन से लेकर क्रमशः कलाओं का बढ़ते जाना और मर्यादा पुरुषोत्तम राम को बारह कलाओं वाला, पूर्ण पुरुष कृष्ण को सोलह कलाओं वाला माना जाना यही बताता है कि अवतारों में भी विकास क्रम के अनुरूप स्तर बढ़ता चला आया है। बुद्ध को बीस कलाओं का तथा उनके उत्तरार्द्ध निष्कलंक, प्रज्ञावतार को चौबीस कलाओं वाला निरूपित किया गया है। समस्त कलाएँ चौंसठ मानी गई हैं। उनमें से अवतारों का विकास अभी आंशिक रूप में ही हुआ है। जो होना शेष है, उसमें अभी यह प्रगतिशीलता का क्रम चलता ही रहेगा।

मनुष्य के बारे में भी यही बात है। आदिम काल में उसकी काया भले ही अधिक परिपुष्ट रही हो, पर वह चेतना की दृष्टि से निश्चय ही पिछड़ा हुआ रहा होगा। अब उसकी समझदारी, साधन-सम्पन्नता और कला के रूप में प्रकट होने वाली भाव समवेदना पहले की अपेक्षा कहीं अधिक है। यह प्रगति क्रम भविष्य में भी तब तक चलता रहेगा जब तक कि पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचने की बात बन न जाय।

मानव की सर्वतोमुखी प्रगति का कल्पना चित्र जो आप्त पुरुषों ने खींचा है, उसे एक शब्द में देवता कहा गया है। यही उसकी विकसित अवस्था है। वैदिक ऋषि का उद्घोष है—**कृषि मा देववन्तम्**। अर्थात् विकास में हमें दिव्यता उपलब्ध करनी है, देवता बनना है। दिव्यता का मूर्धन्य स्वरूप देवताओं में मिलता है। कहते हैं कि देवता स्वर्ग में रहते हैं। वे श्वेत वर्ण होते हैं तथा अजर अर्थात् जरा रहित प्रौढ़, परिपक्व रहते हैं। वे अमृत पीते और अमर रहते हैं। काया से प्रौढ़, सुन्दर, युवा, स्वस्थ, परिपुष्ट एवं सौन्दर्य सज्जित होते हैं। उनका व्यक्तित्व धवल, प्रखर एवं परिपक्व होता है। वे समूचे अन्तरिक्ष में उड़ते और कहीं भी जा पहुँचने की क्षमता रखते हैं। श्रेष्ठता का समर्थन-सहयोग करना उनका रुचिकर विषय और स्वभाव होता है।

मनुष्यों में जिनकी भावनाएँ सदा दूसरों को समुन्नत, सुसंस्कृत देखने को उमँगती रहें, जिनकी गतिविधियाँ सत्प्रवृत्तियों के समर्थन में निरत रहें, उन्हें देव स्वभाव का अधिष्ठाता कहा जा सकता है। सद्भाव सम्पन्न, उदार, सेवाभावी, परमार्थ-परायण व्यक्ति इसी वर्ग में गिने जा सकते हैं। जिनकी आत्मिक विभूतियाँ, भौतिक सम्पत्तियाँ उत्कृष्टता की समर्थक, आदर्शवादिता में सहयोगरत हों उन्हें देव प्रकृति का कहा जा सकता है। दैवी ज्योति से सम्पन्न ऋतम्भरा की प्रज्ञा से देदीप्यमान आत्माओं की संज्ञा ही देव है। दिव्यता की इसी कोटि में पहुँचने पर आत्मा मानवी उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुँची मानी जा सकती है। जबकि भौतिक विकासवादियों की मान्यता है कि वर्तमान मनुष्य विकास की चरम अवस्था है। उनकी भौतिकवादी बुद्धिमत्ता यह स्वीकार करने की स्थिति में नहीं है कि इसके आगे भी मानवी विकास और परिष्कार की संभावनाएँ विद्यमान हैं और वह अपनी वर्तमान प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करके महामानव बन सकता है। डार्विन की विकासवादी मान्यता ही उनके गले उतरती है, जिनने अपनी पुस्तक “द ओरिजन ऑफ स्पेशीज” में कहा है कि मनुष्य बन्दर की औलाद है। देवताओं की संतान न होकर वह पशुयोनि से विकसित हुआ है। अतः पाशविकता उसके भीतर जन्मजात रूप से विद्यमान है। इसके साथ ही उनने “सरवाइवल ऑफ दी फिटेस्ट” में यह भी कहा है कि अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए प्राणियों के मध्य संघर्ष छिड़ा हुआ है और इस संघर्ष में वही जीवित बचेगा जो शक्तिशाली होगा। मनोविज्ञानी फ्रायड ने भी मनुष्य को मूल प्रवृत्तियों का गुलाम बताकर प्रकारान्तर से डार्विन की उक्त मान्यता का ही समर्थन किया था। इन मान्यताओं ने न केवल मनुष्य से उसका देवत्व छीन लिया वरन् उसे नर-पशु भी बना दिया।

उपरोक्त मान्यताओं का खण्डन करते हुए प्रख्यात मनीषी डिजराइली ने अपनी कृति “आंदमी बन्दर है या देवता” में कहा है कि मनुष्य देवता के अधिक निकट है। मेरा स्वयं का निर्णय देवता के पक्ष में है, न कि डार्विन के पशु-मानव के पक्ष में। महर्षि अरविन्द ने भी उक्त मान्यताओं को निराधार बताया है। उनका कहना है कि स्रष्टा के निर्माणों में मनुष्य ही सबसे श्रेष्ठ प्राणी है। ईश्वर का अंशधर आत्मा होने के कारण उसमें अपने सृजेता की समस्त दिव्यताएँ, विभूतियाँ, क्षमताएँ बीज रूप में सन्निहित हैं। यद्यपि मन उसका सबसे बड़ा यंत्र है किन्तु इससे भी सूक्ष्मतर एवं सूक्ष्मतर शक्तिशाली यंत्रों की संभावनाएँ उसके भीतर विद्यमान हैं। उन शक्तियों को जाग्रत और विकसित करके वह देवता भी बन सकता है और स्वाधीन भी हो सकता है। चेतना के आकाश में ऊपर उठकर वह विकास क्रम में अतिमानस, सुप्रामेण्टल अवस्था को प्राप्त करके अतिमानव बन सकता है। इतना ही नहीं वह स्वयं पूर्णता को प्राप्त कर सम्पूर्ण मानव जाति का अध्यात्मीकरण कर सकने में भी समर्थ हो सकता है।

श्री अरविन्द ने विकासवाद का समाधान वेदान्त के आधार पर प्रस्तुत करते हुए कहा है कि मनुष्य ही वह चिन्तनशील प्रयोगशाला है, जिसमें से प्रकृति अतिमानव अथवा देवता उत्पन्न करने में लगी है। किन्तु मनुष्य स्वयं सोचने, विचारने और निर्णय करने की क्षमता वाला प्राणी है। उसे विवेक, बुद्धि का अनुपम उपहार जो मिला है, अतः उसका उपयोग करते हुए उसे अगले विकास की प्रक्रिया के साथ सहयोग करना पड़ेगा। पंचभौतिक तत्वों से जीवन, जीवन से मन उत्पन्न हो चुके हैं। अब मन के भीतर से अतिमन-सुपरमाइन्ड प्रकट होने वाला है। उसके विकास का यही अगला सोपान है। प्रकृति उसे इसी सोपान पर ले जाने के लिए प्रयास कर रही है, ईश्वरीय करुणा का भी यही संकेत है। अपने सावित्री महाकाव्य में उन्होंने कहा है कि मनुष्य के भीतर विश्वभर की संभावनाएँ उसी प्रकार प्रतीक्षा में हैं, जैसे बीज में छिपा हुआ वृक्ष अपने विकास की प्रतीक्षा करता है। अतिमानवी चेतना मनुष्य के अन्तराल में छिपी हुई है और वह अब प्रकट होने के समीप है। मनुष्य यदि सावधानीपूर्वक उस चेतना को ग्रहण करने का प्रयास करे तो सुपर-चेतना अवश्य अवतीर्ण होगी और मानव अपनी समस्त समस्याओं का समाधान अपने आप पा लेगा।

श्री अरविन्द का विकासवादी सिद्धान्त विज्ञान पर नहीं, अध्यात्म पर आधारित है। चेतना के उच्चस्तरीय सोपानों को उन्होंने चार भागों में विभक्त किया है, वे हैं क्रमशः उच्चतर मन, प्रकाशित मन, संबद्ध मन और

ओवर माइंड। सुपरमाइंड का स्तर ओवरमाइंड से ऊपर है। ये चेतना के ऐसे आयाम हैं, जिन्हें अब तक विरले लोग ही कुरेद सके हैं और उनमें छिपी शक्तियों का लाभ उठा सके हैं। इन्हें प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य अपने गुण, कर्म, स्वभाव को निर्मल बनाये, परिष्कृत करे। विचारणा, भावना, संवेदना में उत्कृष्टता का समावेश करके ही महानता का वर्णन किया जा सकता है। अरविन्द के अनुसार अतिमानसी घरातल की ओर बढ़ने की पहली शर्त यह है कि मन को शान्त किया जाय और साथ ही सर्वतोभावेन ईश्वर के प्रति समर्पित हो जाया जाय। इसी को उन्होंने इवोल्यूशन और इन्वाल्यूशन की प्रक्रिया के नाम से सम्बोधित किया है। इवोल्यूशन अर्थात् आरोह में मनुष्य अपनी चेतना को परिष्कृत करके प्रयत्नपूर्वक ऊपर को उठाता है। आत्म-विकास की साधना, उपासना के विविध-विधि उपचारों का सृजन इसीलिए हुआ है। दूसरी प्रक्रिया इन्वाल्यूशन-अवरोह में अतिमानवी विकास के लिये योग्य मार्ग का आश्रय लेकर भागवत् करुणा का आह्वान करना पड़ता है। सच्चे अर्थों में अध्यात्म जीवी-नास्तिक बीइंग होने का यही राजमार्ग है। इस अध्यात्मजीविता को प्राप्त करना ही व्यक्तित्व की पूर्णता है, वही उसका पूर्ण विकास भी है, यही मनुष्य में देवत्व की कल्पना है।

सुपरमैन अर्थात् उत्कृष्ट मानव की कल्पना, अरविन्द से पूर्व विभिन्न पाश्चात्य दार्शनिकों, मनीषियों ने भी अपने-अपने ढंग से की थी। प्रख्यात दार्शनिक शोपेनहावर का यदि वह जीनियस प्रतिभा सम्पन्न पुरुष था तो कार्लाइल का 'वीरपुरुष' हीरो तथा दार्शनिक वेगनर का 'शीजफ्रेड' एवं शिलर का 'कार्लमूर' था। दार्शनिक गेटे ने पूर्ण पुरुष का वर्णन देवता तुल्य शांत भाव वाले 'गोज' के रूप में किया है, जिसने अपने समस्त अव्यवस्थित मनोभावों, भावातिरेकों, मनोविकारों, मनोवेगों, दुष्प्रवृत्तियों को नियंत्रित एवं परिष्कृत कर लिया है। अपने चरित्र को विशिष्ट बना लिया और सर्जनात्मक हो गया है। ऐसा महामानव जीवन को बिना किसी अमर्ष-रोष के स्वीकार करता है।

'सुपरमैन' वस्तुतः जर्मन शब्द अवरमेन्श्च का रूपान्तरण है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'ओवरमैन' अतिमानव। इसको सर्वप्रथम विवादास्पद जर्मन दार्शनिक फ्रेडरिक नीत्शे ने अपनी दार्शनिक विचारधारा में प्रयुक्त किया था। इस परिकल्पना को उसने गेटे की रचनाओं से ग्रहण किया था। चूँकि उस पर डार्विन के विकासवाद के 'सरवाइवल ऑफ दी फिटेस्ट' का भूत सवार था, अतः उसने इसे एक अलग ही विशिष्ट श्रेणी प्रदान की। एक को शासक एवं अन्यान्यों को शासित बताया। इसका

बृहद वर्णन ओर्टेगा वाइ गैसेट ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द रिबोल्ट ऑफ दी मासेज' में किया है।

नीत्शे ने अपनी पुस्तक 'दस स्पेक जश्चुख' में कहा है कि मनुष्य के अन्दर अतिमानव का अस्तित्व विद्यमान है और वह सूर्य की भाँति काले बादलों को चीरकर बाहर आने की प्रतीक्षा में है। जश्चुख के माध्यम से उसने कहा है कि—सुपरमैन क्या है? यह मैं बताता हूँ। मनुष्य जो कुछ है, उस पर विजय पाना ही अतिमानव बनना है। क्या तुममें यह क्षमता है कि उस पर विजय प्राप्त कर सको? नीत्शे का अतिमानव नैतिक, अनैतिक, सदाचार, दुराचार का सम्मिश्रण एवं क्रूरता की प्रतिमूर्ति था जो सभी को मारपीट और दबा कर रखना तथा उन पर शक्तिपूर्वक आधिपत्य करना चाहता था। इसके इस दर्शन ने ही नाजी तानाशाह हिटलर को जन्म दिया और समूचे जर्मनी को ऐसे आवेश से भर दिया कि वे लोग अपने समुदाय को अति श्रेष्ठ मानने और समस्त विश्व पर शासन स्थापित करने की तैयारी करने लगे थे।

सत्रहवीं शताब्दी के प्रख्यात रहस्यवेत्ता जेजी. गिचेल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'थियोसोफिया पैक्टिका' में उत्कृष्ट मानव का चित्र खींचा है। उनसे उसे पूर्ण पुरुष (परफेक्ट मैन) कहा है। उनके अनुसार मनुष्य अपनी अन्तरात्मा के जितने नजदीक पहुँचता जाता है और उसमें गहराई तक प्रवेश करता जाता है, उसी अनुपात से वह दिव्यता की ओर अग्रसर होता जाता है। आत्मा की अनन्त गहराइयों में पहुँचने पर ही ईश्वर के दर्शन होते हैं और तभी मनुष्य पूर्णता को प्राप्त करता है। उन्होंने मानवी काया में पाँच ऐसे केन्द्रों का वर्णन किया जिनमें देवता, अवतारों, ईश्वर और आत्मा का निवास माना गया है। इनमें से किसी एक अथवा सभी केन्द्रों को जाग्रत करके तदनुरूप मानव से महामानव बना जा सकता है। उनकी यह मान्यता प्रकारान्तर से तैत्तरीय उपनिषद् की उस आख्यायिका से मिलती है जिसमें पंचकोश अनावरण का उपदेश किया गया है।

ख्याति प्राप्त ब्रिटिश लेखक जार्ज बर्नार्ड शा ने अपनी पुस्तक 'मैन एण्ड सुपरमैन' में मानवी विकास के दर्शन का प्रतिपादन किया है, जो उसे दिव्यता की ओर ले जाता है। अरविन्द के समकालीन दार्शनिक मार्टिन हेडेगर ने भी मनुष्य में देवत्व की कल्पना की है। अरविन्द जिसे नास्तिक बीइंग अध्यात्मजीवी कहते हैं, हेडेगर ने उसे आथेन्टिक बीइंग अर्थात् प्रामाणिक जीव कहा है। उनके अनुसार पृथ्वी का रूपान्तरण ही मनुष्य के सामने एकमात्र उपाय है। उर्दू के प्रसिद्ध शायर मुहम्मद

इकबाल ने अपनी रचना “असरारे खुदी” और “बाले जिबरील” में अतिमानव की कल्पना की है। उन्होंने इसके माध्यम से मनुष्य को आध्यात्मिक विकास की ओर बढ़ने को अभिप्रेरित किया है। मनुष्य की पूर्ण विकसित अवस्था को उन्होंने ‘नायबे इलाही’ की संज्ञा दी है।

सुप्रसिद्ध दार्शनिक गुरुजिएफ की गणना सिद्ध एवं संत पुरुषों में की जाती है। उनसे भी अध्यात्म जीवी के रूप में दिव्य-मानव का वर्णन किया है। उनका कहना है कि मनुष्य को चाहिए कि सबसे पहले वह अपने आपको पहचाने और अपना आध्यात्मिक विकास करके पूर्णता प्राप्त करे। उन्हीं के शिष्य पी. डी. औस्मेंकी ने इसी संभावना को अपनी प्रसिद्ध पुस्तक “ए न्यू माडल ऑफ दी यूनियर्स” में विशद रूप में गूढ़ तर्कों के माध्यम से सिद्ध किया है।

वस्तुतः मनुष्य की चेतन क्षमता असामान्य एवं अनन्त है। वह जैसा सोचता और करता है वैसा ही बन जाता है। उसकी विचारणा और कार्य करने की क्रिया पद्धति ने उसे इस वैज्ञानिक युग तक पहुँचाया है। अपनी अपूर्णता को पूर्ण करने के सभी साधन सृष्टा ने उसे बीज रूप में सौंपे हैं। देव-मानव बनना ही उसका लक्ष्य है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने वाले अध्यात्मजीवी अति-मानव के लक्षण क्या होंगे? इस संदर्भ में विभिन्न मनीषियों के अपने-अपने अनुमान अलग-अलग हैं। किसी का कहना है कि वह दानवी शक्ति सम्पन्न दीर्घजीवन जीने वाला होगा तो किसी का मानना है कि वह अमर हो जायेगा। अन्यो की धारणा है कि वह स्वेच्छा मृत्यु का वरण करेगा। इस बारे में श्री अरविन्द की अपनी पृथक् धारणा थी कि वह अमरता के लोक से आकर पृथ्वी पर स्वर्ग बसाने वाला अमरता का साकार रूप होगा। अपने प्रत्येक कार्य के पीछे वह प्रेरणाप्रद पद-चिन्ह छोड़ जायेगा जो भविष्य में आने वाली पीढ़ी के लिए मार्गदर्शक आधार स्तम्भ सिद्ध होंगे। ऐसे व्यक्ति की व्यक्तिगत चेतना समष्टिगत चेतना से एकाकार हो जायेगी और वह अपने में सबको तथा सबमें अपने को देखने वाला तथा समस्त प्राणियों का हित साधन करने वाला बन जायेगा। तब उसके भीतर न ईर्ष्या होगी न द्वेष, न कीर्ति की कामना और न ही प्रभुत्व जमाने, शासन करने का लोभ होगा। वह स्वयं तो मुक्त होगा ही, अपनी नाव पर बिठाकर अन्य असंख्यों को भी भवसागर से पार लगायेगा, पूर्णता तक पहुँचायेगा।

मानवी विशेषता में उसके अतिचेतन स्तर सुप्रासेण्टल को ही दैवी विभूति माना गया है। वह उसे प्रचुर परिणाम में उपलब्ध भी है, पर कषाय-कल्मषों से आच्छादित होने के कारण प्रसुप्त स्थिति में पड़ी है। अन्तःचेतना की इस

उत्कृष्टता को ऋषियों, महामानवों, सिद्धपुरुषों में से प्रत्येक को किसी न किसी प्रकार अर्जित करना ही पड़ा है।

बलिष्ठता के लिए व्यायाम, विद्वता के लिए अध्ययन, उपार्जन के लिए पराक्रम की जिस प्रकार आवश्यकता है, उसी प्रकार नर से नारायण, मानव से अतिमानव-देवमानव बनने के लिए उच्चस्तरीय योग साधना का स्वरूप समझने तथा उनका सही रूप में प्रयोग करने की दिशा में कदम बढ़ाना अनिवार्य है।

चेतना क्षेत्र में विज्ञान का प्रवेश हो

विज्ञान भौतिक जगत की एक महाशक्ति है। प्रकृति के भण्डार में असीम प्रयोजनों में काम आने वाली अगणित क्षमताएँ भरी पड़ी हैं। उनमें से क्रमशः प्रयत्नपूर्वक मनुष्य के हाथों में कितनी ही सामर्थ्य लगती गयी है। एक के बाद एक खोज करते हुए उसने सुख-समृद्धि के अनेकों सुविधा-साधन जुटा लिए हैं। विज्ञान ने मनुष्य के हाथों असीम सामर्थ्य प्रदान की है। इस आधार पर वह सम्पन्न भी हुआ है और बुद्धि-बल बढ़ाता प्रगति पथ पर निरन्तर आगे बढ़ा है। यह प्रकृति के रहस्य को खोजते जाने और उसके ज्ञान के सहारे उपयोगी उपकरण बनाते जाने का ही प्रतिफल है।

परन्तु संसार में पदार्थ क्षेत्र ही सब कुछ नहीं है, उसके समतुल्य एवं अधिक महत्वपूर्ण चेतना क्षेत्र भी है। विज्ञान को मात्र भौतिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं होना चाहिए, उसे चेतना क्षेत्र में भी प्रवेश करना चाहिए और व्यक्तित्व निखारने वाले कामों में भी हाथ डालना चाहिए। यह काम अध्यात्म विज्ञानियों का है। मनुष्य को अन्य प्राणियों की तुलना में स्वास्थ्य, बुद्धि, प्रतिभा, कला-कौशल, व्यवहार, संयम आदि की दृष्टि से अधिकाधिक समुन्नत और सुसंस्कृत बनाना अध्यात्म क्षेत्र के विज्ञानियों-प्रज्ञावान मनीषियों-योगी, तपस्वियों का काम है। उनका कार्यक्षेत्र भौतिक विज्ञान से भी कहीं अधिक बढ़ा-चढ़ा और अधिक उपयोगी है। पदार्थ विज्ञान सुविधा विनिर्मित कर रहा है। उन साधनों का उपयोग जिसे करना है, उस मनुष्य का दृष्टिकोण परिष्कृत करना असामान्य काम है। उसने अनेकों कुटेवें अपना ली हैं और ऐसे क्रिया-कलाप अपना लिये हैं, जो मात्र व्यक्ति के लिए ही नहीं समूचे समाज के लिए हानिकारक हैं। ढेरों प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जिनसे पीछा छूटना और छुड़ाया जाना चाहिए। ढेरों सत्प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जिन्हें अभी अपनाया नहीं गया अन्यथा सामान्य परिस्थितियों में रहने वाले व्यक्ति भी महामानव स्तर का बन सकता था। इस सन्दर्भ में प्रयोग

करना और उपलब्धियों से जनसाधारण को अवगत करना यह आत्म-वेत्ताओं, का, मनीषियों का काम है।

मनुष्य का शरीर और मस्तिष्क बहुमूल्य यन्त्र है, उसके अन्तराल में प्रकृति की पदार्थ परक और परब्रह्म की चेतना परक किमूतियाँ समाविष्ट हैं। वे बीज रूप में प्रसुप्त स्थिति में रहती हैं, उन्हें अंकुरित और पल्लवित किया जा सके तो नर के भीतर सोया हुआ नारायण जगाया जा सकता है और पुरुष को पुरुषोत्तम की झँकी करने को मिल सकती है। इस स्तर के प्रयत्नों को योगाभ्यास एवं तपश्चर्या कहते हैं। साधना भी इसी को कहा जाता है। पुरातनकाल के तत्वदर्शी अपनी काया में सन्निहित उन सूक्ष्म केन्द्रों को समझते थे, साथ ही उन्हें प्रखर बनाने की विद्या का प्रयोग करके न केवल अपने को असामान्य बनाते थे वरन् अन्यान्यों को भी इस कौशल से लाभान्वित करते थे। यह गुह्य विद्या है। तो भी है यह यथार्थ और प्रचण्ड। जिनमें श्रद्धा हो वे अनुभवी, प्रवीण, पारंगतों के मार्ग-दर्शन में यह प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते हैं और अभ्यास की परिणतियों से लाभान्वित हो सकते हैं। पिण्ड में ब्रह्माण्ड का समग्र ढाँचा विद्यमान है। बीज में समग्र वृक्ष और शुक्राणु में परिपूर्ण मनुष्य रहता है। इसी प्रकार पिण्ड में ब्रह्माण्ड है। मनुष्य में देवत्व का उदय करने के लिए उसे प्रसुप्ति को जाग्रति में बदलना होगा। यह योगाभ्यास का विषय है। इसे चेतना परक विज्ञान क्षेत्र ही समझना चाहिए। पिछले दिनों यह क्षेत्र पाखण्डियों के हाथों रहा है, अब उसे मनस्वी, तेजस्वी और तपस्वी हाथ में लें, तो विज्ञान के अभूरेपन की भी पूर्ति हो चले और उस प्रगति से ऐसा लाभ मिले जो भौतिक विज्ञान से भी उपलब्ध नहीं हुआ है।

इन दिनों ब्रेनवाशिंग के नाम से किये जाने वाले प्रयोग की महती आवश्यकता है। इस क्षेत्र में भौतिक विज्ञानियों ने भी यत्किंचित प्रयोग किया है और विरोधियों को समर्थक बनाने में आंशिक सफलता पाई है। उनकी कल्पना है कि सशक्तों द्वारा दुर्बलों के मनों पर आधिपत्य करने के उपरान्त पालतू पशुओं जैसा इच्छानुवर्ती होने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। उनके प्रयोग सफल हुए तो समर्थ नफे में रहेंगे, किन्तु मनुष्य का स्वतन्त्र चिन्तन और आत्मबल समाप्त हो जायेगा। अस्तु, यह क्षेत्र विशुद्ध रूप से अध्यात्मवादियों का है, उन्हें लोक-कल्याण की दृष्टि से उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व अपनाने के लिए जन-साधारण को प्रशिक्षित करना चाहिए। 'ब्रेन वाशिंग' उन्हीं का काम है। इसे हाथ में लेकर वे मनुष्य जाति की महती सेवा-साधना कर सकते हैं।

विज्ञान ने पंच भौतिक मानवी क्रिया के हृदय, फुफ्फुस आदि अवयवों और रक्त-मांस, अस्थि आदि घटकों का स्वरूप और क्रिया-कलाप समझ लिया है। शल्य क्रिया क्षेत्र में उसने श्रेय भी प्राप्त किया है। मस्तिष्कीय घटकों व रसायन स्राव के स्थान एवं क्रिया-कलाप समझकर इलेक्ट्रोडों द्वारा उस क्षेत्र को वशवर्ती बनाया जा सकता है। वस्तुतः मन-क्षेत्र चेतना से जुड़ता है और इसे सँभालने की जिम्मेदारी तत्त्वज्ञानियों-अध्यात्मवादियों पर आती है। पर उनमें गहराई में उतरना छोड़ दिया है। वे पाखण्ड के सहारे अपनी गाड़ी चला रहे हैं। यह जादू का खेल तभी तक चल सकता है जब तक भारत में अन्ध श्रद्धा वाले अनगढ़, भावुक भक्तजनों का अस्तित्व बना रहेगा। भौतिक विज्ञानियों ने जब अध्यात्म क्षेत्र का मोर्चा खाली देखा तो उसमें भी अपनी टाँग अड़ानी प्रारम्भ कर दी और प्रसन्नता की बात है कि कुछ न कुछ सफलता प्राप्त कर ली है। मैस्मेरिज्म-हिप्नोटिज्म का सिद्धान्त बहुत दिन पहले ही हाथ लग गया था। अब मैटाफिजिक्स साइको साइक्नेटिक्स एक मान्यता प्राप्त विज्ञान की शाखा है। दूरदर्शन, दूरवार्ता, भविष्य कथन, मन को पढ़ना आदि इसमें कई नई धाराएँ सम्मिलित हो गई हैं। परामनोविज्ञान ने मरणोत्तर जीवन, अतीन्द्रिय क्षमता आदि पर नया प्रकाश डाला है। फिर भी सन्देह इस बात का है, वे अध्यात्म के आत्मापरक अन्तःकरण से संबंधित पक्षों पर अधिक सफलता न प्राप्त कर सकेंगे। क्योंकि उसके लिए चारित्रिक पवित्रता की विशेष रूप से आवश्यकता होती है। जबकि पाश्चात्य विज्ञानी इस सन्दर्भ में काफी पिछड़े हुए होते हैं।

जिन रहस्यों पर अधिक प्रकाश पड़ने की आवश्यकता है, उनमें मानवीय विद्युत, मस्तिष्कीय घटकों के कम्पन, अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ और उनसे निकलने वाले स्रावों पर नियन्त्रण करने की पद्धति मानवी चेतना को समुन्नत करने की दृष्टि से अत्यधिक आवश्यक है। हार्मोनों पर नियन्त्रण की तरह ही गुण-सूत्रों को इच्छानुरूप प्रवाह दे सकने की बात भी असामान्य है। शरीर में संव्याप्त रासायनिक पदार्थों में हेरा-फेरी की बात भी है। जीव कोषों और ज्ञानतन्तुओं की सूक्ष्म संरचना को प्रभावित करना, मस्तिष्क की विभिन्न कोशिकाओं के प्रवाह में परिवर्तन करना वह तथ्य है, जिनके ऊपर आध्यात्मिक ऋद्धि-सिद्धियों का आधार है।

मनुष्य को हर दृष्टि से समुन्नत स्तर का बनाना है, उसमें देवत्व का अभ्युदय करना है तो इन रहस्यों का समझना ही नहीं, वशवर्ती भी करना आवश्यक है। यह कार्य भौतिक यन्त्रों, उपकरणों एवं क्रिया-कलापों से संभव

नहीं। इसके लिए अध्यात्म क्षेत्र पर अधिकार रख सकने वाले पवित्रता एवं प्रखरता सम्पन्न लोगों की कार्यक्षमता एवं विशिष्ट योग्यता की आवश्यकता पड़ेगी।

भौतिक उपलब्धियों के समान ही यदि आत्म-विज्ञान अन्तःक्षेत्र की विभूतियों को करतलगत कर सके तो ही समझना चाहिए कि समग्र विज्ञान में प्रवेश पाना सम्भव हुआ। मात्र पदार्थों पर अधिकार करना उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जिनके बिना मानवी विशिष्टता अवरुद्ध बनी रहे। बिना सुविधा-साधनों के भी काम चल सकता है। आत्मवेत्ता तो विशेष रूप से कम से कम साधनों से काम चलाते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि यह अब इतना आवश्यक नहीं कि इनके बिना व्यक्तित्व को उत्कृष्ट स्तर का न बनाया जा सके और सच्चे अर्थों में विभूतिवान न बना जा सके। भौतिक साधनों की प्राचीनकाल में कमी थी। इतनी बहुलता न थी, जितनी इन दिनों है, तो भी मनुष्य आत्मबल के सहारे सुखी भी रहते थे और समुन्नत एवं सुसंस्कृत भी। इसके विपरीत इन दिनों जिनके पास साधनों की बहुलता है, वे भी बहिरंग एवं अंतरंग क्षेत्रों में विपन्न-उद्विग्न माने जाते हैं।

मनुष्य व्यक्तिगत जीवन में उल्लसित-विकसित रहे तथा आनन्द से परिपूर्ण दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि उभयपक्षीय उपलब्धियाँ हस्तगत करके वह सच्चे अर्थों में अपनी गरिमा उपलब्ध कर सका। ऐसे व्यक्तित्वों को जितनी बहुलता होगी, उतना ही वातावरण सुख-शान्ति से भरा-पूरा होगा और स्वल्प साधनों में भी प्रगति एवं समृद्धि की परिस्थितियों का अनुभव होगा।

ऋषियों ने इतने उच्चस्तर की विभूतियाँ उपलब्ध की थीं जिन पर आज तो सहसा विश्वास करना कठिन होता है। समूचे मानव समाज को आगे बढ़ाने एवं ऊँचा उठाने की क्षमता जिस प्रवाह एवं वातावरण में है उसकी उपलब्धि आत्म विज्ञान की प्रगति से ही संभव हो सकती है।

अविज्ञात को मिलेगी अब विज्ञान की

मान्यता

कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के सुविख्यात न्यूक्लीयर भौतिक विज्ञानी डॉ. जॉन जुंगर मैन के अनुसार वैज्ञानिक खोजें वस्तुनिष्ठ होती हैं और यह अंतिम सत्य पर नहीं पहुँच सकतीं क्योंकि नित नूतन आविष्कारों से उनकी सत्यता पर प्रश्न चिन्ह लगता चला जाता है। अतः खोज अनुसंधान मानवी काया में सन्निहित सूक्ष्म दिव्य सत्ता की करनी चाहिए, जिसका समय-समय पर आइन्स्टीन,

आइजक, न्यूटन, लुईपाश्चर, बेम्स जीन्स जैसे विश्वविख्यात वैज्ञानिक मनीषियों तथा प्राच्य अध्यात्मवेत्ताओं ने अपनी कृतियों में प्रतिपादन किया है और कहा है कि मानवी चेतना एवं उसकी प्रचंड विचारशीलता का प्रभाव आस-पास के वातावरण, प्राणियों और निर्जीव पदार्थों को प्रभावित करता है।

प्रख्यात खगोलवेत्ता जेम्स जीन्स की मान्यता है कि विश्व ब्रह्माण्ड की संरचना जटिल रासायनिक क्रिया-प्रक्रियाओं के जोड़-तोड़ से बनी एक बड़ी मशीन की अपेक्षा महान विचारों की पूँजीभूत शक्ति के रूप में दिखाई पड़ती है। मानवी चेतना का प्रभाव और आधिपत्य सृष्टि के कण-कण में अनुभव किया जा सकता है। डॉ. जुंगर मैन के अनुसार मानवी चेतना अपने आस-पास के वातावरण एवं उन उपकरणों, मशीनों, पदार्थों को भी प्रभावित करती है जिनके साथ वह कार्य करती है। इस तथ्य की सत्यता को प्रमाणित करने के लिए जुंगर मैन ने एक अत्यंत संवेदनशील उपकरण 'इण्टरफेरोमीटर' लेसर उपकरण का आविष्कार किया और कुछ विशिष्ट व्यक्तियों की सामान्य उपस्थिति से भी उपकरण को प्रभावित होते देखा।

'स्टेनफोर्ड रिसर्च इन्स्टीट्यूट' के मूर्धन्य भौतिक विज्ञानी डॉ. हेराल्ड फुथाफ ने इसी तरह का प्रयोग प्रतिभाशाली अतीन्द्रिय क्षमता सम्पन्न इंगोस्वान नामक मनोविज्ञानी के साथ किया। डॉ. फुथाफ ने वैज्ञानिकों की उपस्थिति में एक शक्तिशाली मैग्नेटोमीटर धरती के गर्भ में छिपाकर उस कंक्रीट से बन्द कर दिया। स्वान ने अपनी अतीन्द्रिय मानसिक दक्षता के बल पर बिना किसी उपकरण की सहायता के मैग्नेटोमीटर की सुई में विक्षेप पैदा कर दिया। यह कार्य स्वान ने दूर से ही चेतन क्षमता द्वारा मशीन को प्रभावित करके दिखाया।

काया की विलक्षण क्षमताओं का अध्ययन करने के लिए वैज्ञानिकों ने परामनोविज्ञान से सम्बन्धित "साइक्रोटानिक्स" नामक एक स्वतंत्र विज्ञान का विकास किया है। जिसके अंतर्गत शरीर में सन्निहित बायोइलेक्ट्रिसिटी, बायोमैग्नेटिज्म, बायोप्लाज्मा, आभामंडल-प्रभामंडल जैसे अनेक महत्वपूर्ण विषयों के साथ मनुष्य और पदार्थों-जीवित और निर्जीव के मध्य होने वाली अन्यान्य क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। वैज्ञानिकों ने अपने अनुसंधान में पाया है कि मानवी काया सदैव चहुँओर से एक रहस्यमय शक्ति से घिरी रहती है। शक्ति प्रवाह के उस अदृश्य घेरे का इटली के मूर्धन्य वैज्ञानिक प्रोफेसर गैलबानी ने "एनीमल इलेक्ट्रिसिटी" तथा सुप्रसिद्ध आस्ट्रियन चिकित्सक अन्टन मेस्मर ने "एनिमल

मैग्नेटिज्म" नाम से सम्बोधित किया है। उस समय इन आविष्कारों को घोखा-घड़ी और हैण्डट्रिक कहकर इन वैज्ञानिकों को अपमानित, प्रताड़ित किया गया था, किन्तु आज मानवी क्राया की विलक्षण क्षमता, उससे सतत निकलने वाले प्राण वैद्युतीय ऊर्जा प्रवाह, व्यक्तित्व का प्रभाव आदि वैज्ञानिकों के लिए अनुसंधान का स्वतंत्र विषय बन गये हैं। वैज्ञानिकों ने इसे बायोप्लाज्मा, बायोप्रेविटी, "ओर्गोन एनर्जीफील्ड", माइटोजेनेटिक रेडियेशन, बायोल्यूमीनीसेन्स, अल्ट्रासोनिक रेडिएशन, बायोफ्लक्स आदि कितने ही नाम दिये हैं।

दक्षिण कजाकिस्तान के अल्माअता स्थित किरोव यूनीवर्सिटी के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रोफेसर विकटर इन्गुशिन ने अपने अनुसंधान निष्कर्ष में कहा है कि प्रत्येक जीवित प्राणी का मात्र भौतिक शरीर ही नहीं होता वरन् 'बायोप्लाज्मा' से निर्मित उसका एक ऊर्जा शरीर-एनर्जी बाडी भी होती है। अध्यात्म शास्त्रों में इसे ही सूक्ष्म शरीर "इथरिक बाडी" कहा गया है और बताया गया है कि प्राण ऊर्जा का विराट् समुद्र शरीर को घेरे रहता है। सूक्ष्म शरीर के माध्यम से प्राण तत्व समस्त नस-नाड़ियों-तंत्रिका तंत्रों में संचरित, संवहित होता रहता है। सूक्ष्म शरीर के कण स्थायी रूप से सतत परिवर्तित होते रहते हैं भौतिकवादों के अनुसार ठोस, द्रव, गैस के अतिरिक्त पदार्थ की चौथी अवस्था 'प्लाज्मा' है, जो सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। इसी से सूर्य का निर्माण हुआ है। योगशास्त्रों में प्राण ऊर्जा को सूर्य-सविता के निर्माण में भाग लेने वाले तत्व से सम्बन्धित माना गया है और कहा गया है कि यह प्राण ऊर्जा विश्व ब्रह्माण्ड के प्रत्येक घटक को प्रभावित परिवर्तित करने में सक्षम होती है।

वैज्ञानिकों की मान्यता है कि यह भौतिक संसार विभिन्न विकरणों, प्रकम्पनों, तरंग लम्बाइयों, ऊर्जा तथा बल क्षेत्रों में वाष्पीकृत हो रहा है। विश्व-ब्रह्माण्ड के समस्त पदार्थ ऊर्जा स्वरूप ही हैं, जैसा कि काया के संवेदी अंग हमें इसका आभास कराते, और उन्हें प्रभावित करते हैं। सोवियत संघ के मूर्धन्य एकैडेमिशियन प्रोफेसर अलेक्जेंडर डुब्रोव ने जैव गुरुत्वाकर्षण "बायोप्रेविटी" पर महत्वपूर्ण खोज की है और अपने शोध निष्कर्ष में बताया है कि जीवित प्राणियों में गुरुत्वाकर्षण तरंगों को उत्पन्न करने और उन्हें अलग पहचानने की क्षमता होती है। डुब्रोव के अनुसार मनुष्य की शारीरिक कोशिकाएँ इन तरंगों को सतत विकिरित करती रहती हैं और यही तरंगें दूरश्रवण, दूरभाष, दुरानुभूति, पूर्वाभास, आकाशगमन जैसे अतीन्द्रिय कार्यों को सम्पन्न कराती हैं। कोशिका विभाजन के समय कोशिकाओं से फोटोन कणों की ऊर्जा युक्त

विकिरण किरणें तथा दस घात छह से दस घात सात साइकल्स प्रति सेकण्ड की उच्च फ्रिक्वेन्सी युक्त अल्ट्रासोनिक तरंगें भी निकलती हैं। नोवोसीबिर्स्क विश्वविद्यालय (रूस) में अनुसंधानरत वैज्ञानिकों-सिमोन एन्चुरिन, एल. पी. मिखाइलोवा तथा उनके सहयोगियों ने अपने ५०० से अधिक प्रयोग परीक्षणों के आधार पर भी यही निष्कर्ष निकाला है कि क्राया की प्रत्येक कोशिका से अल्ट्रावायलेट रेडिएशन, बायोप्रेविटेशनल वेब्स एवं अल्ट्रासोनिक वेब्स निकलती रहती हैं और तथा दूरस्थ की कोशिकाओं को अपने अदृश्य तरंगों-प्रकम्पनों के माध्यम से प्रभावित करती हैं। इनके अपने सुनिश्चित एवं गुप्त—'कोडेड इन्फॉर्मेशन सूचना-संदेश होते हैं। इन्हीं के आधार पर मनुष्य का अदृश्य प्रवाह आस-पास के वातावरण, सजीव तथा निर्जीव पदार्थों को भी प्रभावित करता और अपने अनुकूल मोड़ता-मरोड़ता है।

साइक्रोट्रानिक अनुसंधान के क्षेत्र में किलियन फोटोग्राफी के आविष्कारक रूसी दम्पति श्री सेम्योन और वेलेंन्तीना किलियन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इलेक्ट्रिकल फोटोग्राफी की इस विधा पर सोवियत यूनियन के अतिरिक्त चेकोस्लोवाकिया, इंग्लैण्ड और अमेरिका के वैज्ञानिक अनुसंधानरत हैं। भारत के डॉ. नरेन्द्रन तथा डॉ. रमेश सिंह चौहान जैसे मूर्धन्य वैज्ञानिक चिकित्सक भी इस क्षेत्र में अनुसंधान कार्य कर रहे हैं। शीला ओस्ट्रैंडर और लिन थ्रोइडर की प्रसिद्ध पुस्तक "साइकिक डिस्कवरीज विहाइन्ड द आयरन कर्टेन" तथा सुविख्यात परामनेविज्ञानी डा. थेल्मार्मोस की पुस्तक "द प्रोबेबिलिटी ऑफ द इम्पासिबुल" में प्राण ऊर्जा पर वैज्ञानिक अनुसंधानों का वर्णन किया गया है। इन अनुसंधानों से प्राण ऊर्जा-जैव वैद्युतीय ऊर्जा के अनेक अविज्ञात तथ्य उद्घाटित हुए हैं।

सुप्रसिद्ध चेक इंजीनियर राबर्ट पैवलित्ता ने प्राण ऊर्जा का अध्ययन करने के लिए "साइक्रोट्रानिक जेनरेटर" नामक एक उपकरण का आविष्कार किया है। इसकी विशेषता यह है कि यह बायोएनर्जी से परिचालित है और एक बार चार्ज कर देने के बाद इससे कई प्रकार के प्रयोग-परीक्षण किये जा सकते हैं। पैवलित्ता इसे स्वयं अपने प्राण ऊर्जा से चार्ज करते हैं और मटमैले मिट्टी युक्त पानी से भरे जार को जेनरेटर के पास रखकर इच्छानुसार कीचड़ का अवक्षेपण शीघ्र करा देते हैं। इसी तरह किसी पौधे की वृद्धि दर में बढ़ोत्तरी करा लेते हैं, आदि। चेकोस्लोवाकिया के ही एक दूसरे इंजीनियर जुलियस क्रामेस्की ने पैवलित्ता से मिलते-जुलते प्राण ऊर्जा के अनेक प्रयोग-परीक्षण वैज्ञानिकों के समक्ष प्रस्तुत किये। क्रामेस्की अपने प्राण विद्युतीय ऊर्जा के

माध्यम से पानी पर तैरती हुई वस्तुओं की गति में अभिवृद्धि कर उसे मनोनुकूल दिशा में आगे-पीछे तैरने के लिए बाध्य कर देते हैं। जार के अन्दर धागे से लटके हुए किसी वस्तु को दूर से ही हाथ से प्राण प्रवाह द्वारा उसे दक्षिणावर्त या वामावर्त दिशा में घुमाने लगते हैं। वे बोर्ड पर लगे स्विच पर आँखों को एकत्र कर उसे ऑन-ऑफ करके प्रकाश बल्व को जला देते हैं। सुप्रसिद्ध न्यूरोफिजियोलॉजिस्ट ई. ग्रे वाल्टर के अनुसार मनुष्य अपने मस्तिष्क के कार्टेक्स को इलेक्ट्रोड्स के माध्यम से टी. वी. सेट से सम्बन्धित करके इच्छाशक्ति के सहारे अपने कल्पना लोक को पर्दे पर देखने की क्षमता रखता है। वाल्टर इस तरह के कई प्रयोग कर चुके हैं और सफलता के प्रति आशान्वित हैं।

किल्नियन फोटोग्राफी से अर्जित ज्ञान का प्रयोग अब चिकित्सा विज्ञानी शारीरिक एवं मानसिक रोगों का पता लगाने में करने लगे हैं। कैंसर जैसी घातक बीमारियों को इस विधि द्वारा समय से पूर्व ही पहचान लिया जाता है। प्रख्यात चिकित्सा विज्ञानी डॉ. थेल्मामॉस और फ्रांसिस सावा ने अपने अनुसंधान में पाया है कि सिर दर्द जैसे मामूली स्वास्थ्य परिवर्तन से भी आभामण्डल में परिवर्तन आ जाता है। स्वस्थ स्थिति में अँगुलियों के सिरे का आभामण्डल लम्बे परिमण्डल युक्त होता है तथा बीमारी की स्थिति में यह बदलकर वृणनुमा धब्बेदार हो जाता है, साथ ही इसका रंग भी परिवर्तित हो जाता है। शरीर में होने वाले विभिन्न रासायनिक परिवर्तनों और रुग्णावस्था में शरीर से निकलने वाले पसीने का स्वरूप और उसके गंध परिवर्तन की तरह ही शारीरिक, मानसिक परिवर्तन के साथ आभामण्डल भी परिवर्तित होता रहता है। इन अध्ययनों और अनुसंधानों के आधार पर शरीर क्रिया विज्ञान का अध्ययन करने वाले डॉ. डेविड शीनकिन, डॉ. जॉन ह्यूबेकर तथा टेड डॉन जैसे मूर्धन्य वैज्ञानिकों की यह धारणा अब बलवती होती जा रही है कि मानवी आभामण्डल या बायोफ्लक्स में होने वाले ये परिवर्तन भौतिक न होकर मानवी विचारणा तथा भाव संवेदना से बहुत हद तक सम्बन्धित होते हैं। यही वैज्ञानिक कहते हैं कि एकाग्रता की स्थिति में जब साधक ध्यान धारणा की पराकाष्ठा पर पहुँचता है तो उसका आभामण्डल बहुत विस्तृत होता देखा गया है। इसमें रुग्णावस्था में पाये जाने वाले धब्बे नहीं पाये जाते। इससे यह सिद्ध होता है कि आभामण्डल की उज्ज्वलता मनुष्य की भावनात्मक, चेतनात्मक उत्कृष्टता पर निर्भर करती है। कोई आश्चर्य नहीं कि अगले दिनों रोगों के निदान के साथ-साथ साधना क्षेत्र में प्रगति की जाँच-पड़ताल आभामण्डल मापने वाले उपकरणों द्वारा होने लगे।

विज्ञान की उपलब्धियाँ यदि अध्यात्म शास्त्र की मान्यताओं एवं सिद्धान्तों से जोड़ी जा सकें, तो मानव मात्र के लिए एक हितकारी चिकित्सा पद्धति, सार्थक जीवन जीने की पद्धति-साधना उपचार विकसित की जानी भी संभव है। बायोफीड बैक की दिशा में चल रहे प्रयोगों को यदि सही दिशा देकर आभामण्डल परीक्षण प्रक्रिया तथा साधना निर्देशों से सूत्रबद्ध किया जा सके तो आत्मिक प्रगति के महत्वपूर्ण सोपानों को पार किया जा सकता है। हम मात्र चिकित्सा तक सीमित न रहकर यदि अंतरंग की सामर्थ्य को विकसित करने हेतु जैवभौतिकी क्षेत्र में हुए इन अनुसंधानों का आश्रय लें तो न केवल बहुमूल्य रत्न हस्तगत होंगे, बल्कि वैज्ञानिक जगत की जिज्ञासा को भी शान्त किया जा सकेगा, क्योंकि यह उन्हीं की भाषा में यंत्रों द्वारा सम्पन्न किए गए पूर्णतः विज्ञान सम्मत प्रयोग होंगे।

भौतिकी का सूक्ष्मीकरण-चेतन सत्ता से

एकीकरण

शरीर एक जड़ पिण्ड मात्र नहीं चेतन सत्ता का समुच्चय है जिसे काया को कलेवर रूप में ओढ़कर चलना पड़ता है। वैज्ञानिकों की स्थूल दृष्टि अभी तक प्रत्यक्ष को प्रमाण मानकर चलती रही है, इसी कारण चेतना के अस्तित्व को जान-बूझकर नकारा जाता रहा। लेकिन जैसे-जैसे भौतिकी भी सूक्ष्मीकरण की गहराईयों में प्रवेश करने लगी, चेतना के आयाम सम्बन्धी कई नये क्षेत्र ऐसे प्रकाश में आने लगे, जिन्हें स्वीकार करने पर उन्हें अब विवश होना पड़ रहा है।

आइन्स्टीन कहा करते थे “अनिश्चितता के सिद्धान्त पर टिकी ‘पार्टिकल फिजिक्स’ के आधार लूले-लंगड़े हैं। ईश्वर कभी पासे नहीं फेंका करता। दुनिया एवं इसमें रहने वाले जीवधारियों का समुदाय भले ही ऊपर से कितना ही अव्यवस्थित क्यों न लगे, उसके पीछे एक सुलझी हुई चेतना है जो लीलामयी तो है, झकझकी नहीं है।” अन्याय वैज्ञानिकों से विपरीत उन्होंने विचार तरंगों के आधार (प्योर थॉट) “यथार्थता” को पकड़ने एवं तदनुसार सृष्टि की परिकल्पना करने को कहा था। वास्तव में सारे बलों के एकीकरण के सिद्धान्त के माध्यम से विभिन्न प्रतिपादनों को प्रस्तुत कर अब वैज्ञानिकों के कदम सत्य की ओर बढ़ते दिखाई देते हैं।

भौतिकी का यह सूक्ष्मीकरण आखिर है क्या? जो मानवी बुद्धि के लिये अगम्य है? सम्भवतः इसे बहुत

पहले आद्यशंकराचार्य ने विवेक चूड़ामणि में उद्धृत करके रख दिया था—

ऐक्यं तयोर्लक्षितयो न वाच्यया

निगद्यतेन्योय विरुद्ध धर्मिणोः।

खद्योत धान्योरिव राजभृत्ययोः।

कूपाम्बुराशयोः परमाणुमेवोः॥

—२४४। वि. चू.

अर्थात्—उन दोनों, जीव एवं ब्रह्म की एकता को लक्ष्यार्थ में समझना चाहिए, वाच्यार्थ में नहीं, क्योंकि उनके आचार-व्यवहार एक न होकर अलग-अलग हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। उनकी इस एकता को वैसा ही समझना चाहिए 'जैसे जुगनू और सूर्य की एकता को, राजा और भृत्य की, कुएँ और समुद्र की तथा परमाणु और पर्वत की एकता को।'

इस एकीकरण की दिशा में बढ़ता हर कदम क्रमशः भौतिकी के अविज्ञात आयामों को खोलने में तथा उसे आत्मिकी के समीप ला पाने में समर्थ हुआ है। आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व अलबर्ट आइन्स्टीन ने देश (स्पेस) की परिकल्पना दो बलों के एकीकरण के रूप में की थी—एक गुरुत्वीय (ग्रेविटेशनल) एवं दूसरा विद्युतचुम्बकीय (इलेक्ट्रो मेनेटिक)। दोनों ही चार मूल बलों में से दो प्रमुख बल हैं। अन्य दो बल हैं 'बीक फोर्स' एवं 'स्ट्रॉंग फोर्स' जिनकी खोज बाद में हो पाई। आज वैज्ञानिक इन चार बलों के एकीकरण के माध्यम से एक "यूनिफाइड फील्ड" की परिकल्पना भर करते हैं लेकिन उस समय, जबकि इनकी अत्यल्प जानकारी भर उपलब्ध थी, 'फोर डाइमेंशनल क्वर्ड स्पेस टाइम' को प्रयोगों के माध्यम से आइन्स्टाइन जैसे दृष्टा वैज्ञानिक ने प्रमाणित कर दिखाया था। यह उनकी सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है कि गुरुत्वरूपी ज्यामितीय विचार एवं विद्युत चुम्बकत्व रूपी देशकाल संरचना का एकीकरण उन्होंने उसी समय सोच लिया था। उनका तबका एकीकरण सिद्धान्त सूक्ष्म भौतिकी अर्थात् ब्रह्माण्ड की चेतना-सत्ता के मूल प्रेरक बल की गहराईयों में जाने हेतु आने वाली वैज्ञानिक पीढ़ी को ऐसी दिशाएँ दे गया जो कि शाश्वत, सनातन हैं। यही कारण है कि आज आइन्स्टीन को विज्ञान जगत में वही स्थान प्राप्त है जो आर्ष साहित्य में व्यास एवं साधना के क्षेत्र में पातञ्जलि एवं विश्वामित्र को।

चर्चा सूक्ष्मीकरण के सन्दर्भ में चल रही थी एवं यह समझाने का प्रयास किया जा रहा था कि अन्ततः यह सूक्ष्म जगत है क्या? कणों-प्रतिकणों की दुनिया की इतनी चर्चा होती है। कहीं शास्त्र वर्णित लोकोत्तर जीवन इन प्रतिकणों की दुनिया में तो छुपा नहीं है, जिसे

भौतिकी और आत्मिकी के तालमेल के अभाव में जाना न जा सका हो।

सत्य के प्रति प्रेम एवं निर्भीकता से उसकी खोज उपनिषदों की एक विशेषता रही है। रबर्ट अर्नेस्ट ह्यूम अपने ग्रंथ 'द थर्टीन प्रिंसीपल उपनिषद्स' में लिखते हैं—“सत्य की खोज करने की उत्सुकता, उपनिषदों की एक आनन्ददायी और प्रशंसनीय विशिष्टताओं में से एक है।” मैक्समूलर जैसे प्रख्यात पूर्वार्ति दर्शन के अध्येता का मत रहा है कि “उपनिषदों के रचयिताओं ने किसी भी ऐहिक या पारलौकिक सुख को सत्य की खोज के मार्ग में बाधक नहीं बनने दिया। इस अन्वेषण में वे सदैव पूर्वाग्रहों से मुक्त रहे हैं। यही कारण है कि पूर्वार्ति अध्यात्म के माध्यम से ऋषियों ने कुछ ऐसे रहस्यों का उद्घाटन किया है जो आज के वैज्ञानिकों के लिये दिशा-निर्देशक सूत्र की भूमिका बखूबी निभा रहे हैं।” “लेक्चर्स ऑन द वेदान्त फिलासफी” मैक्समूलर द्वारा लिखित पुस्तक से उद्धृत।

ईशोपनिषद् के प्रारम्भ में कही जाने वाली ऋचा “पूर्णमदः पूर्णमिदं” वह पूर्ण है-यह भी पूर्ण है, के माध्यम से ब्रह्माण्डव्यापी व्यक्त एवं अव्यक्त सत्ता के उसी स्वरूप को प्रकाशित करती है, जिसे आइन्स्टीन ने अपने सूत्रों में इस सदी के प्रारम्भ में कहा था। वेदान्त में भी तकनीकी भाषा का प्रयोग हुआ है एवं उपनिषद्कार जब 'वह' तथा 'यह' उनकी पूर्णता का उद्घोष करता है तो 'वह' परोक्ष सत्ता-परब्रह्म के तात्पर्य में तथा 'यह' एक ऐसी वस्तु की ओर संकेत करता है जो इन्द्रिय गम्य है। यह मन्त्र देश, काल और परिणाम की अभिव्यक्ति के प्रतीक इस व्यक्त जगत का बोधक है।

इस प्रकार जहाँ तक परोक्ष जगत की सूक्ष्मीकृत संरचना एवं उसके विभिन्न आयामों के प्रकटीकरण का प्रश्न है, भारतीय चिन्तन और आधुनिक वैज्ञानिक चिन्तन दोनों एक मत हैं। दोनों इस प्रत्यक्ष जगत की विविधता के पीछे परोक्ष में निहित मूल एकता को मानते हैं। लेकिन न ही उपनिषद् एवं न ही प्रत्यक्षवादी वैज्ञानिक बहिरंग से सन्तुष्ट होकर रह जाते हैं। दोनों ही वस्तुओं के अन्तस् को, सत्य के चैतन्य पहलू को जानना चाहते हैं। भौतिकी को दार्शनिक ढंग से समझने-समझाने वालों ने यह प्रयास पूर्वार्ति दर्शन के सहयोग से भली प्रकार किया है।

१९७४ में आइन्स्टीन की एकीकरण की मान्यता को मूर्त रूप देने का प्रयास योगेशपति एवं नोबेल पुरस्कार विजेता अब्दुसलाम (दोनों ही एशियन किन्तु अमेरिका के नागरिक) ने एक ओर तथा होवर्ड जार्ज एवं

शेल्डन ग्लाशोव ने दूसरी ओर आरम्भ किया। इसे उन्होंने ग्राण्ड यूनिफिकेशन नाम दिया। क्वार्क्स एवं लेप्टॉन कणों की गहराई में हम प्रवेश न करें तो भी भारत की पुणे के समीप कोलाई स्वर्ण खान में पकड़े गये दीर्घजीवी प्रोटानों एवं न्यूट्रॉनों कणों के आधार पर द्रव्य (पदार्थ) की वर्तमान अवस्था प्रतिद्रव्य का उसके ऊपर हावी होना तथा इसके माध्यम से एक पाँच आयामीय जगत की कल्पना करना अब आसान हो गया है। अब प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि इलेक्ट्रॉन-न्यूट्रॉनों का भार शून्य से अधिक है। प्रो. ग्लाशोव इस आधार पर कहते हैं कि चार मूल बलों का एकीकरण अब सिद्ध किया जा सकता है एवं यह भी कि आइन्स्टीन अपने इस कथन में असत्य नहीं कह रहे थे कि इस विराट् जगत के मूल में चेतन सत्ता कार्यरत है। आइन्स्टीन ने भौतिकी से अधिक महत्त्व ज्यामिती को दिया जो कि किन्हीं निश्चित सिद्धान्तों पर तो आधारित है। वे कहते थे “क्वाण्टम फिजीक्स” में अनिश्चयता को महत्त्व दिया गया है जबकि “पार्टिकल फिजीक्स” (कण भौतिकी) में सम्भाव्यता के सिद्धान्त को। उन्हें ये दोनों बातें पसन्द नहीं थीं। उन्होंने ‘सपोज’ के आधार पर नहीं बल्कि “प्योर थॉट” के आधार पर परोक्ष के रहस्यों को जानने हेतु प्रयास करने पर बल दिया।

अब उन्हीं दो मूल बलों से चार बल, उनके एकीकरण एवं तदनुसार भौतिकी के सूक्ष्म परिसर की परिकल्पना के बाद पिछले ६ वर्षों में परागुरुत्व (सुपर ग्रेविटी) एवं प्रति गुरुत्व (एण्टी ग्रेविटी) का सिद्धान्त एकीकरण की नींव को और भी मजबूत करने को आ खड़ा हुआ है। सम्भव है इसी एण्टीग्रेविटी में सूक्ष्म जगत का सारा ढाँचा निहित हो, जिसमें कण-प्रतिकण प्रकाश की गति से भी तीव्र परिभ्रमण करते हों—सारा पारलौकिक गतिक्रम यहीं संचालित होता हो। परागुरुत्व भौतिकी का नवीनतम अजूबा है एवं सम्भव है आत्मिकी के समीप आने का एक माध्यम भी। इसके प्रमुख प्रवक्ता प्रो. न्यूवेन ह्यूजेन का कथन है कि पूर्वार्ति दर्शन वर्णित सभी “गम्पबाजियाँ” (जैसा कि वे पूर्व में मानते थे) सम्भवतः परा एवं प्रति गुरुत्व के माध्यम से वैज्ञानिकों को समझ में आने लगे एवं आइन्स्टीन का वह कथन सत्य लगने लगे कि “ईश्वर समझदार है, वह कभी उल्टे-सीधे पासे नहीं फेंकता। काल विवर (ब्लैक होल्स) आदि की कल्पना सत्य हो सकती है पर है वह भी तर्क सम्मत वैज्ञानिकता का ही एक अंग न कि अनिश्चितता के आधार पर की गयी परिकल्पना।”

१९३४ से लेकर अब तक भौतिकीविद् दार्शनिकता, वैज्ञानिकता के पलड़े में झूलते रहे हैं और यह भूलते रहे हैं कि वह ‘विज्ञान के दर्शन’ का एक ही पलड़ा है। सर

जेम्स जीन्स इसीलिए कहते थे कि “भौतिक जगत की समस्त घटनाएँ सामन्त्रस्य पूर्ण हैं, यहाँ तक कि वे भी जिन्हें हम संयोग मान बैठते हैं। इन सामंजस्यपूर्ण घटनाओं को गणित की भाषा में सही ढंग से व्यक्त किया जा सकता है। भौतिक जगत में सामंजस्यपूर्ण घटनाओं को रचने वाली अवश्य ही कोई विचार बुद्धि युक्त सत्ता है। वह महान गणितज्ञ प्रतीत होती है अतः उसे परमेश्वर कहना अत्युक्ति पूर्ण नहीं है।”

भौतिक जगत में पग-पग पर हर पहलू में हमें गणितीय प्रतिरूप दिखाई पड़ते हैं। अतः इसे किसी भी हालत में यान्त्रिक जगत, जड़ जगत नहीं कहा जा सकता। जो भी कुछ दृश्य रूप में घटित होता है, वह विराट् चेतन सत्ता की ही अभिव्यक्ति मात्र है। मस्तिष्क यदि उन्हें स्थूल रूप में देखे तो वे उसी सीमा में उसे दिखा देंगी लेकिन चेतना के जागरण द्वारा, सूक्ष्मीकृत मानवी चेतना सत्ता के माध्यम से अदृश्य—पराभौतिक घटनाक्रमों को देख सकना, उनमें भाग ले सकना भी पूर्णरूपेण सम्भव है। वस्तुतः मानवीय न जो स्थूल मस्तिष्क का चेतन प्रतिबिम्ब है, अपनी जागृति की पराकाष्ठा की स्थिति में जड़ व चेतन भौतिक सत्ताओं का अन्तर भूलकर सूक्ष्म जगत का ही एक अंग बन जाता है।

भौतिकी के माध्यम से क्लिष्ट शब्दावली को भी सरल करते हुए यहाँ यह समझाने का प्रयास किया गया कि इस काय-कलेवर में निवास करने वाली चेतन सत्ता अन्ततः जीवित अवस्था में ही कैसे वह भूमिका निभा लेती है जो दृश्यमान नहीं है ? मात्र अणु-परमाणुओं, कण-प्रतिकणों पर ही लागू होती है। सूक्ष्म मन सूक्ष्म विराट् सत्ता का ही एक अंग है। दोनों का एकीकरण सम्भव है एवं इसी में परोक्ष का सारा लीला सन्दोह चलता रहता है।

पदार्थ और चेतना—दो भिन्न अस्तित्व

इन्द्र, अग्नि, वायु, आकाश आदि सभी देवताओं का ब्रह्म ने आवाहन किया। उनके सामने एक तिनका रखा और कहा—इसे उठाओ, जलाओ और उड़ाओ पर एक नन्हें से तिनके को हस्तान्तरित करने में कोई भी समर्थ न हुआ, तब ब्रह्म ने उस तिनके को उठाया, फूँक मारकर उड़ाया और जलाकर भी दिखा दिया। पराभूत देवताओं को उपदेश देते हुए केनोपनिषद में ब्रह्म ने समझाया कि शक्ति का केन्द्र शरीर नहीं आत्म-चेतना है, शरीर तो जड़ है, उसका अभिमान नहीं करना चाहिये।

इस आख्यायिका में बताया है कि मनुष्य के शरीर में विभिन्न पदार्थों की सम्मिलित शक्ति होने पर भी यदि

चेतना नहीं है, तो मात्र पिण्ड कुछ नहीं कर सकता। सर्वशक्तिमान चेतना है, आत्मा है, जड़ शरीर नहीं, यह चेतना शरीर से स्वतन्त्र अस्तित्व है।

ऋग्वेद का कथन है—

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा चपञ्चिभिश्चरन्तम्।

स सखीचीः स विचूचीर्वज्ञान आवरी वर्ति भुवनेष्वन्तः॥

—ऋग्वेद १।१७७।३

अर्थात्-यह जीवात्मा अनेक मार्गों द्वारा शरीर में आता है (शरीर से पैदा नहीं होता) शरीर से पृथक् होता है, अविनाशी और इन्द्रियों का रक्षक होता है। वह शरीर के साथ भी रहता है, शरीर को छोड़कर भी रहता है।

पाश्चात्य वैज्ञानिक अभी कोई ऐसा प्रयोग नहीं कर पाये जिससे आत्म-चेतना के अस्तित्व की पृथक् अनुभूति की जा सके। पर योग-साधनाओं द्वारा आत्मा को बोधगम्य बनाने वाले भारतीय योगियों ने ऐसे प्रमाण प्रत्यक्ष प्रदर्शनों द्वारा प्रस्तुत किये हैं जिनसे पता चलता है कि आत्मा अज्ञानवश शरीर के व्यापार में आसक्त पड़ा रहे, यह अलग बात है पर वह है स्वशासी, अपने नियन्त्रण में आप। एक बार सुप्रसिद्ध योगी देशबन्धु की इस मान्यता को कुछ डाक्टरों ने अमान्य किया, फलस्वरूप बम्बई मेडिकल यूनिवर्स की ओर से श्री देशबन्धु का प्रदर्शन कराया गया। उसे देखने के लिये बम्बई मेडिकल कालेज के छात्र स्टाफ तथा अन्य विशिष्ट नागरिक भी एकत्र हुये। डॉ. बसन्त जी रैले उनके शरीर परीक्षण के लिये नियुक्त किये गये। श्री देशबन्धु से कहा गया यदि आप जानते हैं कि चेतना को शरीर से भिन्न किया जा सकता है तो आप दाहिने हाथ की नाड़ी-क्रिया को शून्य करके दिखाइये?

श्री देशबन्धु ने लम्बी श्वाँस-प्रश्वाँस क्रिया की। गहरी साँस ली और उसे बाहर निकाल दिया। दाहिना और बायाँ दोनों हाथ बाहर निकाल दिये। श्री रैले ने देखा बायें हाथ की नाड़ी यथावत् धक्-धक् कर रही थी पर दाहिने हाथ की नाड़ी में संचालन की जरा भी गति नहीं थी। दुबारा फिर वैसा ही करके उन्होंने दाहिने हाथ की नाड़ी चलाकर दिखा दी और बायें हाथ की नाड़ी गति को शून्य कर दिया। डॉक्टरों की टीम आश्चर्यचकित रह गई जबकि योगी देशबन्धु ने विभिन्न प्राणायाम क्रियाओं द्वारा सारे शरीर की नाड़ी संस्थानों को तो गतिशील रखा किन्तु हृदय गति को बिल्कुल रोक दिया। हृदय गति रुक जाने पर मनुष्य एक भी क्षण जीवित नहीं रह सकता। पश्चिम अभी तक कोई ऐसा प्रयोग नहीं कर सका कि शून्य गति हृदय को गति देकर मृतक को

जिन्दा कर दिया हो जबकि प्रत्यक्ष उदाहरण यह था कि शेष शरीर जी रहा था और शरीर का इंजिन हृदय फेल पड़ा था। श्री देशबन्धु ने कहा—आत्मा स्वतन्त्र द्रव्य है उस पर केन्द्रस्थ होकर आश्चर्यजनक दिखने वाला हर काम सम्भव है।

डॉक्टरों ने उस समय यह तर्क किया कि सम्भव है यह सब आपने हिप्नोटिज्म द्वारा लोगों को सम्मोहित करके दिखाया हो, इस पर उन्होंने दुबारा प्रयोग किया इस बार एक्सरे कार्डियोग्राम द्वारा विधिवत् हृदय-गति की जाँच की तो भी परिणाम ज्यों का त्यों रहा। श्री देशबन्धु ने इसे महज खेल बताते हुये कहा आत्म-चेतना नाड़ी संस्थानों द्वारा इस शरीर से सम्बद्ध है यह क्रियायें और कुछ नहीं केवल मात्र 'वेगस नर्व' के नियन्त्रण का परिणाम है। भली-भाँति नियन्त्रित आत्म-चेतना से दूरगमन परलोक अनुभूति, परकाया प्रवेश, ईशत्व, वशित्व आदि विलक्षण सिद्धियाँ और सामर्थ्य अर्जित की जा सकती हैं। अणु से विराट् बनने का श्रेय इन साधनाओं द्वारा ही समुपलब्ध होता है।

योग मार्ग न सही ऐसे अनुभव पाश्चात्य लोगों ने भी किये हैं और माना है कि शरीर की मुख्य चेतना अपने स्वतन्त्र अस्तित्व में वस्तुतः रह सकती है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अगस्त सन् १९४४ को एक फौजी अफसर को हुआ। वह आफिसर स्काउट कार द्वारा जा रहा था तभी जर्मनी की एण्टी टैंक तोपों का सीधा प्रहार हुआ। आफिसर जिस गाड़ी में था उसमें और भी विस्फोटक पदार्थ भरे थे, उसमें भी विस्फोट हो गया। उस समय की स्थिति का वर्णन करते हुए आफिसर ने द्वितीय विश्वयुद्ध के मित्र राष्ट्र गजेटियर में लिखा है—जैसे ही विस्फोट हुआ मैं २० फूट दूर जा गिरा, ऐसा लगा मैं दो भागों में विभक्त हो गया। मेरा एक शरीर नीचे जमीन में पड़ा तड़प रहा है, उसके कपड़ों में आग लगी है भय से वह अपने हाथ-पैर बुरी तरह हिला रहा है किन्तु दूसरा शरीर इस शरीर के ऊपर आकाश में हवा की तरह तैर रहा था। मैं अपने रूप को स्वयं पहचानने में असमर्थ था पर वहाँ की हर वस्तु सड़क के पार का युद्ध दृश्य, झाड़ियाँ, जलती कार में सब कुछ देख रहा था। मुझे भीतर से एक अन्तःप्रेरणा उठी कि तड़फड़ाने से कुछ लाभ नहीं जल्दी-जल्दी शरीर को जमीन से रगड़ो ताकि आग बुझ जाये। शरीर ने ऐसा ही किया। वह लुढ़क कर बगल की खाई में जा गिरा। खाई में कुछ नमी थी, आग बुझ गई और मुझे ऐसा लगा जैसे एक पक्षी द्वारा घोंसले में प्रवेश की तरह मैं फिर उसी शरीर में आ गया। अब मुझे शरीर की पीड़ा का पुनः भान

होने लगा, जबकि थोड़ी देर पूर्व यही दृश्य मैं मात्र दर्शक बना देख रहा था।

यह उदाहरण विवेक चूड़ामणि की इस सत्यता का ही बोध कराते हैं—

असङ्गोऽहमनङ्गो ह्यमलिङ्गोऽहममङ्गुरः।

प्रशान्तोऽहमनन्तोऽहमतान्तोऽहं चिरन्तनः॥

मैं (आत्म-चेतना) असंग हूँ, अशरीर हूँ, मेरा कोई संग नहीं, मेरा नाश नहीं होता, अत्यन्त शांत अनंत अतान्त और पुरातन हूँ मेरा कोई आदि अन्त नहीं।

भारतीय दर्शन के इन गूढ़ रहस्यों का मर्म श्री रामकृष्ण परमहंस बहुत सीधे सादे उदाहरण से समझाया करते कहा करते—जिस तरह प्याज की गाँठ का छिलका उतार दो दूसरा छिलका आ जाता है छिलके उतारते जाओ अन्त में उसका बीज मात्र रह जाता है, उसी प्रकार शरीर के पदार्थ की समीक्षा, उसका विश्लेषण करते जाओ तो समस्त स्थूल पदार्थों के बाद जो शेष बचेगा वह आत्म-चेतना ही होगी।

इसकी विधिवत अनुभूति लम्बी योग-साधनाओं से सम्भव है पर कई बार आकस्मिक घटना भी आत्म-चेतना के पृथक् अस्तित्व का बोध करा देती है। जम्मू में शिक्षा विभाग के एक मध्यम श्रेणी कर्मचारी श्री गोपीकृष्ण ने किसी पुस्तक में पढ़ा—मस्तिष्क के मध्य ज्योतिर्लिंग का ध्यान करने से परमात्मा की अनुभूति होती है। एक दिन वे इसी तरह ध्यान कर रहे थे। जिज्ञासा की प्रखरता में बड़ी प्रबल शक्ति है। मन की चंचलता के कारण ध्यान का जो लाभ कुछ लोग वर्षों अभ्यास के बाद भी नहीं ले पाते वह उनकी तीव्र जिज्ञासा ने क्षण भर में प्रदान कर दिया। उन्हें सहस्रार की स्पष्ट अनुभूति अकस्मात् हो गई। वे समझ न सके यह क्या हुआ वे एक दिव्य लोक में खोये से रहने लगे। एक दिन वे तवी पुल पार कर रहे थे, तभी उस प्रकार के बोध के साथ ही उनके मस्तिष्क में बहुत ही दिव्य भाव, छन्द बद्ध काव्य के रूप में उद्भूत हुये। साधारण शिक्षित व्यक्ति में असाधारण कवित्व शक्ति का उदय उनके लिये एक आश्चर्य बन गया। वे कवितायें लिखने लगे। आश्चर्य तब और भी गहरा हो गया जब उनके मस्तिष्क के जर्मन, फ्रेंच इटैलियन, संस्कृति, अरबी जिनका कि उन्हें ज्ञान भी नहीं था, की भाषाओं में नियमित काव्य धारायें उतरने लगीं। उनके इन काव्यों और विलक्षण मानसिक शक्तियों का परीक्षण अनेक पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने भी किया और उन विचारों को शृंखलाबद्ध नियमित और व्याकरण के नियमों से नियन्त्रित पाया। रहस्य को न समझने पर भी सबने माना कि श्री गोपीकृष्ण के शरीर में किसी ऐसी

सत्ता का विकास हो गया है जो शरीर और मन की पहुँच से बहुत व्यापक पहुँच वाली है। यह विलक्षण घटनायें देखकर योग वाशिष्ठ के यह कथन याद आते हैं—

नात्मा शरीर सम्बन्धी शरीरमपि नात्मनि मिथो विलक्षणवेतो प्रकाश तमसी यथा।

६।१।६।६

देहेनास्य न सम्बन्धो मनागेवामलात्मनः।

हेमः पङ्कलवेनेव तद् तस्यापि मानवः॥

५।५।२५

अर्थात्-आत्मा का शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं। अन्धकार और प्रकाश की तरह दोनों दो विलक्षण पदार्थ हैं। सोना कीचड़ में गिर जाने से उस पर कीचड़ का आवरण चढ़ गया जान पड़ता है तथापि सोने के कणों की शुद्धता में कोई अन्तर नहीं आता, उसी प्रकार शरीर में आ जाने पर भी आत्मा के अस्तित्व में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आता।

आधुनिक वैज्ञानिक चेतना को प्राकृतिक मानते हैं। उनका कहना है कि चेतन 'प्रोटोप्लाज्म' (नमक को इतना पीसा जाय कि फिर उसके टुकड़े न हो सकें उसे नमक का परमाणु कहते हैं, शरीर जिस पदार्थ से बना है उसकी लघुतम इकाई का नाम "सेल" है। सेल का कोश जिन तत्वों से बनता है, उसे प्रोटोप्लाज्म कहते हैं। प्रोटोप्लाज्म में शहद के समान नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, कार्बन, फास्फोरस आदि बारह पदार्थों से बना एक तरल पदार्थ होता है, जिसे साइटोप्लाज्म कहते हैं। यह भौतिक पदार्थ भी इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, पाजिट्रॉन और नाभिक से बने हैं। हक्सले के हवाले से वैज्ञानिक कहते हैं कि इलेक्ट्रॉन निरन्तर गतिशील रहते हैं। प्रकृति के बदलते रहने से इलेक्ट्रॉनों धारा निरन्तर बहती रहती है उसी से निरन्तर चेतना का क्रम बना रहता है उसे ही चेतना या जीवन कहते हैं।

किन्तु, प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर ओलिवर लाज ने अपनी पुस्तक विज्ञान और धर्म (साइन्स एण्ड रिलीजन) के पेज १८ में स्पष्ट किया है कि प्रत्येक परमाणु कई इलेक्ट्रॉनों से मिलकर बना होता है यह इलेक्ट्रॉन गति भी करते हैं पर वे एक-दूसरे से चिपके नहीं रहते वरन् जिस तरह आकाश में ग्रह-नक्षत्र दूर-दूर परिभ्रमण करते हैं उसी तरह यह भी अलग-अलग रहकर परिभ्रमण करते हैं। इसे इलेक्ट्रॉन्स की निरन्तर प्रवाह प्रक्रिया को चेतना या जीवन नहीं कहा जा सकता। किसी निश्चित निष्कर्ष पर न पहुँच पाने पर भी आज के विज्ञान ने यह मान लिया है कि चेतना अजर-अमर तत्व है। इलेक्ट्रॉन तो मन जैसी प्रचण्ड वेग वाली पदार्थजन्य शक्ति का नाम है। आत्मा

उससे भी भिन्न है। सम्भव है उसकी खोज में भारतीय तत्व दर्शन मदद कर सके।

सच क्या है? चेतना या पदार्थ

पदार्थ विज्ञान के अद्भुत चमत्कार के रूप में हम जो-जो विलक्षणताएँ देख पा रहे हैं और अगले दिनों देख सकेंगे, उनकी यदि योग विज्ञान से तुलना की जाय, तो पायेंगे कि दोनों के बीच तिल और ताड़ जितना भारी अंतर है। भौतिक विज्ञान के आविष्कार निश्चय ही सराहनीय हैं और आश्चर्यजनक भी, पर जब योग विज्ञान की उपलब्धियों की चर्चा होती है, तो यही कहना पड़ता है कि वह यदि प्रखर सूर्य है, तो पदार्थ विज्ञान एक टिमटिमाता दीपक।

योग विज्ञान चेतना का विज्ञान है। उसमें प्रगति और परिवर्तन जैसी क्रियाओं में उसकी इसी शक्ति का प्रयोग होता है, जबकि पदार्थ विज्ञान में विद्युत, ताप, गैस एवं परमाणु ऊर्जा जैसी पदार्थगत शक्तियों का उपयोग किया जाता है। यहाँ विज्ञान के जितने भी कौशल हैं, सब इन्हीं के खेल हैं। यह ऊर्जाएँ सूक्ष्म होते हुए भी पदार्थ स्तर की हैं, इसलिए इनके द्वारा लाये गये परिवर्तन भी भौतिक या पदार्थगत होते हैं चाहे वह रसायनों की आपसी क्रिया द्वारा रसायन निर्माण संबंधी हों अथवा धातुओं के मिलन संयोग द्वारा मिश्रधातुओं के उत्पादन संबंधी, सभी एक ही प्रकार के परिवर्तन के परिणाम हैं।

पदार्थ को प्रभावित करने का यह एक तरीका हुआ, किन्तु एक दूसरे उपाय से भी इस प्रक्रिया को घटित किया जा सकता है और क्षणमात्र में रूपांतरित कर किसी वस्तु को दूसरे-तीसरे पदार्थ में बदला जा सकता है। यह प्रणाली चेतना विज्ञान की है। योग विज्ञान इसी से संबंधित है। इसमें पदार्थ सत्ता के साथ किसी प्रकार की छेड़खानी नहीं करनी पड़ती, उसे धारण करने वाली चेतना के अणुओं को सक्रिय मात्र कर देना होता है। इतने से ही वस्तु का लोप होकर दूसरे का निर्माण हो जाता है।

चेतना विज्ञान में योगियों द्वारा केवल व्यक्तिगत चेतना-अणुओं को विशेष प्रकार से उत्तेजित कर दिया जाता है। इतने से ही शरीर तंत्र एवं अंग-अवयव प्रभावित होकर उच्चस्तरीय ढंग से स्वयमेव क्रिया करने लग जाते हैं। इस क्रम में कई बार वस्तु तो अपरिवर्तित बनी रहती है, पर उसकी कार्य-पद्धति बदलकर असाधारण हो जाती है और अनेक बार क्रिया के साथ-साथ वस्तु में भी थोड़ा-बहुत रूपांतरण हो जाता है। महाभारत युद्ध में इसी विद्या का प्रयोग करते हुए लड़ाई लड़ी गई थी।

उल्लेखों से ज्ञात होता है कि उसमें प्रयुक्त होने वाले शस्त्र-अस्त्र देखने में तो बिल्कुल सामान्य से थे, पर प्रयोग के दौरान कहर बरपाने वाले परिणाम प्रस्तुत करते थे। इसे पढ़-सुनकर आज ऐसा लग सकता है कि वे या तो दिव्य ढंग से निर्मित दिव्य आयुध रहे होंगे या फिर वस्तुस्थिति की अतिरंजना मात्र, जिसे उस महासमर को महिमामंडित करने के लिए कथाकारों या इतिहासकारों ने गढ़ दी हो, पर वास्तविकता ऐसी है नहीं। तथ्य यह है कि उसमें युद्ध-कौशल और योगबल का अद्भुत समन्वय हुआ था। इसे नहीं समझ पाने के कारण ही इन दिनों उसे अत्युक्ति मान लिया जाता है किन्तु जब संशयशील आँखें उसको प्रत्यक्ष देख लें, तो फिर उसे झुठलाया कैसे जाय?

घटना परमहंस विशुद्धानंद से संबंधित है और उन दिनों की है, जब वे अपने ज्ञाल्दा स्थित आश्रम में प्रवास कर रहे थे। एक रोज उद्धवनारायण नामक एक शिष्य ने आकर पूछा कि महाभारत में जिन अग्निवाण, वृष्टि वाण जैसे आयुधों की चर्चा है, क्या ऐसे वाण तब सचमुच ही अस्तित्व में थे ? अथवा यह सब अलंकारिक उल्लेख मात्र हैं? परमहंस देव ने सिर हिलाते हुए सहमति प्रकट की और कहा कि निश्चय ही तब ऐसे अस्त्र-शस्त्र थे। इसके साथ ही उन्होंने सामने उगे हुए सरकंडों में से तीन को तोड़ लाने को कहा और शिष्य से पूछा—“क्या तुम उसे देखना चाहोगे?” शिष्य ने “हाँ” कहकर अपनी अभिलाषा प्रकट की। इसके बाद उन्होंने एक सरकंडे का छिलका उतारा, उसको प्रत्यंचा बनाकर सरकंडे के दोनों सिरों पर बाँध दिया। इस प्रकार एक धनुष बन गया। फिर कुछ मंत्र पढ़े। इसके साथ ही वह एक सुन्दर धात्विक धनुष में परिवर्तित हो गया। तत्पश्चात् दूसरे सरकंडे को अभिमंत्रित किया। वह धातु का तीक्ष्ण नोक वाला तीर बन गया।”

अब शिष्य को संबोधित किया—“यह एक सामान्य तीर-कमान है। योग बल द्वारा अब मैं इसे असाधारण बनाऊँगा।” इतना कहकर बड़े विनीत भाव से ऊपर आकाश की ओर निहारते हुए कोई स्तुति की, तदुपरांत सामने खड़े एक विशाल बरगद वृक्ष को लक्ष्य कर उसे छोड़ दिया। घनघोर गर्जन करता हुआ वह तीव्र वेग से चल पड़ा और पेड़ को विदीर्ण कर दूसरी ओर निकल गया। इसके साथ ही वृक्ष में आग लग गई। विशुद्धानंद जी का स्वर पुनः उभरा—“विज्ञान की समस्त युक्तियाँ और सारे साधन मिलकर भी इस अग्नि को शांत नहीं कर सकते। इसके पश्चात् उन्होंने तीसरा सरकंडा उठाया। पूर्ववत् उसे भी धात्विक तीर में बदला। फिर वरुण देवता का आवाहन कर उसमें प्रतिष्ठित किया। पीछे उसका भी

३.१०१ चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन

संधान सामने के बरगद पर कर दिया। तीर लगते ही तरुवर की आग कुछ ही क्षण में बुझ गई।

तदुपरांत धनुष-वाण को हाथ में लेकर उनमें आँखें बंद कर लीं। वह देखते-देखते पुनः तीन सरकड़ों में रूपांतरित हो गये।

यह चेतना विज्ञान की उपलब्धि है। योग विज्ञान उसी से संबंधित है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें चेतना कणों को सक्रिय, निष्क्रिय कर देने मात्र से एक वस्तु का तिरोभाव होकर उसमें दूसरे का आविर्भाव हो जाता है। दूसरे शब्दों में यहाँ किसी भी पदार्थ से दुनिया के किसी भी पदार्थ को प्रकट किया जा सकना संभव है। भौतिक विज्ञान में यह सुविधा नहीं। उसमें एक द्रव्य को दूसरे में परिवर्तित करने के लिए उच्चस्तर की साधन-सुविधाएँ चाहिए। इतने पर भी इस बात की कोई गारंटी नहीं कि इच्छित पदार्थ को प्राप्त कर ही लिया जायेगा।

इस मूलभूत अंतर को जान लेने के बाद यह निश्चय करना हमारी निजी समझ पर निर्भर है कि हम किसे श्रेष्ठ और सर्वोपरि मानें एवं जीवन में किसकी महत्ता को स्वीकार करें, पदार्थ विज्ञान को या चेतना विज्ञान को?

चेतना का पदार्थ जगत पर नियंत्रण

डॉ. भगवानदास ने अपनी पुस्तक—“दि एसेशियल यूनिटी ऑफ आल रिलीजन्स” में कुछ विश्वप्रसिद्ध वैज्ञानिकों के उन वक्तव्यों का संग्रह किया है, जिसमें मन (माइण्ड) को पदार्थ (मैटर) से श्रेष्ठ तथा उसकी नियामक सत्ता स्वीकार किया गया है। उन वक्तव्यों का हिन्दी अनुवाद निम्नांकित है:

(१) विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर ऑलिवर लॉज—“वह समय निश्चित रूप से आयेगा, जब विज्ञान द्वारा अज्ञात (मन) के ये भाग खोजे जायेंगे और कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं, जो सोचते हैं कि वह समय बहुत समीप आ गया है, जब ऐसा होने की आशा की जा सके। जितना हमने सोचा था, विश्व उससे अधिक आध्यात्मिक सत्ता है। वास्तविक तथ्य यह है कि हम भौतिक जगत को शासित करने वाले आध्यात्मिक जगत में निवास करते हैं। यह आध्यात्मिक जगत उस महान और नित्य विद्यमान वास्तविकता की रचना करता है जिसकी शक्तियों का अनुभव करना हमने प्रारम्भ ही किया है। वे शक्तियाँ सचमुच खतरनाक भी हो सकती थीं यदि ढाढ़स बाँधने के लिए हमें यह आश्वासन नहीं दिया गया

होता कि वे समस्त प्रचण्ड ऊर्जाएँ उस कल्याणकारी पितृ-सत्ता द्वारा नियन्त्रित हैं, जिसका नाम ‘प्रेम’ है।

(२) गणितज्ञ और खगोलविद् सर जेम्स जीन्स—यह जगत महान “यन्त्र” के बजाय महान “विचार” अधिक समझ पड़ता है। वस्तुओं की प्रातीतिक वस्तुनिष्ठता (बाह्य आकार आदि) मन में उनके विद्यमान होने के कारण है। जगत की धारणा को हम विशुद्ध विचार का संसार मानते हैं। पदार्थ-राज्य में अब मन आकस्मिक घुसपैठिये के रूप में प्रतीत नहीं होता। अब हमारा यह अनुमान होता जा रहा है कि हमें पदार्थ-राज्य के रचयिता और शासक के रूप में उसकी जय-जयकार करनी चाहिए। निश्चित रूप से यह वैयक्तिक मन नहीं है, वरन् वह मन है जिसमें हमारे वैयक्तिक मनो को उत्पन्न करने वाले परमाणु विचार के रूप में रहते हैं।”

एक अन्य स्थान पर वे लिखते हैं—“सापेक्षवाद, निरन्तरता, न्यूनतम अवकाश, वक्र आकाश (कर्व्ड स्पेस), संभावना-तरंगें, अनिश्चितता तथा घटनाएँ—ये सभी अवधारणाएँ हैं, जिनका हम चित्रण, कल्पना और वर्णन नहीं कर सकते।”

“जगत में पाये जाने वाले नियम तथा व्यवस्था माया या कल्पनावेद की भाषा में सबसे अधिक सरलता से वर्णित किये और समझाये जा सकते हैं। विज्ञान की अधिकतम जहाँ तक पहुँच है, उसमें से अधिकांश या कदाचित् सम्पूर्ण जो मानसिक नहीं है वह लुप्त हो गया है तथा कुछ भी नया जो मानसिक नहीं है, प्राप्त नहीं हुआ है। परिवर्तन की अन्तिम दिशा कदाचित् भौतिकवाद से और ‘मनुष्य के कार्य स्वतंत्र नहीं है’ के उस कठोर सिद्धान्त से भिन्न होगी जो उन्नीसवीं सदी की भौतिकी की विशिष्टता थी।”

‘मिस्टीरियस यूनीवर्स’ में वे लिखते हैं—“नया ज्ञान हमें जल्दबाजी में लिए गए अपने प्रथम अनुमान पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य करता है। ठोस पदार्थ का अपने मूल भागों में विश्लेषण करने पर वह मन की रचना और मन की अभिव्यक्ति के रूप में जब से प्रतीत हुआ है, तब से मन और पदार्थ का पुराना द्वन्द्व लुप्त होने की सम्भावना हो चली है।”

(३) प्रोफेसर सर ए. एस. एडिंगटन—‘कोई अज्ञात कर रहा है, हम नहीं जानते क्या कर रहा है यह हमारे सिद्धान्त का सार है। आधुनिक भौतिकी ने पदार्थ की कल्पना को हटा दिया है। हमारे अनुभवों में मन पहला और सबसे सीधा तत्व है। मैं चेतना को मूल आधार मानता हूँ।”

(४) गणितज्ञ और सापेक्षवाद के विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्स्टीन—‘मैं परमात्मा में विश्वास करता हूँ, जो स्वयं को जगत की व्यवस्थित लय के रूप में अभिव्यक्त कर रहा है। मैं विश्वास करता हूँ कि ज्ञान सम्पूर्ण प्रकृति में अभिव्यक्त हुआ है। वैज्ञानिक कार्य का आधार यह विश्वास है कि जगत व्यवस्थित, बुद्धिगम्य विस्तृत सत्ता है तथा मात्र संयोग का परिणाम नहीं है।’

(५) भौतिकीविद् जे. बी. एस. हल्डेन—‘आंशिक एवं अपूर्ण ढंग से देखे जाने पर जो जगत एक अर्ध यान्त्रिक-रचना माना जाता है, वह वास्तव में आध्यात्मिक जगत है। एकमात्र वास्तविक जगत आध्यात्मिक जगत ही है। सत्य यह है कि पदार्थ नहीं, बल नहीं, कोई भौतिक वस्तु नहीं वरन् मन, व्यक्तित्व ही जगत का केन्द्रीय तथ्य है।’

(६) भूगर्भ शास्त्री किर्टले एफ. माथर—‘पदार्थ और ऊर्जा के विश्लेषण में, परम सत्य तक हमारी अब तक की निकटतम पहुँच यह दर्शाती है कि मन ही सार्वभौमिक वास्तविकता है।’

(७) भौतिकीविद् रॉबर्ट ए. मिलिकन—‘परमात्मा जगत को एकीकृत करने वाला कारण तत्व है। मनुष्य के मन के सम्मुख विकासवाद की अवधारणा के समान उन्नत अन्य कोई अवधारणा प्रस्तुत नहीं की गई है, जो अनन्त युगों से अवयवी पदार्थ में जीवन की श्वास भरते हुए तथा मनुष्य में आध्यात्मिक प्रकृति एवं उसकी समस्त ईश्वर समान शक्तियों के रूप में स्वयं को अभिव्यक्त करते हुए परमात्मा को पुनः प्रस्तुत करती है।’

(८) ‘दि ग्रेट डिजाइन’ पुस्तक में सर जे. ए. थॉमस—‘समस्त पशु जीवन के संसार में, (उनकी) कुछ अभिव्यक्तियाँ हममें उपस्थित मन से मिलती-जुलती हैं। अमीबा (प्रथम जीव) तथा उससे ऊपर आन्तरिक जीवन की धारा बह रही है, जीवन की यह धारा पतले नाले के समान हो सकती है और कभी-कभी बलवान धारा भी होती है। इस (जीवन धारा) में अनुभव करना, कल्पना करना, आकांक्षा करना और कभी-कभी विचार करना सम्मिलित है। उसमें अचेतन का समावेश है। पौधों में वह तन्द्रावस्था में है या घोर निद्रा में या कभी नहीं जागी है, कौन कह सकता है। पशुओं में मन की सर्वव्यापकता हममें उनके प्रति साथी की भावना भरती है। इमर्सन के इन शब्दों में हमें मन की क्रमशः बढ़ती हुई मुक्ति दिखाई देती है। वे लिखते हैं—

‘मन की यह मुक्ति ही विकास का उद्देश्य है। किसी सतत् प्रक्रिया के अन्तर्गत प्रारम्भ में जो बीज रूप में उपस्थित नहीं था, वह अन्त में भी नहीं पाया जा

सकता। अतः अपने ही मन से और उसकी दासत्व मुक्ति की कहानी से प्रारम्भ कर (मूल की ओर) पीछे लौटते हुए हम सर्वोच्च मन तक पहुँच जाते हैं जिसके बिना कुछ भी निर्मित नहीं था, जो निर्मित किया गया था।’ जीवन के ऐसे संसार में जो हमारी वैज्ञानिक अंगुलियों द्वारा नहीं छोड़ा-पकड़ा जा सकता, वस्तुओं के सामने खड़े होकर हम यह दुहराने के सिवा और क्या कर सकते हैं (हे प्रभु) मेरी आँखें खोल, ताकि मैं तेरे नियम के अन्तर्गत बनी आश्चर्यजनक वस्तुएँ देख सकूँ।’

गहन अन्तःचेतना को प्रभावित करने की आवश्यकता

एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को तर्क, प्रमाण, विचार-परामर्श आदि देकर प्रभावित कर सकता है, इसकी जानकारी सभी को है। अध्यापक अपने छात्रों के मस्तिष्क को विकसित करते हैं। पहलवान अपने शागिर्दों को कुश्ती, कसरत सिखाकर बलवान बनाते हैं। वक्ता, लेखक विचारों से हलचल उत्पन्न करते और लोगों के सोचने के तरीके में परिवर्तन करते हैं। नर-नारी के बीच शारीरिक आकर्षण ही काम करता है और प्रतिभाशाली व्यक्ति अपने रौब-दौब, आतंक का भी उपयोग करते हैं।

उपरोक्त प्रभाव प्रक्रिया का स्तर उथला ही रहता है। अध्यापक गणित, इतिहास, भाषा, भूगोल आदि की जानकारी करा देने पर अपने कर्तव्य से छुट्टी पा लेते हैं। वे चिन्तन की शैली, आकांक्षा और दिशा नहीं बदल सकते। अखाड़े के पहलवान शागिर्दों की माँस-पेशियाँ मजबूत कर सकते हैं, उनमें मनोबल उत्पन्न नहीं कर सकते। अखाड़े में जाकर कोई संयमी, सदाचारी, मनस्वी, साहसी बन जाय यह आवश्यक नहीं, क्योंकि पहलवानी की शिक्षा उथले स्तर पर ही समाप्त हो जाती है, वह अन्तरंग की गहराई में नहीं उतरती है।

इसी प्रकार लेखक, वक्ता, नेता, प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति अपनी तेजस्विता सम्मोहन से तत्काल तो कुछ भी सोचने-करने को आवेश उत्पन्न कर सकते हैं पर वह क्षणिक होता है और उथला रहता है। वह नशा उतारते ही लोग अपने पुराने ढर्रे पर आ जाते हैं और वह कृत्रिम उत्साह अपनी क्षणिक चमक दिखाकर तिरोहित हो जाता है। कारण स्पष्ट है जो शिक्षण दिया गया था, वह अन्तःकरण की गहराई तक प्रवेश न कर सका केवल उथले बौद्धिक स्तर तक टकराकर बिखर गया। उस टकराहट की प्रतिक्रिया जितनी देर रह सकती थी, उतनी

देर रही और इसके बाद व्यक्ति की वही संस्कारगत स्थिति आ गई।

मनुष्य का समग्र व्यक्तित्व विकसित एवं परिवर्तित करने से ही उसकी गरिमा और महत्ता बढ़ सकती है। महामानव इस विश्व की सच्ची सम्पत्ति होते हैं। कोई देश और समाज इन्हीं के कारण गौरवशाली बनते हैं और इन्हीं के अभाव में पतन के गर्त में गिरते चले जाते हैं। राष्ट्रीय सम्पदा का मूल्यांकन, धन के आधार पर नहीं मनस्वी, तेजस्वी और आत्म बल सम्पन्न प्रतिभा के आधार पर ही किया जाना चाहिए। वे यदि उद्भूत नहीं तो विपुल सम्पदा सम्पन्न होते हुए भी कोई समाज दरिद्र ही रहेगा। उसकी वह आर्थिक उन्नति भी ठोस प्रगति की दिशा में कुछ अधिक सहायता न कर सकेगी।

यह उच्चस्तरीय व्यक्तित्वों का निर्माण कैसे हो? इसके लिए उसी स्तर के साँचे चाहिए। टक्काल के साँचे जैसे होते हैं वैसे ही सिक्के ढलते चले जाते हैं। बुद्ध के अनुगामी ढाई लाख व्यक्तियों ने संसार भर में सत्य, अहिंसा का संदेश पहुँचाया था। गान्धी के अनुचर स्वतंत्रता संग्राम में एक से एक बढ़े-चढ़े अनुदान लेकर आगे आये। यह प्रेरणाएँ बौद्धिक आधार पर नहीं-भावना स्तर पर दी जाती हैं और इसके देने के लिए वैसा ही आत्म-शक्ति सम्पन्न व्यक्तित्व चाहिए। आज आवश्यकता ऐसी ही हस्तियों की है, जो अपने आत्मबल से जन साधारण के भाव स्तर को विकसित और परिष्कृत कर सकें। विज्ञान इस संभावना को स्वीकार करता है कि अदृश्य शक्ति प्रवाह के द्वारा भी मानवीय चेतना को अभीष्ट दिशा में मोड़ा या ढाला जा सकता है।

मानव मस्तिष्क की अन्तस्त्वचिक्र के भीतर एक विशेष प्रकार की तंत्रिकाएँ पाई जाती हैं, उनका समूह भावात्मक मस्तिष्क कहलाता है। भय, क्रोध, शोक, चिन्ता, अवसाद, हर्ष, संतोष, प्रेम, त्याग, संयम और कामोद्देग जैसी प्रवृत्तियाँ इसी भाग से सम्बन्धित हैं। इसका स्वरूप बहुत कुछ वंश परम्परा से उत्तराधिकार में मिला था, कुछ वातावरण एवं संगति में और कुछ व्यक्तिगत चिन्तन की दिशा के आधार पर विकसित होता है। अविकसित और विकसित प्राणियों का यों मानसिक अन्तर कुछ तो बुद्धि के आधार पर भी होता है पर मुख्य अन्तर यह भावात्मक ही है। भावनाओं के आवेश में ही मस्तिष्क उत्तेजित होता है और मस्तिष्क सक्रिय होता है। इन दोनों की बिखरी हुई दशाओं को एक केन्द्र पर एकत्रित करने और क्रियाशील बनाने का श्रेय इस भावात्मक मस्तिष्क केन्द्र को ही है।

येल विश्वविद्यालय के न्यूरोलोजिस्ट डा. जोसे डैलगेडो ने ऐसे विद्युद्ग्र रेडियो उपकरणों का आविष्कार किया है, जिनके आधार पर बिना शल्य चिकित्सा के ही रेडियो किरणों द्वारा मस्तिष्क के किसी भाग से सम्पर्क बनाना और उसे प्रभावित कर सकना सम्भव हो सके। भावानात्मक मस्तिष्क की तंत्रिकाओं और कोशिकाओं को उन्हीं शरीर के आर-पार जा सकने वाली किरणों के द्वारा वहाँ 'के असंतुलन को मिलाया जा सकेगा। विशेष प्रकार का भावावेश उत्पन्न किया जा सकेगा। यह किरणें 'एक्स' किरणों से मिलती-जुलती हैं, जिन्हें शरीर के आर-पार जाने में मस्तिष्क की कठोर खोपड़ी में भी कोई बड़ी बाधा नहीं पहुँचती।

अब तक भावनाओं का समाधान भावनाओं से ही किया जाता रहा है। क्रोध को विनय से, घृणा को प्रेम से, असंतोष को उपलब्धियों से शमन किया जाता रहा है। इसके लिये सामने वाले व्यक्ति को अपनी वाणी, व्यवहार और क्रिया द्वारा असंतुलित व्यक्ति को वैसा विश्वास दिलाकर उस उद्देग का समाधान करना पड़ता था, जिसके अभाव में उसे असंतुलित होना पड़ा। इतनी लम्बी प्रक्रिया के बाद तब कहीं उत्तेजित व्यक्ति सामान्य स्थिति में आता था। उसके समाधान के लिए व्यक्ति विशेष को माध्यम बनाकर अथवा वातावरण को बदलकर मनोविकार ग्रस्त मनुष्य की शान्ति सम्भव की जाती थी। उचित ही नहीं अनुचित समाधान भी प्रस्तुत करने पड़ते थे। पर अब उपरोक्त वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण यह कठिन प्रक्रिया सरल हो गई। रेडियो विद्युत्धाराएँ आवेशग्रस्त मस्तिष्कीय खण्ड का शमन कर दिया करेंगी और मनुष्य चिकित्सक के इशारे पर अपने भाव-संस्थान में आवश्यक परिवर्तन कर लिया करेगा। इस सफलता के कारण न केवल भावानात्मक रुग्ण ग्रन्थियों को खोला जा सकेगा वरन् उनमें उपयोगी ऐसे भाव बीज भी जमाये जा सकेंगे जो उसे किसी दिशा विशेष में चलने के लिये आवश्यक रुचि एवं स्फूर्ति पैदा कर सकें।

मानवीय मस्तिष्क पर इलेक्ट्रॉनिक नियमन की इस प्रक्रिया पर विज्ञान के क्षेत्र में शोध कार्य बहुत तेजी से चल रहा है और काफी प्रगति भी हुई है। दो दशक पूर्व स्विटजरलैण्ड के विज्ञानी डा. डबल्यू. आर. हेस ने इस दिशा में प्रयास आरम्भ किया था उन्होंने जीवित प्राणी के मस्तिष्क में एक सुई घुसेड़कर उसके माध्यम से विविध स्तरों की विद्युत् तरंगें पहुँचाई थीं और उनके प्रभाव का अध्ययन किया था। उन्होंने पाया कि चेतन और अचेतन मस्तिष्क भागों में विभिन्न स्तर के जो चेतन केन्द्र बने हुए हैं, उनसे सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है और

उन केन्द्रों को उत्तेजित करके उसी स्तर की विचारणा से प्राणी को ओत-प्रोत किया जा सकता है।

इसके बाद अमरीकी मस्तिष्क विद्वा विशारद डॉ. जेम्स ओल्डस ने इस कार्य को और आगे बढ़ाया। उन्होंने मानवी मस्तिष्क को हाथ में लिया जबकि पूर्ववत् स्विस् विज्ञानी वैसे प्रयोग अन्य प्राणियों पर करते रहे। भूख, भय, इच्छा, कामुकता, क्रोध, पीड़ा, निराशा, उत्साह जैसे मस्तिष्क क्षेत्र तो पहले भी मालूम थे पर उनके केन्द्रीय कण उन्होंने ढूँढ़े और इस खोज के बाद उन्होंने वह पद्धति खोजी जिसके अनुसार उस केन्द्र तक बाह्य प्रभाव को पहुँचाया जा सकता सम्भव हो सके। इसमें सबसे बड़ी बाधा खोपड़ी को चारों ओर से जकड़ी हुई कपाल-अस्थियों की थी। यह अस्थियाँ सिर की केवल सर्दी-गर्मी चोट आघात आदि से ही रक्षा नहीं करती वरन् बाहरी विद्युत प्रभावों को भी भीतर जाने से रोकती हैं। विचारों की बिजली अति सूक्ष्म होने से भीतर प्रवेश कर सकती है। एक संकल्पशील व्यक्ति के विचार दूसरे व्यक्ति पर आरोपित करने का सफल प्रयोग तो जर्मनी के डॉ. शेक्सर पहले ही कर चुके थे। मैस्मेरेजम हिप्नोटिज्म आविष्कारों ने उनमें इसी तथ्य को प्रत्यक्ष किया था। पर यह तो प्रश्न विचार तरंगों का नहीं—विद्युत तरंगों के प्रवेश का था, इसमें कपाल-अस्थियाँ प्रधान रूप से अवरोध उत्पन्न कर रही थीं। इसलिए उन्होंने चोर रास्ते से प्रवेश किया। रेडियो प्रभावित रसायनों को रक्त में मिलाकर और उस प्रभावित रक्त में विद्युत तरंगें पहुँचाकर नया रास्ता खोज लिया गया और अमुक केन्द्र को उत्तेजित करने के लिए अमुक स्तर की विद्युत का प्रयोग करने की पद्धति का निर्धारण कर लिया गया।

यह प्रयत्न और भी अधिक तेज कर दिये गये हैं और वह सरलता खोजी जा रही है, जिसमें जिसे प्रभावित करना हो उसके सहयोग की आवश्यकता न रहे। अभी तो यह कार्य तभी हो सकता है, जब व्यक्ति पर लोहपट्टी बँधवाने और औषधालय सेवन के लिए सहजता हो। बाँधकर, बलात्कारपूर्वक तो यह किया नहीं जा सकता। यदि व्यक्ति अपने ऊपर इस प्रकार का प्रभाव डलवाने के लिए सहमत न हो तब तो सारी योजना ही निरस्त हो जायेगी। अस्तु शोध के चरण इस दिशा में चल रहे हैं कि मनुष्य को पता भी न चले और परीक्षण रूप से उसे बौद्धिक पराधीनता के पास से मजबूती से जकड़ा जा सके। अभी तो मछली पकड़ने के लिए काँटा फेंकने वालों की सफलता मछली की इच्छा पर निर्भर रहती है।

ये वैज्ञानिक मछुए यह प्रयत्न कर रहे हैं कि काँटा डालने की जरूरत ही न पड़े, मछली का सहयोग

अपेक्षित ही न रहे वरन् उनमें ऐसी प्रेरणा उत्पन्न की जाय कि ये जाल में आने के लिए खुद ही दौड़ती चली आयें। मानवी मछलियों को फाँसने के लिये यह शोध प्रयास इसी स्तर का है। प्रकृति की शक्तियों को वशवर्ती करने में बहुत बड़ी मात्रा में सफलता प्राप्त करने के बाद अब चेतना की स्वतंत्रता को विज्ञान की मुट्ठी में कैद करने के लिये अन्वेषण गतिविधियाँ तीव्र कर दी गई हैं और विज्ञान क्षेत्र में समुन्नत देश गुपचुप इस दौड़ में परस्पर बाजी मारने के लिये खुले हुये हैं। अन्तर्निष्ठ पर नियंत्रण करने से भी बढ़कर यह आविष्कार होगा।

इस दिशा में संतोषजनक सफलता मिलती है तो फिर युद्ध का सबसे बड़ा माध्यम यही होगा। अणु बम, हाइड्रोजन बम जैसे अस्त्रों को बेकार समझकर त्याग दिया जायेगा क्योंकि उससे शत्रु देश के विनाश के साथ-साथ विश्वव्यापी वातावरण में विकरण उत्पन्न होने से मित्र देशों को भी खतरा उपस्थित होता है। फिर उसमें कई तरह के खतरे और झंझट भी हैं। खचीली तो वह प्रक्रिया है ही उसकी सुरक्षा के लिये भी कम चिन्ता नहीं करनी पड़ती।

प्रगति जिस चरण में पहुँची है उसे देखते हुए मिशिगन विश्वविद्यालय अमेरिका के इस संदर्भ में संलग्न विज्ञानी डा. ओटोशिमल ने घोषणा की है कि अब हमारे हाथ में मानव मस्तिष्क को नियन्त्रित करने की शक्ति आ गई है, पर आशा की जानी चाहिये कि उसका प्रयोग केवल अच्छाई के लिये ही होगा; किन्तु साथ ही इस खतरे को भी ध्यान में रखना होगा कि इस नव उपाजित शक्ति का प्रयोग निजी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति एवं राष्ट्रीय विस्तारवाद के लिये भी किया जा सकता है। यदि ऐसा किया गया तो यह आविष्कार संसार का सबसे अधिक विघातक अस्त्र सिद्ध होगा।

कुछ दिन अमरीका प्रतिरक्षा विभाग ने एक गधे पर यह प्रयोग किया गया था और उसे उपकरणों से प्रभावित करके अकेला छोड़ा गया था। उसे जिधर चलने और जो करने के लिये निर्देश किया उसने वही सब कर दिखाया।

इस अन्वेषण के आधार पर कई उपयोगी चमत्कार अमेरिका के मेयो क्लिनिक ने कनाडा के मोन्ट्रियल न्यूरोलोजिकल इन्स्टीट्यूट ने तथा नार्वे के गुस्टाड मेन्टल हॉस्पिटल ने दिखाये हैं। रोगी को खुशी-खुशी बिना डरे आपरेशन करा लेने के लिए इस आधार पर तैयार करने में आश्चर्यजनक सफलता पाई गई है। एक प्रयोग में तो एक १८ वर्ष से अन्धी चली आई महिला को उसका मस्तिष्कीय दृष्टि संस्थान उत्तेजित करके देख सकने की शक्ति ही प्रदान कर दी। यह इस अन्वेषण का उपयोगी

पक्ष है। निस्संदेह इन आविष्कारों का उपयोग मानवी सुविधाओं की वृद्धि भी कर सकता है पर खतरा तो उस दिशा से है, जिस पर कि आज के विश्व राजनेता घृष्टतापूर्वक चलते हुए एकदूसरे से बाजी मारने में तुले हुये हैं और तथाकथित शत्रु पक्ष को सर्वथा अपंग बनाने की बात सोच रहे हैं।

अवांछनीय दृष्टिकोण लेकर किया हुआ इस आविष्कार का उपयोग किसी भी अधिनायकवादी के हाथ में चक्रवर्ती विजय सौंप सकता है। इस क्षेत्र में प्रगति सम्पन्न देश अपने विरोधी या असहयोगियों की जनता तथा सैन्य शक्ति में निराशा, भीरुता एवं भयाक्रांत मनःस्थिति व्यापक रूप से उत्पन्न कर सकता है और उस व्यामोह में फँसे हुये विशाल जन समाज को मुट्ठी भर लोग अपने काबू में रखने और इशारे पर चलने के लिये विवश कर सकते हैं। गुलामी के बंधनों में जकड़ने के अब तक के प्रयासों में यह सबसे घृणित प्रयास होगा। जब आदमी सोचने की निजी क्षमता ही खो बैठा तो फिर उसका 'अपनापन' तो कुछ रहा ही नहीं, तब उसे जीवित होते हुए भी मृतकों की तरह कहीं भी खींचा घसीटा जाता रहेगा। ऐसे शक्ति सम्पन्न लोगों के चंगुल से तो मुक्त होने की भी फिर कोई आशा न रहेगी।

रूस के लौह आवरण में क्या हो रहा है इसका पता चलना कठिन है पर अमेरिका के समाचार हैं कि कुछ उच्च कोटि के वैज्ञानिकों ने मनुष्य समाज की वर्तमान मनोदशा में इस आविष्कार के खतरे को देखते हुये इस प्रयास में भाग लेने और काम करने से स्पष्ट इन्कार कर दिया है। जो लगे हुये हैं उनका तर्क यह है कि हम इस प्रयास में इसलिये लगे हुए हैं कि रूस हमसे आगे न निकल जाये और कहीं उसके चंगुल में हमारा देश ही न फँस जाये। वे कहते हैं अन्तरिक्ष यानों की प्रतिस्पर्धा का भी तो यही कारण है फिर मस्तिष्क पर नियन्त्रण प्राप्त करने की इस खोज में ही क्या दोष है ?

भौतिक विज्ञान मनुष्य के मस्तिष्क तक ही पहुँच सकता है। क्योंकि मस्तिष्क भी शरीर का ही एक अंग होने से उसे भी भौतिक क्षेत्र में सम्मिलित रखा गया है। मन को छटी या ग्यारहवीं इन्द्रिय ही माना गया है। वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा मस्तिष्कों को प्रभावित करने की विधि लगभग खोज निकली गई है और वह निकट भविष्य में सामने आ भी रही है। इसका भला-बुरा प्रभाव जल्द ही देखने के लिये मिल जायेगा।

पर भाव क्षेत्र फिर भी सूना ही पड़ा रहेगा। वह भौतिक विज्ञान की परिधि से बाहर है क्योंकि अन्तरात्मा विशुद्ध चेतना का अंश है, उसे प्रभावित परिणत और

परिष्कृत करने में केवल आत्मसत्ताएँ ही समर्थ हो सकती हैं।

आज आत्मसत्ता की दुर्बलता के कारण भौतिकवादी असुर सत्ता संसार की समस्त सम्पदाओं पर हावी होती जा रही है। मस्तिष्क की स्वतन्त्र चिन्तन शैली पर भी उसका दाँत है और आश्चर्य नहीं कि वह भी उसकी पकड़ में आ जाये। ऐसी विषम घड़ियों में इस बात की आवश्यकता और भी अधिक बढ़ जाती है कि आत्म-सत्ता का पक्ष इतना प्रबल हो कि उसके द्वारा संसार की भावचेतना को उत्कृष्टता की दिशा में अग्रसर किया जा सके। ऐसा हो सका तो भौतिक विज्ञान और उसकी समस्त उपलब्धियों को विश्व कल्याण में नियोजित किया जा सकेगा। यदि ऐसा न हो सका तो भौतिक विज्ञान के बढ़ते हुये चरण मनुष्य को एक मशीन मात्र बनाकर छोड़ेंगे और कुछ सत्ताधारियों की कठपुतली बनकर समस्त मनुष्य समाज को सबसे बुरी पराधीनता—मस्तिष्कीय गुलामी के निविड़-बंधनों में बँधकर दयनीय स्थिति में जीना पड़ेगा। ऐसे विषम समय में आत्म विज्ञान पक्ष को अधिक समर्थ और अधिक सक्रिय होने की आवश्यकता है।

परिष्कृत चेतन तत्त्व की अनुभूतियाँ

अनुभूतियाँ क्या हैं ? मानसिक उपज ? भ्रांति ? या सच्चाई ? इन पर यदि गड़राई से विचार किया जाये, तो ज्ञात होगा कि न तो यह मन की कल्पना है, न भ्रम। ऐसा इसलिए प्रतीत होता है, क्योंकि तब घटित हमारे लिए अघटित स्तर के बने रहते हैं, किन्तु जब घटना की, स्फुरणा से सही-सही संगति बैठ जाती है, तब ज्ञात होता है कि उसमें कितनी सच्चाई थी और तभी यह भी विदित होता है कि कोई अलौकिक सत्ता हमारी चेतना से छेड़-छाड़ करती रहती है। इस प्रकार का प्रसंग जब कभी भी घटित होता है, तो मनुष्य में उसका परिणाम अघटित की अनुभूति के रूप में सामने आता एवं अनागत की महत्वपूर्ण जानकारी देता है।

घटना २८ जून, १९५४ की है। न्यूयार्क अमेरिका के डॉक्टर रेमर की पत्नी एल्सा विग्राम कर रही थी। उनकी पुत्री जेस्सी एक माह पूर्व ही कैलिफोर्निया जा चुकी थी। माँ-बेटी के बीच की भौगोलिक दूरी ३ हजार किलोमीटर थी। अकस्मात् एल्सा चीखकर पलंग से उठ बैठी। रेमर ने जब इसका कारण जानना चाहा तो कहा कि अभी-अभी उसने जेस्सी की भयपूर्ण चीख सुनी, ऐसा लगा कि वह किसी विपदा में है। डॉक्टर ने अपनी पत्नी का शारीरिक परीक्षण किया। हृदय, नाड़ी, रक्तचाप सभी असामान्य थे। यह पूछे जाने पर कि उसने कोई भयंकर

स्वप्न तो नहीं देखा, एल्सा ने कहा कि वह बिल्कुल जाग्रत अवस्था में थी और केवल जेस्सी की तीक्ष्ण चीख सुनी।

उस समय और कोई बात नहीं हुई। दो दिन बीत गये। इन दो दिनों तक घर का वातावरण बड़ा उदास बना रहा। तीसरे दिन वह उदासी पूर्ण विषाद में तब बदल गई, जब सचमुच जेस्सी के दुर्घटनाग्रस्त होने का तार मिला। आश्चर्य की बात यह थी कि एल्सा ने जिस समय यह चीख सुनी, ठीक उसी समय कैलिफोर्निया में कार दुर्घटना में उसका प्राणांत हुआ।

एक अन्य घटना फ्रांस के रियर एडमिरल गैलरी की आत्मकथा से उद्धृत है। “आठ घंटियाँ” (एट बेल्स) नामक उक्त आत्मकथा में गैलरी लिखते हैं कि उन्हें सोमवार को अपनी ड्यूटी पर जाना था। रविवार की रात जब वे सोये, तो एक स्वप्न देखा कि वे अपने जहाज पर बैठे हैं। जहाज चलने की तैयारी में है। यात्रीगण जल्दी-जल्दी ऊपर आ रहे हैं। इनमें दो युवक भी हैं। वे उन दोनों से नाम पूछते हैं। एक ने अपना नाम डिकग्रेस तथा दूसरे ने पॉप कनवे बताया। तभी जहाज में अचानक विस्फोट होता है। दोनों युवक घायल हो जाते हैं। बाद में पॉप की मृत्यु हो जाती है। शेष सभी यात्री सुरक्षित बच जाते हैं। वे लिखते हैं कि स्वप्न इतना स्पष्ट और गम्भीर था कि सोकर उठने के उपरान्त भी मानस पटल पर वह ज्यों-कान्त्यों बना रहा।

आश्चर्य वहाँ से प्रारम्भ हुआ, जब उसने ऑफिस जाकर जहाज के यात्रियों की सूची देखी। उन्हें यह देखकर भारी हैरानी हुई कि जो नाम उसने स्वप्न में देखे थे, वे सचमुच उस लिस्ट में सम्मिलित थे। उनके मन में एक अज्ञात भय समा गया, पर उन्हें ड्यूटी में तो हर हालत में जाना ही था, अतः बुझे मन से जहाज में सवार हुए। जलयान ने ठीक समय पर प्रस्थान किया, पर उसने अभी ठीक तरह बंदरगाह भी नहीं छोड़ा था कि एक इंजन में विस्फोट हुआ। निकट बैठे हुए वही दो युवक घायल हुए, जिनमें से पॉप कनवे की थोड़ी देर पश्चात् मौत हो गई।

एक तीसरी घटना डरहम की एक स्त्री से सम्बन्धित है। क्रिस्टीना की लड़की लीला अपने छोटे भाई के साथ समुद्र में स्नान के लिए एक दिन गई हुई थी। अभी दो घण्टे भी नहीं बीते होंगे कि क्रिस्टीना ने चिल्लाना प्रारम्भ कर दिया। पति ने जब कारण पूछा, तो बोली लीला डूब रही है, उसे बचा लो। पति ने आरम्भ में इसे पत्नी की अति कल्पनाशीलता समझी, पर पत्नी के बार-बार के आग्रह पर पति को तथ्य का पता लगाने

के लिए जाना ही पड़ा। जब वह समुद्री किनारे पर पहुँचा, तब सचमुच लीला डूब चुकी थी और उसका छोटा पुत्र डिकी बैठा विलाप कर रहा था।

ऊपर लगभग एक ही तरह की तीन घटनाओं का उल्लेख है। यह घटनाएँ न तो भाव-संप्रेषण (टेलीपैथी) हैं और न ही दूरदर्शन (क्लेयरवायेन्स), वरन् इन्हें एक सर्वथा पृथक् श्रेणी में रखा जा सकता है, जिसे प्रायः ‘अनुभूति’ कहते हैं। टेलीपैथी यह इसलिए नहीं हो सकती क्योंकि इसमें प्रयासपूर्वक ग्रहण और संप्रेषण की कार्यविधि अपनायी जाती है। दोनों पक्षों के बीच गहन भावनात्मक तादात्म्य होता है और उनके मध्य इसे सम्पन्न करने के लिए एक निश्चित समय निर्धारित किया जाता है। ऐसे ही भौगोलिक दूरी को किसी अतीन्द्रिय क्षमता के माध्यम से पारकर किसी प्रसंग का आभास प्राप्त कर लेना सम्पूर्ण घटनाचक्र को दृश्यमान बना लेना, दूरदर्शन है। उपरोक्त घटनाओं में से एक वर्तमान से सम्बन्धित है और शेष दो भविष्य से। जो हो रहा है, उसे देखा जा सकता है। जो हो चुका है, उसे भी जाना जा सकता है, किन्तु जो अभी भविष्य के गर्भ में है, यदि उसकी जानकारी येन-केन प्रकारेण होती है, तो इसे न तो दूरसंचार कहा जायेगा, न दूर संप्रेषण। यह आध्यात्मिक अनुभूतियाँ हैं, जो यदा-कदा जीवन में प्रकट होती रहती हैं माध्यम चाहे स्वप्न हो, जागृति या तुरीयावस्था हो।

वेदांत दर्शन के अनुसार सृष्टि में ब्राह्मी चेतना या परमात्मा ही एक ऐसा तत्व है, जो सर्वव्यापी है। इसे प्रकारान्तर से यों भी कह सकते हैं कि ब्रह्माण्ड उसीमें अवस्थित है। वह काल की सीमा से परे है, अर्थात् भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों ही उसमें समाहित हैं। “एक्सप्लोरिंग साइकिक फेनामेना बियांड मैटर” नामक कृति में डी. स्कॉट रोगो इस सम्बन्ध में अपना विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं कि विचारणाएँ तथा भावनाएँ प्राणशक्ति का उत्सर्जन (डिस्चार्ज ऑफ वाइटल फोर्स) हैं। यही उत्सर्जन अंतःकरण में यदा-कदा स्फुरणा बनकर प्रकट होते हैं। इस स्फुणा की क्रिया-प्रणाली जब दो व्यक्तियों के मध्य सम्पन्न होती है, तब वह टेलीपैथी होती है, किन्तु जब वह समय की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए सूचना सुदूर भविष्य की देती है, तो इसका आधारभूत कारण ब्राह्मीचेतना होती है। इस चेतना की कल्पना आइन्स्टीन ने भी सापेक्षवाद के सिद्धान्त में की है और लिखा है कि यदि प्रकाश की गति से भी तीव्र गति वाला कोई तत्व हो तो वहाँ समय रुक जायेगा। दूसरे शब्दों में वहाँ बीते कल, आज और आने वाले कल में कोई अन्तर न रहेगा। भारतीय शास्त्र ब्राह्मीचेतना को ही ऐसा परम तत्व बताते हैं और मनुष्य व उसमें गहन सम्बन्ध होने का

पग-पग पर उल्लेख करते हैं। उपरोक्त घटनाएँ इसी सत्य की पुष्टि करती हैं, साथ ही यह भी बताती हैं कि जब उस सत्ता का क्षणिक सम्पर्क इतना आश्चर्यजनक हो सकता है, तो सम्पूर्ण सम्पर्क कितना सामर्थ्य प्रदान करने वाला होगा यह विचारणीय है।

ऋग्वेद में एक ऋचा आती है—अग्निना अग्नि सन्धिष्यते, अर्थात् अग्नि से अग्नि प्रदीप्त होती है। ब्रह्मानुभूति से ब्रह्म प्राप्ति इसी सिद्धान्त पर आधारित है कि हम अधिकधिक अपने आपे को आत्मचेतना को उस ब्राह्मीचेतना के समीप लायें और फिर अंततः उसी में अपना विलय-विसर्जन कर दें। आत्म चेतना परमात्म-चेतना बन जाय और परमात्म चेतना आत्मचेतना की अनुभूति करायें। यह एकात्म-अद्वैत की स्थिति है। सर्वसाधारण में यह स्तर विकसित नहीं हो पाने के कारण ही “काल” रहस्यमय बना रहता है। जहाँ जिस अनुपात में दो सत्ताओं का सम्मिलन होता है, वहाँ उसी अंश में अविज्ञात ज्ञात बनता चलता है। उपरोक्त घटनाएँ उसी शृंखला की कड़ियाँ हैं, और आत्मजाग्रति की क्षणिक अनुभूतियाँ भी। विस्तृत अनुभूति, ज्ञान प्राप्ति और ईश्वर सत्सात्कार के लिए तो आत्म-परिष्कार की गहन साधना अपनानी पड़ती है, जिसके उपरान्त ही अनुभूतियों के निमित्त कारण को भलीभाँति जाना और समझा जा सकता है।

अविज्ञात को जानने के लिए , चलें

चेतना के सर्वोच्च आयाम में

काल-खण्ड तीन हैं—भूत, वर्तमान और भविष्यत। इनका अस्तित्व सिर्फ इस कारण है कि सृष्टि और समय की गति में जमीन-आसमान जितना अन्तर है, यदि इस मध्यांतर को मिटा दिया जाय, तो काल के विभाग भी स्वतः समाप्त हो जायेंगे। फिर जो शेष बचेगा, वह वर्तमान के अतिरिक्त कुछ नहीं होगा।

यह वर्तमान और सद्यः समय दोनों एक ही हैं। जगत की हर क्रिया वर्तमान से आरम्भ होती है, पीछे वह अतीत बन जाती है। जीवन का प्रादुर्भाव वर्तमान है। तत्पश्चात् उसकी गति काफ़ी मंद पड़ जाती है और समय बहुत आगे निकल जाता है, फलतः वह आगत-अनागत के दो अतिरिक्त खंडों में बँट जाता है। संसार की समस्त घटनाएँ सारी गतिविधियाँ ऐसी ही हैं, वह समय के सापेक्ष होती हैं, निरपेक्ष वहाँ कुछ भी नहीं। जो निरपेक्ष है, वह मात्र ईश्वर है और ईश्वर समय से बँधा नहीं। जो काल से मुक्त है, उसके लिए काल-खण्डों का कोई अस्तित्व नहीं। जहाँ इनकी सत्ताएँ हैं, वहाँ काल और घटनाक्रमों की गति-भिन्नता भी स्पष्ट है। कई बार इस

भिन्नता को मिटाते हुए मनुष्य जब समय की गति के साथ चल पड़ता है, तो वह अनागत में पहुँच जाता है और कितनी ही बार उक्त भिन्नता को बढ़ाते हुए गति धीमी करता है, तो वही भूतकाल का प्रवेश द्वार बन जाता है। प्रायः ऐसे कौशल सूक्ष्म-जगत में गति रखने वाले आध्यात्मिक पुरुष ही कर पाते हैं, पर अनेक अवसरों पर यह सब आम आदमियों में भी अनायास सम्पन्न होता देखा जाता है।

ऐसी ही एक घटना का उल्लेख मार्टिन एबोन ने अपनी पुस्तक “प्रोफेसी इन आवर टाइम” (पृ० १४२) में किया है। प्रसंग ४ सितम्बर, १९५६ का है। इंगलबुड, कैलिफोर्निया निवासी श्री एवं श्रीमती पाल मैककैहन उक्त दिन जल्दी ही “ग्रैंड कैन्यॉन” (अमेरिका का एक दर्शनीय स्थल) पहुँच गये। जब शाम घिरने को आयी, तो उन्होंने एक महिला को उसके पति और बच्चे के साथ देखा, जो अपना सामान लिए पास से गुजर रहे थे। श्रीमती मैककैहन ने उस स्त्री को पहचान लिया। वह उनकी एक परिचिता श्रीमती नैश थीं, जिसके साथ पिछले ही साल उन्ने यात्रा की थी। मैककैहन की पत्नी ने सोचा कि श्रीमती नैश अभी बहुत थकी होंगी, इसलिए उन्ने उस परिवार से तत्काल मिलने का विचार त्याग दिया।

इस सम्बन्ध में “अमेरिकन सोसायटी फॉर साइकिकल रिसर्च” की अपनी रिपोर्ट में वे लिखती हैं कि दूसरे दिन प्रातः उसने उसे बरामदे में बैठी देखा। मैककैहन दम्पति वहाँ गये और बातें करने लगे। प्रसंगवश जब उन्होंने नैश परिवार से यह बात कही कि कल ही उन्होंने उन सब को आते हुए देख लिया था, पर यात्रा की थकान के कारण कष्ट देना उचित नहीं समझा, तो श्री और श्रीमती नैश आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने विस्मय प्रदर्शित करते हुए बताया कि वे तो अभी-अभी यहाँ बस से आये हैं। कल तो वे अन्यत्र थे। इस पर बीच में ही हस्तक्षेप करते हुए श्री मैककैहन ने कहा कि उसने भी उन सबको देखा था और जब दृष्टि पड़ी, तब दोनों के बीच की दूरी मुश्किल से दस फुट रही होगी, पर नैश परिवार उनकी बात को आश्चर्य के साथ इन्कार करते रहे और यही कहते रहे कि वे अभी-अभी यहाँ आये हैं। सम्भव है मैककैहन दम्पति ने भविष्य दर्शन किया हो। किन्तु जो वे कह रहे थे वह सत्य था क्योंकि प्रत्येक दृश्य जो बताया गया, वैसा ही था।

एक ऐसी ही घटना की चर्चा करते हुए माइनर बूस अपने ग्रंथ “साइलेंट सिटी ऑफ अलास्का” में लिखते हैं कि सन् १८९७ की गर्मियों में ड्यूक ऑफ एबूजी के नेतृत्व में एक यात्री दल ने अलास्का की तटवर्ती पहाड़ियों सेट एलियास की यात्रा की। पर्वतारोहण

दल जब पहाड़ के मध्य के समतल मैदान में पहुँचा तो उन्हें एक पुराने शहर का भव्य दृश्य दिखाई पड़ा। यात्रीदल के एक सदस्य सी. डब्ल्यू. थार्नटन का कहना था कि शहर की इमारतें, गलियाँ, वृक्षावलियाँ सब कुछ इतना सुस्पष्ट थीं कि उसे भ्रम या दिवास्वप्न कहना उचित न होगा। वे लिखते हैं कि अभियान दल जब उसका निकट से परीक्षण करने पहुँचा, तो दृश्य अचानक विलुप्त हो गया। इस दिव्य दृश्य के बारे में दल के सदस्यों में परस्पर मतभेद था। कुछ का मानना था कि वह प्राचीन ब्रिस्टल शहर (इंग्लैण्ड) का दृश्य था, जबकि अन्य सदस्य इससे सहमत नहीं थे। उनके अनुसार यह प्राचीन अलास्का की एक झलकी थी। कुछ भी हो, इतना सुनिश्चित है कि उनमें जो कुछ देखा, उसका वर्तमान में कोई अस्तित्व नहीं है। सेण्ट एलियास पहले भी निर्जन था और अब भी आबादी रहित जनहीन क्षेत्र है। प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार हर वर्ष २१ जून से १० जुलाई के बीच उस अज्ञात शहर का दिव्य दर्शन किया जा सकता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त अवधि में लोग समयावरोध को लौंघकर पीछे चलते हुए उसके गर्भ में उतरते और अतीत की झाँकी करते हैं।

क्या यह सम्भव है ? हाँ, अब विज्ञान भी इस बात को स्वीकार करता है कि ऐसा सर्वथा अशक्य भी नहीं। उसके अनुसार समय के अनेक आयाम हैं। जब किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा स्थान से सम्बन्धित समय के उच्चआयाम में व्यक्ति प्रयासपूर्वक अथवा अनायास पहुँच जाता है, तो वह उस वस्तु, व्यक्ति अथवा स्थान से सम्बन्धित भूत और भविष्य की बातें जान लेता है। दूसरे शब्दों में कहें, तो व्यक्ति अतीत एवं भविष्य के गर्भ में प्रवेश कर जाता है। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि समय भूत, वर्तमान एवं भविष्य के एक रैखिक क्रम में स्थित है। विज्ञानवेत्ताओं का कहना है कि समय का यह एक आयाम हुआ। अपनी दूसरी भूमिका में अतीत, वर्तमान और भविष्य साथ-साथ रहते हैं। यदि सचमुच ऐसा है, तो फिर उन आयामों तक पहुँचा कैसे जाय, जहाँ एक समय में तीनों काल खण्ड एक साथ रहते हों ? वैज्ञानिकों का इस सम्बन्ध में सुनिश्चित मत है कि इन अविज्ञात स्तरों तक उन आयामों द्वारा आसानी से पहुँचा जा सकता है, जो हमें ज्ञात है, अर्थात् लम्बाई, ऊँचाई और गहराई। इन तक एक प्रारम्भिक बिन्दु, जिसमें स्थान तो होता है, पर आयाम नहीं। इसे निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।

यदि कोई कण आकाश (स्पेस) में गतिशील हो, तो उससे एक आयामीय रेखा का निर्माण होता है। यह आयामीय लम्बाई है। जब इस प्रकार की कोई रेखा आकाश से गुजारी जाय, तो उसके लम्बाई और चौड़ाई

के दो आयामीय तल विनिर्मित होंगे। यदि ऐसे किसी तल को पुनः आकाश में परिभ्रमण कराया जाय, तो जिस आकृति की संरचना होती है, उसके लम्बाई, चौड़ाई (या ऊँचाई) और गहराई तीन आयाम होंगे।

क्रिया इसके विपरीत भी सम्भव की जा सकती है। यदि गति उल्टी कर दी जाय, तो त्रिआयामीय भूमिका से पुनः प्रारम्भिक बिन्दु पर पहुँचा जा सकता है। विशेषज्ञों का कहना है कि किसी ऐसी वस्तु की, जिसके तीन आयाम हों, अनुप्रस्थ काट (क्रॉस सेक्शन) काटी जाय, तो उससे दो आयामों वाला तल प्राप्त होगा। फिर इस तल की अनुप्रस्थ काट से एक आयामयुक्त लाइन प्राप्त होगी। यदि आगे पुनः इसे अनुप्रस्थ रूप से काटा जाय, तो जिस बिन्दु की उपलब्धि होगी, वह सर्वथा आयामरहित कण मात्र होगा।

इस तरह यह निष्कर्ष आसानी से निकाला जा सकता है कि तीन डायमेन्सनों वाला पदार्थ किसी चार आयामों वाली वस्तु की अनुप्रस्थ काट है। जब ऐसी किसी त्रिआयामी वस्तु को एक विशिष्ट तरीके से, विशिष्ट दिशा में भ्रमणशील बनाया जाय, तो वह एक चार आयामों वाला पदार्थ का निर्माण करेगी। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि वह किस प्रकार की वस्तु होगी, जिसकी अनुप्रस्थ काट में तीनों डायमेन्सन्स उपस्थित हों एवं उसे किस विशिष्ट दिशा में चलाया जाय कि उससे चार प्रकार की भूमिकाओं का निर्माण हो ? क्योंकि आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, दायें-बायें इस प्रकार की गतियाँ केवल वृहद् आकृतियों का सृजन करती हैं, किसी नये आयाम का नहीं। इसके उत्तर में वैज्ञानिक कहते हैं कि चूँकि समयावधि एक नवीन भूमिका है, अतः हर आयामों वाले पदार्थ का चौथा आयाम इसे माना जा सकता है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक त्रिआयामी पदार्थ चार आयामों वाला होता है और ऐसी सभी वस्तुओं की विवेक संगत परिभाषा यही हो सकती है कि उनके दृश्य तीन ही आयाम हैं—लम्बाई, चौड़ाई और गहराई, जबकि समयावधि का चतुर्थ डायमेन्सन अदृश्य स्तर का बना रहता है। तो क्या इस तरह की अवस्था और वस्तु सम्भव है ? विशेषज्ञ इसका उत्तर 'हाँ' में देते हुए कहते हैं कि यह शक्य तो है, पर केवल परिकल्पना स्तर पर ही, क्योंकि वास्तव में बिन्दु, रेखा और तल का यथार्थ अस्तित्व सदा उसी रूप में बना नहीं रहता। किसी लाइन के, जब वह गत्यात्मक अवस्था में आ जाय, तो लम्बाई के साथ-साथ उसमें चौड़ाई (और समयावधि भी) हो सकती है, जैसा कि किसी तल के गतिमान बनने पर लम्बाई, चौड़ाई के साथ-साथ उसमें मोटाई भी आ उपस्थित होती है। सवाल

यह शेष रह जाता है कि ऐसे किसी द्रव्य (त्रिआयामी) की गति क्या हो कि वह चतुर्थ आयाम वाले पदार्थ को जन्म दे ?

विज्ञान विशारदों का इस सन्दर्भ में विचार है कि जब किसी वर्गाकार तल को ऊँचाई के आयाम में (ऊपर-नीचे) चलाया जाता है, तो इससे घन की उत्पत्ति होती है। ऐसे ही यदि उक्त (परिकल्पनिक) घन को समय आयाम में गति दी जाय, तो जिस आकृति का जन्म होगा, वह एक चार डायमेंशन वाली संरचना होगी।

यहाँ, “समय के आयाम में गति” का तात्पर्य भलीभाँति समझ लेना आवश्यक है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है—इसका अर्थ एक अभिनव दिशा में गति से है, न कि पार्श्व, ऊर्ध्व और अधोगतियों से। शंकालु हृदय में यहाँ यह संदेह पैदा हो सकता है कि ऐसी दूसरी गतियाँ हैं क्या ? उत्तर में यही कहा जा सकता है कि ऐसी कई ज्ञात गतियाँ हैं और अनेक अविज्ञात गतियों की सम्भावना विज्ञान जगत में प्रकट की जाती है। उदाहरण के लिए एक तो वह वेग हो सकता है, जो हर प्राणी और पदार्थ को पृथ्वी से मिलता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से वेगरहित होने के बावजूद उन्हें वेगवान कहा जा सकता है। यह प्रच्छन्न गति है। इस तरह यह मानने में हर्ज नहीं कि त्रिआयामी दृश्य एक यथार्थ वस्तु की परिकल्पनिक रूप से गति रहित अनुप्रस्थ काट है, जिसका चौथा आयाम-अवधि, पृथ्वी की उस दैनिक गति से अविच्छिन्न रूप से संलग्न है, जो हर पृथ्वीवासी पदार्थ और प्राणी को उक्त ग्रह से मिलती रहती है। इसके अतिरिक्त अन्य गतियाँ हैं—पृथ्वी की सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण गति, सूर्य द्वारा किसी महासूर्य की परिक्रमा एवं अपनी आकाश गंगा द्वारा किसी अन्य अविज्ञात केन्द्र की प्रदक्षिणा गति। चूँकि प्रत्येक दृश्य पदार्थ पर यह गतियाँ साथ-साथ क्रियाशील हैं, अतः यह कहा जा सकता है कि उन सभी को उक्त सारे आयाम उपलब्ध है। यह बात और है कि सामान्य स्थिति में उनकी अनुभूति नहीं हो पाती, पर इतने से ही सत्य और तथ्य से इन्कार तो नहीं किया जा सकता। इतना स्वीकार लेने के उपरान्त इस यथार्थ को मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि उपरोक्त गतियों और आयामों को समय के परिप्रेक्ष्य में ही जाना, समझा और अनुभव किया जा सकता है। चूँकि समय-संदर्भ के अतिरिक्त इनकी अनुभूति और कोई उपाय नहीं, अस्तु इन सबको सरलता के लिए “समय का आयाम” कहा जाता है।

यहाँ यह जिज्ञासा हो सकती है कि अवधि यदि समय का एक पक्ष है, तो इसके दूसरे अन्य पहलू क्या होंगे ? इस सम्बन्ध में इस विषय के निष्णात विभिन्न

प्रकार की सम्भावनाओं में से जिन संभाव्यताओं के बारे में अपना मत प्रकट करते हैं, वे हैं—दृश्य-अदृश्य एवं परिवर्तन व पुनरावृत्ति की घटनाएँ। वैज्ञानिकों का कहना है कि समय के अगणित पहलुओं में से मात्र “अवधि” ही एक ऐसी है, जो मानवी इंद्रियों के लिए ग्राह्य है। जब किसी वस्तु के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि उसका आविर्भाव हुआ, तो इसका आशय मात्र इतना होता है कि हमें अकस्मात् उसके अस्तित्व का पता चला। ऐसे ही किसी के तिरोभाव से उसकी अस्तित्वहीनता का बोध होता है, किन्तु जन्म-मरण की मध्यावस्था इंद्रियगम्य नहीं है। उसे इंद्रियों द्वारा जाना नहीं जा सकता। यदि अनुभूति की जा सकती है, तो मात्र समयावधि के परिप्रेक्ष्य में ही वह सम्भव है। इसी प्रकार परिवर्तन को भी देखा नहीं जा सकता। जो दिखाई पड़ता है, वह परिवर्तनों का समुच्चय होता है। सूर्योदय-सूर्यास्त, ऋतुओं का गुजरना, पौषे एवं बच्चों का बढ़ना आदि ऐसी घटनाएँ हैं, जिन्हें हम देख नहीं पाते, किन्तु फिर भी यह घटित तो होती ही है। इसीलिए इन्हें परिकल्पनिक माना जाता है और ऐसा स्वीकार किया जाता है कि समय के किसी अन्य आयाम में इनका वास्तविक अस्तित्व है, वैसे ही जैसे किसी परिकल्पनिक त्रिआयामी वस्तु की यथार्थ सत्ता अवधि के आयाम में होती है, अर्थात् उसी डायमेंशन में वह इन्द्रिय-ग्राह्य बन पाती है।

इस दृष्टि से समय और उसके आयामों की महत्ता काफी बढ़ जाती है। यदि किसी व्यक्ति की इन आयामों में गति हो, तो उसके लिए वह सब सम्भव हो जाता है, जो सामान्य स्थिति और परिस्थिति में सर्वसाधारण के लिए असम्भव स्तर का बना रहता है। फिर उसके लिए काल की विभाजन-भित्ति समाप्त हो जाती है और सब कुछ वर्तमान हो जाता है; अर्थात् वह किसी भी वस्तु, व्यक्ति अथवा स्थान से सम्बन्धित चाहे किसी काल-खण्ड में अप्रतिहत प्रवेश कर उससे सम्बन्धित जानकारी उसी प्रकार उतनी ही आसानी से अर्जित कर सकता है, जैसे कोई व्यक्ति अपने सम्मुख की चीज के बारे में सरलतापूर्वक ज्ञानार्जन कर लेता है, किन्तु यह सब शक्य उसी अवस्था में है, जब चेतना अत्यन्त परिष्कृत स्तर की हो। अपरिष्कृत चेतना तो मनुष्य को पशुतुल्य बनाये रखती है, जबकि अपनी परिशोधित स्थिति में वह मानव को देवताओं की श्रेणी में ला खड़ा करती है। हम परिष्कृत चेतना सम्पन्न बनें, काल-खण्डों के अवरोध को तभी मिटाया जा सकता है और अविज्ञात को ज्ञात तभी बनाया जा सकता है।

परिष्कृत अंतरंग चेतना की उपलब्धियाँ

दृश्यमान जगत की अदृश्य, रहस्यमयी परतों को यदि समझा जा सके और उनसे सम्पर्क स्थापित किया जा सके तो निश्चय ही वे विभूतियाँ अर्जित की जा सकती हैं, जिनके आधार पर अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का जीवन जिया सकता है और इस जीवन को सफल बनाया जा सकता है। भौतिक विज्ञान स्थूल जगत में बिखरी हुई शक्ति को देखकर ही चकित है और यह नहीं समझ पा रहा है कि उसका उपयोग किस प्रकार किया जाये ? सामान्य के भीतर जो असामान्य छिपा पड़ा है, उसमें से बहुत कुछ को अब भली-भाँति समझा जाने लगा है। उदाहरण के लिए, सूर्य को ही लें। वह गर्मी और रोशनी देने वाला, रोज उगने और डूबने वाला अग्नि पिंड मात्र है, परन्तु गम्भीरतापूर्वक उसका विश्लेषण अध्ययन करने पर यही पता चलता है कि वह शक्ति का असीम भाण्डागार है।

सूर्य के मध्य भाग में जितनी गर्मी भरी पड़ी है उसके दो लाखवें हिस्से से ही प्रकृति के विकास और विनाश का सन्तुलन क्रम चलता है। शेष भाण्डागार किस प्रयोजन के लिए सुरक्षित है ? इसका कोई पता नहीं है। यह भी समझा जा सकता है कि वह शक्ति किसी आपत्तिकाल के समय प्रयुक्त करने के लिए सुरक्षित हो या यों भी कहा जा सकता है कि परमात्मा ने वह शक्ति सूर्य के सुरक्षित कोष में इसलिए जमा कर रखी हो कि कोई उपयुक्त पात्र आए और किसी ईश्वरीय प्रयोजन की पूर्ति के लिए शक्ति की आवश्यकता अनुभव करे तो उसे इतनी शक्ति उपलब्ध हो सके कि ध्वंस और निर्माण का कार्य सुभीते के साथ चल सके।

प्रकृति में उपलब्ध शक्ति भण्डार की तुलना में मानव उपार्जित समस्त साधन इतने स्वल्प हैं कि वे समुद्र की तुलना में एक बूँद के बराबर भी नहीं ठहरते। मनुष्य का अपना शरीर भी कुछ कम विचित्र या विलक्षण नहीं है। पूरा शरीर जिन छोटी-छोटी कोशिकाओं से मिलकर बना है, यदि उन्हें खींचकर लम्बाई में बढ़ाया जाए और फैलाया जाए तो वह समूचे ब्रह्माण्ड के विस्तार जितना लम्बा होगा। इतने लम्बे फीते में यदि अक्षरों को अंकित किया जाए तो वह स्मृति कोष इतना विपुल होगा कि उसे भरने के लिए उपलब्ध जानकारीयाँ एक अंश भी नहीं भर सकेंगी। ऐसा मनुष्य सर्वज्ञ ही कहा जा सकता है। योगविद्या के जानकार यह जानते हैं कि योग सिद्ध व्यक्ति के लिए संसार में जो कुछ हो रहा है, जो कुछ होगा और जो हो गया है वह सब कुछ जान लेना सम्भव है। इस तथ्य को स्थूल विवरणों के आधार पर

साढ़े पाँच फीट लम्बे और करीब सवा सौ पाँड वजनी शरीर में जो कुछ है उसे आश्चर्यजनक ही कहा जा सकता है।

शरीरशास्त्रियों का मत है कि शरीर में विद्यमान खरबों कोषों में से प्रत्येक में उस शरीर की शारीरिक तथा मानसिक विशेषताएँ विद्यमान रहती हैं। ये विशेषताएँ आगे चलकर मनुष्य शरीर में परिपक्व होने वाली होती हैं। बच्चे की आकृति-प्रकृति का सारा ढाँचा इन नगण्य से घटकों में छिपा रहता है। शरीर के सम्बन्ध में सबसे निकटवर्ती विचित्रताओं में सबसे अधिक विलक्षण है। मस्तिष्क की टोकरी में रखा हुआ, सूक्ष्म शक्तियों और दिव्य क्षमताओं का भण्डार। लेकिन कठिनाई यह है कि जिस प्रकार अपनी ही आँखों को स्वयं सीधे देख पाना कठिन है और अपने ही भीतर चल रही रक्त की हलचलों को जाना-पाना दुरूह है, उसी प्रकार मस्तिष्क को समझना कठिन है। उससे भी ज्यादा कठिन मानसिक चेतना पर नियन्त्रण कर पाना है। यदि वैसा सम्भव हो सके तो शक्ति का लगभग उतना ही बड़ा स्रोत हाथ लग सकता है जितना कि बाह्य जगत में दिखाई देने वाले सूर्य में निहित है। पुस्तकीय शिक्षा, विचार-विनिमय, दृश्य चिन्तन आदि के सहारे जो ज्ञानवृद्धि होती है, उससे मस्तिष्क का बहुत छोटा अंश ही विकसित हो पाता है। जिसके सहारे उपार्जन, लोक व्यवहार तथा निर्वाह के सामान्य प्रयोजन ही पूरे होते हैं। शक्ति का स्रोत तो अचेतन है और उसे प्रभावित कर सकना ही कठिन है। यदि उसे प्रभावित किया जा सके, अचेतन तक पहुँच पाना सम्भव हो जाए और उसे अभीष्ट दिशा में बदला जा सके तो व्यक्तित्व का स्वरूप ही बदल सकता है। तब सामान्य को असामान्य के रूप में विकसित हुआ देखा जा सकता है।

अचेतन को प्रभावित करने की दिशा में भी कितने ही वैज्ञानिक प्रयोग चल रहे हैं और उनमें सफलताएँ भी मिल रही हैं। अमेरिका के प्रसिद्ध चिकित्सक और मनःशास्त्री डॉ० डेलगाडो ने इस सम्बन्ध में कई सफल प्रयोग किये हैं और उन प्रयोगों में से कुछ का प्रदर्शन भी किया है। एक प्रदर्शन में उन्होंने एक बन्दर को केला खाने के लिए दिया। जब वह केला खा रहा था, तब डॉ० डेलगाडो ने इलेक्ट्रो ए. सी. फैलोग्राफ के द्वारा बन्दर के मस्तिष्क को सन्देश दिया कि केला खाने की अपेक्षा तो भूखे रहना ज्यादा अच्छा है। यह सन्देश ग्रहण करने पर बन्दर ने केला फेंक दिया। इलेक्ट्रो ए. सी. फैलोग्राफ एक ऐसा यन्त्र है, जिसमें विभिन्न क्रियाओं के समय मस्तिष्क में उठने वाली भाव-तरंगों को अंकित कर लिया जाता है। इस यन्त्र द्वारा मस्तिष्क में अभीष्ट प्रकार

की भाव-तरंगों को विद्युत यन्त्र द्वारा तीव्र कर देते हैं तो मस्तिष्क के शेष सब भाग दब जाते हैं और वह एक ही भाव तीव्र हो उठने से मस्तिष्क केवल वही क्रम करने लगता है।

इस तथ्य को डॉ. डेलगाडो ने एक खतरनाक प्रयोग करके सिद्ध कर दिखाया। इस प्रयोग का उन्होंने सार्वजनिक प्रदर्शन भी किया। प्रदर्शन को देखने के लिए हजारों लोग एकत्र हुए। सिर पर इलेक्ट्रोड जड़े हुए दो खूंखार साँड़ लाये गये। यह एक प्रकार का एरियल था जो रेडियो ट्रान्समीटर द्वारा छोड़ी गई तरंगों को पकड़ लेता था। जब दोनों साँड़ मैदान में आये तब उनका खूंखारपन देखते ही बनता था, लगता था दोनों डेलगाडो का कचूमर ही निकाल देंगे। लेकिन दोनों साँड़ जैसे ही डेलगाडो के पास पहुँचे, उन्होंने अपने यन्त्र द्वारा शान्ति की भाव तरंगों प्रेषित कीं। इन तरंगों के प्रेषण के साथ ही साँड़ आक्रामक मुद्रा को फुंसकारते हुए ऐसे शान्त भाव से खड़े हो गए, जैसे दो बकरियाँ खड़ी हों। उल्लेखनीय है कि जानवर मनुष्यों की भाषा भले ही न समझें किन्तु भावों की भाषा तो समझते ही है। यदि प्रयत्न किया जाए तो मनुष्य अपनी भावशक्ति को इस सीमा तक बढ़ा सकता है कि उसके द्वारा सिंह और गाय को एक साथ रखने की उक्ति चरितार्थ की जा सकती है।

यह मस्तिष्क की ही शक्ति है। टैक्सास विश्वविद्यालय के रॉबर्ट थाम्पसन और जॉस मैक कौनेल वैज्ञानिकों ने प्लेनोरिया नामक जीव पर परीक्षण करके यह सिद्ध किया है कि विद्युत उपकरणों की सहायता से मस्तिष्कीय क्षमता को घटाया और बढ़ाया जा सकता है। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के डॉ. एलन जेकबसन ने प्रशिक्षित चूहों के मस्तिष्क में से आर० एन० ए० नामक रसायन निकालकर अनाड़ी चूहों के मस्तिष्क में पहुँचाया तो वे भी प्रशिक्षित चूहों की तरह व्यवहार करने लगे। मस्तिष्क को प्रभावित करने और उसे इच्छित दिशा में मोड़ने के लिए किये जा रहे प्रयासों की प्रगति जिस चरण में पहुँच गई है, उसे देखते हुए मिशिगन विश्वविद्यालय अमेरिका के वैज्ञानिक डॉ. ओटोशिमल ने घोषणा की है कि अब हमारे हाथ में मानव मस्तिष्क को नियन्त्रित करने की शक्ति आ गई है, पर आशा की जानी चाहिए कि उसका प्रयोग केवल अच्छाई के लिए ही होगा। लेकिन साथ ही इस खतरे को भी ध्यान में रखना होगा, इस शक्ति का प्रयोग कहीं निजी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति एवं साम्राज्यवादी विस्तार के लिए भी किया जा सकता है। यदि ऐसा किया गया तो यह आविष्कार संसार का सबसे विघातक अस्त्र सिद्ध होगा।

उल्लेखनीय है कि डॉ. ओटो स्वयं भी इस दिशा में प्रयोगरत हैं।

विद्युत शक्ति या अन्य उपकरणों का सहारा लेकर मस्तिष्कीय क्षमता को विकसित करने या उसे प्रभावित करने की अपेक्षा योग साधन का मार्ग निरापद है। योग का उद्देश्य बिना वैज्ञानिक उपकरणों के अन्तःचेतना को अभीष्ट स्तर पर परिवर्तित और विकसित करना है। यह इसलिए उपयुक्त है कि हर व्यक्ति अपनी चेतना का परिष्कार होने पर उसी दिशा में अपनी क्षमता को अपने और दूसरों के कल्याण में लगाया जा सके। इसके विपरीत वैज्ञानिक साधनों द्वारा दूसरों के मस्तिष्कों को प्रभावित करने का आधार अपना लिया गया, तो जनसाधारण को किसी महत्वाकांक्षी सत्ताधारी की इच्छा के अनुरूप ढलना पड़ेगा और आत्मोत्कर्ष से वंचित रहकर किन्हीं औरों के हाथ की कठपुतली मात्र बनकर रह जाना पड़ेगा।

विलक्षणताओं की दृष्टि से देखा जाए तो छोटे-छोटे जीव-जन्तु भी असाधारण सूक्ष्म चेतना से सम्पन्न पाये जाते हैं। वैरियन कीड़े की घ्राण शक्ति सबसे तीव्र मानी जाती है। वह मीलों दूर के मुर्दा माँस का पता लगा लेता है और उड़ता-फुदकता हुआ वहाँ तक पहुँच जाता है। समुद्र में हल्के ज्वार-भाटे पचास मिनट के अन्तर से आते हैं। केंकड़े भी इसी क्रम से अपना रंग बदलते रहते हैं। कीड़ों के कान नहीं होते, यह काम वे अगली टाँगों के जोड़ों में रहने वाली ध्वनि ग्रहण शक्ति द्वारा पूरा कर सकते हैं। तितलियों के पंखों में श्रवण शक्ति पाई जाती है। झींगुर आदि जो आवाज करते हैं वह उनके मुँह से नहीं बल्कि टाँगों की रगड़ से उत्पन्न होती है। कीड़ों की अपनी विशेषता है। उनके फेंफड़े नहीं होते पर वे साँस लेते हैं। उनके कान नहीं होते पर वे सुन सकते हैं। नाक न होने पर भी वे सूँघने में समर्थ होते हैं। रगफर्ड जाति का कीड़ा सीधा माँ के द्वारा ही जन्मता है। बाप का कोई योगदान उसके जन्म लेने में नहीं होता। क्वारी एफिड अपने बलबूते पर बच्चे जनने लगती है। नेस, सलासोमिना, आइस्टर, स्नेल (घोंघा) फ्रेस वाटर मसल आदि कृमियों में भी यही विशेषता होती है।

इस प्रकार प्रकृति ने अपने परिवार के सभी सदस्यों को कोई न कोई विलक्षणता बाँट रखी है। मनुष्य में इन सभी विलक्षणताओं का समुच्चय बीज रूप से विद्यमान है, जिन्हें आत्मचेतना के विकास द्वारा जागृत किया जा सकता है। इस विकास के लिए सर्वप्रथम आन्तरिक उत्कृष्टता का विकास आवश्यक है। इस आवश्यकता को पूरा करने के बाद भले ही ये विलक्षणताएँ विकसित न हों, परन्तु हर घड़ी आनन्द की स्थिति बनी रहती है। इसके अतिरिक्त

अचेतन की क्षमता इतनी प्रखर हो उठती है कि उसके सहारे देव जीवन जी पाना सम्भव हो पाता है और दूसरों को सुखी-समुन्नत बनाकर असीम आत्म-सन्तोष देने वाला श्रेय प्राप्त किया जा सकता है।

अविज्ञात रहस्यों से भरी मानवी चेतना

मानवी क्राया का बहिरंग ढाँचा अस्थि चर्म से विनिर्मित दीखता है, जिसके साथ जुड़ी हुई ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ अपना-अपना कार्य करती रहती हैं और जिस-तिस प्रकार जीवन की गाड़ी आगे धकेलती रहती है। सामान्यजनों की जानकारी में यही है स्थूल काया का स्वरूप और उसका उपयोग।

किन्तु सूक्ष्मदर्शी जानते हैं कि स्थूल की तुलना में सूक्ष्म की सत्ता, प्राण चेतना की क्षमता असीम, अपरिमित है। जितना कुछ मनुष्य को अपने शरीर एवं ज्ञानेन्द्रियों के बारे में ज्ञात है, उसकी तुलना में अविज्ञात बहुत अधिक है। यह समय-समय पर भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होकर अपनी सामर्थ्य-क्षमता का परिचय देता रहता है।

मूर्धन्य परामनोविज्ञानवेत्ता डॉ. गेल्डीन का कहना है कि ज्ञानेन्द्रियों के सुनने, बोलने, देखने, सूँघने तथा स्पर्शानुभूति की क्षमता से हम सभी परिचित हैं, पर इससे भी महत्त्वपूर्ण एवं अत्यन्त सामर्थ्यवान एक और शक्ति है, जिसके बारे में लोगों को बहुत कम जानकारी है। इसे छठी इन्द्रिय या पराचेतना शक्ति कहते हैं। प्रयत्नपूर्वक इसे जागृत एवं अभिवर्धित किया जा सकता है। किन्हीं-किन्हीं में यह संयोगवश भी प्रकट हो जाती है।

नवम्बर १९६७ में जर्मनी के बवेरिया क्षेत्र के राशेनहेम स्थिति एक पदाधिकारी के मकान की ट्यूब लाइटों का प्रकाश एकाएक मंद पड़ गया। बिजली के सभी स्विच अपने आप ऑफ हो गये। कार्यालय के चारों टेलीफोन एक साथ घनघना उठे और रिकार्ड में हजारों लोगों के बातचीत करने का लेखा बिल पर अंकित होने लगा। कारणों की छानबीन बहुत की गई; पर सुराग कुछ भी हाथ नहीं लगा। अंततः प्रो० हंस वेन्डर जैसे मूर्धन्य मनोवैज्ञानिक की सहायता ली गई। उन्होंने पता लगाया कि यह सब परिवर्तन १९ वर्षीय नौकर एनीमैरी की उपस्थिति में घटित होता है। उसकी प्राण वैद्युतीय ऊर्जा असाधारण रूप से बढ़ी हुई है जो क्राया से निस्सृत होकर आसपास के वातावरण को प्रभावित करती है।

एनीमैरी में यह क्षमता अनायास ही फूट पड़ी थी जिसने उसे असाधारण सामर्थ्य वाला व्यक्ति बना दिया। वैज्ञानिकों ने परखने पर पाया कि उसकी उपस्थिति के कारण दीवाल पर टैंगी तस्वीरें उल्टी हो जाती हैं। बल्ब

पूज होने लगते हैं। मेजों की दराजें स्वयमेव खुल जाती हैं। फाइलों से खचाखच भरी लौह अलमारियाँ अपने स्थान से एक फुट दूर खिसक जाती हैं। घड़ी की सुइयाँ अपनी गति को तीव्र करके २० मिनट में ही एक घण्टा पूरा कर लेती हैं। विद्युत सप्लाई काट देने पर भी वैद्युतीय उपकरण ५० एम्पियर की करंट को रिकार्ड करते देखा गया। टेलीविजन से जुड़े एक वीडियो रिकार्डर ने तत्कालीन वातावरण का जो चित्रांकन किया, उससे स्पष्ट भुतहा दृश्य दिखाई देने लगा। राशेनहेम के फोटो कैमरे के प्रयुक्त होने वाली बैटरी बिना पावर हाउस कनेक्शन के चला करती थी। इतना ही नहीं मैरी के चलने पर बिजली के बल्ब जलने से लगते थे।

चेकोस्लोवाकिया के परामनोविज्ञान संस्थान के प्रध्यापक मेलिन रिज्ज एवं लेनिनग्राड विश्वविद्यालय के प्रध्यापक वासिलियेव ने अपने अनुसंधान निष्कर्ष में बताया है कि मनुष्य में इस तरह की अनेकानेक क्षमताओं का अस्तित्व होता है। किन्हीं-किन्हीं में यह अचानक विकसित हो जाती है और मनुष्य आँखों या कानों का काम शरीर के अन्य अंगों से लेने जैसे चमत्कृत करने वाले अनेकों करतब करने लगता है। विश्व में ऐसे अनेकों उदाहरण विद्यमान हैं।

सोवियत संघ में कुलेशोवा नामक एक महिला आँखें रहते हुए भी देखने का काम उँगलियों के पोरुओं से कर लेती थी। परखने पर वैज्ञानिकों ने पाया कि आँख पर पट्टी बाँधने के पश्चात् भी वह न केवल अक्षरों को सही रूप में पढ़ लेती वरन् उनके रंग, डाक टिकटों के अक्षर, मूल्य आदि ज्यों का त्यों बता देती थी। बाद में जाँच करने पर यह और ज्ञात हुआ कि इस प्रकार की विलक्षण शक्ति उसके बायें पैर की उँगलियों, जीभ और टखनों में बहुलता से विद्यमान थी।

इसी प्रकार सेन्ट्रल चीन के वुहान क्षेत्र में रहने वाली १३ वर्षीय लू विंग नामक एक किशोरी किसी भी लिखावट को कान से पढ़ सकती है। वैज्ञानिकों ने 'इना', 'एलिक्ट्रिसिटी' जैसे कठिन शब्द कागज पर लिखकर उसे आठ बार मोड़ा और उनका पुलिन्दा बनाकर लू विंग के कान के पास छोड़ दिया। उसने इन शब्दों को कर्ण-नेत्रों से पढ़कर स्पष्ट बता दिया। किसी भी कठिन शब्द को समझने में उसे सात से दस मिनट का समय लग जाता है।

चीनी पत्रकारों के एक दल ने अपने देश के कई प्रान्तों में ऐसे अदभुत क्षमता सम्पन्न बीस बच्चों का अध्ययन किया है जो कान, नाक, हाथ, पैर, पेट अथवा आँख द्वारा पढ़ लेते हैं।

दिव्य दृष्टि के अस्तित्व के सम्बन्ध में अनुसंधानरत मूर्धन्य वैज्ञानिक गेविन मैक्सवेल ने अपने अनुसंधान निष्कर्ष में बताया है कि यह क्षमता सभी मनुष्यों में होती है। लगातार प्रयत्न और अभ्यास करने पर उसे जागृत एवं विकसित किया जा सकता है। अपवाद स्वरूप ऐसे व्यक्ति भी देखे जाते हैं, जिनमें दूरदर्शन की सामर्थ्य सहज ही विकसित होती है। उदाहरण के लिए वेलरुयोयांग नामक १२ वर्षीय चीनी बालक को लिया जा सकता है। इसमें विलक्षण दूरदर्शन क्षमता है। १९८१ से वह वैज्ञानिकों के लिए चुनौती बना हुआ है। उसकी आँखें इतनी तीक्ष्ण हैं कि पत्थर की मोटी दीवार के दूसरी ओर देखने में भी सक्षम हैं। वैज्ञानिकों के एक दल ने जब इस तथ्य का परीक्षण करना चाहा तो उसने सात मंजिले एक मकान की छत पर चढ़कर सबसे नीचे वाली मंजिल में रखे हुए सभी वस्तुओं का यथावत् वर्णन कर दिया। वेल कानों से भी भली-भाँति देख लेता है। जब उसके कान में एक कागज पर कुछ लिखकर बाँध दिया तो उसने अपनी कर्ण दृष्टि से पढ़कर लिखे गए अंश को अक्षरशः सुना दिया। मनुष्य तो क्या अन्य प्राणियों के शरीर से निकलने वाले प्रभामण्डल को भी वह अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देख लेता है और उनके रंगों को बता देता है। भूगर्भ में बहने वाले जल स्रोतों का पता लगा लेना और उनके नक्शे बनाना उसके लिए सामान्य-सी बात है। किसी भी व्यक्ति के अन्तर्मन के विचारों-भावनाओं को वह आसानी से पढ़ लेता है।

लेनिनग्रांड के सुविख्यात परामनोविज्ञानी डॉक्टर वासिलियोव का कहना है कि यदि हम अपनी मूलशक्ति प्राण चेतना की खोज कर सकें तो भौतिक शक्तियों की तुलना में अनन्तगुना सामर्थ्यवान बन सकते हैं। पिछले दिनों विश्व की विभिन्न संस्थाओं द्वारा किये जा रहे अनुसंधानों से जो तथ्य सामने आये हैं, उनसे यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य यदि अपनी चेतना को ब्रह्मांडीय चेतना की सूक्ष्म धारा प्रवाह के साथ जोड़ सके तो वह ऐसे उच्चस्तरीय लाभ प्राप्त कर सकता है जो अभी तक काल्पनिक और अविश्वसनीय समझे जाते रहे हैं।

मनःशास्त्री विक्टर ई. क्रोमर मानवी प्राण ऊर्जा की चर्चा करते हुए कहते हैं कि यह ब्रह्माण्डीय चेतना के साथ सम्बन्ध जोड़ने वाली ऐसी चाबी है, जिसका सही उपयोग करने पर भौतिक जगत में भारी उथल-पुथल उत्पन्न की जा सकती है और अपनी निजी क्षमता में विशिष्ट स्तर की भारी मात्रा में अभिवृद्धि की जा सकती है।

मनुष्य अपनी प्राण चेतना को परिष्कृत एवं अभिवर्धित करके उसे स्थूल काया से अलग कर सकता

है। परामनोविज्ञानी कर्नल टाडन सेंड ने प्राणायाम के अभ्यास से प्राणमय शरीर के नियंत्रण में सफलता प्राप्त की थी। एक बार उन्होंने सैकड़ों वैज्ञानिकों एवं साहित्यकारों से खचाखच भरे हाल में इस प्रकार का प्रदर्शन किया। वह स्वयं एक स्थान पर बैठ गये, एवं दीवाल के सहारे टिके ब्लैक बोर्ड के साथ एक चाक का टुकड़ा बाँध दिया गया। सेंड अपने स्थान पर बैठे-बैठे ही अपनी प्राण चेतना को स्थूल काया से बाहर निकालकर अदृश्य सूक्ष्म शरीर से बोले गये अक्षरों को बोर्ड पर लिखने लगे। बीच-बीच में वे अपने स्थूल शरीर में भी आ जाते और वस्तुस्थिति भी लोगों को समझाते जाते।

यदि हम उपरोक्त घटनाक्रमों को पूर्वार्त मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में देखें तो पाते हैं कि योगविज्ञान में प्राण साधना द्वारा मिलने वाली अणिमा-शरीर को भाररहित कर लेना। गरिमा-भारी भरकम वजन बढ़ा लेना। लघिमा-छोटा हो जाना। प्राप्य-कठिन वस्तुओं की सरलता से प्राप्ति। प्राकाम्य-इच्छापूर्ति। ईशत्व- सर्वज्ञता। वशित्व-सभी को वशवर्ती कर लेना इन आठ सिद्धियों का विस्तृत वर्णन मिलता है।

पार्श्वार्थ मनोवैज्ञानिकों ने जो अतीन्द्रिय क्षमताएँ खोजी हैं, वे उन्हें चार वर्गों में विभक्त करते हैं— (१) क्लेअरवायेन्स-परोक्ष दर्शन, अर्थात् वस्तुओं या घटनाओं की वह जानकारी जो ज्ञान प्राप्ति के सामान्य आधारों के बिना ही उपलब्ध हो जाय। (२) प्रीकॉग्नीशन-भविष्य ज्ञान-बिना किसी मान्य आधार के भविष्य की घटनाओं का ज्ञान। (३) रेट्रोकॉग्नीशन-भूतकालिक ज्ञान-बिना किसी मान्य साधनों के अविज्ञात भूतकालीन घटनाओं की प्रामाणिक जानकारी। (४) टेलीपैथी-विचार-सम्प्रेषण बिना किसी आधार या यन्त्र के अपने विचार दूसरों के पास पहुँचाना तथा दूसरों के विचार ग्रहण करना। इस वर्गीकरण को और भी अधिक विस्तृत किया जाय तो उन्हें ११ प्रकार की गतिविधियों में बाँटा जा सकता है। चमत्कारी अनुभवों का यह वर्गीकरण इस प्रकार है—(१) बिना किसी ज्ञातव्य साधनों के सुदूर स्थानों में घटित घटनाओं की जानकारी मिलना। (२) एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति की मनःस्थिति तथा परिस्थिति का ज्ञान होना। (३) भविष्य में घटित घटनाओं का बहुत समय पहले पूर्वाभास। (४) मृतात्माओं के क्रिया-कलाप जिससे उनके अस्तित्व का प्रत्यक्ष परिचय मिलता हो। (५) पुनर्जन्म की वह घटनाएँ जो किसी बच्चों, किशोरों या व्यक्तियों द्वारा बिना सिखाये-समझाये बताई जाती हों और उनका उपलब्ध तथ्यों से मेल खाता हो। (६) किसी व्यक्ति द्वारा अनायास ही अपना ज्ञान तथा अनुभव इस प्रकार व्यक्त करना जो उसके अपने व्यक्तित्व और क्षमता

से भिन्न व उच्च श्रेणी का हो। (७) शरीरों में अनायास ही उभरने वाली ऐसी शक्ति जो सम्पर्क में आने वालों को प्रभावित करती हो। (८) ऐसा प्रचण्ड मनोबल जो असाधारण दुस्साहस के कार्य विनोद की साधारण स्थिति में कर गुजरे और अपनी तत्परता से अद्भुत पराक्रम कर दिखाये। (९) अदृश्य आत्माओं के सम्पर्क से असाधारण सहयोग सहायता प्राप्त करना। (१०) शाप और वरदान जिससे दीर्घकाल तक व्यक्तियों व वस्तुओं पर प्रभाव बना रहता है। (११) परकाया प्रवेश या एक आत्मा में अन्य आत्मा का सामयिक प्रवेश सिद्ध होता है।

इन समस्त सिद्धियों का आधार प्राण साधना है, जिसके आधार पर प्राणमय कोश या प्राणमय शरीर का विकास, नियन्त्रण और उपयोग किया जाता है। यह तथ्य अब तक भले ही श्रद्धाभूत रहे हों किन्तु अब विज्ञान उन तथ्यों को स्वीकारने लगा है। प्राण चेतना एक ऐसी ऊर्जा है, जिसका पूरी तरह उद्घाटन किया जा सके तो मनुष्य उन दिव्य शक्तियों का स्वामी बन सकता है, जो सामान्य व्यक्ति के लिए महान चमत्कार जैसी लगती हैं। चूँकि सामान्य व्यक्ति भी इन क्षमताओं से युक्त पाये गये हैं। यह सम्भावना कपोल कल्पित नहीं लगती कि पुरुषार्थ द्वारा इन्हें अर्जित किया जा सके। विज्ञान के विकास की चरमावस्था में भी ऐसे घटनाक्रमों का कोई विज्ञान सम्मत प्रतिपादन न प्रस्तुत किया जाना क्या उसे बौना नहीं ठहराता ?

चेतना के महासागर में दबी विलक्षण संभावनाएँ

ऐसा क्यों होता है कि किसी व्यक्ति को देखकर अपनापन महसूस होता है व लगता है, उससे ढेरों बात की जाय ? उसके व्यक्तित्व का आकर्षण क्यों किसी को सम्मोहित कर देता है ? उल्टे कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जिन्हें देखकर न जाने क्यों मन करता है कि इस मनहूस सूरत से जितना दूर रहा जाय, उतना ही अच्छा। प्रश्न शकल की बदसूरती का नहीं, वरन् विचारों की, भावनाओं की, मनहूसियत का है, जो सामने वाले को, बातचीत के माध्यम से सम्पर्क में आने वाले को सतत् विकर्षित करती रहती है।

इसका कारण बताते हुए मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अन्यान्य शक्तियों की तरह मानवी चेतना के साथ जैव चुम्बकत्व भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वही किसी व्यक्ति के अन्दर ऐसी विशेषताएँ भर देता है कि परिकर पर अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगता है। कभी-कभी, यदा-कदा यह चुम्बकत्व परोक्ष रूप में ही न

रहकर सक्रिय शक्ति के रूप में भी उभरकर अपनी उपस्थिति का परिचय देने लगता है। वस्तुतः आत्म-चेतना सम्पूर्ण शरीर में संव्याप्त है। यह आवश्यक नहीं कि वह अमुक इन्द्रियों के सहारे ही अभीष्ट ज्ञान प्राप्त करे। यह भी हो सकता है कि वह एक इन्द्रिय की अपेक्षा दूसरे अवयव को माध्यम बना ले और प्राण ऊर्जा के विभिन्न उपादानों के सहारे आवश्यक ज्ञान प्राप्त करे।

एक उल्लेखनीय घटना पश्चिम जर्मनी के लुई हैबर्गर की है। यह लड़का जिन धातु पदार्थों को छूता, वे उससे चिपक जाते और किसी दूसरे द्वारा बलपूर्वक छुड़ाये जाने पर ही छूटते। उसके अन्दर एक शक्तिशाली चुम्बक सक्रिय स्थिति में विद्यमान पाया गया। मेरीलैण्ड विश्वविद्यालय ने इस विचित्रता पर बहुत खोजबीन की पर वैज्ञानिक किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाये।

ओण्टोरियो (कनाडा) के वॉन्डन क्षेत्र में जन्मी एक लड़की मात्र १७ वर्ष तक जीवित रही। पर जब तक वह जीवित थी, चर्चा का विषय बनी रही। वह जहाँ भी जाती, धातु का सामान उसके शरीर से आकर्षित हो, चिपक जाता था। उसके भोजन हेतु लकड़ी या काँच के पात्र एवं निवास भी लकड़ी का बनाया गया था। उसकी अल्पायु में मृत्यु के बारे में वैज्ञानिक मनीषी जेफ्री मिशलेख का मत है कि शक्ति धारा जब तक जीव कोशों के बन्धन में रहती है, तब तक तो जीवन-चक्र सुव्यवस्थित चलता रहता है। परन्तु इसके निस्सृत होने का मार्ग बनने व किसी और शक्ति के रूप में प्रकट हो क्षीण होते चले जाने पर आयु उसी अनुपात में कम हो जाती है।

शारीरिक, मानसिक चुम्बकत्व पर वैज्ञानिकों ने गहन अनुसन्धान किया व इसे भी एक विभूति माना है। डॉ. फ्रैंज एण्टन मैस्मर उस चिकित्सक का नाम है, जिसने मेस्मेरिज्म-सम्मोहन विद्या की खोज की थी। अपने अनुसन्धान कार्य में उन्होंने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया था कि अविज्ञात नक्षत्रों से एक चुम्बकीय पदार्थ सूक्ष्म रूप में इस धरती पर आता है और सारे धरतीवासियों को प्रभावित करता है। इस पदार्थ का जब भी शरीर में सन्तुलन गड़बड़ाता है तो विभिन्न प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न होने लगते हैं। इस सन्तुलन को ठीक करने के लिए डॉ. फ्रैंज एण्टन मेस्मर चुम्बकों का प्रयोग करते थे। बाद में इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि किन्हीं-किन्हीं व्यक्तियों के शरीर से सहज रूप में चुम्बकीय धारा प्रवाहित होती रहती है, जिसे उन्होंने “एनिमल मैग्नेटीज्म” नाम दिया। ये व्यक्ति हीलर या डिवाइन थेरेपीस्ट कहलाये जाने लगे। स्वयं मेस्मर ने सन् १७७८ में पेरिस में इस चिकित्सा पद्धति द्वारा अगणित

व्यक्तियों को ठीक कर अच्छा खासा नाम कमा लिया था। ऐसा कहा जाता है कि प्रसिद्ध संगीतज्ञ मोजार्ट किंग लुई १६ व महारानी, मेरी एण्टोइने एवं ऑस्ट्रिया की महारानी मारिया थेरेसा उन रोगियों में से थे, जिन्हें मेस्मर की चुम्बकीय चिकित्सा पद्धति से लाभ मिला। मेस्मर की हिप्नोटिज्म एवं परामनोवैज्ञानिक शक्ति द्वारा लायी गयी कृत्रिम निद्रा की स्थिति (सोनेम्बुलिज्म) बाद में अच्छा खासा विवाद का विषय बनी, परन्तु उसका मूलभूत सिद्धान्त मेस्मरवादियों ने एनिमल मेग्नेटिज्म को ही माना व आज भी सायकिक हीलिंग के मूल में परामनोविज्ञानी चुम्बकीय धाराओं का चिकित्सक से रोगी में प्रवेश ही प्रधान मानते हैं।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने मैग्नेटोमीटर्स का प्रयोग कर हृदय एवं मस्तिष्क में बहने वाली चुम्बकीय धाराओं का मापन करने में सफलता पायी है। सुपरण्डक्टिंग क्वान्टम इन्टरफरेन्स डिवाइस (स्क्वीड) ऐसे ही एक संयंत्र का नाम है, जो बहुत ही क्षीण धारा पर काम कर डी० सी० एवं आल्टरनेटिंग मैग्नेटिक फील्ड, जिसकी इकाई 'टेस्ला' है, का पता लगा लेता है। स्क्वीड इतना संवेदनशील यन्त्र है कि एक नाल चुम्बक से ४०० मीटर दूर खड़े व्यक्ति में उसके कारण शरीर की चुम्बकीय धाराओं में हो रहे परिवर्तनों को मापने की यह क्षमता रखता है। हो सकता है कि ऐसे अपवाद जो लुई हैबर्गर व अन्य व्यक्तियों के रूप में जन्म लेते हैं, अब शोध प्रतिपादनों से शरीर के सूक्ष्म संस्थान की ओर भी विशद जानकारी अगले दिनों दे सकें। इसी संयंत्र द्वारा मैग्नेटोकार्डियोग्राम (एम० सी० जी०) एवं मैग्नेटोएनसेफेलोग्राम (एम. ई. जी.) की रिकार्डिंग भी अब सम्भव होने लगी है एवं ऐसी सूक्ष्म व्याधियों का पता लगाने में सफलता पाई है, जो सामान्य उपकरणों-इलेक्ट्रोकार्डियो एवं एनसेफेलोग्राफी- इकोग्राफी इत्यादि के माध्यम से पकड़ में अक्सर नहीं आती।

अथर्ववेद में रेत द्वारा चुम्बकीय शक्ति से ओत-प्रोत लौह कणों के माध्यम से शरीर से रक्त-स्राव रोकने एवं चुम्बक द्वारा स्त्री रोगों के उपचार का प्रसंग स्थान-स्थान पर आया है। ज्ञातव्य है कि चुम्बक में भी रेत, बेरियम एवं आयरन ऑक्साइड होता है। मिस्र की सुन्दरी क्लियोपेट्रा के बारे में प्रसिद्ध था कि वह अपनी सुन्दरता बनाये रखने के लिए सदैव माथे पर एक छोटा-सा चुम्बक लगाये रखती थी।

मेस्मर से भी पहले स्विस् चिकित्सक पैरासेल्सस ने जैव चुम्बकत्व की विशेषता एवं बाह्य चुम्बक द्वारा मानवी काया के विभिन्न दोषों एवं मनोविकारों की चिकित्सा की संभावनाओं का वर्णन किया है। मेस्मर ने इसी सिद्धान्त

को आगे चलकर प्रचारित कर मेस्मेरिज्म-हिप्नोटिज्म को प्रचलित किया।

टाइम पत्रिका ने मानवी चुम्बकत्व पर एक विचित्र केस वैज्ञानिकों के सम्मुख कुछ वर्षों पूर्व रखा था। ओण्टोरियो (कनाडा) की कैरोलिन क्लेयर नामक एक महिला को स्नायु-संस्थान सम्बन्धी एक रोग ने आ घेरा। धीरे-धीरे आंशिक पक्षाघात की स्थिति से ठीक होते-होते वह जब स्वस्थ स्थिति में पहुँचने को ही थी कि उसमें एक नया परिवर्तन देखा गया कि वह धातु से बनी किसी भी चीज को छूती तो वह उससे चिपक जाती। बड़ी कठिनाई से उसे छुड़ाया जाता। जैव चुम्बकत्व का यह प्रवाह स्नायु-संस्थान की किस गड़बड़ी के ठीक होने अथवा नयी गड़बड़ी या 'लीकेज' होने के कारण होने लगा, इसका वैज्ञानिक कोई समाधान खोज नहीं पाये।

शरीर जितना भी कुछ प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है, एनाटॉमी की दृष्टि से जितनी भी जानकारीयों हमें विदित हैं, आवश्यक नहीं कि वह यहीं तक सीमित हों। बहुत कुछ अविज्ञात है, जो समय-समय पर भिन्न-भिन्न रूप में प्रकट होकर अपनी सामर्थ्य-क्षमता का परिचय देता रहता है। कभी प्राणाग्नि के रूप में आत्म-चेतना शोलों की तरह शरीर से फूटते देखी जाती है, तो कभी चुम्बकत्व की आकर्षण शक्ति के रूप में। किसी-किसी में यह विलक्षण अतीन्द्रिय सामर्थ्य के रूप में प्रकट होने लगती है। इससे एक महत्वपूर्ण तथ्य का रहस्योद्घाटन तो होता ही है कि असीम सम्भावनाओं की पिटारी चेतना के महासागर में दबी पड़ी है। साधना द्वारा उसे निकालने-प्रसूत से जगाकर, प्रकट करने का प्रयास तो किया जाय। तब यह सब अविज्ञात संयोग या चमत्कार नहीं लगेगा।

मनुष्य की बलिष्ठ आत्म चेतना

अमेरिकी मनोवैज्ञानिक डॉ० नेलसन वाल्ट का कथन है कि मनुष्य के अन्दर एक बलवती आत्म-चेतना रहती है, जिसे जिजीविषा एवं प्राणघात्री कह सकते हैं। यह न केवल रोग निरोध अथवा अन्य आत्म-रक्षा जैसे अस्तित्व संरक्षण के अविज्ञात साधन जुटाती है वरन् चेतना जगत में चल रही हलचलों का पता लगा लेती है, जो अपने आगे विपत्ति के रूप में आने वाली है। पूर्वाभास बहुधा अपने तथा अपने सम्बन्धियों के ऊपर आने वाले संकटों के ही होते हैं। सुख-सुविधा की परिस्थितियों का ज्ञान कभी-कभी या किसी-किसी को ही हो पाता है।

मनःशास्त्री हेनबुक ने अपनी शोधों में इस बात का उल्लेख किया है कि अतीन्द्रिय क्षमता पुरुषों की अपेक्षा नारियों में कहीं अधिक होती है। दिव्य अनुभूतियों की अधिकता उन्हें ही क्यों मिलती इसका कारण वे नारी

स्वभाव में कोमलता, सहृदयता जैसे सौम्य गुणों के आधिक्य को ही महत्व देते हैं। उनकी दृष्टि में अध्यात्म क्षेत्र नारी को अपनी प्रकृति प्रदत्त विशेषताओं के कारण सहज ही अधिक सफलता मिलती रहती है।

पाया गया है कि अब लोगों में एक अपूर्व जिज्ञासा विकसित होती जा रही है कि आखिर मनुष्य शरीर और उसकी बुद्धि में ऐसे कौन-से तत्त्व विद्यमान हैं जो बहुत अधिक समय बाद में होने वाली घटनाओं का भी बोध करा देते हैं। अब तक मनुष्य शरीर और उसकी रचना को मात्र भौतिक दृष्टि से देखा जाता था, पर समय की इन सिमटती हुई दूरियों ने मनुष्य को अब इतना ध्यानस्थ कर दिया कि उसे मनुष्य जीवन के प्रति सुनिश्चित दृष्टिकोण प्राप्त किये बिना चैन न मिलेगा।

इन भविष्यवाणियों से जहाँ उच्चसत्ता की उपस्थिति, मानवता के उज्ज्वल भविष्य, इस देश की अकल्पित प्रगति और इससे आध्यात्मिक पुनरुत्थान की आशा बँधती है, वहीं हमारे चिन्तन में स्वस्थ अध्यात्मवादी दृष्टिकोण का भी समावेश होता है, जो व्यक्ति, समाज और संसार सभी के लिए उज्ज्वल सम्भावनाओं का अध्याय है। संसार की शान्ति और प्रगति इसी दृष्टिकोण पर आधारित है यह सुनिश्चित मानना चाहिए।

महायुद्ध छिड़ने से पहले की बात है। लन्दन के स्पेन दूतावास में एक भोज दिया जिसमें ब्रिटेन के तत्कालीन विदेश मंत्री लार्ड हैली फैक्स सम्मिलित थे। आमन्त्रित अतिथियों में भविष्य वक्ता डी. ह्वेल भी थे संयोग से विदेश मंत्री महोदय भी बगल में ही बैठे थे। उन्होंने चुपके से भावी महायुद्ध और उसके सम्बन्ध में हिटलर को पूर्व योजनाओं की जानकारी बताने का अनुरोध किया। उसके उत्तर में ह्वेल ने कई ऐसी बातें बताईं जो अप्रत्याशित थीं। हैली फैक्स ने वायदा किया कि यदि उनकी भविष्यवाणी सच निकली तो उन्हें सम्मानित सरकारी पद दिया जायेगा। पद की उन्हें आकांक्षा नहीं थी। उनकी बताईं सभी बातें सच निकलीं।

हिटलर के सलाहकारों में पाँच दिव्यदर्शी भी थे उनका नेतृत्व विलियम क्राफ्ट करते थे। उनकी सलाह को हिटलर बहुत महत्व देता था। इस मण्डली के एक सदस्य किसी समय ह्वेल भी रह चुके थे। वे जानते थे हिटलर के ज्योतिषी उसे क्या सलाह दे रहे होंगे। उस जानकारी को इंग्लैण्ड के अधिकारियों को बता देता। इन जानकारीयों से ब्रिटेन बहुत लाभान्वित हुआ और उसने अपनी रणनीति में काफी हेर-फेर किये। फौज के महत्वपूर्ण उच्चरदायित्व कुछ फौजी अफसरों को सौंपे जाने थे। उनमें से किसी का भविष्य उज्ज्वल है, इस प्रश्न के उत्तर में

उन्होंने एक आदमी से जनरल मान्टगुमरी की ओर इशारा किया। उन्हें ही वह पद दिया गया और अन्ततः उन्होंने आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त करके दिखाई। जापान के जहाजी बेड़े को बुरी तरह नष्ट करने की जो सफल योजना बनाई गयी थी उसमें से भी ह्वेल से गम्भीर परामर्श किया गया था। महायुद्ध समाप्त होने तक ही उन्होंने ब्रिटिश सरकार को भविष्यवाणियों का लाभ दिया। पीछे उन्होंने वह कार्य पूरी तरह छोड़ दिया और अपने पुराने धार्मिक लेखन कार्य में लग गये।

विज्ञानी डॉ० मोरे बर्सटीन ने लेडी वंडर के बारे में एक दिन अपने एक मित्र से सुना, इसके पूर्व विमान-यात्रा में उनका बिस्तर व सामान खो गया था जिसमें जरूरी कगजातों वाला बक्सा भी था। विमान कम्पनी ने खोए सामान के न मिलने की घोषणा कर दी थी तथा मुआवजे का प्रस्ताव रखा था, जिसे बर्सटीन ने अस्वीकार कर खोज जारी रखने को कहा था।

अब मित्र से सुन बर्सटीन को अपने सामान की चिन्ता तो जाती रही। भीतर की जिज्ञासा-वृत्ति उमड़ उठी। वे चल पड़े लेड वंडर से मिलने। वहाँ सर्वप्रथम बर्सटीन ने पूछा—बताइये, पेरिस में मैंने जो बिल्ली पाल रखी थी, उसका नाम क्या था ? लेडी वंडर ने उसे विस्मित करते हुए बताया—मर्तिनी। फिर बर्सटीन ने अपने सामान की बावत पूछा। लेडी वंडर ने बताया तुम्हारा सामान न्यूयार्क हवाई अड्डे में है।

पहले तो बर्सटीन को अविश्वास हुआ क्योंकि न्यूयार्क हवाई अड्डा छाना जा चुका था। पर फिर उसने हवाई अड्डे के अधिकारियों को फोन किया—“महोदय, मुझे विश्वस्त सूत्रों से जानकारी मिली है कि मेरा सामान न्यूयार्क हवाई अड्डे के भवन के ही भीतर है। कृपया दुबारा तलाश करें।” तलाशी शुरू हुई और सामान सचमुच मिल गया।

“लन्दन से हांगकॉंग तक” पुस्तक के विद्वान लेखक हुसेन रोफे एक बार अपने घनिष्ठ मित्र श्री जे. बी. से मिलने गये। यह अवसर बहुत दिन बाद आया था, इसलिए हुसेन रोफे अनेक कल्पनायें अनेक योजनाएँ लेकर मित्र महोदय के पास गये थे, किन्तु जैसे-जैसे वह घर के समीप पहुँचते गये न जाने क्यों उनके मस्तिष्क में निराशा बढ़ती गई। अपनी इस अनायास स्थिति पर स्वयं रोफे को भी हैरानी थी। धीरे-धीरे उनके मस्तिष्क में न जाने कहाँ से दबे-दबे विचार उठने लगे कि “जे० बी० की आत्महत्या” और भी इतना जोरदार कि उन विचारों के आगे कोई और विचार टिक ही न पा रहा था।

रोफे के आश्चर्य का उस समय ठिकाना न रहा जब मित्र के घर पहुँचते ही उसने पाया कि वह जहर खरीद लाया है और आत्महत्या की बिल्कुल तैयारी में ही है। हुसेन रोफे ठीक समय पर न पहुँच गये होते तो उन सज्जन ने अपना प्राणान्त ही कर लिया होता।

इस प्रकार की अतीन्द्रिय दिव्य शक्ति कोई भी अपने में विकसित करा सकता है। इसके लिए योग साधनाओं का विधान है।

मैस्मरेज के आविष्कर्ता डॉ० मैस्मर ने लिखा है—“मन को यदि संसार के पदार्थों और तुच्छ इन्द्रिय भोगों से उठाकर ऊर्ध्वगामी बनाया जा सके तो वह ऐसी विलक्षण शक्ति और सामर्थ्यों से परिपूर्ण हो सकता है, जो साधारण लोगों के लिये चमत्कार-सी जान पड़े। मन आकाश में भ्रमण कर सकता है और उन घटनाओं को ग्रहण करने में समर्थ हो सकता है, जिन्हें हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ ग्रहण न कर सकें और हमारा तर्क जिन्हें व्यक्त करने में असमर्थ हो।”

सन् १७५९ की वह घटना प्रामाणिक उल्लेखों में दर्ज है, जिसके अनुसार स्वीडन के इमेनुअल स्वीडन वर्ग नामक साधक ने सैकड़ों मील दूर पर ठीक उसी समय हो रहे भयंकर अग्निकाण्ड का सुविस्तृत विवरण अपनी मित्र मण्डली को सुनाया था। इस अग्निकाण्ड में घायल तथा मरने वालों के नाम तक उसने सुनाये थे जो पीछे पता लगाने पर अक्षरशः सच निकले।

“इन सर्व ऑफ दि ट्रुथ” पुस्तक में श्रीमती रूथ मान्टगुमरी लिखती हैं कि युद्धों के समय पाशाविक वृत्तियाँ एकएक आत्म-मुखी हो उठती हैं, तब कैसे भी व्यक्तियों को अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ स्पष्ट रूप से होने लगती हैं। युद्ध के मैदानों में लड़ने वाले सैनिक और उसके सम्बन्धी रिश्तेदारों के बीच एक प्रगाढ़ भावुक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, वही इन अति मानसिक अनुभूतियों की सत्यता का कारण होता है। ध्यान की गहन अवस्था में होने वाले भविष्य की घटनाओं के पूर्वाभास भी इसी कारण होते हैं कि उस समय एक ओर से मानसिक विद्युत दूसरी ओर से पूरी क्षमता के साथ सम्बन्ध जोड़ देती और जिस प्रकार लेजर यन्त्र, टेलीविजन, राडार आदि हमें दूर के दृश्य व समाचार बताने दिखाने लगते हैं, उसी प्रकार यह भाव सम्बन्ध हमें दूरवर्ती स्थानों की घटनाओं के सत्य आभास कराने लगते हैं।

यह जीव-कोशों के मन ही मिलकर अवयव मन का निर्माण करते हैं, इसलिये मन को एक वस्तु न मानकर अध्यात्म-शास्त्र में उसे ‘मनोमय कोश’ कहा गया है। एक अवस्था ऐसी होती है, जब शरीर के सब मन

उसके अधीन काम करते हैं, जब यह अनुशासन स्थापित हो जाता है तो मन की क्षमता बड़ी प्रचण्ड हो जाती है और उसे जिस तरफ लगा दिया जाये उसी ओर वह तूफान की सी तीव्र हलचल पैदा कर देता है।

इन सभी का वैज्ञानिक समाधान ढूँढ़ें तो हम पाते हैं कि इलेक्ट्रॉन और प्रकाश यदि शक्ति है तो पदार्थ भी है। कण हैं तो लहर भी। इलेक्ट्रॉन सृष्टि के हर कण में हैं, पर वह अपनी उत्पादकता न होकर नाभिक से बँधा है उसी प्रकार प्रकाश ब्रह्माण्ड भर में कहीं विचरण कर सकता है पर वह स्वयं उसका अपना उत्पादन नहीं है अपने जीवन के अन्तिम समय में आइन्स्टीन, जो कि ऋषियों के मायावाद सिद्धान्त तक पहुँच गये थे, ने यह बताया कि काल और स्थान सापेक्ष हैं और वे प्रकाश की माप पर निर्भर हैं, वे अब यह सिद्ध करना चाहते थे कि कोई यूनीफाइड फील्ड ऐसा है, जिसमें एलेक्ट्रोमैग्नेटिक फोर्स भी है और गुरुत्वाकर्षण भी। वह क्षेत्र इन दोनों से युक्त भी है और मुक्त भी। यह इलेक्ट्रॉन की तरह ही द्वैत गुण युक्त था तथा आइन्स्टीन ने उसके अस्तित्व से इन्कार नहीं किया वरन् माना था कि “मस्तिष्कीय द्रव्य” में वह गुण है, वह समय और पदार्थ से परे तत्त्व है, उसकी गति और अगति में कोई अन्तर नहीं है अर्थात् वह मस्तिष्कीय-द्रव्य-माइण्ड स्टाफ एक ही समय में मद्रास या बम्बई में भी हो सकता है और उसी समय वह हरिद्वार में भी उपस्थित रह सकता है। यही वह तत्त्व है, जो प्रकाश को धारण करके उसकी गति से किसी भी वस्तु का स्थानान्तरण कर सकता है। पदार्थ को शक्ति में बदलकर उसे कहीं भी सूक्ष्म अणुओं के रूप में बहाकर ले जा सकता है और उसे सैकण्ड से भी कम समय में बदल सकता है।

योगी और साधक ध्यान द्वारा मस्तिष्क के इसी एकान्त क्षेत्र पर अवस्थित होकर इलेक्ट्रॉन और प्रकाश कणों द्वारा $E = M \cdot C$ के आधार पर वह शक्ति अपने भीतर से उत्पन्न करते हैं, जो किसी भी परमाणविक शक्ति से बढ़कर होती है उसमें इलेक्ट्रॉन और प्रकाश कणों की द्वैत शक्ति ही होती है। जिससे वे स्थूल और क्रियायें सम्भव हैं, जो अतीन्द्रिय घटनाओं के रूप में प्रकट होती हैं।

हमें सामान्य जानकारीयों इन्द्रिय शक्ति के आधार पर मिलती हैं। पर यदि प्रसुप्त अतीन्द्रिय शक्ति को जागृत किया जा सके तो व्यापक ब्रह्माण्ड सत्ता के साथ अपना सम्पर्क जुड़ सकता है और असीम से सअसीम स्थिति में पहुँचा जा सकता है।

इस विश्व में जड़ और चेतना की द्विधा अपने-अपने नियत प्रयोजनों में संलग्न है। उनका वैभव भी महासमुद्र की तरह है जिसके किनारे पर बैठकर मनुष्य ने सीप और घोड़े ही ढूँढ़े हैं। प्रकृत परमाणुओं में और जीवाणु घटकों में जो सामर्थ्य तथा चेतना विद्यमान है उसका बहुत छोटा अंश ही जानना, हथियाना सम्भव हो सका है। सब कुछ पाना खींचतान से—झीना झपटी से नहीं उसमें धुल जाने से ही सम्भव हो सकता है। समुद्र के पानी को कोई घड़ा कितनी मात्रा में अपने में भर सकेगा ? सम्पूर्ण समुद्र के साथ एकता स्थापित करनी हो तो घड़े को अपना जल समुद्र में मिला देना पड़ेगा तभी तुच्छता को सुविस्तृत स्थिति में अनुभव कर सकना सम्भव होगा।

अतिमानवी चेतना की उपलब्धि

मस्तिष्कीय क्षमता से हर कोई परिचित है। बुद्धिमान, दार्शनिक, कलाकार, वैज्ञानिक अपनी पैनी सूझ-बूझ के आधार पर ही अनौखी सफलताएँ प्राप्त करते हैं। परिचित मस्तिष्क से ऊपर एक और दिव्य चेतना स्रोत है, जहाँ चित्तशक्ति निवास करती है। मनोवैज्ञानिकों की भाषा में इसे अचेतन मन कहते हैं। सुपर ईगो के रूप में इसी की विवेचना की जाती है। योग शास्त्रों में इसे देवलोक अतीन्द्रिय चेतना का केन्द्र एक ऋद्धि-सिद्धियों का भण्डार माना गया है। इस क्षेत्र पर अधिकार प्राप्त करने वाला अलौकिक-असाधारण अतिमानव एवं सिद्ध पुरुष बन सकता है।

यह एक अद्भुत संयोग है कि जब अचेतन जागता है, तब प्रबुद्ध मस्तिष्क सोता है और जब प्रबुद्ध मस्तिष्क जागता है तो चित्त सोता रहता है, दोनों एक साथ कार्यरत नहीं रह सकते। योगनिद्रा उत्पन्न करके पूर्ण या आंशिक समाधि में जाया जा सकता है और अति मानवी अनुभूतियों के क्षेत्र में प्रवेश किया जा सकता है। कभी-कभी संयोगवश, संस्कारवश योगनिद्रा सामान्य निद्रा में सामान्य लोगों को भी प्राप्त हो जाती है और वे ऐसे स्वप्न देखते हैं, जो तथ्यपूर्ण भविष्य का आभास देने वाले होते हैं। सामान्य स्वप्न तो आमतौर से निरर्थक ही होते हैं पर सार्थक स्वप्नों के प्रमाण भी कम नहीं मिलते।

शिकागो विश्वविद्यालय के एक मनोविज्ञानी डा. डेविड नीडर ने स्वप्नों के साथ जुड़े रहने वाले तथ्यों पर लम्बे समय तक खोज की है। उनका कथन है कि बहुत सपने आश्चर्यजनक रीति से तथ्यपूर्ण होते हैं। उनसे कई बार समस्याओं के ऐसे समाधान मिलते हैं जैसे जागृत अवस्था में बहुत माथा फोड़ी करने पर भी नहीं मिल पाते।

मनःशास्त्री डा. हेवलाक एलिस का कथन है हमारा अचेतन स्वप्नों की भाषा में ऐसे तथ्यों को प्रकट करता है, जिसे समझने पर हम अत्यन्त महत्वपूर्ण जानकारीयाँ प्राप्त कर सकते हैं। कई बार तो वे हमें हमारी समस्याओं के अद्भुत किन्तु सही समाधान प्रस्तुत करते हैं।

रोम में भी ऐसी ही एक घटना हुई जिसमें स्वप्नों की सचाई का आभास मिला। श्रीमती ऐमीलिया का व्यापारी पति अचानक गायब हो गया। उसने पुलिस में इसकी रिपोर्ट की और साथ ही यह भी लिखाया कि उसने ऐसी हुलिया के व्यक्ति को उसकी हत्या करते सपने में देखा है। सपना नोट कर लिया गया पर उसकी प्रामाणिकता पर किसी को विश्वास नहीं हुआ; क्योंकि खोये व्यक्ति के मर जाने तक का कोई सबूत न था फिर हत्या की बात कैसे सच मानी जाय। बहुत दिन बाद हत्या के प्रमाण मिले और गुप्तचर विभाग ने छद्म रूप में पादरी बनकर रह रहे हत्यारे को खोज निकाला। सुराग आगे चले और हत्या उसी व्यक्ति द्वारा किये जाने की बात पूरी तरह प्रमाणित हो गई।

आयरलैण्ड की पुलिस ने एक हत्यारे को पकड़ने और उसका अपराध सिद्ध करके फाँसी दिलाने में सपने द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर सफलता प्राप्त की थी। तियेरासी निवासी एक व्यक्ति हिकी ने अपने मित्र को पैसा लूटने के उद्देश्य से चाकू मारकर कत्ल कर दिया। मृतक के गायब होने भर की सूचना पुलिस को दी वह यह पता लगाने में व्यस्त थी कि आखिर उस व्यक्ति का क्या हुआ ? इस खोज-बीन में एक छोटे होटल के मालिक रोजर्स ने पुलिस को बताया कि उस युवक की हत्या हो गई है और वह उस हत्या का सुराग दे सकता है। पूछ-ताछ में रोजर्स की पत्नी ने बताया कि कुछ दिन पूर्व यह दोनों उसके होटल में जलपान करने आये थे। इससे पूर्व उसने ठीक उसी हुलिया के दो व्यक्तियों में से एक के द्वारा दूसरे की हत्या किये जाने का सपना देखा था। इस समता से उसे बहुत आश्चर्य हुआ और उसने उन्हें उस भवतथ्यता की सूचना देकर कुछ दिन होटल में ही ठहरे रहने की सलाह दी किन्तु वे चले गये। सपने में जिस स्थान पर हत्या हुई उसका चित्र पत्नी के मस्तिष्क में है; वह उस जगह को खोजने में सहायता दे सकती है। पुलिस ने इस दम्पति की सहायता ली और उस झाड़ी को खोज निकाला जहाँ युवक की लाश पड़ी थी। हत्यारे का जो हुलिया बताया गया था, वह हिकी से मिलता था अस्तु उसे पकड़ा गया। अन्ततः हत्या को प्रमाणित करने वाले ऐसे अनेक सूत्र मिल गये, जिनके

आधार पर अदालत द्वारा हत्यारे को फाँसी की सजा दी जा सकी।

विश्वप्रसिद्ध गणितज्ञों में से कई ऐसे हैं जो अपने आविष्कृत सिद्धान्तों की सफलता का श्रेय स्वप्नों में उपलब्ध हुई प्रेरणाओं को देते हैं। इन गणितज्ञों में फुडसियनसित और हेनरीफर—के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

सम्राट सीजर और हेनरी तृतीय को अपनी हत्याओं की पूर्व सूचना सपनों में मिल चुकी थी जिसे उन्होंने अपने प्रियजनों को बता भी दिया था। प्रयत्न करने पर भी, वे हत्याएँ टाली न जा सकीं। चर्चिल, लार्ड किचनर और जनरल गेडार्ड को कई भयंकर दुर्घटनाओं की पूर्व सूचना सपनों में मिल गई थी। अवसर आने पर उन्होंने सपने की बात को ध्यान में रखते हुए विशेष सतर्कता बरती और अपनी जानें बचा लीं।

एक-दूसरे नोबेल पुरस्कार विजेता डॉ० पाडलिंग ने भी यह बताया था कि उन्हें अनेक नये वैज्ञानिक विचारों की प्रेरणा सपनों में मिली है।

बैजिन परमाणुओं के सम्बन्ध में नई खोज करने के लिए वैज्ञानिक केकुल ने अच्छी ख्याति प्राप्त की थी उन्होंने अपनी खोज की प्रेरणा का स्रोत अपने एक स्वप्न से उपलब्ध किया था।

ऐसा ही अनुभव विज्ञान वेत्ता लुई ऐगसिज का है, उनकी जीवाश्म सम्बन्धी खोजें कैसे सफल हुई इस पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा मुझे स्वप्नों के इशारे से अपनी खोजें आगे बढ़ाने की अक्सर प्रेरणा मिलती रही है।

अमेरिका के औषधि शास्त्रज्ञ डॉ० आट्टोलोबी ने जिन आविष्कारों के आधार पर नोबेल पुरस्कार जीता, उसकी मूल प्रेरणा उन्हें स्वप्नों में ही मिली थी। शारीरिक तन्तुओं, स्नायुओं और कोशओं पर वे कुछ शोध कर रहे थे पर ऐसे आधार नहीं मिल रहे थे, जिनके सहारे किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सके। ईस्टर की पहली रात को सपने में उन्हें आवश्यक सूत्र हृष्य लगे जिन्हें उन्होंने आँख खुलते ही नोट कर लिया। एक दिन दोपहर को भी इसी खोज के सम्बन्ध में ऐसा सपना दीखा, जिसमें वे कुछ प्रयोग कर रहे थे उसे भी उन्होंने नोट किया। यद्यपि आरम्भ में वे नोट अटपटे लगे पर अन्ततः वे उसी आधार पर अपने प्रयोगों में सफलता प्राप्त करने में समर्थ हुए।

अपनी अद्भुत कल्पनाओं के उठने का मूल स्रोत कहाँ है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महा वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने एक बार कहा था प्रायः निद्रित अथवा

अर्ध-निद्रित स्थिति में कभी-कभी ऐसे समय आते हैं जब मस्तिष्क अपनी सामान्य मर्यादाओं का उल्लंघन कर सूचनाएँ देने लगता है जिनके आधार पर आविष्कारों की आधारशिला रखी जा सके।

आइन्स्टीन कहते थे विज्ञान और गणित के आधार पर यह सिद्ध किया जा सकता है कि यह दृश्य संसार स्वप्नों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उन्होंने 'लाइफ' पत्रिका के प्रतिनिधि को भेंट देते हुए कहा था—सामने खड़ा हुआ वृक्ष यद्यपि अपना अस्तित्व भली प्रकार प्रमाणित कर रहा है तो भी वस्तुतः यह एक स्वप्न के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

मैस्मेरेज्म, हिप्नोटिज्म, क्लेरोवायन्स, टैलीपैथी आदि की स्थिति प्रबुद्ध मस्तिष्क को प्रसुप्त करके ही उत्पन्न की जाती है। यदि चेतन मस्तिष्क पूर्ण सजग रहे और तर्क बुद्धि के साथ निद्रित न होने का संकल्प किये रहे तो उनमें से एक भी आध्यात्मिक स्थिति उत्पन्न नहीं हो सकती है। जागृत मन को निद्रित करके ही अचेतन को अध्यात्म भूमिका में कुछ अधिक योगदान दे सकने योग्य बनाया जा सकता है।

प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि यह चार अवस्थाएँ प्रबुद्ध मन की स्वाभाविक चंचलता को निग्रहीत करके एकग्रता के केन्द्र बिन्दु पर रोके रखने के लिए की जाती है। इनमें जितनी सफलता मिलती जाती है, मस्तिष्क शान्त और समाहित होता चला जाता है साथ ही चित्तशक्ति का जागरण आरम्भ हो जाता है। हठयोगी कई प्रकार की समाधि लगाते हैं, उसे थोड़े समय में आरम्भ करके लम्बे समय तक ले जाते हैं। कई घण्टे से लेकर कई महीने तक समाधि लगाने वाले योगियों का वर्णन प्रामाणिक प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा मिलता है। इससे प्रतीत होता है कि मानवी संकल्प बल न केवल बाह्य प्रयोजनों में वरन् अपने शरीर की अनिवार्य गतिविधियों को इच्छानुसार नियन्त्रित अवरुद्ध करने में भी सफल हो सकता है।

पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह से अंग्रेजों ने एक राजनैतिक सन्धि की। इसी संदर्भ में अंग्रेज सरकार का एक प्रतिनिधि मण्डल महाराजा से मिलने अदीना नगर पहुँचा। उन दिनों वे वहीं ठहरे हुए थे। अंग्रेजी दल में पोलिटिकल सेक्रेटरी डब्ल्यू० एच० मैकनाटन, पोलिटिकल ऐजेन्ट कप्तान वार्ड, मिलिटरी सेक्रेटरी डब्ल्यू० जी० ओसवार्न, कप्तान जी० मैकग्रेवर, डॉ० डूमण्ड आदि थे। घटना १८३८ की है।

उन दिनों पंजाब में एक ऐसे योगी की बहुत ख्याति थी जो महीनों तक समाधि लगाकर भूमि में गढ़ा रहता था। अंग्रेजी दल ने राजनैतिक बातों से निपटकर

महाराजा से उस योगी के चमत्कार दिखाने की व्यवस्था कर देने का अनुरोध किया। महाराजा ने साधु से पुछवाया और उसके सहमत होने पर प्रदर्शन की व्यवस्था बना दी। इस भूमि समाधि का विस्तृत विवरण उस दल के एक सदस्य डबल्यू. जी. ओसवार्न ने एक पुस्तक लिखी है। पुस्तक का नाम है—“रणजीत सिंह।”

उस पुस्तक में लिखा है—महाराज, अनेक सरदार और अंग्रेजी दल की उपस्थिति में योगी ने अपने मुख, नाक, कान के छिद्रों को छोड़कर शेष सारा शरीर मौम से बन्द किया ताकि किसी रोमकूप से उसके भीतर वायु का आवागमन न हो। इसके बाद योगी समाधिस्थ हो गया। शरीर को एक मजबूत बोरी में बन्द किया गया। और उस पर सील मुहर लगा दी गई। बोरी को सन्दूक में बन्द दिया गया। और उस पर ताला लगा दिया गया गड्डे में मिट्टी भरी गई मिट्टी पोली न रहे इसलिए उसे भली प्रकार रोंदा गया। इसके बाद उस जमीन पर जौ बो दिये गये ताकि कोई उखाड़-पछाड़ की जाय तो उसकी साक्षी जौ के पौधे दे सकें। यह सारी क्रिया जनरल वेनटूर ने अपने हाथों पूरी की ताकि उसमें कहीं किसी आशंका की गुन्जायश न रहे। समाधि भूमि पर मिलिटरी का कड़ा पहरा बिठा दिया गया।

दस महीने बाद गड्डा खोदा गया। खोदते समय सारे अफसर मौजूद थे। कप्तान वार्ड ने अपने हाथों सन्दूक निकाला और सील खोली। योगी की नाड़ी और हृदय की धड़कन बिल्कुल बन्द थी तो भी वे जीवित थे। सारा शरीर ठण्डा था सिर्फ कपाल गर्म था। उन्हें गर्म पानी से स्नान कराया गया। धीरे-धीरे दो घण्टे में वे होश में आ गये। इस लम्बी अवधि में योगी के नाखून और बाल नहीं बढ़े थे।

इसी प्रकार की एक अन्य भूमि-समाधि का वर्णन डाक्टर मैक ग्रेवर ने अपनी पुस्तक हिस्ट्री ऑफ द सिख्स में दिया है। उसमें हरिदास नामक एक योगी द्वारा लाहौर में ४० दिन के लिए ली गई समाधि का वर्णन है। यह भी महाराजा रणजीत सिंह और अंग्रेज अफसरों की उपस्थिति में ली गई और खोली गई थी। इन्हीं साधु ने एक समाधि जैसलमेर में भी ली थी।

समाधि स्थिति को प्राप्त करने में कई प्रकार के लाभ उठाये जा सकते हैं। (१) प्रबुद्ध मस्तिष्क को गहरा विश्राम देकर उसे अधिक स्वस्थ, सक्रिय एवं बुद्धिमान बनाया जा सकता है। (२) अचेतन मस्तिष्क को जागृत करके उसकी अतीन्द्रिय क्षमता बढ़ाई जा सकती है और चमत्कारी सिद्ध पुरुषों की देव भूमिका में पहुँचा जा सकता है। (३) शरीर की गतिविधियाँ रोक सकने में

समर्थ संकल्प बल की आग में संसार की कठिनाइयों को गलाया जा सकता है। जो कठिन हैं, उन्हें सरल बनाया जा सकता है। दूसरों को आध्यात्मिक योगदान देकर सुखी बनाया जा सकता है। (४) दीर्घ जीवन का उद्देश्य पूरा करने के लिए कायाकल्प का रहस्यमय अमृत प्राप्त किया जा सकता है। यह चार लाभ प्रत्यक्ष हैं अन्य छोटे-बड़े वरदान और भी इस स्थिति के साथ जुड़े हुए हैं।

रामायण कथा के अनुसार रावण का भाई कुम्भकरण छै महीने जागता था। यदि यह कथा सही है तो उस प्रक्रिया के द्वारा मनुष्य को जरा मरण से मुक्त किया जा सकता है। छै महीने की सुषुप्तावस्था में कोषाओं की इतनी क्षतिपूर्ति हो सकती है कि वे पुनः कर्माकल्प की तरह नये सिरे से नव-जीवन जैसा कार्य प्रारम्भ कर सकें। इस प्रकार आमदनी तथा खर्च बराबर होते रहने की प्रक्रिया अनन्त काल तक चलती रह सकती है और मनुष्य को अमरता का लाभ मिल सकता है। वृद्धावस्था थकान का नाम है। थकान का अर्थ है आमदनी से खर्च का अधिक होना—विकृतियों के निराकरण में अवरोध उत्पन्न होना। मौत के निकट घसीट ले जाने वाली यही कठिनाइयाँ हैं, जिन्हें प्रसुप्त निद्रा पद्धति अपनाकर निरस्त करने की बात आजकल वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में चल रही है।

विज्ञान ने यह स्वीकार कर लिया है कि यदि मनुष्य को चिर निद्रा में सुलाया जा सके तो उसे रोगों और थकान के पंजे से छुड़ाकर नव-जीवन प्रदान किया जा सकता है। समाधि की विधि-व्यवस्था तो भौतिक विज्ञान में नहीं है पर उन्ने शीत निद्रा का एक नया तरीका ढूँढ़ा है। विज्ञानी डेल कारएन्टर का कथन है कि मनुष्य को ठण्डा करके गहरी सुषुप्तावस्था में सिद्धान्ततः पहुँचाया जा सकता है। अब उसका व्यावहारिक रूप ही सामने लाना बाकी है। न्यून तापमान में भी जीव कोषों में पाया जाने वाला ‘ग्लाइसकोल’ रसायन प्राणी को जीवित रख सकता है। इस प्रयोजन से एक विशेष रसायन खोज निकाला गया है। ‘डाय मिथाहुल सल्फो आक्साइड’ इसकी सहायता से गहन शीतनिद्रा में मनुष्य को भेजा जा सकेगा साथ ही उस स्थिति में उत्पन्न हो सकने वाले संकटों की संभावना से भी उसे बचाया जा सकेगा।

शीत निद्रा की समाप्ति कैसे होगी, इसके सम्बन्ध में अभी कल्पना यही है कि वैसा करना वातावरण में तापमान बढ़ाकर ही सम्भव हो सकता है। जो प्राणी शीत ऋतु में निद्रा मग्न होते हैं, वे गरम ऋतु के प्रभाव वातावरण में आने से उत्तेजना ग्रहण करते हैं। अभीष्ट तापमान उपलब्ध होने पर उनकी जीव कोशिकाएँ सजग होने लगती हैं। शीत ऋतु में सोये मेंढकों को पकड़कर

गरम कमरे में रखा गया तो वे जग पड़े और भोजन की तलाश में उछल-कूद करने लगे। शीत निद्रा में सुलाये गये मनुष्य को भी जब जगाना हो तब उसके लिए प्रयत्नपूर्वक अथवा स्वसंचालित पद्धति से ऐसी व्यवस्था करनी पड़ेगी कि नियत समय पर आवश्यक गर्मी उत्पन्न होने लगे और सोया हुआ मनुष्य उस निद्रा को त्यागकर पुनः सक्रिय हो सके।

प्रयत्न शीत निद्रा के भौतिक हॉ-हिप्नोटिज्म स्तर के मानसिक हॉ-अथवा समाधि स्तर के आध्यात्मिक हॉ। हर हालत में सर्वतोमुखी विश्राम एवं शांत, एकग्र समाधान की आवश्यकता अति महत्वपूर्ण समझी जाती रहेगी। उसे प्राप्त करके हम अतीन्द्रिय शक्ति सम्पादन से नये क्षेत्र में प्रवेश कर सकते हैं। निस्संदेह वह क्षेत्र इतना बहुमूल्य है कि जो उसमें प्रवेश करेगा वह असामान्य अतिमानवी विभूतियाँ, उपलब्ध करके रहेगा।

प्रत्यक्ष ही सब कुछ नहीं है

इन्द्रियों से मात्र स्थूल जगत का परिचय मिलता है। आँखों से दृश्य पदार्थ ही दिखाई पड़ते हैं। कान भी सीमित ध्वनियों को ही सुन पाते हैं। नाक की गंध-क्षमता सीमित है। जिह्वा भी समस्त रसों का आस्वादन करने में असमर्थ है। त्वचा हर चीज नहीं छू सकती। अनेकों पदार्थ वायु में उड़ते रहते हैं उनकी सत्ता विद्यमान है किन्तु इन्द्रियों से उनकी जानकारी नहीं मिलती। इन्द्रियातीत पदार्थों की जानकारी सूक्ष्मदर्शी एवं दूरदर्शी यन्त्रों से होती है। छोटे जीवाणुओं की माइक्रोस्कोप की और दूरवर्ती दृश्यों की टैलिस्कोप की सहायता से जानकारी मिलती है। स्पष्ट है कि इन्द्रिय जन्य ज्ञान ही सब कुछ नहीं है उससे बाहर की परिधि और भी बड़ी है। वैज्ञानिकों ने इस अविज्ञान को ज्ञान सीमा में लाकर आश्चर्यजनक आविष्कारों में सफलता पाई है।

स्थूल जगत की भाँति ही एक सूक्ष्म जगत भी है और स्थूल शरीर की तरह ही एक सूक्ष्म शरीर की सत्ता भी इसी संसार में विद्यमान रहती है। उसे इन्द्रियों से तो नहीं देखा जा सकता, पर बुद्धि के सहारे उसके अस्तित्व का परिचय भली-भाँति मिल जाता है। मरणोत्तर जीवन इस सूक्ष्म जगत में ही अपना गुजारा करता है। कर्म की परिणित इसी हाँडी में पकती रहती है और समयानुसार खिचड़ी बनकर थाली में आती है। भविष्यवक्त्र इस अदृश्य को देखकर ही भूत और भविष्य की जानकारी प्राप्त करते हैं। देव सत्ता का साम्राज्य इसी क्षेत्र पर है। प्रेत-पितरों का निवास एवं ब्रीड-कल्लोल की लीला भूमि यही है।

अदृश्य वातावरण का दृश्य जगत पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका बहुत कुछ पता ऋतु विज्ञानी एवं अन्तरिक्ष के जानकार लगाते रहते हैं और वर्षा, तूफान आदि की सम्भावनाओं से सर्वसाधारण को अवगत कराते रहते हैं।

व्यक्ति की सत्ता के साथ जुड़ा हुआ एक प्रति व्यक्ति रहता है इसका परिचय 'तेजोवलय' के रूप में और छाया पुरुष की चमत्कारी सामर्थ्य को देखकर लगाया जा सकता है।

स्थूल और सूक्ष्म के अन्योन्योन्नित सम्बन्ध सूत्र को अधिक प्रत्यक्ष करने और आदान-प्रदान का द्वार खोलने की चेष्टा योगी, तपस्वी करते रहते हैं। साधना द्वारा मनुष्य भीतरी और बाहरी जगत में विद्यमान सूक्ष्म शक्तियों के साथ सम्पर्क स्थापित करता है। अतीन्द्रिय क्षमताएँ सभी में विद्यमान रहती हैं, पर उनकी सूक्ष्म सत्ता को अनुभव में लगाने तथा अभीष्ट प्रयोजन में प्रयुक्त करने की स्थिति साधना प्रयासों द्वारा ही सम्भव होती है। उसी प्रकार ब्रह्माण्डव्यापी देव शक्तियों के साथ सम्बन्ध जोड़ना और उन्हें अनुग्रह बरसाने के लिए सहायता करना इन साधन प्रयत्नों के सहारे सुलभ बनता है।

प्रकृति स्थूल है और ब्रह्म सूक्ष्म। एक इन्द्रियगम्य है, दूसरा इन्द्रियातीत। शरीर और जीव के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। ज्ञान सूक्ष्म है और स्थूल। इस समस्त विस्तार पर दृष्टिपात करने से अदृश्य का अस्तित्व भी स्पष्ट हो जाता है। बुद्ध का भौडापन ही अदृश्य की सत्ता को अस्वीकार करता है। प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानना, बालकों जैसा दुराग्रह है।

अदृश्य भी हमारे लिए दृश्य की तरह ही उपयोगी है। व्यक्ति की निर्भरता मात्र पदार्थ सम्पदा पर ही नहीं है। वर्न् पारस्परिक स्नेह, सहयोग भी उसकी महती आवश्यकता है। प्रचुर सम्पत्ति होते हुए भी सद्भाव सम्पदा की दृष्टि से-धनवान व्यक्तियों की तुलना में मनस्वी और ओगावीर तेजस्वी अधिक सामर्थ्यवान माने जाते हैं। श्रमिक की तुलना में विद्वान की गरिमा अधिक भरी होती है। यह दृश्य की तुलना में अदृश्य की गरिमा का ही प्रमाण है। विज्ञ व्यक्ति अदृश्य को न तो अस्वीकार करते हैं और न उसके प्रति उपेक्षा बरतते हैं। उनकी मान्यता इससे भी आगे की होती है। उन्हें स्थूल के साथ श्रम करने से भी अधिक लाभदायक सूक्ष्म के साथ सम्बन्ध बढ़ाने का प्रयास लगता है। वैज्ञानिकों से लेकर योगियों तक की प्रयत्न परायणता अपने-अपने ढंग से अदृश्य क्षेत्र के अवगाहन में ही नियोजित रहती है।

अदृश्य की एक नई सत्ता का रहस्योद्घाटन अभी-अभी हुआ है। पता चला है कि पदार्थ की सबसे छोटी इकाई की प्रतिद्वन्दिता में प्रति परमाणु की सत्ता भी विद्यमान है। प्रति पदार्थ-प्रति विश्व का अस्तित्व अब न तो काल्पनिक रह गया है, न उपहासास्पद, न अप्रमाणिक। भौतिक विज्ञानी इस तथ्य को एक स्वर से स्वीकार करने लगे हैं कि दृश्य जगत की प्रतिद्वन्दी एवं पूरक एक अदृश्य जगत इसी विराट् के भीतर अपनी सत्ता जमाये बैठा है और अविज्ञात रूप से इस दुनिया को प्रभावित एवं नियंत्रित करता है। प्रकारान्तर से उन अध्यात्म मान्यता की स्वीकृति है जिससे स्थूल की तुलना में सूक्ष्म को अधिक बलिष्ठ एवं सम्पन्न बताया गया है और उसके साथ सम्बन्ध जोड़ने वाले साधना प्रयासों पर बल दिया गया है।

यहाँ प्रति पदार्थ एवं प्रति विश्व के सम्बन्ध में उपलब्ध नवीनतम जानकारीयों पर थोड़ा प्रकाश डालना उपयुक्त होगा। ताकि अदृश्य को उपहासास्पद कहने वाले लोग यह समझ सकें कि प्रत्यक्ष तो कलेवर भर है। समस्त विश्व वैभव का प्राण अदृश्य जगत में सन्निहित है। इसी प्राण सत्ता को 'प्रति पदार्थ' एवं 'प्रति विश्व' समझा जा सकता है।

नवीन तथ्यों के अनुसार यह ज्ञात हुआ है कि प्रत्येक पदार्थ के साथ जुड़ा उससे कहीं अधिक सामर्थ्यवान् छाया पुरुष-प्रति पदार्थ-अदृश्य जगत में क्रियाशील है। इसकी कल्पना बहुत समय पूर्व प्रसिद्ध गणितज्ञ पाल० ए० एम० डिराक ने की, जो कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में गणित शास्त्र के प्रोफेसर थे। आइन्स्टीन के सापेक्षवाद सिद्धान्त का स्पष्ट स्वरूप वैज्ञानिक किंस्लोडिगर ने दिया। पदार्थ के ऊर्जा में रूपान्तरित होने के सिद्धान्त से वैज्ञानिक डिरॉक को विशेष सहयोग मिला। इलेक्ट्रॉन के ऊर्जा दर्शाने वाले सूत्र से डिरॉक की कल्पना को बल मिला। उन्होंने प्रतिपादित किया कि ऋण आवेशयुक्त इलेक्ट्रॉन के साथ ही धन आवेशयुक्त इलेक्ट्रॉनों का अस्तित्व परमाणु में विद्यमान होता है। उन्होंने इसका नाम प्रति इलेक्ट्रॉन (एण्टी इलेक्ट्रॉन) दिया। अपने प्रयासों द्वारा श्री डिरॉक की इस परिकल्पना की पुष्टि अमेरिका के प्रसिद्ध भौतिकशास्त्री डॉ० कार्ल डी० एण्डरसन ने भी की। उन्होंने घोषणा की कि इलेक्ट्रॉन के साथ ही विपरीत आवेशयुक्त इलेक्ट्रॉनों का अस्तित्व भी परमाणु के भीतर ही विद्यमान है। उन्होंने इस नये कण का नाम 'पाजीट्रॉन' रखा। इस नवीन शोध के लिए उन्हें नोबेल पुरस्कार भी मिला। तब से लेकर अब तक परमाणु में ही विद्यमान अनेकों प्रति कणों का अस्तित्व उभरकर सामने आया है। अमेरिका के वैज्ञानिक एमेलियो जी०

सेगरे, 'ओवेन चेम्बर लेन' सी. वीगेन्द्र तथा पी० वाइपसीलेन्टिस के सामूहिक प्रयास से एण्टी प्रोटॉन एवं एण्टी न्यूट्रॉन कणों का पता लगा है। इन मूलभूत कणों के अतिरिक्त एण्टी-न्यूट्रिनोस, एण्टीमेसान्स, एण्टी हाइपेरान्स जैसे कणों की भी खोज हुई है। पाकिस्तान के श्री अबदुस्सलाम को पोजीट्रॉन की खोज होने पर ही १९७९ का नोबेल पुरस्कार मिला था।

भौतिकविद् के जानकार इस तथ्य से अवगत हैं प्रोटान्स, न्यूट्रान्स, न्यूट्रिनोस एवं मेसान्स से नाभिक बनता है। इलेक्ट्रॉन नाभिक के बाहर चक्कर लगाते हैं इन सभी कणों के संयुक्त होने से परमाणु बनता तथा सुव्यवस्थित एवं टिकाऊ बना रहता है। प्रति कणों की खोज से, एण्टीप्रोटान्स, एण्टीन्यूट्रान्स एवं एण्टीमेसान्स, एण्टीमेसान्स के संयुक्त होने से एण्टी न्यूक्लियस की कल्पना की गई। इस कल्पना को साकार किया कोलम्बिया विश्वविद्यालय के भौतिक शास्त्र के डॉ. लियोन लेडरमेन ने। सन् १९६५ में एण्टी न्यूक्लियस की संरचना करके एण्टीएटम का स्वरूप प्रदान किया गया। पदार्थ के साथ 'प्रति पदार्थ' के अस्तित्व को अब वैज्ञानिक जगत में निर्विवाद रूप से स्वीकार जा रहा है।

प्रति पदार्थ के अस्तित्व में आने से वैज्ञानिकों ने नये सिरे से सोचना आरम्भ किया है। अब सोचा यह जा रहा है कि न केवल पदार्थ वरन् प्रत्येक संरचना का एक स्वतन्त्र प्रतिरूप स्थूल सृष्टि में विद्यमान होना चाहिए। इस सिद्धान्त के अनुसार 'प्रति जगत', 'प्रति मानव', 'प्रति जीव', 'प्रति वनस्पति' भी जगत, मनुष्य, जीव एवं वनस्पति के साथ संलग्न होना चाहिए। प्रो. डिराक के अनुसार सृष्टि में विद्यमान सभी कणों के साथ अदृश्य रूप में उनके प्रतिकण मौजूद हैं।

पदार्थों की प्रतिच्छाया के समान प्रति पदार्थ भी पदार्थ के साथ ही बनते हैं। ऊर्जा रूपान्तरित होकर प्रति पदार्थ एवं पदार्थ को जन्म देती है। यहाँ एक प्रश्न सहज ही उठता है कि पदार्थ तो दीखता है किन्तु क्या कारण है कि प्रति पदार्थ दिखायी नहीं पड़ता। तथ्यों एवं प्रयोगों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि पदार्थ प्रति पदार्थ का विकर्षण करता है। इस विकर्षण के फलस्वरूप सभी प्रति पदार्थ एक ऐसे लोक में पहुँच जाते हैं, जिसे 'प्रति विश्व' के नाम से पुकारा जा सकता है। सम्भव है कि वह एक विशेष स्थिति हो। जिसे आइन्स्टीन ने दिक्-काल से परे 'चतुर्थ आयाम' के नाम से सम्बोधित किया है। जिसमें पहुँचकर पदार्थ का स्थूल स्वरूप लुप्त हो जाता हो। तथ्य चाहे जो भी हो यह तो स्पष्ट हो चुका है कि पदार्थ, विश्व, मनुष्य तथा अन्यान्य प्रकृति की संरचनाओं के साथ उनके प्रति-स्वरूप भी यहाँ विद्यमान हैं।

परस्पर विरोधी प्रकृति के कारण पदार्थ एवं प्रति पदार्थ के मिलने से भयंकर विस्फोट की सम्भावना की जाती है। कुछ वर्षों पूर्व रूस के साइबेरिया क्षेत्र में एक भयंकर विस्फोट हुआ। यह स्थान आर्कटिक क्षेत्र से ४०० मील दूर 'टानानेयूकी' में स्थित है। एक अनुमान के अनुसार यह विस्फोट ३० मेगाटन हाइड्रोजन बम की सामर्थ्य के बराबर था। इसकी विध्वंसक शक्ति का अनुमान इसी से लगता है कि यह हिरोशिमा पर छोड़े गये परमाणु बम से १५०० गुना शक्तिशाली था। रसायन शास्त्र के प्रसिद्ध वैज्ञानिक एवं नोबेल पुरस्कार विजेता डॉ. विलिमर्ट एफ. लिब्या का कहना है कि उक्त विस्फोट पदार्थ के टकराने से हुआ। इन दोनों के विकर्षण से ही सन्तुलन बना रह सकता है। असन्तुलन के कारण किसी प्रकार यदि यह दोनों मिल जाते हैं तो ऐसी स्थिति में ही यह विस्फोट होता है। अन्तरिक्ष में प्रवेश करते समय अब इस संकट की भी सम्भावना की जा सकती है कि कहीं हमारी स्पेस शटल एवं अन्तरिक्ष यात्रा प्रति विश्व में न प्रवेश कर जायें। यदि ऐसा हुआ और प्रति-विश्व पर नियंत्रण नहीं किया जा सकता तो महाविनाश का, महा प्रलय का दृश्य उपस्थित हो जायेगा। प्रति जगत एवं जगत के बीच भयंकर युद्ध छिड़ जायेगा और देखते ही देखते सम्पूर्ण विश्व नष्ट हो जायेगा।

प्रति पदार्थ एवं प्रति विश्व का अस्तित्व स्पष्ट होने के उपरान्त एक बड़ी समस्या यह सामने आ गई है कि इस अदृश्य एवं अविज्ञात सत्ता के साथ छेड़खानी करने पर कहीं उल्टी प्रतिक्रिया उपस्थित न होने लगे। पदार्थ और प्रति पदार्थ के असहयोग एवं विग्रह से असंख्यों समस्याएँ खड़ी हो सकतीं और विश्व के वर्तमान ढाँचे को पूर्णरूपेण बदल जाने से लेकर महाप्रलय जैसा संकट खड़ा हो सकता है। इसी आशंका, असमंजस में इस दिशा में शोध प्रयत्न को दिशा में कदम फूँक-फूँककर धीरे-धीरे बढ़ाये जा रहे हैं।

आध्यात्म विज्ञान द्वारा अदृश्य जगत एवं अदृश्य सत्ता के साथ सम्बन्ध बनाने के बारे में भी यही बात है। उसमें दैवी सृजन और दानवी विध्वंस की दोनों सत्ताएँ विद्यमान हैं। अदृश्य पर, सूक्ष्म पर, अविश्वास करने के जो कारण पिछले दिनों बहुत उछाले जाते थे, वे अब धीरे-धीरे समाप्त होते जा रहे हैं। प्रति पदार्थ एक प्रति विश्व के अस्तित्व ने भौतिक विज्ञानियों को सूक्ष्म की सत्ता की पदार्थ तक ही नहीं चेतना तक में विद्यमान होने की बात स्वीकार करने के लिए विवश किया है। यह आध्यात्मिकी आत्मिकी की—भौतिकी की विजय यात्रा का श्रीगणेश मात्र है।

आत्मा क्या है ?

मनुष्य की आत्मा क्या है ? दार्शनिकों के एक समुदाय का मत है कि सत्ता ईश्वर की है और उसके अतिरिक्त अपरिमित आत्माएँ हैं, जो रूप, गुण तथा अन्य समस्त बातों में उस ईश्वरीय सत्ता-ब्रह्म-से सर्वथा भिन्न है। यह सिद्धान्त है। इसके उत्तर में एक-दूसरे सम्प्रदाय ने कहा कि आत्मा एक अत्यन्त अपारिथ्व सत्ता का अंश है। मानो यह शरीर स्वयं एक छोटा-सा संसार है। इस शरीर के अन्तराल में मन और बुद्धि हैं और इन दोनों ही के अन्तराल में आत्मा। ठीक इसी प्रकार यह सारा संसार एक शरीर है इसके अन्तराल में आत्मा। जिस तरह यह शरीर विश्वव्यापी शरीर का एक अंश है, उसी तरह यह मन विश्व मन का तथा आत्मा का एक अंश है। इस तरह का सिद्धान्त विशिष्टाद्वैतवाद के नाम से प्रसिद्ध है।

अब हम यह जानते हैं कि विश्वव्यापी आत्मा अनंत है। परन्तु भला अनन्तता के खण्ड कैसे हो सकते हैं ? वह तोड़ा कैसे जा सकता है ? उसमें विभाग कैसे होगा ? यह कहना कि मैं उस अनन्त का एक कण हूँ, बहुत ही कवित्वमय है। परन्तु विवेकशील मन के लिए यह बात एक बहुत ही बेतुकी है। अनन्त के विभक्त करने का तात्पर्य क्या है ? क्या कोई परिमेय पदार्थ है, जिसे आप खण्ड-खण्ड विभक्त कर सकेंगे ? जिस वस्तु में परिमाण नहीं है, जिसे हम नाप नहीं सकते, उसके खण्ड भी नहीं किये जा सकते, जिससे खण्ड करना सम्भव है, उससे फिर अपरिमेयता नहीं रह जाती। इसका निष्कर्ष यह निकला कि आत्मा जो कि विश्वव्यापी है वह 'तुम' हो और तुम एक खण्ड नहीं, बल्कि उसके पूर्ण अंश हो। तुम ईश्वर के पूर्ण अंश हो। परन्तु ये सब विभिन्नतायें क्या हैं ? इस संसार में हमें लाखों विभिन्न आत्माएँ मिलती हैं। ये सब क्या हैं ? जिस समय पानी के लाखों बुलबुलों पर सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है, उस समय उसमें से हर एक सूर्य की प्रतिमूर्तियाँ दिखाई देती हैं। हर एक बुलबुले में सूर्य की अविकल मूर्ति परिलक्षित होती है। इस प्रकार उस समय हमें लाखों सूर्य दिखाई देते हैं, यद्यपि वास्तविक सूर्य केवल एक ही है। इस प्रकार यह माया, विशिष्ट आत्मा जो कि हममें से प्रत्येक प्राणी के अन्तःकरण में विद्यमान है, ईश्वर की प्रतिमा मात्र है। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वास्तविक सत्ता जो कि अन्तराल में है, वह एक मात्र ईश्वर है। उसके समीप हम सभी लोग एक हैं।

इस विश्व ब्रह्माण्ड में आत्मा केवल एक है और वही हम, तुम संसार के अन्य समस्त प्राणियों के शरीर में प्रतिबिम्बित होती है और वह भिन्न-भिन्न आत्मा के रूप

में प्रदर्शित होती है। परन्तु हम यह बात नहीं जानते। हमारी धारणा है कि हम सब एक-दूसरे से भिन्न हैं और उससे ईश्वर से भिन्न है। जब तक हमारी यह धारणा बनी रहेगी, तब तक संसार से दुःखों का भी अन्त न होगा। यह भ्रान्ति है। इसके अतिरिक्त दुःख, क्लेश और बहुत बड़ा कारण भय है।

भला एक व्यक्ति दूसरे के स्वार्थ का विघातक क्यों बनता है ? कारण वह डरता है कि मैं यथेष्ट सुख न प्राप्त कर सकूँगा। मनुष्य को भय रहता है यथेष्ट धन न प्राप्त कर सकूँगा। इस भय के ही कारण वह दूसरों को हानि पहुँचाता है, इसी से वह दूसरों को धोखा देता है, ठगता है। यदि समस्त विश्व में केवल एक मात्र सत्ता होती तो, भला इस प्रकार का भय क्यों होता ? यदि मेरे ऊपर वज्र गिर पड़े, तो मैं अपने ही ऊपर स्वयं भी गिर पड़ता हूँ, क्योंकि इस समस्त विश्व में मैं ही एक मात्र सत्ता हूँ। यदि प्लेग आता है, तो वह मैं हूँ, यदि कोई सिंह आता है, तो मैं हूँ, यदि मृत्यु आती है, तो वह मैं हूँ। मैं जन्म और मृत्यु दोनों ही हूँ।

विश्व में दो सत्ताओं का अस्तित्व मानने पर भय का संचार होता है। इस तरह का उपदेश हम सदा से सुनते चले आ रहे हैं कि एक-दूसरे को प्रेम करो। किसलिए ? हमें प्रत्येक व्यक्ति को प्रेम दृष्टि से क्यों देखना चाहिए ? वह इसलिए कि मैं तथा संसार के अन्य समस्त प्राणी अभिन्न हैं। मैं अपने भाई से प्रेम क्यों करूँ ? इसलिए कि वह और मैं एक हूँ। इस प्रकार समस्त विश्व के सुख-दुःख को समान मानने में ही यह एकता है। हमारे पैरों से कुचले जाने वाले छोटे से छोटे कीड़ों से लेकर सृष्टि के बड़े से बड़े प्राणी तक पृथक्-पृथक् शरीर धारण करते हुए भी एक ही जीव हैं। सभी मुखों द्वारा तुम खाते हो, सभी हाथों के द्वारा तुम काम करते हो और सभी नेत्रों के द्वारा तुम देखते हो। इन लाखों शरीरों के द्वारा तुम स्वास्थ्य का उपयोग करते हो तथा रोगों की यंत्रणा भी सहन करते हो, जब मन में इस तरह की भावना आ जाती है और हम इसका अनुभव करने लगते हैं, तब दुःखों, क्लेशों और भयों का अन्त हो जाता है।

आत्मा का अस्तित्व झुठलाया न जाय

जड़ जगत को ही सब कुछ मान लेना और चेतना को भी जड़ के पीछे क्रम करने वाली हलचलों की प्रतिक्रिया समझ बैठना जड़वाद का अन्ध समर्थन मात्र है। चेतना के अस्तित्व को झुठलाया जाना अपने युग का बौद्धिक दुर्भाग्य ही कहा जायेगा। जिस चेतना ने जड़ पदार्थों को आज सँभालकर उपयोगी एवं सुन्दर

बनाया-जिस चेतना ने अपनी सूक्ष्म बुद्धि से प्रकृति के अनेकानेक रहस्यों को जाना और उनसे लाभान्वित हो सकने की स्थिति तक मनुष्य को पहुँचाया, उसी चेतना के अस्तित्व तक से हम इन्कार करने लगे तो इसे आत्म-विस्मृति के अतिरिक्त और क्या कहा जायेगा ?

चेतना का अस्तित्व हम शरीर के माध्यम से भी अनुभव करते हैं, पर वह उतने तक ही सीमित नहीं है। शरीर के बिना भी उसका अस्तित्व बना रहता है। प्रकृति का सूक्ष्म स्वरूप यों तो यन्त्र उपकरणों की सहायता से खोजा-पकड़ा जा सकता है, पर चेतना की परख के लिए कोई भौतिक साधन बनकर तैयार नहीं हुए हैं। वे हो भी नहीं सकेंगे क्योंकि भौतिक उपकरण अपने सहघर्षी भौतिक पदार्थों को ही पकड़ सकते हैं। शरीर और उसकी इन्द्रियाँ पंचभूत तत्त्वों से बनी हैं। इसलिए उनकी अनुभूतियाँ भी तत्त्वों से बने परमाणुपरक पदार्थों के आधार पर ही कुछ निष्कर्ष निकालती एवं रस लेती हैं। मशीन भी प्रायः धातुओं से बनी और विद्युत जैसी भौतिक ऊर्जाओं से चलती है। ऐसी दशा में उनका परख क्षेत्र भी स्थूल अथवा सूक्ष्म-दृश्य अथवा अदृश्य जड़ जगत तक ही सीमाबद्ध रहता है। चेतना को तो चेतना ही अनुभव कर सकती है। चेतना को समझने का कोई यन्त्र बन सका तो वह चेतना ही होगा। आत्मा और परमात्मा को प्रयोगशालाओं में अब तक सिद्ध नहीं किया जा सका और वह भविष्य में भी सिद्ध न हो सकेगा। इसी आधार पर वैज्ञानिकों ने इन दोनों की सत्ता को अस्वीकार किया है। वे शरीर को चलता-फिरता पौधा मानते हैं और उसकी चेतना की मस्तिष्कीय हलचल कहते हैं। मस्तिष्क तो शरीर का ही अंग है। इसलिए वे आत्मा की परिभाषा शरीर तक ही सीमित रखते हैं और मरने के बाद आत्मा की समाप्ति की बात कहते हैं परमात्मा के सम्बन्ध में भी उनका ऐसा ही कथन है। प्रकृति व्यवस्था को वे स्वसंचालित मानते हैं। सृष्टि में चल रही विभिन्न व्यवस्थाओं को वे अपने आप-अपने ढर्रे या घुरी पर घूमती हुई कहते हैं और इसमें किसी ईश्वर का दखल स्वीकार नहीं करते।

कठिनाई यह है कि विज्ञान जगत् प्रत्यक्ष भौतिक प्रयोग-परीक्षणों को ही सब कुछ मान बैठता है और प्रयोगशालाओं की सिद्धि को ही प्रमाणिक ठहरता है जबकि तर्क और तथ्य यह भी कहते हैं कि इस विश्व के रहस्यों को-विशेषतया चेतन तथ्यों को जानने के लिए प्रयोगशालाओं की उपलब्धियों तक ही सीमित नहीं रहा जा सकता।

पदार्थों में पाई जाने वाली हलचल स्वसंचालित हो सकती है यह प्रतिपादन गले नहीं उतरता। चेतन संचालक

के बिना वस्तुएँ निश्चेष्ट और अस्त-व्यस्त पड़ी रहती हैं। बहुमूल्य जलयान, वायुयान, रेल इन्जन आदि बिना ड्राइवर के नहीं चलते, फिर असीम ब्रह्माण्डव्यापी अन्तर्ग्रही और सीमित परमाणु सत्ता में जो सुव्यवस्थित अनवरत गति चक्र चल रहा है, वह अनायास स्वसंचालित कैसे हो सकता है ? इसके पीछे चेतन शक्ति की प्रेरणा एवं व्यवस्था होनी आवश्यक है। इसे तर्क बुद्धि सहज ही समझ सकती है। यदि विवेक, तर्क एवं बुद्धि को भी यान्त्रिक उपकरणों की तरह ही साक्षी साधन मान लिया जाय तो फिर ईश्वर के अस्तित्व को समझने-स्वीकार करने में कोई कठिनाई न रहेगी।

आत्मा के अस्तित्व को प्रयोगशालाओं में तो सिद्ध नहीं किया जा सका, पर अन्य ऐसे अकट्य प्रमाण मौजूद हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि मरने के बाद भी जीव चेतना का अस्तित्व बना रहता है। इस तथ्य की साक्षी में प्रेतात्माओं की हलचलें तथा पुनर्जन्म की ऐसी घटनाएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं जो प्रमाणिक व्यक्तियों के अनुभव में आई हैं और उन्हें झुठलाया नहीं जा सकता इसी प्रकार पुर्नजन्म के भी अगणित प्रमाण मिलते हैं। जिनसे सिद्ध होता है कि पिछले जन्म की ऐसी अनेक घटनाओं का विवरण नये जन्म में स्मरण बना रह सकता है, जो अन्य लोगों को विदित नहीं था। किसी ने सिखा-पढ़ाकर पूर्व जन्म विवरण का कौतूहल तो खड़ा नहीं कर दिया है। इस आशंका की कट उन प्रमाणों से हो जाती है, जिनमें बालकों ने अपने पूर्वजन्म के सम्बन्धियों को पहचाना और नाम लेकर पुकारा है। इसी प्रकार उनने नितान्त व्यक्तिगत ऐसी घटनाएँ सुनाई हैं, जो सम्बद्ध व्यक्तियों के अतिरिक्त अन्य लोगों को विदित नहीं हो सकती थीं। जमीन में अपना गद्दा हुआ घन बताकर उसे निकलवाना पूर्वस्मृति का ठोस प्रमाण समझा जा सकता है। प्रेतात्माओं के अस्तित्व और पुनर्जन्म के प्रत्यक्ष प्रमाणों को यदि प्रयोगशाला सिद्ध तथ्यों की तुलना में माना जा सके तो फिर आत्मा और परमात्मा के अस्तित्व के संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रह सकती।

“दी ह्यूमन परसनेलिटी एण्ट इट्स सरवाइबल आफ बॉडिली डैथ” नामक पुस्तक में ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं, जो शरीर से पृथक् आत्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व को सिद्ध करते हैं। कई उदाहरण एक व्यक्ति के शरीर पर किसी दूसरी आत्मा द्वारा आधिपत्य रखने और फिर उसे मुक्त कर देने के हैं। साथ ही संगीत, गणित, ललित कलाओं आदि में अद्भुत क्षमता व प्रवीणता वाले बच्चों के विवरण भी हैं, जिनका असाधारण ज्ञान पूर्वजन्म की संचित ज्ञानसामग्री ही सिद्ध होता है।

गणितशास्त्री ओस्पेन्की ने तीन ग्रन्थों में गणित के आधार पर चेतना के व्यापक अस्तित्व को सिद्ध करने का अकट्य प्रयत्न किया है। इस सन्दर्भ में उनके द्वारा लिखे गये ग्रन्थों में ‘इन सर्व ऑफ दि मिरेकुलस—टर्टियम आर्गेनथ्योरी ऑफ इन्टरनल लाइफ—अधिक प्रसिद्ध हैं।

भौतिकी के आचार्य राबर्ट मायर ने ऊर्जा के दर्शन पर जो खोजें की हैं, वे बताती हैं कि उसकी अधिकाधिक सूक्ष्म स्थिति में जो तत्त्व शेष रह जाता है, उसे चेतना की संज्ञा दी जा सकती है। यह उच्चस्तर पर एकरस और सर्वव्यापी स्थिति में बनी रहती है। उसका उत्पादन और विलयन क्रम तो स्थूल रूप से ही चलता है।

मनोविज्ञानी जे० बी० राइन ने मानवी मनःचेतना को पराजागतिक और पराभौतिक की संज्ञा दी है। वे उसका स्वरूप विद्युतीय एवं चुम्बकीय स्तर की ऐसी स्वतन्त्र इकाई के रूप में मानते हैं, जो मरने के बाद भी अपनी सत्ता बनाये रहता है। उसमें इतने प्रबल संकल्प भी जुड़े रहते हैं, जिनके सहारे पुराने स्तर की तथा नये प्रकार की किसी आकृति का सृजन और धारण कर सके। उनकी दृष्टि में यह व्यक्ति चेतना दृश्य अथवा अदृश्य स्थिति में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रहने में पूर्णतया समर्थ है।

आइन्स्टीन ने सृष्टि के मूल में चेतना को सक्रिय माना था। जे० ए० थामसन, जेम्स जोन्स, ए. एस. एडिग्रन आदि ने विज्ञान की नवीन दिशाओं का अलग-अलग विवेचन करते हुए एक ही बात कही है—विज्ञान के पास जीवन के प्रारम्भ होने की कोई प्रमाणिक जानकारी नहीं है। वैज्ञानिक अन्वेषण अब चेतना और विचार जगत की ओर बढ़ रहे हैं।

भारतीय दर्शन और संस्कृति आदिकाल से आत्मा की अखण्डता पर आस्थावान है। अणुमात्र होकर भी वह सम्पूर्ण शरीर पर आधिपत्य रखता है। भावनात्मक परिष्कार से आत्मबल बढ़ता है और अपने स्वरूप को जानने वाला जीवात्मा परमात्म-सत्ता से एक रूप हो जाता है।

नोबेल पुरस्कार विजेता भौतिकीविद् श्री पिपरे दि कोम्ते ने आत्मा को विश्वात्मा से सम्बन्धित बताया है तथा इसी आधार पर उसे अमर भी कहा है, क्योंकि विश्व चेतना अमर है और आत्मा उसी की छोटी इकाई मात्र है।

इलेक्ट्रोडायनेमिक सिद्धान्तों के अनुसार ‘ईगो’ की छानबीन की जाने पर ये तथ्य सामने आये हैं कि जन्म-मरण चक्र में भ्रमण करती हुई, भिन्न-भिन्न आकृति-प्रकृति अपनाते हुए भी, मूल-सत्ता अक्षुण्ण रहती है।

विभिन्न खोजों के बाद विश्वविख्यात वैज्ञानिक फ्रेड हायल तथा जयंत विष्णु नालीकर ने यह स्थापना की है कि विश्व रचना में कारणभूत अणु और मानवीय शरीर की संरचना में कारणभूत जीवाणु की मूल संरचना एक-सी है।

“दि सूट्स ऑफ कोइन्सिडेन्स” के लेखक आर्थरडा कोएस्लर ने जीवसत्ता को आणविक या रासायनिक संघात से सर्वथा भिन्न माना है।

“यू डू टेक इट विद यू” के लेखक डिविट मिलर ने मस्तिष्कीय कोशों में ही घुली हुई एक अतिरिक्त चेतना को माना है तथा उसका स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार किया है। यह चेतना मस्तिष्क के कोश को प्रभावित करती है।

हमारा विश्व एक विराट शक्ति-सागर है। यह शक्ति-सागर जड़-चेतन से मिश्रित है। प्राणियों की सत्ता इसमें एक बुलबुले की तरह स्वतन्त्र अस्तित्व बनाती है, विकसित होती है और समयानुसार विलीन हो जाती है।

मूर्धन्य वैज्ञानिकों की मान्यता है कि इस विराट शक्ति-सागर में एक भौतिक शक्तिधारा है, दूसरी प्राणिज। दोनों एक अविच्छिन्न युग्म बनाती हैं।

विकासमान विज्ञान अब जीवन को रासायनिक संयोग मात्र नहीं मानता। मनश्चेतना की मरणोत्तर सत्ता तो स्वीकार ही कर ली गई है। अब चेतना जगत की स्वतन्त्र सत्ता को एक घटक मानने की बारी है।

इन दिनों ब्रह्माण्डीय चेतना की वैज्ञानिक क्षेत्रों में बहुत चर्चा है। उसे परा प्रकृति की स्वीकृति, माना जाना चाहिए। प्रकृति के दो स्तर हैं एक ‘परा’ दूसरा ‘अपरा’। ‘परा’ वह है जिसे पंच भौतिक कह सकते हैं। इन्द्रिय चेतना से जो अनुभव की जा सकती है अथवा यन्त्र उपकरणों की सहायता से जो प्रत्यक्ष हो सकती है। भौतिक विज्ञान का कार्यक्षेत्र यहाँ तक सीमित है। कुछ समय पूर्व तक वैज्ञानिक इतने को ही सब कुछ मानते थे। चेतना की व्याख्या आणविक एवं कम्पन परक हलचलों की ही प्रतिक्रिया कहते थे। अब बात आगे बढ़ गई। विज्ञान के बचपन ने किशोरावस्था में प्रवेश किया है। फलतः अपरा प्रकृति का अस्तित्व सहमते-झिझकते स्वीकार किया गया है। इस नये कार्य क्षेत्र को सूक्ष्म जगत कहा जाने लगा है। इसकी हलचलें आणविक गतिविधियाँ नहीं कही जा सकतीं और न ताप, प्रकाश शब्द के कम्पनों से उसकी कोई तुलना है। उसे समष्टि मस्तिष्क माना गया है। बल्ब में जलने वाली बिजली-अन्तरिक्ष में व्यापक विद्युत शक्ति की एक चिंगारी समझी जाती थी और दोनों का परस्पर सघन सम्बन्ध

स्वीकार किया जाता था। अब व्यष्टि मस्तिष्क की एक चिंगारी और समष्टि मस्तिष्क की व्यापक अग्नि के समक्ष माना गया है। व्यक्तिगत मस्तिष्क की अपनी सत्ता और क्षमता है किन्तु वह सर्वथा स्वतन्त्र नहीं है वरन् वह समष्टि मस्तिष्क का एक अंग है जिसे इन दिनों वैज्ञानिक क्षेत्र में ‘ब्रह्माण्डीय चेतना’ नाम दिया गया है। व्यक्ति समाज का एक अविच्छिन्न अंग है। एकाकी रहने लगे तो भी वह समष्टि से पृथक् होने का दावा नहीं कर सकता। उसे अब तक जो ज्ञान अनुभव, संस्कार, कौशल आदि मिला है, शरीर पोषण हुआ है, वह सब समाज का ही अनुदान है। एकाकी निर्वाह में भी आखिर कुछ उपकरण तो साथ रखे ही गये हैं। माला, कमण्डल, कोपीन, कुल्हाड़ी, जैसे साधनों के बिना तो गुफा में रहने वाले भी काम नहीं चला पाते। अग्नि का आविष्कार उस एकाकी व्यक्ति ने स्वयं नहीं किया है। इस प्रकार एकान्तवासी कहलाने वाले का भूतकालीन और वर्तमान क्रियाकलाप समाज सम्बद्ध रहा। आगे भी अन्तरिक्ष में चलने वाली असंख्य व्यक्तियों की असंख्य विचार तरंगें अप्रत्यक्ष रूप से उसे प्रभावित करेंगी और वह स्वयं दूसरों को अपनी मनःतरंगों से प्रभावित करेगा, यह भी सामाजिक आदान-प्रदान हुआ।

व्यक्ति का शरीर निर्वाह एवं विकास समाज पर आश्रित है और अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध है। ठीक इसी प्रकार व्यष्टि मस्तिष्क स्वतन्त्र दीखने पर भी वह समष्टि मस्तिष्क का एक अंग है। युद्ध और शान्ति के दिनों वातावरण में कितना अन्तर होता है और लोक-मानस की चिन्तन प्रक्रिया में कितना उतार-चढ़ाव रहता है, यह सर्वविदित है। एक समय की लोक रुचि-मान्यता दूसरे समय से भिन्न होती है लोगों का चिन्तन-प्रवाह अपने समय में प्रायः एक ही दिशा में होता है। मनस्वी और स्वतन्त्र चिन्तकों के कुछ अपवाद तो सर्वथा पाये जाते रहते हैं पर सामान्यतः चिन्तन-प्रवाह की धारा एक ही दिशा में बहती है। अपने समय में पूर्वजों के कथन को प्रामाणिक मान लेने की श्रद्धा उखड़ रही है और तर्क तथा प्रमाणों पर आधारित बुद्धिवाद को मान्यता मिली है। किसी जमाने में त्याग बलिदान और आदर्शवाद अपनाने में मनुष्य एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा लगाता था और इस क्षेत्र में जो जितना सफल होता था, उतना ही गौरव अनुभव करता था। आज स्थिति उससे सर्वथा भिन्न है। अपने समय में विलासिता की धूम है। संग्रह, उपभोग, पद प्रदर्शन के प्रलोभन को भूत हर मस्तिष्क पर छाया हुआ है। इसे लोक-मानस कहा जा सकता है। समय-समय पर कई तरह के फैशन-कई तरह के व्यसन कई तरह के क्रिया-कलाप अनायास ही पनपते और देखते-देखते एक

३.१२७ चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन

प्रथा प्रचलन बन जाते हैं। सामान्य लोग उस प्रवाह में अनजाने ही बहने लगते हैं। इसे लोक-प्रवाह कहा जा सकता है।

‘समूह मस्तिष्क’ के अस्तित्व और उसके ‘व्यक्ति मस्तिष्क’ के साथ आदान-प्रदान की बात अब दिन-दिन अधिक स्पष्ट होती और अधिक प्रमाणिक बनती चली जा रही है। मनुष्य का अचेतन मन अत्यधिक अदृष्ट और रहस्यमय होने की बात तथ्यरूप में स्वीकार कर ली गई है। चेतन मन की बुद्धि क्षमता उसकी तुलना में अति तुच्छ है। इसी प्रकार अन्तरिक्ष में मनुष्यों के छोड़े हुए विचार और उनके आदान-प्रदान की जानकारी भी ऐसी ही उथली और कम महत्व की समझी जाने लगी है और रहस्यमय उस प्रवाह को माना जाने लगा है जो समष्टि की अचेतन चेतना से सम्बद्ध है।

मानवी चेतना मोटेतौर से शरीर-निर्वाह एवं अहंता की तुष्टि तथा विस्तृति में संलग्न हलचल मात्र दृष्टिगोचर होती है। उसका प्रयोजन शरीर को सुखी तथा सक्रिय बनाये रहना भर प्रतीत होता है। लगता है शरीर मुख्य है और उसकी तृप्ति, पुष्टि, सुरक्षा एवं प्रगति के लिए संरजाम जुटाने भर के लिए उसका सृजन एवं उदय हुआ है। आमतौर से ऐसा ही समझा जाता है। उपयोग भी इसी स्तर पर होता है। मस्तिष्क का शरीर सुख के लिए जितना अधिक उपयोग हो सके उतनी ही उसकी सफलता एवं सार्थकता मानी जाती है।

गहराई में उतरने पर बात कुछ दूसरी ही दृष्टिगोचर होती है। मस्तिष्क चेतना के निवास का केन्द्रीय शक्ति संस्थान है। यहाँ ब्रह्माण्डीय चेतना के साथ जीव चेतना का मिलन संगम होता है और उस आदान-प्रदान के आधार पर प्राणि जगत को अनेकानेक सुविधाएँ एवं सम्यवेदनाएँ उपलब्ध होती हैं। यह मस्तिष्कीय केन्द्र इतना अधिक शक्तिशाली है कि उसके माध्यम से पिण्ड और ब्रह्माण्ड की एकता का अनुभव एवं लाभ आश्चर्यजनक मात्रा में उपलब्ध किया जा सकता है।

पृथ्वी यों मोटेतौर से एकत्र की लगती है। उसकी सम्पदा एवं हलचल अपनी ही परिधि में अपने ही लिए काम करती दिखाई पड़ती है, पर वस्तुतः वह अन्तर्ग्रही आदान-प्रदान पर जीवित है। सूर्य की ऊर्जा का शोषण पृथ्वी का वातावरण करता है और उस ईंधन से जड़ परमाणुओं और चेतन जीवाणुओं की विभिन्न प्रकार की गतिविधियाँ चल सकने की सामर्थ्य मिलती है। पृथ्वी अपनी विशिष्टताओं को बनाये रहने में बहुत कुछ सूर्य पर निर्भर है। दूर रहते हुए भी वह पृथ्वी को इतना उदार दुलार देता है कि उसे देखते हुए पति-पत्नी अथवा

प्रेमी-प्रेमिका जैसा रिश्ता मानने को जी करता है। पृथ्वी भी तो उसी का मुँह निहारते और परिक्रमा करते रहने में अपने जीवन की सार्थकता मानती है।

चन्द्रमा का पृथ्वी पर कितना प्रभाव पड़ता है यह समुद्र तट पर जाकर प्रतिदिन के सामान्य और पूर्णिमा, अमावस्या के ज्वार-भाटे देखकर सहज ही जाना जा सकता है। चन्द्रमा को रसराज कहा गया है। कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष में वनस्पतियों तथा प्राणियों में सरसता की जो घट-बढ़ होती रहती है उससे पता चलता है कि न केवल समुद्र को वरन् पृथ्वी की समग्र सरसता को वह व्यापक रूप से प्रभावित करता है।

यही बात अन्य ग्रहों की है। सौरमण्डल के ग्रह-उपग्रह अपने-अपने स्तर के रंग-बिरंगे, छोटे-बड़े उपहार पृथ्वी को अनवरत् रूप से भेजते हैं। पृथ्वी भी चुप नहीं बैठी रहती वह भी आदान-प्रदान का शिष्टाचार और समूह-कर्तव्य समझती है तदनुसार अपने अनुदान अन्य ग्रहों को भेजती है। इन प्रेषणों का लाभ वे ग्रह भी उसी प्रकार उठाते हैं जिस प्रकार कि पृथ्वी उनसे। इस आदान-प्रदान का महत्वपूर्ण केन्द्र ध्रुवीय क्षेत्र है। अन्तर्ग्रही ही आदान-प्रदान इन्हीं छिद्रों से आते-जाते हैं। उत्तरी ध्रुव से ग्रहण की और दक्षिणी ध्रुव से विसर्जन की प्रक्रिया सम्पन्न होती रहती है। उत्तर में आदान का और दक्षिण में प्रदान का संयंत्र नियति ने फिट करके रखा है। उत्तर को मुख और दक्षिण को मलद्धार कह सकते हैं। जितना उपयोगी है उतना पचाकर पृथ्वी का शरीर अपने में धारण कर लेता है जो अनावश्यक है, उसे मलरूप में विसर्जित कर देता है। प्राणि शरीर की तरह धरती भी एक शरीर है, जिसे अपनी जीवनचर्या की सामग्री अन्तर्ग्रही शक्ति भण्डार से उपलब्ध करनी पड़ती है। शरीर को हवा, पानी और अन्न भी तो बाहर से ही उपलब्ध करना पड़ता है। अन्तर्ग्रही हाट से आवश्यक वस्तुएँ खरीदे बिना धरती की गुजर नहीं हो सकती। ठीक इसी प्रकार प्राणी को भी अपनी सूक्ष्म चेतनात्मक उपलब्धियों के लिए अन्तर्ग्रही ब्रह्माण्डीय चेतना पर निर्भर रहना पड़ता है। मस्तिष्क मुख है। ग्रहण शक्ति उसी में है। जननेन्द्रिय विसर्जन संस्थान है। दोनों की प्राणि सत्ता को ध्रुव केन्द्र कहा जा सकता है। ऊर्ध्व केन्द्र को शिव और अधः संस्थान को शक्ति संस्थान माना गया है। इन्हें ब्रह्मवर्चस् और कुण्डलिनी केन्द्र भी कहते हैं। इनके बीच पारस्परिक सम्बन्ध संतुलन ठीक बना रहे तो सब कुछ ठीक बना रहेगा और अभीष्ट प्रगति का लक्ष्य पूरा होता रहेगा। इनके बीच असंतुलन या अवरोध उत्पन्न होने से अपच और तज्जनित अनेकों रोग-विकार उत्पन्न होने लगते हैं।

इन पंक्तियों में चर्चा दक्षिण ध्रुव की नहीं, उत्तर ध्रुव की मस्तिष्क की, की जा रही है। सामान्य मस्तिष्क शरीर और उससे सम्बन्धित अनेकों प्रयोजनों पर सोचता, निर्णय करता एवं व्यवस्था बनाता है। असामान्य की स्थिति उच्चस्तरीय होती है, वह ब्रह्माण्ड चेतना के आदान-प्रदान की गति को तीव्र करता है और ऐसी उपलब्धियाँ उपार्जित कर लेता है, जिन्हें आश्चर्यजनक सिद्धियों के नाम से पुकारा जा सके।

योग साधना का प्रयोजन अपनी ससीमता को असीमता के साथ जोड़ देना है। इस प्रयोजन में जितनी ही सफलता मिलती जाती है, उतनी ही मात्रा में मनुष्य उस वैभव पर आधिपत्य जमाता जाता है, जिसके प्रभाव को हम जड़-चेतन जगत में अपने चारों ओर फैला हुआ देखते हैं। सीमाबद्ध स्थिति में हम तुच्छ और दरिद्र होते हैं, पर असीम के साथ जुड़ जाने पर महानता प्राप्त करने में कोई कमी नहीं रह जाती। सम्पन्नता से—भरे-पूरे भण्डार से हमारी भागीदारी जितनी अधिक होती है उतनी ही अपनी स्थिति भी विभूतिमयी बनती चली जाती है। सिद्ध पुरुषों में देखी गई विशिष्ट क्षमताएँ और कुछ नहीं विराट के साथ उनकी घनिष्ठता का आरम्भिक उपहार भर है। बढ़-चढ़ी स्थिति तो ऐसी बन जाती है, जिसमें आत्मा और परमात्मा के बीच कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं रह जाता, दोनों समतुल्य ही दीखते हैं।

मन से छीनकर प्रधानता आत्मा को दीजिये

मनुष्य सामान्यतः जो बाह्य में देखता, सुनता और समझता है वह यथार्थ ज्ञान नहीं होता। किन्तु वह भ्रमवश उसी को यथार्थ ज्ञान मान लेता है। अवास्तविक ज्ञान को ही ज्ञान समझकर और उसके अनुसार ही अपने कार्यों को करने के कारण ही मनुष्य अपने मूल उद्देश्य सुख-शांति की दिशा में अग्रसर न होकर विपरीत दिशा में चल पड़ता है।

यथार्थ ज्ञान का अनुभावक मनुष्य का अन्तरात्मा ही है। शुद्ध, बुद्ध एवं स्वयं चेतन होने से उसको अज्ञान का अन्धकार कभी नहीं व्याप्त हो सकता। परमात्मा का अंश होने वे वह उसी की तरह सत्चित् एवं आनन्दमय है। जिस प्रकार परमात्मा के समीप असत्य की उपस्थिति असम्भव है, उसी प्रकार उसके अंश आत्मा में भी असत्य का प्रवेश सम्भव नहीं है।

मनुष्य का अन्तरात्मा जो कुछ देखता, सुनता और समझता है वही सत्य है, वही यथार्थ ज्ञान है। अन्तरात्मा से अनुशासित मनुष्य ही सत्य के दर्शन तथा यथार्थ ज्ञान

की उपलब्धि कर सकता है। यथार्थ ज्ञान की उपलब्धि हो जाने पर मनुष्य के सारे शोक-सन्तापों एवं दुःख-द्वन्द्वों का स्वतः समाधान हो जाता है। जहाँ प्रकाश होगा वहाँ अन्धकार और जहाँ ज्ञान होगा वहाँ दुःख रह ही नहीं सकता। प्रकाश का अभाव ही अन्धकार है और ज्ञान की अनुपस्थिति ही दुःख है। वस्तुतः दुःख का कोई अपना मौलिक अस्तित्व नहीं है।

अन्तरात्मा की बात सुनना और मानना ही उसका अनुशासन है। शंका हो सकती है कि क्या मनुष्य का अन्तरात्मा बोलता भी है ? हाँ, मनुष्य का अन्तरात्मा बोलता है। किन्तु उसकी वाणी स्थूल, ध्वनिपूर्ण नहीं होती। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म होती है, जिसे बाह्य एवं स्थूल श्रवणों से नहीं सुना जा सकता। मनुष्य का अन्तरात्मा बोलता है किन्तु मौन विचार स्फुरणा की भाषा में, जिसे मनुष्य अपनी कोलाहलपूर्ण मानसिक स्थिति में नहीं सुन सकता। अन्तरात्मा की वाणी सुनने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य का मानसिक कोलाहल बन्द हो।

अन्तरात्मा का सान्निध्य मनुष्य को उसकी आवाज सुनने योग्य बना देता है। यों तो मनुष्य की अन्तरात्मा उसमें सदा ओत-प्रोत है किन्तु वह तब तक उसका सच्चा सान्निध्य नहीं पा सकता, जब तक वह उससे परिचय नहीं करता, उसे जान नहीं पाता। परिचयहीन निकटता भी एक दूरी ही होती है। रेल-यात्रा में कन्धे से कन्धा मिलाये बैठे दो आदमी अपरिचय होने के कारण समीप होने पर भी एक-दूसरे से दूर ही होते हैं। अजनबी आदमी को छोड़ दीजिये। जिन्दगी भर एक-दूसरे के पास रहने पर भी आन्तरिक परिचय के अभाव में एक-दूसरे से दूर ही रहते हैं। वे कभी भी एक-दूसरे को ठीक से नहीं समझ पाते।

अन्तरात्मा को जानने का एक ही उपाय है कि उसके विषय में सदा जिज्ञासु एवं सचेत रहना। जो जिसके विषय में जितना अधिक जिज्ञासु एवं सचेत रहता है। वह उसके विषय में उतनी ही गहरी खोज करता है और निश्चय ही एक दिन उसे पा लेता है। अपनी आत्मा के विषय में अधिक से अधिक जिज्ञासु एवं सचेत रहिये। आप अपनी आत्मा से परिचित होंगे, उसकी वाणी सुनेंगे, सच्चा मार्ग निर्देशन पायेंगे तो अज्ञान से मुक्त होंगे और जीवन में यथार्थ सुख-शांति के अधिकारी बनेंगे।

मनुष्य जो काम करता है वह अधिकतर करता अन्तःप्रेरणा से ही है। किन्तु वह अन्तःप्रेरणा अन्तरात्मा की नहीं होती है। वह होती है मन की, जो कि स्वभावतः पतन पथगामी, चंचल, निरंकुश एवं अनुशासनहीन ही होता है। चंचल एवं उछलखल मन मनुष्य के लिए यातना का महामूल है। वह इन्द्रियों द्वारा कार्य रूप में

स्फुरित होकर मनुष्य को अन्धकार की ओर ही खींच ले जाता है।

जब तक मनुष्य उलूखल मन की प्रेरणा से गतिशील होता रहता है, उसकी आवाज का अनुगमन करता रहता है तब तक निरन्तर ऐसे मार्ग पर ही चलता रहता है जिस पर दुःख-द्वन्द्वों एवं शोक-संतापों की कंटकित झाड़ियाँ ही उगी रहती हैं। यथार्थ बात यह है कि मनुष्य अपने अन्तरात्मा की आवाज इसी मन के कोलाहल के कारण नहीं सुन पाता। जहाँ मन का स्वभाव उछल-कूद मचाना और शोर करने का है, वहाँ मनुष्य का अन्तरात्मा शान्त एवं सुस्थिर होता है। न तो वह मन की तरह कोलाहल कर पाता है और न उछल-कूद मचा पाता है। अपनी इसी चटुलता के कारण ही मन मनुष्य की अन्तरात्मा के आगे बना रहता है और उसे तरह-तरह की अवांछनीय प्रेरणाएँ दिया करता है। आवाज में प्रबलता एवं निर्देश में शासन का भाव रखकर मन मनुष्य को शीघ्र ही अपने अनुकूल प्रभावित कर लेता है। हठपूर्वक उसे अपना आज्ञापालक बना लेता है, जबकि शुद्ध-बुद्ध एवं शांत आत्मा कभी भी मनुष्य से किसी बात का दुराग्रह नहीं करता।

अन्तरात्मा के जिज्ञासु को चाहिये कि वह मन के कोलाहल की ओर से कान-मूँदकर अन्तरात्मा की आवाज सुनने का अभ्यास करे। जिस दिन वह अन्तरात्मा का निर्देश सुनने और पालन करने लगेगा, निश्चय ही उस दिन से यथार्थ सुख-शांति का अधिकारी बन जायेगा। जिज्ञासा की प्रबलता से मनुष्य के कान उस तन्मयता को सरलता से सिद्ध कर सकता है, जो अन्तरात्मा की आवाज सुनने में सफलतापूर्वक सहायक हो सकती है। आत्मा मनुष्य का सच्चा मित्र है। वह सदैव ही मनुष्य को सत् पथ पर चलने और कुमार्ग से सावधान रहने की चेतावनी देता रहता है। किन्तु खेद है कि मनुष्य मन के कोलाहल में खोकर उसकी आवाज पाता। किन्तु यदि मनुष्य वास्तव में उसकी आवाज सुनना चाहे तो ध्यान देने से उसी प्रकार सुन सकता है, जिस प्रकार बहुत-सी आवाजों के बीच भी उत्सुक शिशु अपनी माँ की आवाज सुनकर पहचान लेता है।

अन्तरात्मा मनुष्य का मित्र है और सदैव ही उसका हित चाहता रहता है तो फिर वह उसके लिए प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता, लुका-छिपी क्यों रहता है ? यह प्रश्न किसी भी व्यक्ति के मस्तिष्क में उठ सकता है। इसका सीधा-सा उत्तर यही है कि आत्मा सदा-सर्वथा प्रत्यक्ष ही रहता है। किन्तु यह मनुष्य का ही दृष्टिदोष है कि वह उसे देख नहीं पाता। सूर्य सदैव प्रत्यक्ष है, अब उसके तथा दृष्टि के बीच में कोई व्यवधान आ जाये तो सूर्य

उसके लिए अप्रत्यक्ष ही है। मनुष्य तथा उसकी आत्मा के बीच मन की प्रधानता का परदा पड़ा हुआ है, जिसके कारण प्रत्यक्ष आत्मा भी मनुष्य के लिए अप्रत्यक्ष ही रहता है। यदि मनुष्य इस मन की प्रधानता की उपेक्षा कर सके तो निश्चय ही उसका अन्तरात्मा उसके लिए प्रकाश के समान ही प्रत्यक्ष हो जाये।

मन को प्रधानता देने वाले सदैव ही अपनी आत्मा से वंचित रहा करते हैं और उससे मिलने के लिए उत्सुक होने पर भी प्राप्त नहीं कर पाते। मन को प्रधानता देने वाले उसके निर्देश एवं संकेत से ही संचालित हुआ करते हैं। बहुत बार बहुत-से मनीषीजन अपने मन को साधन द्वारा शुद्ध एवं प्रबुद्ध भी कर लिया करते हैं। किन्तु तब तक भी वह शुद्ध और प्रबुद्ध मन विश्वस्त नहीं माना जा सकता, जब तक उसकी सत्ता आत्मा में अन्तर्हित नहीं हो जाती। बहुत बार तो संस्कृत एवं सुशिक्षित होकर मन और अधिक प्रबल हो जाता है, उसकी सत्ता इतनी बढ़ जाती है कि वह आत्मा को अनुशासित करने का प्रयत्न ही नहीं करता बल्कि अपने को मनुष्य का अन्तरात्मा ही घोषित करने लगता है। किन्तु आत्मा के प्रति उत्सुक मनीषीजन उसकी इस दुरभिसंधि को अच्छी तरह जानते हैं और कभी भी उसके छल में नहीं आते।

मन जितना अधिक प्रबल एवं प्रबुद्ध होता है उतना ही अधिक दुराग्रही हो जाता है। वह जो कुछ देखता, सुनता, अनुभव करता तथा स्वीकार करता है उसे ही सत्य मान लेता है और हठपूर्वक इस बात का प्रयत्न किया करता है कि जिस बात को उसने सत्य स्वीकार किया मनुष्य भी उसे सत्य माने तथा यथावत् स्वीकार कर ले। अपने आपेक्षिक ज्ञान को भी दुराग्रही मन सत्य सिद्ध करने के लिए ऐसे-ऐसे समर्थ तर्कों का अनुसन्धान कर लेता है कि जिनको सुनकर मनुष्य भ्रम में पड़ जाता है और उनको स्वीकार कर लेता है। किन्तु वास्तविकता यह होती है कि मन का अनुभूत ज्ञान कभी भी सत्य नहीं हो सकता। मन की सत्ता भौतिक है, सांसारिक है अस्तु उसका अनुभव किया हुआ जड़-जन्य ज्ञान सत्य नहीं हो सकता। मन की प्रेरक प्रबलता से बचने का एक ही उपाय है कि किसी भी स्थिति में उस पर विश्वास न किया जाये और प्रधानता मन से छीनकर अन्तरात्मा को दी जाये। प्रधानता के अभाव में उसका दुराग्रह कम हो जायेगा और मनुष्य की आत्मा अमर उभरने लगेगी।

मनुष्य का मन तब तक विश्वस्त नहीं हो सकता जब तक जन्म-जन्म के संस्कारों का जमा मैल उस पर से पूर्णरूपेण धुल नहीं जाता। निर्मल हो जाने पर मन की विशिष्टता नष्ट हो जाती है और वह शान्त एवं सुस्थिर

हो जाता है। मन की स्तब्धता स्थिति में अन्तरात्मा की आवाज वैसे ही सुनाई देने लगती है जैसे मेघों का गर्जन बन्द हो जाने पर पपीहे की आवाज सुनाई देने लगती है। मनुष्य के मन का वांछित संस्कार तभी सम्भव है, जब उसकी प्रधानता विनष्ट कर दी जाय और आत्मा को प्रधानता देकर उसके प्रति अधिकाधिक सजग, सचेत एवं समुत्सुक बन जाये।

स्तब्ध हो जाने पर मन की कोई स्वतन्त्र सत्ता ही नहीं रहती, स्तर के अनुसार या तो वह आत्मा के वशवर्ती हो जाता है अथवा सिन्धु के बिन्दु और प्रकाश के अन्धकार की तरह समाहित हो जाता है ? मन के स्तब्ध हो जाने का सबसे बड़ा लक्षण यह है कि मनुष्य की अन्तःप्रेरणाओं में कोई द्वन्द्व, कोई विरोध अथवा कोई संकल्प, विकल्प ही न रहे। उसके हृदय में केवल एक निर्द्वन्द्व, निर्विघ्न, निर्विरोध एवं निश्चित विचार उठे और जिसे क्रियात्मक रूप देने में मनुष्य के मस्तिष्क में उसके अशुभ होने का सन्देह ही न रहे।

मनुष्य के वैचारिक द्वन्द्व का कारण यही होता है कि अन्तरात्मा एवं मन की विरोधी सत्ताएँ बनी रहती हैं। निश्चय ही स्वाभाविक विरोध होने से अपने धर्मानुसार मन मनुष्य को गलत रास्ते पर प्रेरित करेगा और आत्मा अवश्य ही उसका विरोध करेगा। आत्मा मनुष्य को सत्य पर चलने के लिए कहेगा मन उसमें वितर्क करेगा। “किया जाये अथवा न किया जाये” का विरोधी द्वन्द्व आत्मा के साथ मन की सत्ता बनाये रखने के कारण ही उत्पन्न होता है।

जब तक मनुष्य अपनी आत्मा द्वारा पूरी तरह अनुशासित नहीं हो पाता, आत्मा की ओर से निषेधात्मक निर्देश आते ही रहते हैं। जब तक किसी भी संकल्प का निषेध होता रहे समझना चाहिये कि अभी मन की कुछ न कुछ स्वतंत्र सत्ता बनी हुई है और वह हमको गलत रास्ते पर प्रेरित करने का प्रयत्न कर रहा है, जिसका कि आत्मा विरोध कर रही है। विरोध तो मन भी करता है किन्तु मन के उस विरोध का भी एक सूक्ष्म विरोध होता रहता है, जो कि आत्मा की ओर से होता है और जिसे थोड़ा-सा ध्यान देने पर मनुष्य अनुभव कर सकता है।

आत्मा अमर है, शाश्वत है, सत्य है इसलिए उसका विनाश नहीं हो सकता और न उसकी स्थिति ही बदल सकती है। मन भौतिक है, अनक्षर है, उसी को मरना अथवा आत्मा के वशवर्ती होकर उसी में अपने को विसर्जित करना होगा। आत्मा की आवाज सुनने और उसका साक्षात्कार करने के लिए मनुष्य मन की प्रधानता का अपहरण करके आत्मा को दें। आत्मा के प्रति सजग,

सचेत व उत्सुक बनकर अपना भविष्य बनायेगा और शाश्वत सुख का अधिकारी बनेगा।

अपनी ही आत्मा सर्वत्र बिखरी पड़ी है

सुकरात कहते थे कि—सबसे बड़ा ज्ञान है—“अपने को पहचानना।” हम बहुत कुछ जानते हैं पर अपने बारे में अनजान ही बने हुए हैं। अपने स्वरूप और लक्ष्य को भूलकर सचमुच हम अज्ञानग्रस्त रहते हैं और भव-बन्धनों में बँधते हैं। हमें किस तरह सोचना, रहना और करना चाहिए यदि इस तथ्य को भली प्रकार हृदयंगम कर लें—तदनुरूप आचरण करें तो समझना चाहिए कि आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया और जीवन को सार्थक बनाने वाला मार्ग अपना लिया।

यूनान के स्तोइक दर्शन के अनुसार ही ब्रह्म एवं जगत दो भिन्न सत्ता नहीं हैं। यह संसार ब्रह्म का सजीव शरीर है। सृष्टि में संव्याप्त शक्ति एवं चेतना का बीज यह सर्वव्यापक ब्रह्म सत्ता ही है। स्तोइक दार्शनिक एपिकतेतु ने प्राणि मात्र में ईश्वर का प्रकृति अंश विद्यमान प्रतिपादित किया है और विश्व बन्धुत्व पर जोर देते हुए मानव मात्र को एक पिता की सन्तान भाई-भाई के रूप में माना है।

अद्वैतवाद के व्याख्याता आद्य शंकराचार्य ने वेदान्त की संक्षिप्त व्याख्या इन शब्दों में की है—मनुष्य को सर्वप्रथम अपने में ब्रह्म चेतना की अनुभूति करनी चाहिए, तदुपरान्त जड़ चेतन जगत में अपनी ही आत्मा का विस्तार अनुभव करना चाहिए। एक ही आत्मा को सबमें संव्याप्त की दृढ़ अनुभूति होने पर अपने पराये का भेद कहाँ सम्भव है ?

भौतिक जगत में आर्थिक, जातीय, सामाजिक राजनैतिक एवं बौद्धिक आधार पर ही समता एकता स्थापित करने के प्रयत्न चलते रहते हैं।

गीता कहती है—

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति ।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विज्ञानतः।

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥

‘जो सब जीवों में अपनी ही आत्मा देखता है तथा सब जीवों में अपने ही स्वरूप को देखता है, उसके भीतर किसी भी जीव के प्रति जुगुप्सा, निन्दा, द्वेष आदि का भाव ही नहीं रह पाता।’

‘समस्त जीवों में एक ही आत्मा समायी हुआ है, ऐसा जानकर जिस ज्ञानी पुरुष के लिए समस्त संसार

अपना ही स्वरूप आत्मस्वरूप हो जाता है, उस एक आत्मतत्त्व का अनुभव करने वाले को किसका भय, किसका मोह, किसके लिए शोक होगा ?

विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिनः ॥

‘अर्जुन ! जो व्यक्ति ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते, चाण्डाल आदि सभी जीवों में एक ही आत्मतत्त्व का दर्शन करता है, वही पण्डित है।’

अद्वैतवाद को दूसरे शब्दों में ‘एकत्ववाद’ ‘एक जीववाद’ कहा जा सकता है, भेदभाव मिटाकर एकता उत्पन्न करने की प्रेरणा वेदान्त सिद्धान्त की है। मनुष्य-मनुष्य के बीच जो ऊँच-नीच, नर-नारी, धनी-निर्धन, योग्य-अयोग्य आदि कारणों से जो अगणित भेद-विभेद फैले हुए हैं, उन्हें हटाने और सर्वजनीन एकता, समता स्थापित करने के लिए वेदान्त प्रतिपादित एकत्ववाद का—अद्वैतवाद का ही विस्तार करना पड़ेगा। उसमें ईश्वर और जीव के बीच का ही भेद-भाव नहीं मिटाया गया है। वरन् प्राणियों के बीच जो विभेद की दीवारें हैं, उन्हें भी गिराया गया है।

‘आत्मवत् सर्वभूतेषु’ की वेदान्त आस्था मनुष्य में दया, करुणा, स्नेह, सद्भाव, सौजन्य का उदय कर सकती है। नागरिकता, सामाजिकता का विकास ममता और आत्मीयता के साथ जुड़ा हुआ है। इस भावना का जितना अधिक विकास होगा उतनी ही व्यक्ति की महानता बढ़ेगी और समाज की शान्ति, समृद्धि एवं सुस्थिरता में अभिवृद्धि होगी। अपने पास आत्मीयता का पारस हो तो हर लोहे जैसी काली कल्टी और अल्प मूल्य वस्तु को, व्यक्ति को, सोने जैसा सुन्दर और बहुमूल्य स्तर का बनाया जा सकता है।

एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ स्नेह, सौजन्य का व्यवहार वहीं तक कर सकता है, जहाँ तक कि उसकी ममता का प्रकाश फैल रहा हो। “आत्मोपम्येन न सर्वत्र सम पश्यति योऽर्जुन” की मनःस्थिति वाला व्यक्ति ही दूसरों के दुःख में अपने दुःख की तरह दुःखी हो सकता है और दूसरों के सुख में अपने सुख की अनुभूति कर सकता है और दूसरों के सुख में अपने सुख की अनुभूति कर सकता है। ऐसी मनोभूमि में ही कोई व्यक्ति सच्चे अर्थों में लोकसेवी, परमार्थ परायण, उदार, सज्जन बन सकता है। संयम और त्याग की आकांक्षा ऐसी ही मनःस्थिति में बन पड़ेगी।

उपनिषद् ने कहा है—‘द्वितीया द्वै भयं भवति’ अर्थात्-दूसरे से ही भय होता है। संसार में—परमेश्वर से यदि अपनी आत्मीयता समाविष्ट कर ली जाय तो जैसे ही

परायापन मिटेगा वैसे ही ‘अभय’ का आनन्द मिलता बढ़ता चला जायेगा।

जीवन का सबसे बड़ा रस प्रेम है। विभिन्न व्यक्ति या पदार्थ तभी प्रिय लगते हैं, जब उनसे प्रेम होता है। उदासीनता या उपेक्षा जहाँ भी होगी वहाँ सूनेपन का, निरर्थकता का, अनुभव होगा, जिस वस्तु से भी आत्मीयता हट जायगी वह नीरस, निष्पाण लगने लगेगी। प्रिय न कोई पदार्थ है न व्यक्ति, अपना आपा ही सबको प्रिय है। वह जहाँ कहीं—जिस किसी पर भी प्रतिबिम्बित होता है, वहीं सुन्दर, सुखद और प्रिय लगने लगता है। यदि सर्वत्र प्रिय पात्रों से भरी-पूरी दुनिया दीखती हो तो उसका एक ही उपाय है कि आत्मीयता को, प्रेम भावना को अधिकाधिक व्यापक, विस्तृत किया जाय। यह आत्म-विस्तार न केवल वैयक्तिक आनन्दानुभूति अभिवर्धन की दृष्टि से वरन् लोकमंगल की, समाज व्यवस्था की दृष्टि से भी आवश्यक है। ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ का अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति, समृद्धि सिद्धान्त व्यक्तिगत प्रेम भावनाओं के विस्तार पर ही निर्भर है।

मनुष्य के विकास की सर्वोच्च अवस्था वह है, जहाँ “उसके सभी सन्देह तथा वासनाएँ सदैव के लिए नष्ट हो जाती हैं, हृदय की समस्त स्वार्थपूर्ण ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं तथा कारण, कार्य का, अनन्त क्रम उसके लिये समाप्त हो जाता है।”

मुण्डकोपनिषद् २।२।८ में ऋषि ने इसी स्थिति का दिग्दर्शन इस प्रकार कराया है।

प्रिच्छते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥

इस ब्रह्म चेतना से परिपूर्ण जीवन मुक्ति स्थिति को प्राप्त करने में अस्तित्व के अन्त का भय करना निरर्थक है, वस्तुतः वह तो पूर्ण अभय की स्थिति है। डर तो दूसरे से होता है, जहाँ केवल अपना ही आपा बिखरा पड़ा हो वहाँ भयभीत होने या आशंका करने की कोई गुंजाइश नहीं है।

आत्म-शक्ति का अकूत भण्डार

संसार की रचना छोटे-छोटे परमाणुओं से मिलकर हुई है। जड़ और चेतन परमाणुओं के विचित्र संयोग से ही यह संसार गतिमान हो रहा है। जड़ परमाणुओं की शोषण बीसवीं शताब्दी के विज्ञान की सबसे बड़ी देन है। कहते हैं जब इस परमाणु-शक्ति का पूर्णरूपेण उपयोग होने लगेगा, तब मनुष्य के लिए इस संसार में कुछ भी असंभव न रहेगा। वह स्वेच्छापूर्वक ग्रह-नक्षत्रों में ऐसे ही विचरण कर सकेगा जैसे इस पृथ्वी में एक गाँव से दूसरे

गाँव को चले जाते हैं। यह शक्ति कितनी बड़ी होगी इसका अनुमान लगाना भी कठिन है।

जिस परमाणु की शक्ति और महत्ता इतनी बढ़-चढ़कर है, वह इतनी सूक्ष्म वस्तु है कि उसे बड़ी से बड़ी खुरदबीन लगाकर भी देख पाना सम्भव न हुआ। केवल उसकी प्रतिक्रियाओं के आधार पर उसका नामांकन हुआ है। पदार्थ का सबसे छोटा से छोटा टुकड़ा जिसके और अधिक अंश न हो सकें वह 'अणु' कहलाता है। इस अणु में भी 'न्यूक्लियस' या केन्द्र पिण्ड और इसके किनारे अण्डाकार कक्षा में गति करता हुआ 'इलेक्ट्रॉन', स्थिर न्यूट्रॉन और प्रोट्रॉन' से मिलकर बना हुआ परमाणु होता है, जिसको हम देख भी नहीं सकते। उस एक परमाणु का जब विस्फोट होता है तो आइन्स्टीन के 'मास कनवर्जन' सिद्धान्त के अनुसार ३३ लाख किलो कैलोरी ताप पैदा होता है। यह शक्ति एक विशाल भू-भाग को जलाकर खाक कर देने में पूर्णतया समर्थ है। अभी तो उस पर अनेकों खोजें और भी होनी शेष हैं।

प्रत्येक पदार्थ इन छोटे-छोटे परमाणुओं से मिलकर बना है। मिट्टी के छोटे-छोटे कणों का वृहत्स्वरूप यह पृथ्वी है, समुद्र का आधार पानी की एक छोटी-सी बूँद है। विशाल वट-वृक्ष का निर्माण उसके बीज के एक बहुत छोटे अंश से होता है। परमाणु एक प्रकार से इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नक्शा है, जो कुछ शक्तियाँ इस सृष्टि में दिखाई देती हैं, वे सब बीज रूप में एक परमाणु में विद्यमान हैं। इस शक्ति की हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

जड़ परमाणु की इतनी सामर्थ्य देखकर आश्चर्य होता है पर चेतन-अणु की शक्ति उससे भी अधिक है। जड़ पदार्थ स्वाधीन नहीं होते। उनकी अपनी कोई इच्छा-शक्ति नहीं होती। किन्तु चेतना शक्ति स्वच्छन्द है। वह पदार्थ पर शासन करती है। शासित से शासक की शक्ति अधिक होना भी चाहिये। जड़ से चेतना का महत्त्व अधिक है, उसे जानकर ही मनुष्य के वास्तविक प्रयोजन की सिद्धि होती है।

आत्मा को विश्व-चेतना का परमाणु ही समझना चाहिये। पदार्थ के परमाणु की शक्ति का हिसाब लगा चुके हैं, उससे आत्म-शक्ति की तुलना कर सकते हैं।

संसार में जो कुछ चल रहा है, उसका सृष्टा परमात्मा अनन्त शक्तिशाली है। उसी का यह सब खेल चल रहा है इस विश्व में। परम शक्तिशाली परमात्मा की प्रत्येक शक्तियाँ हमारी अन्तरात्मा में उसी तरह समायी हुई हैं, जिस तरह वृक्ष की सम्भावना उसके बीज में होती है।

उपनिषद्कार के कथन से इस आत्म-शक्ति का परिचय मिलता है—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः ।

सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ॥

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः ।

साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥

अर्थात्—वह परमात्मा ही सम्पूर्ण प्राणियों में आत्मा रूप में विद्यमान है। वह सर्वव्यापक है, सर्वान्तर्यामी है, वही कर्मों का अधिष्ठाता है, सम्पूर्ण भूतों का निवास, सब का साक्षी, चेतन-स्वरूप और सबको जीवन देने वाला परम पवित्र और गुणातीत भी है।

सारे संसार में जो शक्ति परमात्मा की है। मनुष्य देह में वह सारी योग्यतायें जीवात्मा को उपलब्ध हैं। यह शक्तियाँ हमारी अपनी हैं किन्तु अज्ञान-वश हम उन्हें भूल चुके हैं। देह अर्थात् पदार्थ के सुखों में आसक्ति हो जाने के कारण आत्मा की इस सूक्ष्म-सत्ता की ओर हमारा ध्यान भी आकृष्ट नहीं होता। यही हमारे दुःखों का कारण है। आत्म-हीनता का कारण मनुष्य की आत्म-अज्ञानता ही है।

आत्म-ज्ञान के मूल में वह शक्ति वह सामर्थ्य और विशेषतायें सन्निहित हैं कि उन्हें यदि जाग्रत कर लिया जाय तो मनुष्य अपने आप में महामानव, देवत्व तथा परमात्मा की-सी शक्ति अनुभव कर सकता है। आत्मा वह कल्पतरु है, जिसकी छाया में बैठने से कोई भी कामना अपूर्ण नहीं रहती।

महापुरुषों के जीवन को फूल के समान खिला हुआ, सिंह की तरह अभय, सदगुणों से ओत-प्रोत देखते हैं तो स्वयं भी वैसा होने की प्रसुप्त आकांक्षा जागती है। आत्मा की यह आध्यात्मिक माँग है। उसे अपनी विशेषतायें प्राप्त किये बिना सुख नहीं होता। पारलौकिक कामनाओं में डूबे रहकर हम इस मूल आकांक्षा पर पर्दा डाले हुए पड़े रहते हैं। इससे किसी भी तरह जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती।

श्रेष्ठता मनुष्य की आत्मा है। इसलिए जहाँ कहीं भी उसे श्रेष्ठता के दर्शन मिलते हैं वही आकुलता पैदा होती है। मोर के पंखों की-सी सुन्दरता पाने को हर कोई लालायित रहता है। किसी कवि की परिपूर्ण कविता पढ़कर ऐसा लगता है कश ! हम भी ऐसा ही लिख पाते। पक्षियों को आकाश में उड़ता हुआ देखकर लगता है, अपनी इच्छानुसार स्वच्छन्द आकाश में विचरण करने में सामर्थ्य मिली होती तो कितना अच्छा होता। यह अभिलाषायें जागती तो हैं किन्तु यह विचार नहीं करते कि यह आकांक्षा आ कहाँ से रही है ? आत्म-केन्द्र की ओर आपकी रुचि जागृत हो तो आपको भी अपनी

महानता जगाने का श्रेय मिल सकता है, क्योंकि लौकिक पदार्थों में जो आकर्षण दिखाई देता है वह आत्मा के प्रभाव के कारण ही है। आत्मा की समीपता प्राप्त करने पर वह सारी विशेषतायें स्वतः मिल जाती हैं, जिनके लिए मनुष्य जीवन में इतनी सारी तड़पन मची रहती है। सत्य, प्रेम, धर्म, न्याय, शील, साहस, स्नेह, दृढ़ता-उत्साह, स्फूर्ति, विद्वता, योग्यता, त्याग, तप और अन्य नैतिक सदगुणों की चारित्रिक विशेषताओं के समाचार और दृश्य हमें रोमांचित करते हैं क्योंकि ये अपनी मूलभूत आवश्यकतायें हैं। इन्हीं का अभ्यास डालने से आत्म तत्त्व की अनुभूति होती है।

आत्म-ज्ञान का सम्पादन और आत्म-केन्द्र में स्थिर रहना मनुष्य मात्र का पहला और प्रधान कर्तव्य है। आत्मा का ज्ञान चरित्र के विकास से मिलता है। अपनी बुराइयों को छोड़कर सन्मार्ग की ओर चलने की प्रेरणा इसी से दी जाती है कि आत्मा का आभास मिलने लगे। आत्म-सिद्धि का एक मात्र उपाय पारमार्थिक भाव से जीवमात्र की सेवा करना है। इन सदगुणों का विकास न हुआ तो आत्मा की विभूतियाँ मलिनताओं में दबी हुई पड़ी रहेंगी।

बुराइयाँ आत्मा को प्रिय नहीं हैं। आप जब किसी चोर या डाकू को सजा पाते हुये देखते हैं तो आपको भय प्राप्त होता है, तुरन्त जी में आता है कि कहीं हम भी चोरी न करने लग जायें। कसाई को जानवर काटते देखकर, शिकारी को पक्षियों को मारने की हिंसात्मक क्रिया देखकर दुःख होता है। दुष्टता और रक्षसी प्रवृत्ति से दूर भागने का प्रयास सभी करते हैं। अनीति, अत्याचार, अन्याय, आतताईपन, द्वेष, त्रुटि, कुरूपता, चोरी, ठगी आदि के क्षण, संस्मरण तथा घटनायें बड़ी अप्रिय लगती हैं। यह अपनी मूल स्थिति के अनुरूप होता है। आत्मा कभी निकृष्ट होना नहीं चाहती क्योंकि उत्कृष्टता उसका सहज स्वभाव है। भय उसे इसलिए पसन्द नहीं है कि वह चिरअभय है। कुरूपता इसलिए अप्रिय है कि आत्मा का सौन्दर्य बड़ा मोहक है। यह स्थिति प्राप्त न होने तक छटपटाहट अवश्य रहेगी। असंतुष्ट होना यह व्यक्त करता है कि अभी तक आपको 'निजत्व' का ज्ञान नहीं मिला है।

देवत्व हमारी आवश्यकता है, दुष्प्रवृत्तियों से भय लगता है, पवित्रता हमें प्रिय है। अपवित्रता से दुःख मिलता है, निश्छलता से सुख मिलता है। छल और कपट के कारण जो संकीर्ण स्वभाव बनता है, उससे अपमान मिलता है। जो कुछ श्रेष्ठ है, सार्थक है वही आत्मा है और उसी को प्राप्त करना मनुष्य जीवन का

मूल उद्देश्य है। जब तक इस बात को समझ नहीं लेते, कोई भी समस्या हल नहीं होती।

श्रेष्ठता से सुख मिलता है यह सच है, इसे प्राप्त करना ही जीवन लक्ष्य है, इसे भी मानते हैं तो सन्मार्ग और सत्प्रवृत्तियों द्वारा अपने दायित्व को जगाना पड़ेगा। प्रत्येक गुण का अमृतकुण्ड हमारी आत्मा में है इसलिए अपने आत्मभाव का परिष्कार करना पड़ेगा। आत्मीयता की भावना उठती है तो उच्च प्रवृत्तियों का प्रकाश हमारे जीवन में लहराने लगता है।

यह जागृति प्रत्येक अवस्था में अभीष्ट है। यह संसार स्वप्न की तरह है। जिस प्रकार जागने पर स्वप्न मिथ्या प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार आत्मा का ज्ञान प्राप्त होने पर लौकिक कामनायें झूठी मालूम पड़ने लगती हैं। अभी जो अपनी शक्तियों को लौकिक-संघर्षों में अपव्यय करना पड़ता है, उसे यदि पतनकारी दुष्प्रवृत्तियों से हटाकर सदगुणों के रचनात्मक कार्यक्रमों में लगायें तो शक्तियों का सदुपयोग भी होता है और आत्मा के अकूत शक्ति भण्डार का अधिकार भी मिलने लगता है।

संसार में जो कुछ भी विभूतियाँ एवं श्रेष्ठतायें हैं उन सब में अपना आत्म-तत्त्व ही प्रवाहित हो रहा है। सत्, चित्, आनन्दस्वरूप आत्मा ही सम्पूर्ण श्रेष्ठता और सौन्दर्य का स्रोत है। जन्म और मरण का, निर्माण और विनाश का जो विश्वव्यापी खेल चल रहा है, वह विश्व-आत्मा की शक्ति का प्रतीक है। यह शक्ति पुंज हमारे भीतर भरा पड़ा है। जब तक हम उससे विमुख रहकर लौकिक कामनाओं में डूबे रहते हैं, तब तक बड़े दीन-दुःखी बने और दरिद्रता से घिरे रहते हैं, किन्तु जब पारमार्थिक जीवन की उमंग आती है तो हमारी शक्तियों का स्रोत भी उमड़ पड़ता है। तब हमारा जीवन विशाल आनन्दमय और शक्ति सम्पन्न बन जाता है।

परमाणु शक्ति से बढ़कर है आत्मसत्ता

पदार्थों को बड़ी मात्रा में एकत्रित करके अधिक वैभव, बल या सुख पाया जा सकता है, यह मान्यता अब बहुत पुरानी हो गई। मात्रा की अपेक्षा अब गुण को महत्व मिलने लगा है। जो उचित भी है। 'खोदा पहाड़ निकली चुहिया' वाली कहावत वहाँ लागू होती है जहाँ यह सोचा जाता है कि जो जितना बड़ा है, साधन सम्पन्न है, वह उतना ही सशक्त है। शक्ति का स्रोत हर छोटे पदार्थ, व्यक्ति एवं साधन में मौजूद है। यदि हम बारीकी से ढूँढ़ना, परखना और सही रीति से प्रयुक्त करने की विद्या जान जायें तो थोड़ी-सी सामग्री से ही प्रचुर शक्ति सम्पन्न बन सकते हैं। हमारे छोटे-छोटे व्यक्तित्व ही ऐसे महान कार्य सम्पन्न कर सकते हैं, जिन्हें देखकर दाँतों तले

उंगली दबानी पड़े। अणु से भी सूक्ष्म आत्म सत्ता की शक्ति सामर्थ्य असीम और अनन्त है।

अणु शक्ति इस तथ्य को प्रत्यक्ष रूप से प्रमाणित करती है। पदार्थ का छोटे से छोटा घटक 'अणु' कितना सशक्त है और वह कितने बड़े कार्य कर सकता है, इसे देखने, समझने पर इस सच्चाई को हृदयंगम करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि छोटा समझा जाने वाला व्यक्ति भी यदि अपने को पहचान सके तो जो कुछ वह है उतने का ही सही उपयोग कर सके तो वह कर सकता है, जिसके लिए सामान्य बुद्धि बहुत बड़े साधनों की आवश्यकता अनुभव करती है।

अब परमाणु पदार्थ की सबसे छोटी इकाई नहीं रहा, उसके भीतर ११० से भी अधिक सूक्ष्म ऐलिमेन्टरी पार्टिकल खोज निकाले गये हैं। इनको भी अंतिम इकाई नहीं कहा जा सकता। इनके भीतर जो सूक्ष्मता के अनुपात से अधिक रहस्यमय स्पंदन, स्फुरण भरे पड़े हैं उनका रहस्योद्घाटन होना अभी शेष है। अब विज्ञान अधिक गहराई में प्रवेश कर रहा है। पिछले दशकों के प्रतिपादन अब झुठलाये जा रहे हैं। यथा 'ईश्वर' की कल्पना का अस्तित्व पिछले दिनों प्रख्यात भौतिक विज्ञानी मोर्स तथा माइकेलसन ने सिद्ध किया था। शब्द-तरंगों के वहन करने वाले इस ईश्वर की खोज पर वैज्ञानिकद्वय फिड्ज गेराल्ड और लोरेन्टज को बहुत ख्याति मिली थी और उनकी शोध को बहुत उपयोगी मानकर सर्वत्र मान्यता मिली थी। पर अब उसके नकारात्मक प्रबल प्रतिपादन ने विज्ञान की अन्य मान्यताओं के भी खोखली होने की आशंका उत्पन्न कर दी है। आइन्स्टीन का सापेक्षवाद अब उतना उत्साहवर्धक नहीं रहा। उसमें बहुत-सी शंकाओं और त्रुटियों की संभावना व्यक्त की जा रही है। गैलिलियो, न्यूटन आदि की मान्यताएँ अब पुरातन पंथी वर्ग की कल्पनायें ठहराई जा रही हैं।

महर्षि कणाद ने अपने वैशेषिक दर्शन में अपने ढंग से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि यह संसार छोटे-छोटे कणों से मिलकर बना है। ईसा से ४०० वर्ष पूर्व यूनानी दार्शनिक देमोक्रेटस भी अणुवाद का प्रतिपादन करते थे। इससे पूर्व यह जगत पंच तत्वों का बना माना जाता था। अब यह पंच तत्वों वाली वर्गीकरण की मान्यता बहुत छोटी पड़ जाती है। पानी अपने आप में मूल सत्ता नहीं रहा। इसे हाइड्रोजन और ऑक्सीजन का सम्मिश्रण मात्र स्वीकार किया गया है। पुरानी मान्यताएँ अपने समय में बहुत सम्मानित थीं, पर वे अब त्रुटिपूर्ण ठहरा दी गई हैं।

न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त एक सीमा तक ही सही है। यदि कोई राकेट प्रकाश की गति से एक सेकण्ड में तीन लाख किलोमीटर उड़ने लगे तो वे गुरुत्वाकर्षण नियम गलत हो जायेंगे। रेडियम धातु द्वारा उत्पन्न होने वाले विकिरण की खोज होने तक यही मान्यता थी कि पदार्थ को ऊर्जा में नहीं बदला जा सकता है। दोनों का अस्तित्व स्वतंत्र है पर अब अणु विस्फोट के पश्चात् यह स्वीकार कर लिया गया है कि पदार्थ और ऊर्जा वस्तुतः एक ही सत्ता के दो रूप हैं और उन्हें आपस में बदला जा सकता है।

क्वान्टम और मैक्सवेल के सिद्धान्तों को आइन्स्टीन की नई खोजों ने बहुत पीछे छोड़ दिया है। चुम्बक सम्बन्धी पुरातन मान्यताओं में रदरफोर्ड ने नये तथ्य जोड़े। उन्होंने सिद्ध किया कि रेडियोधर्मी विकिरण का एक भाग एक दिशा में मुड़ता है तो उसे 'अल्फा' विपरीत दिशा में मोड़ता है तो 'बीटा' और बिल्कुल न मुड़ने वाला प्रवाह 'गामा' किरणों के रूप में निस्सृत होता है। यह तीनों प्रवाह अपने-अपने ढंग के अनौखे हैं। पुरानी मान्यता का परमाणु ठोस था। पीछे उसमें भी ढोल में पोल पाई गई है। आकाश में घूमने वाले पिण्डों की तरह परमाणु के गर्भ में कुछ प्राथमिक कण भ्रमण करते हैं फिर भी उसमें खाली जगह बहुत बच जाती है। यदि इलेक्ट्रॉन रहित परमाणुओं के नाभिकों को पूरी तरह सटाकर दबाया जा सके तो एक घन सेन्टीमीटर नाभिकीय द्रव का भार १० करोड़ टन के लगभग हो जायेगा। यूरेनियम, थोरियम, प्लूटोनियम जैसे रेडियो सक्रिय तत्वों की सामर्थ्य तो सर्वविदित ही है। धूल मिट्टी का अत्यन्त छोटा घटक होने के कारण उसका प्रत्यक्ष मूल्य नगण्य है, पर यदि उसका वैज्ञानिक ढंग से उपयोग किया जा सके तो शक्ति का असाधारण स्रोत करतलगत किया जा सकता है। नाभिक में प्रसुप्त शक्ति की खोज करने वाले प्रख्यात भौतिक विज्ञानी प्रो० एनारेको के शब्दों में—“हम छोटी-छोटी वस्तुओं में उलझे पड़े हैं। वस्तुतः संसार में महान शक्तियाँ भी हैं, जिनसे सम्बन्ध बनाकर हम अपने आप को शक्तिशाली तथा और अधिक प्रसन्न बना सकते हैं।”

अणु शक्ति की झाँकी तो कर ली गई है और उसकी क्षमता के सदुपयोग या दुरुपयोग की कला भी मानव बहुत कुछ जान गया है, किन्तु जड़ अणु शक्ति से भी उच्चकोटि की चेतन शक्ति मौजूद है। जड़ से चेतन की गरिमा सर्वविदित है। अणु से भी जीवाणु की क्षमता अत्यधिक प्रचण्ड होना स्वाभाविक है। अणु समूह का थोड़ा-सा यूरेनियम इतनी ऊर्जा शक्ति उत्पन्न कर सकता है, जिससे उत्पादित विद्युत सारे क्षेत्र को प्रकाशित कर सकती है। ईश्वर की अंशधारी आत्मचेतना युक्त मानवी

व्यक्तित्व की क्षमता कितनी महान हो सकती है कितनों को प्रकाश दे सकती है, इसका अनुमान लगाया जाना कुछ कठिन नहीं होना चाहिए।

वस्तुतः अणु शक्ति से भी बढ़चढ़कर मनुष्य की चेतना शक्ति है, जिसके अन्तर्गत मन, बुद्धि, चित्त, आत्मबोध को अन्तःकरण के रूप में जाना जाता है। लगन, तत्परता, एकाग्रता, तन्मयता, निष्ठा, दृढ़ता, हिम्मत जैसे मानसिक गुण ऐसे हैं, जिनसे आधार पर अणु शक्ति से भी करोड़ों गुनी अधिक प्रखर आत्मिक शक्ति को जगाया, बढ़ाया, रोक, सँभाला और प्रयुक्त किया जा सकता है।

अणु विज्ञान से बढ़कर आत्म विज्ञान है। जड़ अणु में जब इतनी शक्ति है तो जड़ की तुलना में चेतन का जो अनुपात है, उसी हिसाब से आत्म शक्ति की महत्ता होनी चाहिए। अणु विज्ञानी अपनी उपलब्धियों पर गर्वान्वित हैं और उस सामर्थ्य को युद्ध शस्त्र से लेकर बिजली की कमी को पूरा करने जैसी योजनाओं में प्रयुक्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं। आत्मविज्ञानियों का कर्तव्य है कि उसी लगन और तत्परता के साथ आत्म-शक्ति को महत्ता और उपयोगिता को इस प्रकार प्रमाणित करें कि सर्वसाधारण को उसकी गरिमा समझ सकना सम्भव हो सके।

परमाणु के नाभिक की शक्ति की जानकारी से वैज्ञानिक आश्चर्यचकित हैं। वे उसी का विस्फोट कराते और उस ऊर्जा को भले-बुरे प्रयोजनों में प्रयुक्त करते हैं। अध्यात्मवेत्ता योगियों की सूक्ष्म दृष्टि भी वैज्ञानिकों की तरह ही रही है। उन्होंने चेतन सत्ता के नाभिक की जानकारी कर ली है और उसमें सन्निहित ज्ञान-शक्ति, इच्छा-शक्ति और क्रिया-शक्ति की त्रिवेणी को केन्द्रित कर उससे उत्पन्न सामर्थ्य को रचनात्मक दिशा में प्रयुक्त कर सकने की विधि-व्यवस्था को अध्यात्म विज्ञान कहा है। पदार्थ का परमाणु हमें सूक्ष्म से सूक्ष्म सत्ता की शक्ति की अनुभूति तो कराता है, पर वह चेतन सत्ता की जानकारी नहीं देता। भारतीय तत्व वेत्ताओं ने भी ऐसे ही चेतन परमाणु और उसके विभु नाभिक का पता लगाया है। उसे चेतन सत्ता आत्मा या ईश्वरीय प्रकाश के रूप में माना है और उसकी विस्तृत खोज की है। उपलब्धियाँ दोनों की एक तरह की हैं। उपनिषद् उसे **अणोरणीयानमद्भुतो महीयानात्मा** (आत्मोपनिषद्-१५/१) अणु से अणु और महान से महान बताती है। योग वाशिष्ठ (५/१७/१५/५/७३/१०; ४/३३/५१) इसे मुक्ति दिलाने वाला, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, दृश्य पदार्थों से विलग रहने वाला तथा सब कुछ जानने वाला बताया गया है।

निःसन्देह इस जड़ जगत में सर्वत्र शक्ति का विपुल सागर भरा पड़ा है। पदार्थ के कण-कण में से ऊर्जा की प्रचण्ड लहरें उठ रही हैं। इस बिखराव को समेटने और सही ढंग से प्रयुक्त करने की विद्या जब मनुष्य के हाथ लग जायेगी तो फिर अशक्तिजन्य सभी कठिनाइयों का निवारण हो जायेगा। मनुष्य के हाथ में सामर्थ्य का अजस्र स्रोत होगा। इससे भी अधिक असंख्य गुना सामर्थ्य का स्वामी तब वह बनेगा जब चेतना जगत में संव्याप्त अनन्त और उल्लास से लेकर सिद्धियों, समृद्धियों और विभूतियों को वह हस्तगत कर लेगा। जीवन चेतना के प्रत्येक घटक में समाई सत्ता को देखना, परखना, समेटना और प्रयुक्त करने की कला में निष्णात बन जायेगा। इस स्थिति में पहुँचकर ही हम नर से नारायण रूप में विकसित हो सकेंगे। अपूर्णता से पीछा छुड़ाकर पूर्ण बन सकने का जीवन लक्ष्य प्राप्त कर सकेंगे।

मानवी सत्ता ब्रह्माण्डीय सत्ता की प्रतिकृति है

एक परमाणु सौर मण्डल की सूक्ष्म अनुकृति है। उसका मध्य भाग केन्द्रक हमारे सूर्य सौर मण्डल का प्रतिनिधित्व करता है। परमाणु के इस केन्द्रक सूर्य के चारों ओर इलेक्ट्रॉन नामक परमाणु उसी तरह घूमते रहते हैं, जिस तरह कि सौर मण्डल के ग्रह सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। सौर मण्डल के घेरे में जिस प्रकार बहुत बड़ा आकाश रहता है, उसी तरह परमाणु मण्डल के बीच भी पोल रहती है। विभिन्न सौर मण्डलों की स्थिति में एक-दूसरे से पर्याप्त भिन्नता होती है। इसी प्रकार परमाणुओं के वर्गों के भीतरी भाग में भारी भिन्नता रहती है, यद्यपि वे बाहर से एक जैसे दीखते हैं। यूरेनियायस्क के एक परमाणु में ९२ इलेक्ट्रॉन होते हैं। कार्बन में उनकी संख्या केवल छः होती है।

प्रत्येक मनुष्य एक ब्रह्माण्ड है। उसका आत्मा सूर्य है जिसके इर्द-गिर्द ग्रह-परमाणु भ्रमण करते रहते हैं। मानवी काया में भ्रमण करने वाले अणु जीवाणु एक विशेष प्रकार की विद्युत उत्पन्न करते हैं। उसी विद्युत से प्रभावित होकर मस्तिष्क से लेकर इन्द्रियाँ तथा अन्य अवयव अपना काम करते हैं। जड़ में चेतना उत्पन्न होने का माध्यम यही है। साधारणतया अणुओं में हलचल भर रहती है। चिन्तन तथा अनुभूति उनमें नहीं है। पर मानवी विद्युत जिसे 'प्राण' कहा जाता है, जड़ अणुओं के समूह में चेतना, विचारणा और अनुभूति उत्पन्न कर देती है और सजीव जीवन आरम्भ कर देती है। निर्जीव, अनुभूतिरहित जीवन तो पत्थर चट्टानों में भी रहता है।

पृथ्वी के ध्रुवों के आस-पास चुम्बकीय आधियाँ चलती रहती हैं। अस्थिर रंग-बिरंगा प्रकाश—आरोरा वेरियस छाया रहता है। यही ध्रुव स्थान अन्य ग्रहों के विकरण, प्रकाश एवं प्रभाव को पृथ्वी पर लाता है और यहाँ विशेषताओं को अन्य लोकों तक ले जाता है। इस ध्रुवीय क्षेत्र को ब्रह्माण्ड का सम्पर्क सूत्र कह सकते हैं। इन ध्रुव केन्द्रों के माध्यम से चलने वाले अर्न्तग्रहीय प्रत्यावर्तन के बलबूते ही धरती अपनी वर्तमान परिस्थितियों में बनी हुई है। इतना ही नहीं अन्य ग्रहों की वर्तमान परिस्थितियों में भी इस भू-ध्रुवों में चलने वाले अनवरत प्रत्यावर्तन का महान योगदान है। यदि किसी कारण यह आदान-प्रदान बन्द हो जाय तो पृथ्वी की स्थिति में इतना विषम परिवर्तन होगा कि तब यहाँ जीवन का अस्तित्व भी संदिग्ध हो जायेगा। साथ ही ग्रहों की कक्षाओं और स्थितियों में परिवर्तन होने से सौर-मण्डल की प्रस्तुत गतिविधियों में भारी पुलट-उलट हो जायेगी। भू-ध्रुवों के माध्यम से होने वाला शक्ति प्रत्यावर्तन ही अपने सौर-मण्डल की वर्तमान स्थिति बनाए हुए है। तनिक से क्षेत्र में होने वाला तनिक-सा क्रिया-कलाप पृथ्वी, सौर-मण्डल और उस सौर मण्डल के महा सूर्य के प्रदक्षिणा क्रम में कितना भारी योगदान कर रहा है। इस तथ्य पर जितनी गहराई से विचार किया जाय उतना ही अधिक मार्मिक रहस्योद्घाटन होता चला जाता है।

मनुष्य का अन्तःकरण भी ऐसा ही चेतना ध्रुव संस्थान है। उसके भीतर इच्छा शक्ति, भावना शक्ति, संकल्प शक्ति, आकर्षण शक्ति, विकर्षण शक्ति जैसा अगणित ज्ञात और अविज्ञात क्षमताएँ भरी पड़ी हैं, यदि उन्हें जागृत किया जा सके, उनका उपयोग करना सीखा जा सके तो इस विश्व-ब्रह्माण्ड में संव्याप्त समस्त विभूतियाँ करतलगत हो सकती हैं। मानवी अन्तःकरण सौरमण्डल को कार्य करने का पथ-प्रशस्त करते रहने वाले आकाश की तरह ही असीम है और उसमें जो कुछ भरा पड़ा है, उसे अन्तरिक्ष आकाश से कहीं अधिक शक्तिशाली समझा जाना चाहिए। दुर्भाग्य इतना ही है कि हम अपनी करतलगत सम्पदा से अपरिचित ही रहते रहे हैं।

मानवी चेतना में सन्निहित दिव्य शक्तियाँ

मानवी चेतना का मोटा उपभोग वस्तुओं के उपभोग और प्राणियों के साथ व्यवहार, कौशल के रूप में ही प्रतीत होता है, पर जैसे-जैसे रहस्यमय पर्दे उठते जा रहे हैं वैसे-वैसे सिद्ध होता जा रहा है कि इस स्थूल के भीतर कोई दिव्य चेतना लोक जगमगा रहा है और उसमें प्रवेश करके बहुमूल्य रत्न-राशि ढूँढ़ लाने की क्षमता भी

मनुष्य में विद्यमान है। मन को साधारणतः इच्छा, ज्ञान और क्रिया में संलग्न रखने वाली चेतना के रूप में जाना जाता रहा है, पर अब उसकी अतीन्द्रिय चेतना पर विश्वास किया जाने लगा है। ऐसे अगणित प्रमाण सामने आ रहे हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि हाइ-मॉस का सोचने, बोलने वाला पिण्ड जो कर सकता है उससे कहीं अधिक परिधि मानवी चेतना की है। उसमें अति मानवी असाधारण शक्तियाँ भी सन्निहित हैं।

अमेरिकन के टोरेन्टो टेलीविजन स्टूडियो में एक व्यक्ति की कल्पनाएँ मूर्तिमान रूप में किस प्रकार दिखाई देती हैं, इस रहस्य के प्रामाणिक चित्र लिये गये। ४९ वर्षीय ट्रक ड्राइवर थियोडर सेरिओस का दावा था कि उसके विचार इतने स्पष्ट होते हैं कि उन्हें शायद चित्र रूप में भी उतारा जा सके। उपरोक्त प्रयोगशाला में उसे प्रस्तुत किया गया। इसके लिए कम्पनी में बना सीलबन्द पोलारायड कैमरा खरीदा गया और फिल्म बनाने वाली कम्पनी से सीधे ही उसमें फिल्म भराई गई। यह कैमरा ऐसा है जो अपने आप ही एक मिनट में तैयार फोटो हाथ में रख देता है। यह प्रयोग उपकरण इसलिए ऐसी सावधानी के साथ प्रयुक्त किये गये कि किसी को यह सन्देह न रहे कि किसी व्यक्ति विशेष की ख्याति के लिए कोई बाजीगरी की गई है। उपकरणों की और फोटोग्राफी की शुद्धता के लिए कई साक्षी के साथ रखे गये।

थियोडर ने जो-जो कल्पनाएँ कीं मस्तिष्क के सामने लगे कैमरे ने ठीक उन्हीं चित्रों को उतार दिया। इस विशिष्टता की चर्चा जब अधिक हुई तो कोलरेडो विश्वविद्यालय ने उस व्यक्ति के सम्बन्ध में गहराई तक जाँच करने का निश्चय किया और इसके लिए डा० आइसनवद के नेतृत्व में एक विशेष विभाग ही बना दिया जो न केवल इस चमत्कार की वरन् उसके कारणों की भी जाँच करे। जाँच दो वर्ष तक चली और उसका निष्कर्ष इतना ही निकला कि उस व्यक्ति में निश्चित ही यह अद्भुत शक्ति है। उसके कारण नहीं जाने जा सके केवल कुछ सम्भावनाओं की चर्चा की गई।

यूरीगैलर को आरम्भ में बाजीगर माना जाता था पीछे उसने अपनी शक्तियों को वैज्ञानिक प्रयोग के लिए प्रस्तुत किया और उसके दावे सही निकले तो योरोप भर के पत्रों में उसकी चर्चा छपी। उसे प्रयोग प्रदर्शन के लिए योरोप भर में बुलाया गया। वह इच्छा शक्ति के चमत्कार दिखाता था। एक प्रदर्शन में उसने मजबूत अँगूठी के दो टुकड़े कर दिये। लंदन में उसने एक घड़ी को देखा जिसमें ४-४५ बज रहे थे उसने दूर बैठकर घड़ी की सुइयाँ उलटी घुमाई और ३-१२ पर रोकी।

उसने दूर रखे चम्मच को बीच में से मोड़कर दुहरा कर दिया। म्युनिख प्रदर्शन में तो उसने कमाल ही कर दिया सड़कों पर दौड़ती ट्रामों और मोटरों को उसने अपने संकल्प बल से रोक कर खड़ा कर दिया और वे जहाँ की तहाँ निस्तब्ध खड़ी रह गईं।

इंग्लैण्ड के वायुयान इंजीनियर जे० इन अपने सपनों को एक प्रकार की भविष्यवाणी सिद्ध करते रहे। उसने इस विलक्षणता की यथार्थता का पता लगाने के लिए उसे प्रस्तुत किया। उन्हें जो सपने आते थे, उन्हें वे दूसरों को नोट कराते, लोग कौतूहलपूर्वक प्रतीक्षा करते और अन्ततः एक समय ऐसा आ जाता जब स्वप्नों को एक तथ्य रूप में सिद्ध करने वाली घड़ी सामने आ पहुँचती।

रूस में अतीन्द्रिय घटनाओं को जालसाजी और किम्बदन्ती मात्र कहकर हँसी में उड़ाया जाता था, तीस वर्ष पूर्व प्रकाशिक रूसी शब्दकोश में चमत्कार की भरपूर खिल्ली उड़ाई गई थी। पर अब उस देश में ही सबसे अधिक दिलचस्पी इस दिशा में ली जा रही है और जो शोध निष्कर्ष सामने आ रहे हैं, उनसे वे लोग उसे तथ्य रूप में स्वीकार करने लगे हैं। वैज्ञानिकों की सभा में मेज पर रखी वस्तुओं को इच्छा शक्ति के आधार पर खींचने, धकेलने और इधर-उधर करने का सफल प्रदर्शन श्रीमती मिखाइलोबी ने किया तो सभी को यह मानने के लिए विवश होना पड़ा कि मनुष्य की संकल्प शक्ति में असामान्य बल हो सकता है।

‘टाइम’ पत्रिका ने रूस की उन तीन लड़कियों का विवरण विस्तारपूर्वक छापा था जो आँखों से पट्टी बाँधकर किसी भी वस्तु की आकृति और रंग बिना छुए बता देती थी। उनमें से एक को घोर अन्धेरे में पुस्तक पढ़कर सुना देने का कमाल हासिल है इनके नाम हैं नाडियालोवानोवा, रोशाकुले शोवा, लेनाडिलजनोवा। एक अन्य रूसी महिला नेग्या मिखेलोवना की यह विशेषता है कि वह अपने संकल्प बल से चलती घड़ियों की चाल रोक देती है, उनकी गति में तेजी या मन्दता उत्पन्न कर देती है। रूस में बाजीगरी करके जनता को भ्रम में डालने की गुंजायश नहीं है। वहाँ के जादूगरों को सबसे पहले यह घोषणा करनी पड़ती है कि यह सिर्फ धोखाधड़ी और हाथ की सफाई भर है। वहाँ अतीन्द्रिय शक्ति का दावा करने वाले को सर्वप्रथम वैज्ञानिकों की कठिन परीक्षा के लिए अपने को प्रस्तुत करना पड़ता है अन्यथा कठोर कारावास भुगतना पड़ता है।

परा मनोविज्ञान यह पता लगाने के लिए प्रयास कर रहा है कि अतीन्द्रिय क्षमता के स्रोत आखिर हैं कहाँ ?

संसार भर के प्रायः प्रत्येक देश में इस प्रकार की अगणित घटनाएँ अभी भी होती रहती हैं, जिनसे मनुष्य में असामान्य क्षमताओं के होने का प्रमाण मिलता है। भूतकाल की चमत्कारी घटनाओं को किम्बदन्ती कहा जा सकता है, पर जो सामने प्रत्यक्ष खड़ा है और अपनी सच्चाई को हर कसौटी पर कसे जाने का दावा प्रस्तुत कर रहा है, उसे झुठलाया कैसे जाय ? अस्तु मस्तिष्क दिशा की एक विशेष भाग पैरासाइकोलोजी के अन्तर्गत अतीन्द्रिय शक्ति सम्बन्धी खोज सभी विकसित देशों में बड़े उत्साह के साथ चल रही है।

मनःशास्त्री के महामनीषी डा० जोसेफ राइन ने सर्वप्रथम अतीन्द्रिय विज्ञान पर अपनी वैज्ञानिक आधार पर लिखी हुई पुस्तक ‘एक्ट्रा सेन्सरी पर्सेशन’ प्रकाशित कराई थी। तब से लेकर अब तक इस सन्दर्भ में शोधकार्य बहुत आगे चला गया है। डा० जोसेफ ने प्रायः ८५ हजार घटनाओं की साक्षियों का विश्लेषण करके कुछ निष्कर्ष निकाले थे। उन्होंने कहा है ‘बिना संचार साधनों की सहायता के एक मन दूसरे मन को प्रभावित कर सकता है। मन में पदार्थों को प्रभावित करने की सामर्थ्य मौजूद है। मनःशक्ति की लम्बी दौड़ में दूरी ताप, ऊँचाई, गड़राई अथवा अन्य कोई भौतिक कारण व्यवधान उत्पन्न नहीं करते।’

रूसी परा मनोविज्ञानवेत्ता एल० एल० वेसिलियेव ने एलेक्ट्रो मैग्नेटिज्म-एक्सरेज आदि के व्यवधान उत्पन्न करके यह पता लगाने का प्रयत्न किया कि मन की दूरबोध शक्ति में उनके कारण कोई अड़चन उत्पन्न होती है या नहीं। पर पाया यही गया कि जिनमें यह शक्ति मौजूद है उनका कार्य प्रत्येक वैज्ञानिक बाधा के बावजूद यथावत् चलता रहता है। मन की क्षमता को कोई भौतिक शक्ति प्रभावित नहीं करती। इससे वह यह सोचने को बाध्य होते हैं कि मन की शक्ति कोई अभौतिक शक्ति हो सकती है।

अब विज्ञान के मूर्धन्य क्षेत्रों में यह सोचा जा रहा है कि ज्ञात पदार्थ भौतिकी से आगे कोई अविज्ञात अतिभौतिकी होनी चाहिए। तरंग यांत्रिकी, ऊर्जाणुवाद सापेक्षवाद आदि सिद्धान्तों ने पदार्थ विज्ञान को असमंजस भरे एक ऐसे गतिरोध केन्द्र पर लाकर खड़ा कर दिया है जहाँ से आगे की बात कुछ सूझ नहीं पड़ रही है। विज्ञान की भूतकालीन सरल व्याख्याओं से अब कुछ काम नहीं चल रहे हैं। वे बाल-बोध के लिए गढ़ी गई लाल बुझक्कड़ की कहानियों जैसी रह गई हैं। खोज की गहराई ने विज्ञान को उन मूल तथ्यों तक पहुँचा दिया है जहाँ से आगे क्या हो सकता है इस सन्दर्भ में कुछ भी सोच सकना सम्भव नहीं हो रहा है। इस असमंजस ने

एक नई अतिभौतिकी के आविष्कार की सम्भावना को बहुत बल दिया है।

डॉ० जोसेफ राइन अपने ग्रन्थ 'दि रीच ऑफ माइण्ड' में इस सम्भावना के बीज छोड़े गये हैं कि— 'भविष्य में अध्यात्म को उच्चस्तरीय विज्ञान के रूप में प्रस्तुत करना पड़ेगा और एक नई अतिभौतिकी का जन्म होगा।'

पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति का आधार अब विज्ञानवेत्ताओं को एक विशिष्ट तत्व 'ग्रेविटी' के रूप में हाथ लगा है। यह ग्रेविटी प्रत्येक पिण्ड से निकलता है और उसकी आकर्षण शक्ति के स्तर की संरचना करता है। इसी के आधार पर एक ग्रह दूसरे को खींचता है और यह विश्व-ब्रह्माण्ड एक व्यवस्थित सम्बन्ध शृंखला में जकड़ा हुआ है।

ग्रह-नक्षत्रों की तरह ही मनुष्य में भी एक विशिष्ट विद्युत का प्रवाह निःसृत होता है। वह एक-दूसरे को बाँधता है। इस प्रकार समस्त मनुष्य जाति का प्रत्येक सदस्य एक-दूसरे के साथ अनजाने ही बँधा हुआ है और जिन धागों को इस बन्धन कार्य को करना पड़ता है वही एक से दूसरे तक उसकी सत्ता का भला-बुरा प्रभाव पहुँचाता है। एक व्यक्ति दूसरे के विचारों से अनायास ही परिचित और प्रभावित होता रहता है यह आगे की बात है कि वह प्रभाव कितना भारी-हल्का था और उसे किस कदर, किसने, स्वीकार या अस्वीकार किया।

आइन्स्टीन 'समग्र ज्ञान' को सामान्य ज्ञान की परिधि से आगे की बात मानते थे वे कहते थे जिज्ञासा, प्रशिक्षण, चिन्तन एवं अनुभव के आधार पर जो जाना जाता है उतना ही 'ज्ञान' नहीं है वरन् चेतना का एक विलक्षण स्तर भी है जिसे अन्तर्ज्ञान कहा जा सकता है। संसार के महान आविष्कार इस अन्तर्ज्ञान प्रज्ञा के सहारे ही मस्तिष्क पर उतरे हैं। जिन बातों का कोई आधार न था उनकी सूझ अचानक कहाँ से उतरी? इसका उत्तर सहज ही नहीं दिया जा सकता, क्योंकि उसका कोई संगत एवं व्यवस्थित कारण नहीं है। रहस्यमय अनुभूतियाँ जिस प्रज्ञा से प्रादुर्भूत होती हैं, उन्हें अति मानवीय मानना पड़ेगा।

अध्यात्म शास्त्र में जिन पाँच कोशों की विवेचना की वे भौतिक विज्ञान सम्मत भी हैं। अन्नमय कोश को 'मैटर'—प्राणमय कोश को 'सेल'—मनोमय कोश को 'माइण्ड', विज्ञानमय कोश को 'पर्सनालिटी' और आनन्दमय कोश को—'इण्ड्यूशन' कहा जा सकता है।

अब तक विज्ञान मैटर के बारे में ही कुछ कहने लायक जानकारी प्राप्त कर सका है। कुछ कदम 'सेल'

और 'माइण्ड' के बारे में भी बढ़े हैं। पर्सनालिटी और 'इण्ड्यूशन' के क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए अब वैज्ञानिकों को कष्टिबद्ध होना होगा। समुद्र जैसी अगाध सम्भावनाओं से युक्त मेरुदण्ड में छैः चक्रों के अति महत्वपूर्ण रत्न भाण्डागार अपने भीतर विद्यमान हैं; यदि उन्हें ढूँढ़ा, कुरेदा जा सके तो भौतिक जगत में जो कुछ है उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण विभूतियाँ करतलगत हो सकती हैं।

षट् चक्रों में से चार का अस्तित्व अब विज्ञान ने स्वीकार कर लिया है। मूलधार चक्र-पैल्विक प्लेक्सस, मणिपुर चक्र-सोलर प्लेक्सस, अनाहत चक्र-कार्डियल प्लेक्सस, विशुद्ध चक्र-फैरिजियल प्लेक्सस के रूप में जाने जा चुके हैं। इनके दृश्यमान स्वरूप की झाँकी कर लेने पर अब यह पता लगाया जाना शेष है कि शरीर संचालन की सामान्य भूमिका के अतिरिक्त इनकी अतीन्द्रिय गतिविधियाँ एवं क्षमताएँ क्या हो सकती हैं।

आशा की जानी चाहिए कि स्थूल जगत से जो चमत्कारी शक्तियाँ प्राप्त की जा सकी हैं उसकी तुलना में असंख्य गुनी दिव्य शक्तियाँ हमें अपनी अन्तःचेतना में सन्निहित मिलेंगी। उनका प्राप्त करना और सत्प्रयोजन के लिए प्रयुक्त कर सकना सम्भव हो सका तो निःसन्देह मनुष्य, नर-शरीरधारी होते हुए भी सच्चे अर्थों में देव-दिव्य सत्ता सम्पन्न सिद्ध होकर रहेगा।

चेतना को प्रखर बनायें और सामर्थ्यवान

बनें

भौतिकवादी जीवन दर्शन इसलिए भ्रान्त और अपूर्ण है कि वह पंच तत्त्वों से बने शरीर को ही सब कुछ समझता है और खाओ, पीओ, मौज करो की रीति-नीति को ही जीवन का मूल मन्त्र मानता है। जबकि असलियत कुछ और है। बाह्य दृष्टि हिम पर्वत के उसी भाग को देखती है, जो समुद्र की सतह से ऊपर रहता है। जब उसका तीन-चौथाई भाग समुद्र के पानी में रहता है। भौतिक विज्ञान इस बाह्य स्वरूप पर जो आँखों से देखा जाता और इन्द्रियों से अनुभव किया जाता है तक ही पहुँचकर रह जाता है। वास्तविकता तो इससे अधिक अदृश्य और इन्द्रियों के अनुभव से परे है।

मान्य किया जाय या न किया जाय इससे क्या होता है? सच्चाई तो सच्चाई है और जब वह सामने आती है तो भौतिक दृष्टि से सोचने वाले हक्के-बक्के रह जाते हैं और आत्मा के अस्तित्व को, चेतना की शक्ति को न समझने के कारण हतप्रभ हो उठते हैं। घटना ७ नवम्बर, १९१८ की है। तब पहला विश्व युद्ध चल रहा

३.१३९ चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन

था। एक फ्रॉन्सीसी लड़का टैड जिसका पिता फ्रॉन्स के मोर्चे पर लड़ रहा था, खेलते-खेलते एकदम चिल्लाया—मेरे पिता का दम घुट रहा है। वे एक तंग कोठरी में बन्द हो गये हैं और उन्हें कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा है। घर के लोग कुछ भी नहीं समझ पाये। टैड इतना कहकर बेहोश हो गया था। कुछ देर बेहोश रहने के बाद उसे होश आया और वह बोला—अब वे ठीक हो जायेंगे। घर के लोगों ने टैड के बेहोश होने से पूर्व कहे गये शब्दों और बाद में होश आने पर कहे शब्दों से इतना ही अन्दाज लगाया कि टैड ने अपने पिता के सम्बन्ध में कोई दुःस्वप्न देखा होगा। बात जहाँ की तहाँ समाप्त हो गयी।

प्रथम विश्वयुद्ध, जब समाप्त हुआ और टैड के पिता घर लौटे तो स्वजनों को उस दिन की घटना याद आ गयी, जब टैड के पिता ने बताया कि ७ नवम्बर को मैं मरते-मरते बचा। पूछा गया कि क्या बात हुई थी तो उन्होंने बताया कि मैं उस दिन एक गैस चैम्बर में फँस गया था, जिसमें मेरा दम घुटने लगा था। मुझे दिखायी देना भी बन्द हो गया था। तभी मैंने देखा कि टैड जैसा एक लड़का उस युद्ध की विभीषिका में न जाने कहाँ से आ पहुँचा और उसने चैम्बर का मुँह खोलकर, मुझे हाथ पकड़ कर बाहर खींचा। तभी मेरी यूनिट के सैनिकों की दृष्टि मुझ पर पड़ी और उन्होंने मुझे अस्पताल पहुँचाया। यह विवरण सुनकर ही घरवालों को उस दिन टैड के चीखने, बेहोश होने तथा होश में आने पर आश्चर्य ढंग से बात करने की घटना याद आयी।

इटली के एक पादरी अलफ्रेन्सेस लिगाडरी के साथ २१ सितम्बर, १९७४ को ऐसी ही घटना घटी। उस दिन वे ऐसी गहरी नींद में सोये कि जगाने की बहुत कोशिश करने के बाद भी न जगाये जा सके। यह भ्रम हुआ कि कहीं वे मर तो नहीं गये हैं। इस भ्रम की परीक्षा के लिए उनकी जाँच की गयी तो पता चला कि वे पूरी तरह जीवित हैं। कई घण्टों तक वे इसी स्थिति में रहे। उन्हें जब होश आया तो देखा कि आसपास लगभग सभी साथी सहयोगी खड़े हुए हैं। उन्होंने अपने साथियों से कहा—“मैं आपके एक बहुत ही दुःखद समाचार सुना रहा हूँ कि हमारे पूज्यनीय पोप का अभी-अभी देहान्त हो गया है।” साथियों ने कहा—“आप तो कई घण्टों से अचेत हैं, आपको कैसे यह मालूम हुआ ?”

लिगाडरी ने कहा—मैं इस देह को छोड़कर रोम गया हुआ था और अभी-अभी वहाँ से ही लौटा हूँ। उनके साथियों ने समझा कि वे कोई सपना देख कर उठे हैं और सपने में ही उन्होंने पोप की मृत्यु देखी होगी।

चार दिन बाद ही यह खबर लगी कि पोप का देहान्त हो गया है और वह उसी समय हुआ जबकि लिगाडरी अचेत थे तो उनके मित्र साथी चकित रह गये।

एक स्थान पर रहते हुए भी मनुष्य अपनी आत्मा की शक्ति द्वारा दूरवर्ती क्षेत्रों में सन्देश पहुँचा सकता है। उपरोक्त घटनाओं में जाने अनजाने सूक्ष्म शरीर ही सक्रिय रहा है। यदि सूक्ष्म शरीर की शक्ति को जाग्रत कर लिया जाय तो उससे जब चाहें तब मन चाहे करतब किये जा सकते हैं। १९२९ में अल्जीरिया में कैप्टन दुबो के साथ ऐसी ही घटना घटी, जिससे सूक्ष्म शरीर के अस्तित्व और उसकी शक्तिमत्ता का प्रमाण मिलता है। कैप्टन दुबो जब अल्जीरिया के एक छोटे से गाँव से कुछ रेगियों को देखकर लौट रहे थे, गाँव का मुखिया अब्दुल उन्हें धन्यवाद देने के लिए उनके साथ-साथ आया, बातों ही बातों में अब्दुल ने कैप्टन से सूक्ष्म शरीर के अनेक चमत्कारों का उल्लेख कर दिया। दुबो ने अब्दुल की बातों में कोई रुचि नहीं दिखाई और उल्टे इसे गप्पबाजी कहा। इस पर अब्दुल ने कहा कि मैं इसे प्रमाणित कर सकता हूँ। कैप्टन ने जब उसकी यह बात सुनकर भी अविश्वास से सिर हिलाया तो अब्दुल कुछ देर के लिए ध्यानस्थ हुआ और फिर आँखें खोलकर बोला—आप अपने पीछे मुड़कर देखिए। जैसे ही उन्होंने पीछे मुड़कर देखा तो उन्होंने दीवार पर एक ऐसी कलाकृति टँगी पायी जो उन्हें बहुत प्रिय थी और इस समय वहाँ से हजारों मील दूर पेरिस में उनके घर पर थी।

उसी दिन कैप्टन दुबो के पिता पियरे ने पेरिस की पुलिस में रिपोर्ट लिखाई कि उनके घर से १० लाख रुपये मूल्य की एक अद्वितीय कलाकृति चोरी चली गयी। पुलिस कमिश्नर पियरे के अच्छे मित्र थे, उन्होंने शिक्रयत मिलते ही अपने सर्वश्रेष्ठ गुप्तचर कलाकृति की खोज में लगा दिये। कई दिन तक लगातार खोज चली, पर कलाकृति की खोज न की जा सकी। जिस कमरे में कलाकृति टँगी थी, उसमें किसी के जबरन प्रवेश करने या उँगलियों के निशान नहीं मिले थे। पियरे ने इस कलाकृति की चोरी की खबर अपने पुत्र को भी दी। तब सारी बात जान कर कैप्टन दुबो, पुलिस कमिश्नर और अन्य अधिकारियों को भी बड़ा आश्चर्य हुआ।

इन घटनाओं के कारण जो अनेक देशों एवं अनेक लोगों के साथ घटी हैं, वैज्ञानिकों का ध्यान भी इस ओर जाने लगा है। विज्ञान भी यह सोचने के लिये विवश हुआ है कि क्या स्थूल शरीर से परे भी मनुष्य का कोई अस्तित्व है, जो उसके संदेशों को सुदूर क्षेत्रों में पहुँचाता है। तथा ऐसे-ऐसे काम कर डालता है, जो शरीर द्वारा ही किये जा सकते हैं। बिना किसी स्थूल माध्यम के एक

मनुष्य के विचारों और देशों को पहुँचाने की इस प्रक्रिया का नाम है, परामानसिक संचार (टैलीपैथी)। रूस के लेनिनग्राड विश्वविद्यालय में फिजियोलोजी विभाग के अध्यक्ष प्रो० लियोनिद वासिलियेव ने अभी कुछ समय पूर्व एक अनूठा प्रयोग किया है। स्मरणीय रहे रूस का शासनतंत्र धर्म, ईश्वर और आत्मतत्त्व की मान्यता को न केवल अनावश्यक मानता है वरन् उसे अप्रीम भी बताता है। फिर भी इस तरह की घटनाओं के कारण वास्तविकता की ओर उनका ध्यान गये बिना नहीं रहा। प्रो० वासिलियेव ने टैलीपैथी द्वारा कई मील दूर स्थित एक प्रयोगशाला में कार्यरत अनुसंधानकर्ताओं को सम्मोहित कर दिया और वे लोग जो प्रयोग कर रहे थे, उनसे वह प्रयोग छुड़वा कर किसी दूसरे प्रयोग में लगा दिया। अनुसंधानकर्ता वैज्ञानिक अनजाने में ही परवश से होकर वासिलियेव के सन्देशों का पालन करने लगे और उन्हें यह भान तक नहीं हुआ कि वे क्या कर रहे हैं? इस प्रयोग के द्वारा प्रो० वासिलियेव इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को केवल अपने संकल्पों के द्वारा ही प्रभावित कर सकता है और उसे अपना आज्ञानुवर्ती बना लेता है। इसके लिए न किसी भौतिक माध्यम की आवश्यकता होती है तथा न ही किसी और साधन की। यहाँ तक कि स्थान की दूरी भी इस प्रक्रिया में कोई अवरोध उत्पन्न नहीं करती।

स्थूल शरीर से परे मनुष्य के सूक्ष्म शरीर का अस्तित्व अब विज्ञान द्वारा भी प्रभावित होने लगा है। सन् १९६३ से अब तक रूस के वैज्ञानिकों ने इस दिशा में कई सफल प्रयोग किये हैं। वहाँ के एक इलेक्ट्रॉन विशेषज्ञ से मयोन किरिलियान ने अपनी वैज्ञानिक पत्नी वेलिण्टाना के सहयोग से फोटोग्राफी की एक विशिष्ट प्रविधि का आविष्कार किया। इस विधि द्वारा सजीव प्राणियों के आस-पास होने वाले सूक्ष्म कम्पनों और देह ऊर्जा के क्रिया-कलापों का छायांकन किया जा सकता है।

एक-दूसरे प्रयोग में किरिलियान दम्पति ने एक रुग्ण पत्नी की फिल्म खींची। इसमें प्रकाश कणों का वह वलय आरम्भ से जीर्ण था और वह शीघ्र ही समाप्त भी हो गया। अगले प्रयोग में किरिलियान दम्पति ने एक मनुष्य के पास से उसके शरीर के चित्र इसी विशेष विधि से लिये। ये छाया चित्र उसके शरीर के विभिन्न भागों के लिये गये थे। गर्दन, हृदय और उदर प्रदेश के अत्यन्त निकट से खींचे गये इन चित्रों में बहुत ही सूक्ष्म धब्बे दिखाई दिये, जो इन अंगों से विसर्जित होने वाली विद्युतीय ऊर्जा के द्योतक थे। इन छाया चित्रों से यह निष्कर्ष निकाला गया कि प्रत्येक प्राणी के दो शरीर होते हैं। पहला प्राकृतिक अथवा भौतिक जो आँखों से दिखाई देता

है। और दूसरा सूक्ष्म शरीर जिसकी सब विशेषतायें प्राकृतिक शरीर जैसी होती हैं, पर जो दिखाई नहीं देता। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यह सूक्ष्म शरीर ऐसे सूक्ष्म पदार्थों से बना होता है जिनके इलेक्ट्रॉन ठोस शरीर के इलेक्ट्रॉनों की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से चलायमान होते हैं। उनके अनुसार सूक्ष्म शरीर, भौतिक शरीर से अलग होकर कहीं भी विचरण कर सकता है।

रूस के अतिरिक्त अमेरिका में भी इस विषय पर काफी वैज्ञानिक खोजें चल रही हैं। न्यूयार्क राज्य विश्वविद्यालय ने परामानसिक तत्त्वों की खोज के लिए एक स्वतन्त्र विभाग भी खोला है जिसके अध्यक्ष डॉ० राबर्ट वेफर हैं। अधिकांश लोगों का दृष्टि केन्द्र चर्मरक्षुओं से दिखाई पड़ने वाला भौतिक शरीर है और वे इसी की सुख-सुविधा के लिए सारे जोड़-तोड़ बिठाते रहते हैं। सूक्ष्म शरीर के अस्तित्व और उसकी आवश्यकताओं पर भी ध्यान दिया जाय तो काफी उपयोगी सिद्ध हो सकता है। क्योंकि जब मनुष्य केवल इस शरीर को ही सुखी बनाने के लिए प्रयत्न नहीं करेगा वरन् वह अपनी आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील होगा। भारतीय अध्यात्म इस क्षेत्र में पहले ही काफी आगे बढ़ चुका है। कहना न होगा, प्राचीनकाल में जन-सामान्य का सदाचार निष्ठ और सत्यपरायण होना अध्यात्म के गहन आधारों पर अवलम्बित रहने का सुपरिणाम ही था।

अन्तर्सत्ता का प्रचण्ड सूक्ष्मीकरण पुरुषार्थ

सूक्ष्म जगत की संरचना वैज्ञानिकों के लिये उतनी ही बड़ी चुनौती है जितनी कि मानवी काया के अविज्ञात रहस्यमय क्रिया-कलाप। प्रसिद्ध खगोल वैज्ञानिक फ्रेड व्हाइल के अनुसार परमाणु जो पदार्थ की एक इकाई है, इतने सूक्ष्म होते हैं कि दस अरब परमाणुओं को यदि एक के ऊपर एक सीधी रेखा में खड़ा कर दिया जाय तब वे मनुष्य की ऊँचाई के बराबर होंगे। एक वयस्क मनुष्य में सात घात सत्ताइस शून्य जितने सूक्ष्मतम घटक परमाणु होते हैं एवं प्रत्येक के अन्दर एक नाभिक होता है जो परमाणु के अन्दर दस खरब वें भाग के बराबर स्थान घेरती है।

मानवी इन्द्रियाँ एक मर्यादा से बँधी हुई हैं। वे निश्चित लम्बाई व आवृत्ति की तरंगें देख या सुन पाती हैं। इससे सूक्ष्म स्थिति के लिये वैज्ञानिक सूक्ष्मदर्शी यन्त्रों का सहारा लेते हैं। इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप जैसे यन्त्रों के बावजूद अभी भी सूक्ष्मतम घटकों को देखा जा सकना सम्भव नहीं हुआ है। ये तथ्य बताते हैं कि सूक्ष्म जगत कितना विलक्षण, विराट एवं विचार जगत से परे है। योगी-ऋषि आत्मसत्ता का सूक्ष्मीकरण कर जीवन्मुक्त स्थिति

में ही इस परोक्ष सत्ता से, समष्टि चेतना से स्वयं को एकाकार कर लेते हैं एवं उन क्रिया-कलापों को देख पाने, उनमें भाग ले पाने में सक्षम हो पाते हैं जो भविष्य के गर्भ में विकास को पाने की स्थिति में होते हैं। इसी कारण उन्हें सूक्ष्म दृष्टा दृष्टि सम्पन्न महामानव कहा जाता है। ऐसी स्थिति में उनकी सत्ता बहुगुणित हो जाती है और अनेकानेक भूमिकाएँ एक ही समय में एक साथ निभा पाने में समर्थ हो पाती हैं।

सूक्ष्म की सामर्थ्य को चेतना के परिप्रेक्ष्य में समझने से पूर्व जड़ जगत में ही देखें तो विस्मित होकर रह जाना पड़ता है। रेत का छोटा-सा कण आँखों से देखने पर नगण्य मूल्य का होता है। लेकिन जब इसे अणु व परमाणु के रूप में विखण्डित कर लिया जाता है तो तुच्छ से घटक में महान शक्ति छिपी पाते हैं। यह इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि परमाणु ऊर्जा के दोहन में मात्र उसका एक लाखवाँ भाग प्रयुक्त होता है। जो शक्ति निस्सृत होती है, वह असीम होती है। इस सन्दर्भ में यूरेनियम धातु का उदाहरण महत्वपूर्ण है। रेडियो किरणें छोड़ने वाली यह बहुमूल्य धातु शोषण उपचार के उपरान्त बहुत शक्तिशाली बन जाती है। इस धातु का एक घन फुट टुकड़ा भार में लगभग आधा टन होता है। जब इसके परमाणुओं पर न्यूट्रॉन कणों की बौछार की जाती है तो नाभिकीय विखण्डन प्रक्रिया से शक्तिशाली ध्वंस करने में समर्थ परमाणु बम तैयार होता है। इस ऊर्जा का प्रयोग सारे भूमण्डल को नष्ट करने हेतु भी हो सकता है जबकि विधेयात्मक सुनियोजन पर इसकी एक पौण्ड मात्रा इतनी ऊर्जा पैदा कर सकती है जो ३० लाख पौण्ड कोयले को जलाने पर प्राप्त होती है।

मनुष्य की अन्तर्सत्ता की तुलना इस यूरेनियम धातु से की जा सकती है जिस पर ब्राह्मी सत्ता की किरणों की वर्षा होने पर वह सूक्ष्मीकृत, विखण्डित होती चली जाती है एवं विराट् शक्ति का पुंज बन जाती है। दृश्यमान पदार्थ व ऊर्जा का भेद मात्र अवस्था का ही भेद है। इन्द्रियातीत स्थिति में योग साधनाजन्य ऊर्जा दृश्यमान काया का ही परिवर्तित रूप है जो तेजस्, वर्चस् के रूप में बहुमूल्य निधि की भूमिका निभाती देखी जाती है। “अणोरणीयान महतो महीयान” का श्रुति वचन इसी तथ्य का साक्षी है कि लघुतम से घटक में महानतम सम्भावनाएँ छिपी पड़ी हैं। इसीलिये श्रुति में ऋषि कह बैठते हैं—

“यो सावसा पुरुषः सोऽहमस्मि”

अर्थात्-‘सूर्य में जो परम पुरुष है, वह मैं हूँ। सूर्य में अर्थात् ब्राह्मी चेतना के विराट् समुच्चय में जो

आध्यात्मिक तत्व है, वही मुझ में भी है। आध्यात्मिक दृष्टि से हम दोनों एक हैं, कहीं कोई भेद नहीं है।”

प्रसंग सूक्ष्मीकरण साधना का है। इस सन्दर्भ में मानवी काया का नहीं, चेतन सत्ता की गरिमा का महत्त्व है। जड़ पदार्थों पर लागू सूक्ष्मीकरण सिद्धान्त जब चेतना क्षेत्र में प्रयुक्त होता है तो उसकी चमत्कारी परिणतियाँ देखने में आती हैं। सुगठित अंग अथवा गौरवर्ण काया मनुष्य की महत्ता नहीं बढ़ाते, उसकी ज्ञान-गरिमा एवं भाव-सम्वेदना की प्रखरता ही उसे आत्मिक दृष्टि से ऊँचा उठाते हैं। ज्ञान को मस्तिष्क रूपी खरल में जितना घोंटा जाता है, साधना, स्वाध्याय-सत्संग द्वारा जितना प्रखर बनाया जाता है, उतना ही वह सूक्ष्मतम बनते हुए मस्तिष्क कोष्ठों में समाहित होता जाता व मनुष्य को प्रज्ञावान बनाता है। यही ज्ञान की पूँजी जन्म-जन्मान्तरे के लिये फिक्स्ड डिपॉजिट का काम करती है। आगामी जन्मों लोकोत्तर जीवन, वर्तमान जीवन में सूक्ष्म स्थिति में अनेकों महत्त्वपूर्ण कार्यों हेतु यही ज्ञान-निधि महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अल्पायु में विशेष प्रतिभा के जितने उदाहरण मिलते हैं, उनमें स्थूल मस्तिष्क की संरचना-विशिष्टता को नहीं, मन की सूक्ष्म परतों में निहित ज्ञान की पूर्व जन्मों में अर्जित सम्पदा को महत्ता दी जानी चाहिए। आइन्स्टीन, हाइजेन वर्ग, रवीन्द्रनाथ ठाकुर सी० वी० रमन, जगदीश चन्द्र बसु प्रभृति प्रतिभाशाली व्यक्तित्व एक जन्म की अकेले की नहीं, जन्म-जन्मान्तरे की ज्ञान साधना की उपज होते हैं। विधाता का नियम है कि वह पूर्वजन्मों की घटनाक्रमों की स्थूल मस्तिष्क को विस्मृति करा देता है। लेकिन अपवाद रूप में आग के शोलों के रूप में कुछ महापुरुषों में जब-जब मस्तिष्कीय भाण्डागार का अपवाद रूप में प्रस्फुटन होता है वहाँ भौतिकीविद् स्तम्भित होकर रह जाते हैं। वे स्थूल मस्तिष्क में उन विशेषताओं को ढूँढ़ते हैं जो वहाँ हैं ही नहीं, वे तो चेतना की गहन सूक्ष्म परतों में निहित होती हैं। जब खोजा ही गलत जाएगा, तो मिलेगा क्या ? सूक्ष्म चेतना के इस स्वरूप पर अनुसन्धान किए बिना मानवी विलक्षणताओं एवं सामर्थ्य के विस्तारों पर प्रकाश पड़ने वाला है नहीं ?

भाव-सम्वेदनाएँ आस्था केन्द्र के गहन अन्तराल से उद्भूत होती हैं। वे चेतना के सबसे गहरे घरातल से उपजी होने के कारण विचारणा से सूक्ष्मतम होती हैं। इनकी संरचना के विषय में वैज्ञानिक अनभिज्ञ हैं। किन्तु भावनाओं की प्रतिक्रिया को शरीर के क्रिया-कलापों एवं बहिरंग में अनायास ही देखा जा सकता है। भावना के रसायन शास्त्र को प्रतीक रूप में, कुछ अन्तःस्त्रावी रसों, न्यूरो ह्यूमरल स्त्रावों के रूप में रक्त में, नर्व-सिनेप्सों में उभरा देखा जा सकता है। प्रसन्नता एवं दुःख के आँसुओं

के स्वरूप को सीटी स्फैन, इकोएनसेफेलो ग्राफी, न्यूरोकेमिस्ट्री, न्यूरोहिस्टो पैथालॉजी से नहीं जाना जा सकता। यौन उन्माद-कामोत्तेजना एवं नारी का माता के रूप में, ममतामय रूप कहाँ व कैसे विभाजन रेखा को पार करता है, इसे स्नायु रसायन शास्त्र नहीं समझा सकता। सूक्ष्म की महत्ता की यह झलक-झाँकी भर है, जिसे अनुभूत भर किया जा सकता है पर चर्म-चक्षुओं से देखा नहीं जा सकता।

सूक्ष्मीकरण अध्यात्म विद्या की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे ऋषि-मुनिगण समय-समय पर अपनाते रहे हैं। इसे अन्तर्मुखी साधना कहा जा सकता है जो युग समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में समष्टि चेतना को मथने के लिये सम्पादित की जाती है। यह साधना रई की भूमिका निभाती है जो महाकाल के इशारे पर युग ऋषियों द्वारा सम्पन्न की जाती है। प्रत्यक्ष में तो कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता लेकिन इससे परोक्ष वातावरण बनता है एवं परमाणु विखण्डन की पूर्व भूमिका बनती है। चेतना के समुद्र का यह मन्थन नियन्त्रा की विधि-व्यवस्था का ही एक अंग है, जिसे सम्पन्न करने ऋषि आत्माएँ स्वयं आगे आती हैं।

आज की विषम परिस्थितियों में उस प्रचण्ड तप पुरुषार्थ की अप्रतिम भूमिका है। चारों ओर अनास्था के दावानल में जलती मानव जाति को त्राण दिलाने हेतु ऋषि परम्परा के नूतन संस्करण के रूप में युग ऋषि का जो साधना क्रम चल रहा है वह ऐसी ही प्रक्रिया का एक अंग है। इसमें सहभागी बनने हेतु जन्मी जाग्रतात्माएँ जो भूमिकाएँ निभाएँगी, वह समय के दृश्य पटल पर शीघ्र ही परिलक्षित होगा।

मानवी सत्ता -हर दृष्टि से अनुपम,

अदभुत एवं आश्चर्यजनक

बाजीगर कभी-कभी ऐसे अनौखे खेल दिखाते हैं कि बच्चे तो क्या, बड़े-बड़े भी चकित रह जाते हैं और उन रहस्यों एवं करामातों के सम्बन्ध में हतप्रभ होकर रह जाते हैं ? कि यह सब किस आधार पर, क्यों कर प्रदर्शित किया गया।

भगवान की कलाकृतियाँ सदा आँखों के आगे गुजरती रहती हैं इसलिए वे एक प्रकार से अभ्यास में सम्मिलित हो जाती हैं और साधारण एवं स्वाभाविक लगती हैं। पर गम्भीरतापूर्वक उन्हें देखा जाय तो प्रतीत होगा कि यहाँ सब कुछ आश्चर्य ही आश्चर्य है। आसमान, सूरज, चाँद, सितारे, बादलों के घटाटोप उनका बरसना और कड़कना लगता है कि यह किसी बड़े शक्तिशाली एवं असाधारण बुद्धि वाले का कौशल है।

धरती पर ऊँचे पर्वत और नीचे समुद्र अपनी अनौखी छटा दिखाते हैं। बीच-बीच में जलाशय, घने जंगल, लम्बे रेगिस्तान और नदियों का प्रवाह देखकर चकित रह जाना पड़ता है कि आखिर यह सब कैसे सम्भव हो सका। इस भिन्नता भरी संरचना का निर्माण किन हाथों से किन उपकरणों के सहारे बन पड़ा।

प्राणियों की आकृति और प्रकृति और भी हैरत भरी है। मिट्टी में रहकर वनस्पति उत्पादन में सहायता करने वाले अदृश्य सूक्ष्म, जीवी, पानी में रहने वाले अदृश्य कीटाणु, झींगुर, टिड्डी से लेकर गरुड़ जैसे पक्षी और हाथी, व्हेल जैसे प्राणियों का चित्र-विचित्र निर्माण ही नहीं, आहार-विहार के साधन भी इस प्रकार बनाये गये हैं कि वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति और कठिनाइयों का निराकरण आसानी से कर सकें।

इसके उपरान्त आता है, सर्वोच्च श्रेणी का प्राणी मनुष्य। उसकी शारीरिक संरचना इतनी सूक्ष्म, इतनी विचित्र और इतनी अदभुत है कि देखकर दंग रह जाना पड़ता है कि समझ में नहीं आता कि सागर को गागर में किस तरह भरा गया। ब्रह्माण्ड के सुविस्तृत घटकों की इस छोटी-सी काया में किस प्रकार समाविष्ट किया गया। किस प्रकार विशाल ब्रह्माण्ड की छोटी किन्तु समग्र इकाई के रूप में इस काय-कलेवर के कण-कण में अनौखापन भरा गया यह देखते ही बनता है।

इतना ही नहीं कि सृष्टि ने अपनी निज की सत्ता और विलक्षणता भी मनुष्य को उत्तराधिकारी युवराज के रूप में प्रदान की है। परन्तु इतनी सतर्कता भी रखी है कि कहीं इसका अत्यधिक दुरुपयोग न होने लगे। इसलिए विभूतियों को इतनी कुशलता के साथ छिपाया है कि साधारणों को उनका आभास तक न मिले किन्तु अन्तर्मुखी हो गई। पनडुब्बों की तरह गहरे उतर सकें तो बहुमूल्य मणि-मुक्तक टोकरे भर-भरकर समेट सकें।

मनुष्य प्रत्यक्षतः गया-गुजरा प्राणी है। वह न जल में डूबा रह सकता है, न आसमान में पक्षियों की तरह उड़ सकता है। बन्दर की तरह वह पेड़ पर भी नहीं चढ़ सकता। प्रतिद्वन्द्विता में छोटे से रोग-वायरस ही उसका कचूर निकाल सकते हैं। हिरन की तरह, छलाँग मारना और घोड़े की तरह दौड़ना तो उसके वश की बात है ही नहीं। टक्कर में असंख्य जीव-जन्तु ऐसे हैं जो उसे देखते-देखते धराशायी कर सकते हैं। इतने पर भी वह सृष्टि का मुक्त मणि है। अपने पराक्रम के बलबूते नहीं, मिले हुए दिव्य अनुदानों के आधार पर। शरीर की संरचना ही देखिए। हाथों का इतनी जगह से इस प्रकार मुड़ना और इतनी उँगलियों का होना ऐसी विलक्षणता है

जैसी अन्य किसी प्राणी में नहीं मिल सकती। शरीर को सीधा होकर चलने में मेरुदण्ड की आर्वेज ऑफ फुट की जो समर्थता है, उसकी तुलना में कोई प्राणी नहीं ठहरता। सामान्य संरचना की तुलना में कितने ऊँचे स्तर के कौशल वह दिखा सकता है इसका प्रत्यक्ष दर्शन ओलम्पिक खेलों और सघे हुए सरकस खिलाड़ियों के करतब देखकर जाना जा सकता है कि इस क्राया को कितना साधा और कितना समुन्नत बनाया जा सकता है।

एक कदम और आगे बढ़ें तो उसका कौशल वैज्ञानिकों के प्रकृति के गहरे परतों को खोलकर एक से एक बढ़कर आविष्कार करने की कृतियों में देखा जा सकता है। सृष्टि के अन्य प्राणी जहाँ जलती आग को देखकर मुसीबत मानते हैं और देखते ही भाग खड़े होते हैं वहाँ मनुष्य है जो मृत्यु की सहेली बिजली को घरेलू सेविका की तरह काम करते रहने और दिन-रात में कभी छुट्टी न माँगने पर विवश करता है। देश-देशान्तरों के मध्यवर्ती दूरी को समाप्त करके रख देने वाले टेलीफोन, टेलेक्स, रेडियो, टेलीविजन, प्रक्षेपणास्त्र, वायुयान आदि साधनों के माध्यम से मीलों की लम्बाई वाली दूरी का कोई अस्तित्व नहीं रहा। वर्षों में हो सकने वाला कार्य मिनटों और सैकण्डों में पूरा किया जा सकता है।

शल्य क्रिया ने यह सम्भव कर दिया है कि गोलियों से बिंधे हुए व्यक्ति भी बचाये जा सकते हैं। अंगों का प्रत्यारोपण हो सकता है। अपंगों को कार्य कर सकने योग्य बनाने के लिए अनेकों उपकरण बन चुके हैं। यह चिकित्सा क्षेत्र की करामात है। महादैत्यों और विश्वकर्माओं को चुनौती देने वाले विशालकाय कल-कारखाने मनुष्य की प्रतिभा से ही खड़े किये गये हैं। पूर्वकाल में देवलोक में इन्द्र के पास एक वज्र था। अब अणु बमों और हाइड्रोजन बमों के रूप में ऐसे हजारों वज्र बनाकर अपनी तिजोरियों में बन्द कर रखे हैं। कभी तान्त्रिक सम्मोहक स्त्री का प्रयोग करके जीवितों को मृतकवत् बना देते थे आज उस कार्य को क्लोरोफार्म, पैथीडीन आदि अनेकों रसायन बाजार में उपलब्ध हैं। सोमरस पीकर कभी देवता अलौकिक अनुभूतियों का रसास्वादन करते थे। अब हीरोइन, हशीश, चरस की इतनी किस्में चल पड़ी हैं जो सेवन-कर्ता को किसी विचित्र लोक में पहुँचा देती हैं।

लेखन और भाषण उसकी विलक्षण उपलब्धि है। तत्वज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश करके उसने धर्म, अध्यात्म, मनोविज्ञान ही नहीं गढ़ा है वरन् ईश्वर को भी अपनी मनमानी आकृति एवं प्रकृति का गढ़ा है। यह ठीक है कि ईश्वर ने मनुष्य को बनाया है पर उससे भी अधिक सत्य

है कि ईश्वर को मनुष्य ने ही गढ़ा है। सृष्टि के असंख्य प्राणियों को उसकी सत्ता के सम्बन्ध में ज्ञान तक नहीं है।

अन्तरिक्ष को उसने धरती के समान अपना कार्यक्षेत्र बना लिया है। देवता समझे जाने वाले चन्द्रमा का कोना-कोना छान डालने वाले और उसे सिर्फ एक घूमता हुआ मृत्तिका पिण्ड सिद्ध करने वाला मनुष्य ही है। सौरमण्डल की जामा तलाशी उसने ले ली है और इसके आगे ब्रह्माण्ड की टोह लेने का उसका हौसला देखने ही योग्य है। प्रकृति के बहुत कम रहस्य उसकी जानकारी से बाहर रह पाये हैं। लैसर किरणों जैसी शक्तियाँ उसने हस्तगत कर ली हैं। और वह दिन दूर नहीं जब वह प्राणियों का मुकुट मणि ही नहीं प्रकृति का अधिष्ठाता भी बन सकेगा।

कभी दैत्य, देवताओं और अवतारों को दिव्य सत्ताओं द्वारा शक्तियाँ हस्तगत करनी पड़ती हैं और इसके लिए प्रचण्ड तप का आश्रय लेना पड़ता था। आज अस्त्रों और कुटिलताओं, उद्दण्डताओं के सहारे मनुष्य ने भूतकालीन दैत्यों की तुलना में अपने को वरिष्ठ ही सिद्ध करके दिखा दिया है। इतिहास के विगत दिनों में ही ऐसे दैत्य उत्पन्न हुए हैं जिन्होंने अपनी सनकें पूरी करने के लिए लाखों-करोड़ों को अपने दाँतों से पीस डाला, उनके आतंक और कृत्यों को देखकर रावण, कुम्भकरण जैसे भी पराभूत होकर एक कोने में बैठ सकते हैं।

प्रश्न देवताओं और अवतारों का है। लगता है मनुष्य को वह भूमिका निभाने में देर लगेगी किन्तु बुद्धों, गौंधियों की परम्परा निकट भविष्य में कार्यान्वित होने जा रही है तब मनुष्य ही दृश्यमान देवताओं की तरह सर्वसाधारण के परिचय क्षेत्र में होगा। उन्हीं में से कुछ विश्व को काया-कल्प कर सकने में समर्थ अवतार भी हो सकते हैं।

आदिमकाल के अनगढ़ और आज के सुविकसित मनुष्य में जमीन-आसमान जितना अन्तर है। कभी देवता चूहे और हंस की सवारी करते थे अब मोटर और वायुयान अपेक्षाकृत अधिक सशक्त वाहन हैं। सरस्वती ने आदमी की आधीनता स्वीकार कर ली है। प्रेस और प्रकाशन होते ही ज्ञान की देवी सरस्वती को पेन्शन देकर मनुष्य ने उस पद को अपने आधिपत्य में ले लिया है। विचारों के विस्तार के स्वामी गणेश अब घुड़-दौड़ में रेडियो, टेलीविजन में पीछे रह गये हैं।

यह सब क्या है? यह मनुष्य के रहस्यमय मस्तिष्क के प्रायः सोलहवें भाग की करामात है। परामनोविज्ञान ने पता लगाया है कि अतीन्द्रिय क्षमताओं के भंडारों में खोपड़ी में कैद लिबलिवा पदार्थ भरा पड़ा है। अतीन्द्रिय

क्षमतायें मात्र ऋषियों को ही उपलब्ध हों ऐसी बात नहीं। अनेकों उस सम्पदा को लेकर जन्म के आरम्भ से ही आते हैं और भविष्य कथन से लेकर अदृश्य दर्शन के ऐसे विवरण बताते हैं जिन्हें देखते हुए वह अविश्वास उठ गया जो मनुष्य की सीमित शक्ति से प्रतिबद्ध मानता था।

यह प्रतिपादन ऋषियों और शास्त्रकारों का ही नहीं कि मनुष्य की काया एक सर्वांगपूर्ण प्रयोगशाला है। उस अभिमत से भौतिक विज्ञानी और तत्वज्ञानी भी सहमत हो गये हैं। संसार में अनेकों प्रयोगशालाएँ हैं जो आविष्कारों और चमत्कारों का सृजन करती हैं। पर उन सबका एक स्थान पर समन्वय कहीं देखना हो तो उसे मानवी कार्य की अदृश्य परतों को उधाड़कर देखा जा सकता है कि मनुष्य कितना सुसम्पन्न है। तत्वज्ञान के क्षेत्र में वह उतना ही सुसंस्कृत भी है जितनी कि ऋषियों और देवताओं के सम्बन्ध में मान्यता है। सामर्थ्यों की कमी नहीं पर भूल एक ही होती चली आ रही है कि हृदय को विशाल एवं उदार न बनाया जा सका। उपलब्धियों की संकीर्ण स्वार्थपरता के लिए प्रयुक्त किया गया और यह भुला दिया कि क्रिया की प्रतिक्रिया भी होती है—और दुष्कृत्यों का दुष्परिणाम भी होता है। कदाचित् आस्तिकता का प्रकाश उसे उपलब्ध हो सका होता तो इतना सामर्थ्यवान होने पर उपलब्ध क्षमताओं का सदुपयोग कर सकने पर स्वयं भी धन्य बनता और इस धरातल के वातावरण को स्वर्गोपम बना देता।

एक समय ऐसा भी रहा है कि कुछ अधिनायकों और आतंकवादियों को छोड़कर साधारण मनुष्य यह सोचता रहा है कि वह तुच्छ, नगण्य एवं भाग्य श्रृंखला में बँधा हुआ है। पर अब विज्ञान ने उन मान्यताओं को बदल दिया और महर्षि व्यास के युधिष्ठिर के कान में कहे हुए वाक्य कि 'मैं एक रहस्य बताता हूँ, मनुष्य से श्रेष्ठ और कहीं कुछ नहीं है।' इन्हीं शब्दों को अब विज्ञान ने ढिंढोरा पीटते हुए सिद्ध कर दिया है। मनुष्य की अद्यावधि प्रगति आश्चर्यजनक हुई है किन्तु उसकी संरचना को देखते हुए सम्भावनाएँ अत्यधिक ही नहीं असीम भी हैं।

आकाश में जब-तब बिजली कौंध जाने से यह अनुमान लगता है कि अनन्त आकाश में असीम विद्युत भण्डार भरा पड़ा है। इसी प्रकार मनुष्यों में से कितने ही जब अपने कला-कौशल और प्रभावी व्यक्तित्व का परिचय देते हैं तो पता चलता है कि जो भूतकाल में हो सका वह भविष्य में भी हो सकता है। जो एक कर सका उसे दूसरा भी कर सकता है। कारण स्पष्ट है कि जिस प्रकार प्रकृति की परत खुलने पर उसके अन्तराल में असीम

शक्ति का भण्डार भरा दीखता है उसी प्रकार मनुष्य की शारीरिक और मानसिक संरचना को देखते हुए यह सहज विश्वास है कि जो प्रसुप्त है उसे जगाया जा सके तो हर मनुष्य महामानव बन सकता है और दैत्य या देव में से किसी की भी भूमिका निभा सकता है। वह सीमित दीखते हुए भी असंख्यों सम्भावनाओं और क्षमताओं से भरा-पूरा है।

आत्मिकी के प्रतिपादन आरम्भ से ही यह रहे हैं कि समस्त दैवी शक्तियाँ और भौतिक सम्पदाएँ मनुष्य के अन्तराल में विद्यमान हैं। पर उनका प्रत्यक्षीकरण या उपयोग करने के लिए आत्म-परिष्कार का प्रयत्न करने की आवश्यकता है। योग और तप द्वारा, आत्मशोधन द्वारा इसी की पूर्ति ऋषि युग में होती है और वे अपने को ऋद्धि सिद्धियों का भण्डार सिद्ध करते रहे हैं। देवताओं की भूमिका स्वयं निभा सकने के प्रमाण प्रस्तुत करते रहे हैं। अब विज्ञान ने भी उसी स्वर में स्वर मिलाया है और व्यक्ति के शारीरिक सूक्ष्म संरचना और मस्तिष्क की विलक्षणता को देखते हुए यह कहा वह अद्भुत है, अनुपम है, आश्चर्य है। कदाचित् हम अपनी इस वस्तुस्थिति को पहचाने और सक्षम बनाने में समर्थ हो सकें तो उतना आगे बढ़ा जा सकता है जिसकी कि आज की परिस्थितियों में तो कल्पना कर सकना भी कठिन है।

अन्दर छिपा वैभव का जखीरा

मनुष्य के मस्तिष्क को यदि भानुमति का पिटारा कहा जाय, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी, क्योंकि इसमें इतनी और ऐसी-ऐसी अद्भुत और आश्चर्यजनक क्षमताएँ भरी पड़ी हैं, जिन्हें यदि जीवन्त-जागृत कर लिया जाय, तो यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि मनुष्य दीन-हीन स्थिति में पड़ा नहीं रह सकता। यदा-कदा यही क्षमताएँ दुर्घटनावश जग पड़ती हैं, तो हर कोई यह विश्वास करने लगता है कि यदि प्रयासपूर्वक मनुष्य इन्हें जगा ले, तो मनुज-चोले में ही वह नारायण जैसी क्षमता अर्जित करने में सफल हो सकता है।

ऐसी ही एक महिला थी मोली फेंचर। बुकलीन के एक सामान्य परिवार में जन्मी, पली, बढ़ी फेंचर जब बड़ी हुई, तो उसे घुड़सवारी का शौक चर्चाया। अपने मित्रों की तरह वह भी नित्य घुड़सवारी करने लगी, पर दुर्भाग्यवश १० मई, १८६४ को घुड़सवारी के दौरान वह अचानक घोड़े की पीठ से गिर पड़ी, मस्तिष्क में कुछ चोटें आयीं, किन्तु सब कुछ सामान्य रहा। ८ जून, १८६५ को इसी घटना की पुनरावृत्ति हुई। इसके बाद उसने खाना-पीना बन्द कर दिया। लाभ भी इसी क्रम में

धीरे-धीरे मिलने लगा। ३ फरवरी, १८६६ को ७ माह बाद डॉ० रावर्ट स्पाइयर ने जब मोली का परीक्षण किया, तो मोली की चाची ससन कासबी एवं पड़ौसी अत्यन्त प्रसन्न हुए कि चलो स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर रही है। उसी दिन अचानक न जाने क्यों उसने आँखें बन्द कर लीं और कई महीनों तक नहीं खोलीं। जब आँखें खुलीं, तब अपने जीवन काल के किसी भी व्यक्ति को पहचानने से इन्कार कर दिया। यहाँ तक कि अपने निजी डा० एवं चाची तक को नहीं पहचान सकी। इसके बाद सदा लेटी ही रहती। उसका बायाँ हाथ सिर के नीचे ९ साल तक पड़ा रहा। इसी अवधि में उन्होंने ६००० अद्भुत पत्र लिखे, जो अपने आप में विलक्षण एवं मित्रों को प्रभावित करने वाले थे।

फरवरी १८७५ को नौ वर्ष के बाद अकस्मात वह बिस्तर से उठी और चलने लगी, तो सीढ़ी से गिर पड़ी। आँख खुलते ही अपने निजी डॉक्टर के भाई डॉ० एस० फ्लीट स्पाइयर से बोल पड़ी “क्यों डाक्टर ! आपके भाई नये घर में क्या कर रहे हैं।” अपनी चाची को देखकर वह कहने लगी “क्यों चाची! तुम्हारे तो बाल काले दीखते थे, इतनी जल्दी बूढ़ी हो गई।” स्वयं के द्वारा लिखित पत्रों को देखकर कहने लगी “यह तो किसी मृतात्मा द्वारा लिखाये गये पत्र है।”

यह मोली की असाधारण शक्तियों के जागरण का श्रीगणेश मात्र था। इसी बीच न जाने किन कारणों से उसकी आँखों की दृश्य क्षमता लुप्त हो गई और वह चिकित्सकीय दृष्टि से अन्धी हो गई। परन्तु उसने अनुभव किया कि अन्धी आँखों के बावजूद भी वह सब कुछ देख सकती है। इस सम्बन्ध में उसका कहना था “मुझे ऐसा लगता है, मानो मैं अपने दोनों भौंहों के बीच में विद्यमान तीसरी आँख से देख रही हूँ।” कई बार तो दूर की रखी चीजों को भी देख लेती थी और कहती “मुझे ऐसा लगता है कि मस्तिष्क के ऊपरी हिस्से से प्रकाश किरणें निकल रही हैं, जो वस्तुओं से टकराकर मेरे पास आती हैं और मैं उन्हें देख लेती हूँ।”

१८७५ में ब्रुकलीन यूनिवर्सिटी के भौतिकीविद् प्रोफेसर हेनरी एम० पार्बर्स्ट ने मोली की अतीन्द्रिय क्षमताओं के सम्बन्ध में जाँच-पड़ताल की। वे दो चीजों को विशेष रूप से जानना चाहते थे कि क्या मोली के पास वस्तुतः अतीन्द्रिय क्षमता है अथवा कोई हाथ की सफाई जैसा कुछ है। दूसरी, मोली इसका प्रयोग कैसे करती है। इसके लिए उन्होंने कई प्रयोग किये। एक मोटे कागज वाले लिफाफे में कुछ लिखकर मोली को दिया गया, तो वह बिना किसी कठिनाई के पढ़ने लगी। जब कोर्ट के पुरानी फाइल से एक कागज लाया गया, उसे

भी जब लिफाफे में बन्दकर पढ़ने को दिया गया, तो वह उसे भी आसानी से पढ़ने लगी। इन सब परीक्षाओं के बाद डॉ० हेनरी सन्तुष्ट हुए और इसे उन्होंने उसकी मौलिक अतीन्द्रिय क्षमता की संज्ञा दी व कहा कि हर दृष्टि से दृष्टिहीन होने के बावजूद वह छठी इन्द्रियों से सब कुछ देख सकती है। इसका कोई वैज्ञानिक प्रतिपादन उनके पास नहीं था।

संभव है, इसे कोई दुर्घटना से मस्तिष्क के किसी न्यूरान के अस्त-व्यस्त होने व अतीन्द्रिय क्षमता के जाग पड़ने की प्रक्रिया बताए। पर एक तथ्य तो सुनिश्चित है कि यह सम्भावना मस्तिष्क में विद्यमान है। कभी ऐसा समय भी था जब साधक स्तर के प्राणवान व्यक्ति अपनी इन्हीं सम्भावनाओं को साकार कर दिव्य क्षमताओं को हस्तगत कर लिया करते थे। ऋद्धि-सिद्धियों का भण्डार हमारे अपने ही अन्दर विद्यमान है व हम चमत्कारों को बहिरंग में तलाशते रहते हैं। अंतर्मुखी ही साधना पुरुषार्थ किया जा सके तो उद्देश्यपूर्ण प्रयोजनों के लिए भी अतीन्द्रिय सामर्थ्यों को जगाना सम्भव है।

अलौकिक शक्तियों का उद्गम-

अन्तराल में

मनुष्य देखने में एक साधारण प्राणी प्रतीत होता है। उसका काय-कलेवर बन्दर से मिलता-जुलता है। बोलने, सोचने और खोजने की विशेषताओं ने ही उसे प्रगति के उस स्तर तक पहुँचाया है, जिस पर कि आज वह है।

देखने में इन साधारण विशेषताओं से युक्त असंख्य मानव-प्राणी पाये जाते हैं। वे अपनी विकसित शरीर संरचना और मानसिक विकास की असीम सम्भावनाओं के कारण अपनी विभिन्न विलक्षणताओं के प्रमाण प्रस्तुत करते रहते हैं।

किन्तु गहराई से खोजा जाय तो प्रतीत होता है कि उनकी विदित क्षमताओं की तुलना में अविज्ञात सामर्थ्यों का भण्डार और भी बड़ा है। सूक्ष्म शरीर की अलौकिकता को प्रत्यक्ष न होने के कारण झुठलाया भी जा सकता है। पर प्रत्यक्ष शरीर का विश्लेषण तो ऐसा है जिसे देखते हुए उसकी रहस्यमय संरचना से इन्कार नहीं किया जा सकता।

अरबों, खरबों की संख्या में ज्ञान तन्तु शरीर के प्रत्येक क्षेत्र में, विशेषतया मस्तिष्क में भरे पड़े हैं। इनमें जो विद्युत प्रवाह बहता है, उसकी प्रत्यक्ष प्रतीति इसलिए नहीं हो पाती कि वह विकेंद्रित रहता है। यदि उसे समेटकर एक केन्द्र पर केन्द्रीभूत किया जा सके तो उससे इतनी बिजली बन सकती है जिससे एक बड़ा मिल

चलाया जा सके। मस्तिष्कीय चिन्तन के आधार पर अनेक योजनायें बनतीं और कार्यान्वित होती हैं, तो भी प्रबुद्धों में पाई जाने वाली शक्ति समस्त क्षमता का एक बहुत छोटा अंश होती है। यदि उस सब को एकत्रित किया जा सके तो उससे कोई व्यक्ति देव-दानव स्तर का बन सकता है। अपने शरीर की, अपने संसार की और समस्त ब्रह्माण्ड की स्थिति के सम्बन्ध में ऐसी जानकारीयाँ प्राप्त कर सकता है जिन्हें अलौकिक एवं अद्भुत कहा जा सके। ऋद्धि-सिद्धियों का वर्णन कलोप कल्पना नहीं है। उन्हें किसी अन्य का दिया हुआ अनुदान-वरदान भी नहीं कहा जा सकता। वे भीतर से ही उगतीं और प्रस्फुटित होती हैं। इसके लिए मूलभूत सामग्री उसे जन्मजात रूप में उपलब्ध है। प्रश्न केवल उन्हें जागृत करने भर का है। यह जागरण साधनाओं द्वारा सम्भव हो सकता है।

स्थूल शरीर की क्षमतायें प्रत्यक्ष हैं। उन्हें खेल प्रतियोगिताओं में, सर्कस में बड़े-छोटे रूप में देखा जा सकता है। पर सूक्ष्म शरीर की सामर्थ्य के बारे में उतनी सधन घटनायें प्रत्यक्ष देखने में नहीं आतीं। वे चिरस्थायी नहीं होतीं जिससे उनके अस्तित्व एवं प्रभाव का पर्यवेक्षण गम्भीरतापूर्वक किया जा सके।

तिब्बत में सूक्ष्म शरीर को मानव जीवन में महत्वपूर्ण भूमिकायें निभा सकने सम्बन्धी काफी प्रयत्न हुए हैं। इनका वर्णन 'टिबेटन बुक ऑफ दी डेड' एवं 'सिक्रेट योग ऑफ टिबेट' पुस्तक में विस्तारपूर्वक दिया गया है। एक रूसी ग्रन्थ 'हार्ट ऑफ एशिया' में तिब्बत तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में विद्यमान सूक्ष्म शरीरधारी शक्तियों के क्रिया-कलापों का महत्वपूर्ण विवरण है।

दृश्यमान स्थूल शरीर के आगे की सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर की शक्तियों एवं विभूतियों का वर्णन 'दी प्रोजेक्शन ऑफ दी ऐस्ट्रल बाडी' में इस प्रकार किया गया है कि वैज्ञानिक एवं प्रत्यक्षवादी लोग भी इनके सम्बन्ध में सारगर्भित जानकारी प्राप्त कर सकें। इस सन्दर्भ में विधिवत् शोध कार्य फ्लोरिडा की "वर्ल्ड पैरासाइकालिजिकल रिसर्च फाउन्डेशन" कर रही है।

प्रथम विश्वयुद्ध की एक घटना है कि एक समुद्री जहाज का बेड़ा जर्मनी पर हमला करने के लिए समुद्र के किसी अज्ञात क्षेत्र में जमा हो रहा था। जासूसों ने यह सूचना तो सेनापति तक पहुँचा दी पर वे यह न बता सके कि बेड़ा किस स्थान पर है।

इस हेतु अध्यात्मवेत्ता 'डिवाइनर' की सहायता ली गई, उसने समुद्र का पूरा नक्शा मँगाया। कुछ देर ध्यान करके उसने उस स्थान पर चिन्ह लगाया जहाँ बेड़े के

होने की सम्भावना थी। उस क्षेत्र के लिए तुरन्त मुहिम भेजी गई।



सर विलियम बैरेट ने अपनी पुस्तक 'दी डिवाइनिंग राड' में ऐसी घटनाओं का संग्रह करने के अतिरिक्त यह बताया है कि ऐसा क्यों कर होता है। वे कहते हैं कि प्रत्येक पदार्थ एवं प्राणी के परिकर से अपने-अपने ढंग की विद्युत चुम्बकीय तरंगें निकलती हैं। वे उड़कर आकाश में फैलती और मानवी चुम्बक के साथ टकराती हैं। संवेदनशील व्यक्ति उन्हें पकड़ और समझ लेते हैं कि यह संकेत कहाँ से आ रहा है और कहाँ कैसी स्थिति है।

इसी आधार पर भूगर्भ से कितनी ही धातु खदानें खोजी गई हैं और जल स्रोतों का पता लगाया गया है। यह शक्ति तत्त्वतः हर व्यक्ति में होती है, पर उसे विश्वासपूर्वक कार्यान्वित कर सकने की क्षमता विकसित कर सकना किसी-किसी से ही बन पड़ता है। किन्हीं में यह क्षमता जन्मजात रूप से अनायास ही प्रकट होती देखी गई है।

मार्टिन इंगले ने अपनी खोजपूर्ण पुस्तक 'दी एक्सपीरियन्स इन प्रोफेसी' में छानबीन करने के उपरान्त ऐसी घटनाओं का उल्लेख किया है जिनसे पता चलता है कि मनुष्य शरीर में कितनी अद्भुत दिव्य क्षमतायें विद्यमान रहती हैं। पर उन्हें विकसित और कार्यान्वित करने का अवसर किसी-किसी को ही मिलता है।

संकलित घटनाओं में कैलीफोर्निया के एक दम्पति द्वारा किसी हत्या का पूर्वाभास मिलने और उसकी सूचना पुलिस में नोट कराये जाने का उल्लेख है। वाल्टर नामक एक लेखक की पत्नी मैसी चाय बना रही थी। उसने भरे प्याले में एक फिल्म जैसा दृश्य देखा। एक हत्यारा दो व्यक्तियों की हत्या करके डाका मार ले गया। पुलिस ने मोटरसाइकिल पर उसका पीछा किया। डाकू एक अधबनी

झोपड़ी में घुस गया, जहाँ उसे घर दबोचा गया। यह अनुभूति पुलिस में दर्ज कराई गई तब उसे भ्रान्ति बताकर मजाक में उड़ा दिया गया। किन्तु पन्द्रह दिन भी बीतने न पाये थे कि घटना ठीक उसी प्रकार घटित हुई और पुलिस ने डाकू को लूटी गई सम्पत्ति के साथ घर दबोचा।

उपरोक्त पुस्तक एवं डा० थेल्मा मॉस की “द प्रोबेबिलिटी ऑफ इम्पॉसीबिलिटी” पुस्तक में ऐसी चार सौ से भी अधिक घटनाओं का वर्णन है; जो अदभुत हैं और जिन्हें जाँच-पड़ताल के उपरान्त वैज्ञानिक मान्यता मिली है।

एक घटना सन् १९१३ की है। तब वाइसराय ने अपना शासन तो दिल्ली में जमा लिया था पर वहाँ की गर्मी अंग्रेज मण्डली को रास नहीं आ रही थी। वे किसी ठण्डी जगह को समीपवर्ती क्षेत्र में ही तलाश रहे थे। इस दृष्टि से उन्हें शिमला कलकावाला क्षेत्र अनुकूल और निरापद लगा। वहाँ बसने के लिए रेल का रास्ता जरूरी था। अधपक्की सड़कों पर बसें तो चलने लगी थीं पर ऊँचे पहाड़ी मार्ग पर रेल निकालना टेढ़ी खीर थी। फिर भी निश्चय किया गया और काम चल पड़ा।

कुछ दिनों ही काम चला पर सही पैमायश न बन पड़ने के कारण आगे की ऊँचाई आड़े आ गई। लगने लगा कि रेल के छोटे इंजन इतनी ऊँचाई तक चल न सकेंगे। काम छोड़ बैठने में भी हेठी होती थी और उपाय भी कोई सूझ नहीं रहा था।

इस असमंजस से एक उसी काम में लगे हुए मजदूर ने उबारा। वह पढ़ा लिखा तो न था पर तंत्र मंत्र में गति रखता था। उसने अपनी अन्तःप्रेरणा के आधार पर कहा—“आगे की छः मील जमीन पर सुरंग बना दी जाय तो समस्या हल हो जाएगी। इतनी लम्बी सुरंग बन पड़ेगी, इसका उस काम पर लगे हुए इन्जीनियरों को भरोसा न हो रहा था फिर भी उस मजदूर मलखू के बहुत जोर देने पर काम चालू किया गया। आगे की कठिनाइयों में भी वह मार्ग दर्शन करता रहा। साथ ही इस निमित्त पूजा-पाठ के अनेक विधि-विधान भी करता रहा। उसे साधारण कुली से पदोन्नत करके जमादार बना दिया गया। हर छोटी बड़ी कठिनाई का हल उससे पूछा जाता। मानो वह कोई बड़ा इन्जीनियर हो। उसके दबाव देने पर सफलता हाथ लगती देख उस योजना में लगे हुए अंग्रेज भी उसके पूजा-पाठ में सम्मिलित होते। निदान लम्बी अवधि में वह रेलमार्ग बनकर तैयार हुआ। उन दिनों उस सफलता का श्रेय मलखू को ही दिया जाता रहा। उसकी मंत्र विद्या किसी प्रवीण इन्जीनियर की योग्यता से कम महत्त्व की सिद्ध न हुई।

अमेरीका के दक्षिण पश्चिम में फ़ोर्निक्स से कुछ किलोमीटर दूर स्थित माइकेलटाउन का वायुसेना का एक हवाई अड्डा जब बन्द किया गया तो उस देश में इन अफवाहों को और भी अधिक बल मिला कि वहाँ चित्र-विचित्र भुतही घटनाओं का अड्डा है। वहाँ चिनाटी पहाड़ियों की ढलानों पर संध्या समय रंग-बिरंगी रोशनियाँ जलती-बुझती दिखाई देती थीं। मैक्सिको से लगे टेक्सास राज्य में कितनी ही जगह इन जलती-बुझती रोशानियों ने आतंक पैदा कर दिया। यह रोशनियाँ कई बार जीप, गाड़ियों और यात्रियों का पीछा करती देखी गईं। एक बार तो उन्होंने कई जीपों को इस प्रकार जला दिया माना वे तेज आग की भट्टी में पिघला दी गई हों। इन रोशानियों की खोज में निकला एक वैज्ञानिक दल ही विलुप्त हो गया। इस हेतु बनाया गया एक शोध संस्थान ही जलकर खाक हो गया। ऐसे घटना प्रसंगों का कोई विज्ञान सम्मत समाधान नहीं मिलता। पर उससे परोक्ष जगत के रहस्यमय एवं अतिशक्तिशाली क्रिया कलापों की झलक मिलती है। सूक्ष्म शरीरधारी आत्माएँ संभवतः “आदमी” नामक इस असंभ्य जीव को वहाँ बसने नहीं देना चाहती थीं।

सोवियत रूस के क्रीव प्रान्त के चेरनोबिल संयंत्र में अचानक आग, अणु-आयुधों से भरी रूसी पनडुब्बी का डूबना एवं चन्द्रमा पर पहुँच जाने वाले अमेरिकी अंतरिक्ष वैज्ञानिकों द्वारा अन्तरिक्ष में उपग्रह छोड़ने की लगातार चार असफलताओं से भी यह लगता है कि कोई परोक्षसत्ता इन विनाशकारी कृत्यों को रोक रही है।

ब्रह्माण्ड जड़ पदार्थों से ही भरा हुआ नहीं है उसमें सचेतन का भी बहुत बड़ा भाग है। यह सचेतन मनुष्य की ओर आकृष्ट होता है या उसे अपनी ओर आकर्षित करता है। दोनों पक्षों में आदान-प्रदान की भी आकांक्षा रहती है। इसलिए मिलन की आतुरता सिद्ध करने वाली कितनी ही घटनाएँ भी घटित होती रहती हैं। यदि इन उभय-पक्षीय प्रयत्नों को निष्फल न जाने दिया जाय तो ब्रह्माण्डीय चेतना के अनुदानों से मनुष्य अपने आप को देवोपम सामर्थ्यों से भरा-पूरा बना सकता है।

परिष्कृत अन्तराल

विभूतियों का भाण्डागार

प्राणियों को उनकी आवश्यकतानुसार प्रकृति ने भविष्यज्ञान की क्षमता प्रदान की है। शीतऋतु में मक्खी, मच्छर जैसे प्राणी कहीं सुरक्षित स्थान में छिप कर अपने प्राण बचाते हैं, पर जैसे ही उनके फलने-फूलने का अवसर आता है, प्रजनन कृत्य में लगते और असाधारण रूप से वंश वृद्धि करते देखे गये हैं। हिम प्रदेशों में

रहने वाले सफेद भालू जैसे प्राणी घोर शीत के दिनों आहार उपलब्ध न होने की कठिनाई को ध्यान में रखते हुए किसी गुफा में लम्बे समय के लिए निद्राग्रस्त हो जाते हैं। मेंढक और साँप भी प्रायः ऐसा ही करते हैं। सर्दियों के दिनों वे किसी बिल में इस प्रकार शिथिलता धारण करते हैं कि उन दिनों उन्हें भोजन की आवश्यकता ही न पड़े। धरती में गहराई में छिपे पड़े रहने पर भी अनुकूल मौसम का भविष्यज्ञान उन्हें हो जाता है और वे उपयुक्त समय में बाहर निकल आते हैं।

पक्षियों में से अनेकों ऐसे हैं जो ऋतु प्रतिकूलता का आभास होते ही अनुकूल क्षेत्रों में पहुँचने के लिए लम्बी उड़ानें भरते हैं। समय काटते हैं और जब अनुकूलता उत्पन्न होती है, तो फिर अपने पूर्व निवास पर लौट आते हैं। यह सब भविष्य ज्ञान की पूर्वानुभूति के आधार पर सम्भव होता है। ऋतुओं के अनुरूप मकड़ी अपना ताना फैलाती और समेटती देखी गई है। उपयुक्त ऋतु का ध्यान रखते हुए भी प्राणिवर्ग में उत्साह उभरता है, पर प्रतिकूलता का अनुमान रहने पर वे सर्वथा शान्त बने रहते हैं। कितने ही प्राणी भूकम्प, तूफान, महामारी जैसे प्रकोपों की समय से पहले ही जानकारी प्राप्त कर लेते हैं। अपने-अपने समुदाय को चिल्ला-चिल्ला कर सचेत करते हैं और कहीं अन्यत्र सुरक्षित स्थान के लिए पलायन कर जाते हैं।

मनुष्यों में भी कितनों में ही ऐसी अतीन्द्रिय क्षमताएँ पाई जाती हैं जिसके आधार पर वे अपने या दूसरों के सम्बन्ध में किन्हीं विशेष परिवर्तनों का आभास पा सकें और उस निमित्त पूर्व तैयारी कर सकें। ऐसी कितनी ही घटनाएँ होती रहती हैं जिसमें मृत्यु का आभास समय से पहले ही मिल जाता है। कितनों को ही स्वयं के भावी घटनाक्रम की जानकारी मिल जाती है और वे समय पर सही भी उतरती हैं। कई वैज्ञानिकों को भी अपने आविष्कारों सम्बन्धी गुत्थियाँ हल करने में स्वप्न संकेतों के आधार पर सहायता मिली है। अतीन्द्रिय क्षमताओं के अभ्यासी अनेक बार ऐसी अद्भुत जानकारी देते हैं जैसा कि घटित होने की उन दिनों आशंका तक न थी।

फ्रान्स के प्रख्यात साहित्यकार जैक कजोट को अपने देश में होने वाली महाक्रान्ति का आभास बहुत पहले हो गया था और पेरिस नगर में आयोजित एक समारोह में उसकी उन्होंने सार्वजनिक घोषणा भी कर दी थी। उक्त समारोह में देश के प्रायः सभी मूर्धन्य दार्शनिक, वैज्ञानिक, मनीषी, साहित्यकार, पत्रकार एवं गणमान्य नागरिक उपस्थित थे। उनमें उस काल के बहुमुखी प्रतिभा के धनी विख्यात दार्शनिक एवं संगीतकार मारक्स,

नाटककार निकोलस एवं आलोचक जॉन हार्पी भी सम्मिलित थे। जैक ने यह कहकर सभा में उत्तेजना पैदा कर दी थी कि यहाँ एकत्र सभी लोग सन्निकट खूनी क्रान्ति में मारे जायेंगे, फ्रान्सीसी क्रान्ति के नायक मारक्स के बारे में उसने भविष्यवाणी की थी कि उन्हें बन्दी बना लिया जायेगा और फाँसी की सजा सुनायी जायेगी, किन्तु उससे पूर्व ही वह जहर खाकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर लेंगे। इतिहासवेत्ता जानते हैं कि मारक्स को जो उस समय क्रान्तिकारियों के सर्वोच्च कमेटी के सदस्य भी थे और साथियों की दमनकारी नीति का विरोध करते थे, उन्हें जेल में डाल दिया गया। फाँसी की तिथि निश्चित हो चुकी थी, किन्तु उससे पूर्व ही उसने विष खाकर आत्महत्या कर ली।

सुप्रसिद्ध नाटककार निकोलस की ओर देखते हुए जैक ने कहा था—‘मरने से पूर्व वह बाइस बार ब्लेड से अपनी नाड़ियाँ काटकर मरने का प्रयास करेगा, किन्तु इसमें सफल नहीं होगा। हुआ भी ऐसा ही सन् १७९३ में उसे गिरफ्तार कर लिया गया। कैदी जीवन में उसने आत्महत्या करने की इच्छा से २२ बार प्रयत्न किया पर हर बार असफलता ही हाथ लगी। बाद में उसकी स्वाभाविक मृत्यु हुई।

इसी तरह ख्याति प्राप्त नाटककार एवं आलोचक हार्पी के बारे में किया गया भविष्य कथन अक्षरशः सही सिद्ध हुआ। उसके बारे में कहा गया था कि वह नास्तिक से आस्तिक बन जायेगा। जेल की कोठरी में बन्द रहने पर एकान्तिक जीवन अंतर्मुखी बन गया। आत्मचिंतन करते रहने के कारण जब वह कैद से छूटे तो सच्चे आस्तिक एवं कैथोलिक मत के अनुयायी बन कर निकले। उनके जीवन में कायाकल्प स्तर का परिवर्तन हो गया था। जैक को न केवल दूसरों के भविष्य में झाँकने की अतीन्द्रिय सामर्थ्य प्राप्त थी वरन् अपने बारे में भी उसने स्पष्ट कर दिया था कि उन्हें कई बार जेल की यात्रा करनी पड़ेगी और अंत में मृत्यु दंड दे दिया जायेगा। सभी घटनाएँ समायानुसार घटित होकर रहीं।

पीटर हरकौस का नाम मूर्धन्य भविष्यवक्ताओं में लिया जाता है। उनकी अतीन्द्रिय क्षमता का विकास एक दुर्घटना में हुआ, जिसमें सीढ़ी से गिर जाने के कारण सिर में गम्भीर चोट लग गई थी। दुर्भाग्य सौभाग्य में बदल गया और दिव्य-दर्शन की क्षमता का नया आयाम लेकर सामने आया। अपराधियों, हत्यारों की तलाश करने में एवं खोये हुए व्यक्तियों की जटिल गुत्थियों को सुलझाने में पुलिस भी उनकी मदद लेती थी। अपने जीवन में उसने जितनी भी भविष्यवाणियाँ की थीं, समायानुसार सभी सच निकलीं।

मानवी अन्तराल में एक से बढ़कर एक अद्भुत क्षमताएँ विद्यमान हैं जिन्हें अभ्यास द्वारा हर कोई विकसित कर सकता है। दूरश्रवण, दूरानुभूति, दूरदर्शन, पूर्वाभास, भविष्य कथन जैसी अगणित क्षमताएँ प्रसुप्त स्थिति में दबी पड़ी हैं और कभी-कभी किन्हीं व्यक्तियों में किसी कारणवश उभर भी आती हैं, पर कितने ही व्यक्ति इन्हें सतत अभ्यास द्वारा विकसित कर लेते हैं। न्यूजर्सी की परामनोविज्ञानी श्रीमती डोरोथी एलीसन एक ऐसी ही महिला हैं जिन्होंने भविष्य के गर्भ में झाँकने की सामर्थ्य विकसित कर ली है। इसके माध्यम से उसने अब तक कितनी ही जटिल गुत्थियों को सुलझाया है। खोये हुये व्यक्तियों, हत्याओं एवं अपराधों के रहस्य खोले हैं। न्यूयार्क के प्रसिद्ध परामनोवेत्ता रिचार्ड रिचनर ने डोरोथी की अतीन्द्रिय क्षमता को जाँचा, परखा है और सही पाया है। एक दिन तो वह स्वयं यह जानकर आश्चर्यचकित रह गये कि उनके कमरे में बैठा व्यक्ति आत्महत्या करने की सोच रहा है। यह रहस्योद्घाटन भी डोरोथी ने ही किया था और बताया कि यदि उस व्यक्ति को बचाया जा सके तो एक दृढ़ मनोबल वाला सफल व्यक्ति होगा। पूछताछ करने पर बात सही निकली। उपचार हो जाने पर बाद में वह एक सफल उद्योगपति बनकर रहा।

इसी तरह इंग्लैण्ड की सुजेन पेडफ़ील्ड, न्यूयार्क की एस्टेला राबर्ट्स एवं डर्बन-दक्षिण अफ्रीका के नेल्स पामर ने भी अभ्यास द्वारा अतीन्द्रिय सामर्थ्य विकसित कर ली हैं। ये सभी व्यक्ति किसी वस्तु को देखकर ही उसके प्रयोक्त के सम्बन्ध में सारे रहस्य उद्घटित कर देते हैं। खोये हुए व्यक्तियों एवं छिपे हुए अपराधियों को, जिसका पता लगाने में प्रशिक्षित पुलिस भी असमर्थ रहती है, उनकी दूरदर्शी आँखें खोज निकालती हैं। सुप्रसिद्ध परामनोविज्ञानी जोसेफ बुकनन ने अपनी कृति में इस तरह की अनेकों घटनाओं का वर्णन किया है जिसमें दिव्यदर्शियों की सहायता ली गई और सफलता मिली।

दिव्यदर्शन की एक घटना महात्मा गाँधी की अन्यतम् सहयोगिनी रेहाना व्याबजी के जीवन से सम्बन्धित है। गाँधी जी उन दिनों पूना के आगारवान महल में कैद थे और रेहाना नासिक में रहकर इनकी गतिविधियों का संचालन कर रही थी। गाँधी जी के साथ जेल में कब कैसा व्यवहार हो रहा है? महाभारत कालीन संजय की तरह प्रत्येक घटनाक्रम का वे बारीकी से नासिक में रहकर ही अनुभूति करतीं और उसे अपनी डायरी में अंकित करती रहतीं। जेल से छूटने के पश्चात् जब इसे बा और बापू को दिखाया तो उन्होंने सभी घटनाक्रमों को सही ठहराया। सुविख्यात अमेरिकी खगोलविज्ञानी डॉ० जार्ज डाडवेल के बारे में प्रसिद्ध है कि बिना किसी दूरदर्शी

उपकरण के ही उनकी आँखें सुदूर आकाश में स्थिति सौर मण्डल के सदस्यों-ग्रह-नक्षत्रों, धूमकेतुओं आदि में हो रहे परिवर्तनों की स्पष्ट झाँकी प्राप्त कर लेती थीं।

वस्तुतः मनुष्य की चेतना में असीम एवं अप्रत्याशित क्षमता विद्यमान है। यदि उसे परिष्कृत एवं विकसित किया जा सके तो न केवल भविष्य कथन जैसी अतीन्द्रिय सामर्थ्यों का वरन् भौतिक सिद्धियों एवं आत्मिक ऋद्धियों का भी स्वामी बना जा सकता है। आवश्यकता मात्र अन्तःकरण को पवित्र एवं प्रखर बनाने तथा अध्यात्म सिद्धान्तों को अभ्यास एवं व्यवहार में उतारने भर की है। उच्चस्तरीय चेतनात्मक विभूतियाँ तभी हस्तगत होती हैं।

अन्दर छिपी पड़ी अलौकिक सामर्थ्य

अपने काय-कलेवर में मनुष्य रक्त-माँस, मज्जा और हड्डियों का समुच्चय मात्र दीखता है। विज्ञान भी अपने अध्ययन एवं विशेषण द्वारा इन्हीं की जानकारी देता है। अधिक से अधिक यह कहकर चुप हो जाता है कि शरीर के भीतर कोई चेतना क्रम कर रही है जो समस्त शारीरिक हलचलों का कारण है। आध्यात्मिक मान्यता के अनुसार काया तो स्थूल भाग है जिसकी सामर्थ्य सीमित है और सीमित ही प्रयोजन पूरा कर पाती है। शरीर के भीतर ही एक अदृश्य सूक्ष्म शरीर निवास करता है जिसके भीतर एक से बढ़कर एक सम्भावनाएँ भरी पड़ी हैं। सन्निहित सुषुप्त सूक्ष्म शक्ति संस्थानों का जागरण यदि सम्भव हो सके तो मनुष्य असाधारण शक्ति का स्वामी बन सकता है और इन अतीन्द्रिय सामर्थ्यों के जागरण से वे कार्य भी सम्पन्न किए जा सकते हैं जो विज्ञान की दृष्टि में असम्भव प्रतीत होते हैं।

किन्हीं-किन्हीं व्यक्तियों के जीवन में ये क्षमताएँ अनायास प्रकट हो जाती हैं और ऐसे कारनामे कर गुजरती हैं जिन्हें देखकर विस्मित रह जाना पड़ता है। अन्तःशक्ति के आकस्मिक जागरण का प्रत्यक्ष कारण भले ही समझ में न आए, पर ये उपलब्धियाँ पूर्व जन्मों के संचित साधना पुरुषार्थ का ही प्रतिफल होती हैं। जिन्हें करतल गत कर असम्भव काम भी पूरे किए जा सकते हैं।

प्रसिद्ध विद्वान 'फ्रैंकिस किंग' ने एक पुस्तक लिखी है—'मिस्टीरियस नालेज' इस पुस्तक में उन्होंने एक ऐसे विलक्षण शक्ति सम्पन्न व्यक्ति का उल्लेख किया है जो बिना किसी वैज्ञानिक उपकरणों के शल्य चिकित्सा करता तथा कठिन से कठिन रोगों से मुक्ति दिला देता था। ब्राजील के एक छोटे से गाँव में जन्मे 'जीस एरीगो' नामक इस व्यक्ति को अपनी विलक्षण सामर्थ्य के कारण भारी ख्याति मिली। शल्य-चिकित्सा में अपनी अतीन्द्रिय

शक्ति का उपयोग करना भी उसने विचित्र ढंग से आरम्भ किया।

रिश्ते में लगने वाली एक बूढ़ी औरत पेट के ट्यूमर के कारण मरण शैया पर पड़ी थी। मिलने गये व्यक्तियों में से एक 'एरीगो' भी थे। स्नेही-सम्बन्धी सभी उस औरत को घेर कर खड़े थे। इतने में एरीगो को जाने क्या सूझी वह दौड़कर रसोई घर में गया और एक छोटा सा जंग लगा चाकू उठा लाया और कमरे में उपस्थित सभी व्यक्तियों को यह कहते हुए कि वह मरीज के उपचार के लिए एक विशेष प्रयोग करना चाहता है, सबसे बाहर निकल जाने के लिए कहा। एरीगो तथा घर के एक अभिभावक को छोड़कर सभी बाहर निकल आए। कमरे में मौजूद दूसरा व्यक्ति उसे रोके इसके पूर्व ही उसने छोटे चाकू से वृद्धा को पेट कुछ ही सेकेण्ड में चीर डाला। पर आश्चर्य कि मरीज को जरा भी तकलीफ नहीं हुई। पेट के भीतर मौजूद नारंगी के आकार के ट्यूमर को उसने काटकर बाहर निकाल दिया और उसके बाद दोनों हाथों से कटाव को आपस में जोड़कर दबा दिया। पूरे इस विचित्र आपरेशन में कुछ ही मिनट लगे होंगे। सबसे रहस्यमय बात यह थी कि पेट के ऊपर आपरेशन का कोई निशान भी नहीं था। और न तो महिला को किसी प्रकार की पीड़ा हुई और न ही रक्तस्राव। ट्यूमर के निकलते ही महीनों से मरणान्तक पीड़ा से छुटकारा मिल गया।

एक दिन एक राजनीतिक सभा में भाषण देने के लिए एरीगो के चिर-परिचित मित्र का आना हुआ। सभा की समाप्ति के बाद दोनों मित्र एक होटल में मिले। बातचीत के सिलसिले में मित्र ने बताया कि अपने फेफड़े में मौजूद ट्यूमर की मर्यान्तक पीड़ा से जिन्दगी की लाश ढो रहा है। चिकित्सकों ने किसी प्रकार इतने नाजुक स्थान पर आपरेशन करने से इन्कार कर दिया है क्योंकि उसमें जीवन के लिए खतरा है। वार्ता के उपरान्त दोनों सो गये।

रात्रि के समय राजनीतिक मित्र ने अनुभव किया जैसे किसी का हाथ उसके शरीर के ऊपर रेंग रहा हो। कुछ मिनटों तक यह क्रम जारी रहा। दूसरे दिन प्रातः उन्होंने देखा कि उनके कपड़े फटे हुए थे जैसे किसी ने जान-बूझकर दर्द वाले स्थान के ऊपर चीरा लंगाया हो। और दूसरे ही दिन से उस कष्ट से छुटकारा मिल गया जिसके उपचार में मूर्धन्य चिकित्सकों ने भी अपनी असमर्थता व्यक्त की थी।

अब तक एरीगो की ख्याति दूर-दूर तक फैल चुकी थी। ब्राजील ही नहीं अमेरिका एवं यूरोप के अन्य देशों

से भी अधिक संख्या में रोगी, परीक्षक एवं वैज्ञानिक उसके पास आने लगे। उसकी शल्योपचार की चमत्कारी प्रक्रिया एवं असाधारण सफलता को देखकर वैज्ञानिकों को भी दाँतों तले उँगली दबानी पड़ी। अनेकों प्रयोगों को प्रामाणिकता की कसौटी पर कसने के उपरान्त सभी ने एक स्वर से स्वीकार किया कि एरीगो के भीतर कोई अलौकिक शक्ति है जिसके द्वारा वह उपचार करता है।

'टाइम' पत्रिका के सम्वाददाता डेविट सेण्ट क्लेर उसकी प्रसिद्धि सुनकर वास्तविकता को जानने पहुँचे। उनके सामने ही एरीगो ने एक अन्य लड़के की आँख का आपरेशन किया। आँख के गोलक के बाहर हाथ से निकालकर उन्होंने उसकी झिल्ली को थोड़ा इधर-उधर किया और पुनः गोलक के भीतर बैठा दिया। लड़के को किसी तरह का कोई कष्ट नहीं हुआ। इस छोटे से कुछ मिनटों के, बिना किसी पीड़ा के हुए आपरेशन से बच्चे को वरदान के रूप में नेत्र ज्योति मिल गई।

प्रत्यक्ष प्रामाणिकता की जाँच-पड़ताल करने के उपरान्त सम्वाददाता डेविट सेण्ट क्लेर ने लिखा कि निस्सन्देह एरीगो के भीतर कोई ऐसी अलौकिक शक्ति है जिसके द्वारा वह इस प्रकार के असम्भव काम करने में सफल होता है। विज्ञान के आधार पर उस रहस्यमय शक्ति का कोई कारण समझ में नहीं आता।"

एरीगो का जन्म सन् १९१८ में ब्राजील के एक छोटे से गाँव में हुआ। बचपन से ही उसे विलक्षण अनुभूतियाँ होने लगी थीं, कभी उसे रहस्यमय दृश्य दिखायी पड़ते तो कभी विचित्र प्रकार के सन्देश मिलते थे। आरम्भ में तो वह स्वयं भी इनका कारण नहीं जान पाता था, किन्तु अपने माता-पिता के अक्सर अपनी अनुभूतियों की चर्चा करता था। मन का भ्रम कहकर उसके अभिभावक उसकी बातों की उपेक्षा कर देते थे। कुछ वर्षों तक तो इसी प्रकार चलता रहा। एरीगो के असामान्य जीवन की शुरुआत तब आरम्भ हुई, जब उसने अनायास उस वृद्धा की सर्जरी कर डाली।

इस प्रकार की अनेकों दिव्य क्षमताएँ मनुष्य के भीतर विद्यमान हैं जो हर व्यक्ति में सोई पड़ी हैं। साधना पुरुषार्थ द्वारा उनका जागरण सम्भव है। स्थूल काया तो खाने, पीने, सोने, श्रम करने एवं मस्तिष्क सोचने-विचारने लौकिक गुणधर्मों को सुलझाने जितना सामान्य प्रयोजन ही पूरे कर पाते हैं। शरीर के भीतर विद्यमान सूक्ष्म एवं कारण शरीर की क्षमताएँ स्थूल शरीर एवं मस्तिष्क की तुलना में कई गुनी अधिक हैं। उसमें एक से बढ़कर एक आश्चर्यजनक सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। उनका जागरण यदि सम्भव हो सके तो स्थूल उपचार द्वारा दूसरों को राहत

पहुँचाना ही नहीं, अदृश्य की जानकारीयाँ भूत एवं भविष्य का ज्ञान जैसी कितनी ही चमत्कारी शक्तियाँ करतलगत की जा सकती हैं। उच्चस्तरीय साधनाओं द्वारा इन शक्तियों को प्राप्त कर सकने का मार्ग हर किसी के लिए खुला पड़ा है।

न ज्ञान न विज्ञान फिर भी निर्वाध

आदान-प्रदान

२२ अगस्त सन् १९६४ की घटना है। प्रसिद्ध फ्रांसीसी व्यापारी फ्रेंड स्पेडलिंग अपनी मोटर कार से हेरी की ओर बढ़ रहे थे। हेरी वेस्टइंडीज द्वीप समूह के एक टापू पर स्थित सुरम्य स्थान है। अटलांटिक महासागर के फरोपियन द्वीप हिस्त्यानेलिया के पश्चिमी स्थान पर उस स्थान में स्पेडलिंग प्रायः व्यापार के सिलसिले में आया जाया करते थे। उस दिन जब वे हेरी की ओर बढ़ रहे थे कि रास्ते में अचानक तूफान आ गया। तूफान भी ऐसा कि पहले कभी नहीं आया था। उस तूफान में करीब १५० व्यक्ति मर गये थे। स्पेडलिंग भी उस अंधड़ में फँस गये फिर भी उन्होंने आगे चलने का निश्चय किया और किसी तरह होटल तक पहुँच जाने की बात सोचने लगे। अपने होटल तक पहुँचने के लिए वे नक्शे की सहायता से आगे बढ़ना चाह ही रहे थे कि उन्हें सुनाई दिया 'पीछे लौट जाओ, यह रास्ता खतरनाक है।'

आवाज बहुत समीप से आई थी, लगता था कोई कार की पिछली सीट पर बैठा था। स्पेडलिंग ने चौककर इधर-उधर देखा। कोई दिखाई नहीं दिया। उन्होंने समझा कोई भ्रम हुआ है। स्पेडलिंग ने अपनी यात्रा जारी रखी। कुछ दूर आगे बढ़े ही थे कि फिर वही आवाज सुनाई दी। वही शब्द तो थे किन्तु इस बार स्वर पहले की अपेक्षा ऊँचा था। स्पेडलिंग ने स्वर को पहचाना भी वह आवाज उनकी पत्नी से बहुत मिलती जुलती थी। मिलती-जुलती इसलिए कि उस समय श्रीमती स्पेडलिंग तो उस स्थान से हजारों मील दूर कनेक्टीकट (अमेरिका) में थीं। स्पेडलिंग को फिर भी उस आवाज पर भरोसा न हुआ और वे बराबर आगे बढ़ते रहे। रह-रहकर वह आवाज सुनाई देती, स्पेडलिंग चौंक जाते, सहम उठते और रुक कर थोड़ी देर विचार करने लगते फिर आगे बढ़ जाते।

यह आवाज कहाँ से आई ? कौन आगे बढ़ने से रोक रहा है ? पत्नी तो हजारों मील दूर है, फिर उसकी आवाज इतनी स्पष्ट कैसे सुनाई दे रही है ? और उसे कैसे मालूम कि यहाँ अंधड़ आया हुआ है तथा मैं उसी में यात्रा कर रहा हूँ ? आदि ऐसे प्रश्न थे, जिन पर

स्पेडलिंग जितना ही विचार करते उतना ही असमंजस बढ़ जाता था। रुकते-रुकते वह कुछ घण्टों में समुद्र तट के पास बह रही एक नदी के पुल तक पहुँचे। वह पुल पार करने जा ही रहे थे कि अंधड़ तूफान में उफन रहे समुद्र ने अपनी एक तेज लहर फेंकी और उस लहर के दबाव से नदी पर बना पुल टूटकर ऐसे बहने लगा जैसे नदी में डूबता, उतरता पत्ता यह अचानक दृश्य देखकर स्पेडलिंग काँप उठे। कुछ क्षण पहले भी यदि उन्होंने अपनी कार पुल पर बढ़ा दी होती तो निश्चय ही उनका कहीं पता नहीं चलता।

पर यह रहस्य रहस्य ही रहा। जबकि स्पेडलिंग को अपनी पत्नी की आवाज और चेतावनी कहाँ से तथा कैसे सुनाई दे रही थी ? घर पहुँचने पर तो इसमें रहस्य का एक और अध्याय जुड़ गया। स्पेडलिंग जब घर पहुँचे तो उन्होंने अपनी पत्नी से इस घटना की चर्चा की। उनकी पत्नी ने बताया कि ठीक उसी रात को उसने सपना देखा कि उसका पति हेरी के जंगल में भयानक तूफान में फँस गया है। आगे गहरी नदी है, उसमें उसकी मोटर डूबने की वाली है। इस दृश्य से वह बुरी तरह घबड़ा उठी और सोते-सोते ही चीख उठी फ्रेंड वापिस लौट जाओ। वह अपने पति को इसी नाम से पुकारती थी। खतरे से बचो। आगे खतरा है। यह एक रहस्य ही था कि हजारों मील दूरी पर रह रही श्रीमती फ्रेंड को उसी समय ऐसी अनुभूति कैसे हुई, जो न केवल भविष्य बताती थी वरन् एक की स्थिति का दूसरे को तत्क्षण आभास भी देती थी।

ब्रिटेन की सारकिक रिसर्च सोसायटी ने श्री मायर्स की अध्यक्षता में ऐसी अनेक घटनाओं की जाँच पड़ताल की है, जिनमें मनुष्य की अन्तर्निहित अतीन्द्रिय क्षमताओं का रहस्योद्घाटन होता है। जिन घटनाओं को मनुष्य के भीतर देव दानव का आवेश कहा जाता है, उनमें से कई घटनाएँ भी इसी प्रकार की अतीन्द्रिय क्षमताओं से सम्बद्ध बताई गई हैं। उपरोक्त घटना से मिलती-जुलती एक और घटना सान फ्रांसिस्को की है। वहाँ का एक ट्रक ड्राइवर लुइ फिशर अपनी पत्नी हैजल रेफर्टी से झगड़ा होने के कारण घर छोड़कर चला गया। झगड़ा इतना बढ़ गया कि दोनों ने आवेश में आकर एक दूसरे से कभी न मिलने की कसम खाली। इतना ही नहीं उन्होंने वह शहर छोड़कर अन्यत्र चले जाने की बात भी कही, ताकि वे फिर कभी एक-दूसरे का मुख न देख सकें।

इन दोनों में घनिष्ठ प्रेम था। इतना प्रेम कि दूसरे लोग उन्हें देखकर ईर्ष्या से जला करते थे। किसी बात पर उन्हें आवेश आ गया और गुस्सा-गुस्से में वे चले गये। किन्तु गुस्सा शान्त होने पर वे अनुभव करने लगे

कि जरा से आवेश में आकर उन्होंने इतना बड़ा कदम उठा लिया है, जो नहीं उठाना चाहिए। वे सोचने लगे कि इतने समय से वे कितनी अच्छी तरह घनिष्ठ मित्रों की भाँति रह रहे थे। जैसे-जैसे दिन बीतते गये, दोनों का पश्चाताप बढ़ने लगा और वापस मिलने की बेचैनी भी होने लगी, इस बेचैनी को शांत करने के लिए वे ऐसा उपाय ढूँढ़ने लगे कि साथी को ढूँढ़ सकें और अपनी गलती स्वीकार कर एक-दूसरे से क्षमा माँग सकें।

लेकिन समस्या यह थी कि लुई हैजल को और हैजल लुई को कहाँ ढूँढ़े ? दोनों में किसी को भी तो यह पता नहीं था कि उनका साथी कहाँ है ? एक दिन सबेरे हैजल ने सुना कि लुई लांस एजिल्टा शहर में है। वह तुम्हारा इन्तजार ग्रिफ़िथ की वेधशाला के पास बैठा कर रही है। हैजल वहाँ तुरन्त पहुँच जाओ। यह आवाज ऐसे सुनाई दी जैसे पास ही कोई रेडियो बज रहा हो और उससे यह सूचना प्रसारित हो रही हो।

ठीक इसी प्रकार की आवाज लुई ने भी सुनी ग्रिफ़िथ की वेधशाला में पहुँचो, वहाँ बैठी हैजल तुम्हारा इन्तजार कर रही है। यह आवाज सुनकर दोनों ही तत्काल दौड़ पड़े और नियत स्थान पर पहुँचते ही दोनों ने एक दूसरे को देखा, आँखों में झाँका। वहाँ पश्चाताप के आँसू इस तरह भरे हुए थे कि पुतलियाँ किसी झील में तैरती सी प्रतीत हो रही थीं। एक-दूसरे को देखकर आँसुओं का यह बाँध टूट गया और दोनों फूट-फूटकर रोये।

अब दोनों के लिए आश्चर्य का विषय यह था कि मिलन की पृष्ठभूमि बनाने वाला यह प्रसारण कहाँ से और कैसे हुआ ? लुई को हैजल से मिलने और 'हैजल' को लुई से मिलने के लिए यह अलग-अलग शब्दावली कैसे प्रसारित हुई ? अगर यह रेडियो प्रसारण था तो एनाउन्स किसने किया ? रेडियो स्टेशन पहुँचकर दोनों ने मालूम किया तो पता चला कि वहाँ से ऐसी कोई सूचना, प्रसारित नहीं की गई फिर भी लुई और हैजल ने यह शब्द सुने थे और इसी आधार पर दोनों एक दूसरे से मिले। जब ऐसी कोई सूचना रेडियो द्वारा प्रसारित नहीं की गई तो आश्चर्य का विषय था कि यह सूचना उनके कानों ने कैसे सुनी ? परामनोविज्ञानवेत्ता इस घटना को सुनकर और विश्लेषण करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अतीन्द्रिय चेतना ऐसा ताना-बाना बुन सकती है जिसके कारण दो घनिष्ठ व्यक्तियों के विचार एक-दूसरे से वार्तालाप कर रहे हों।

अमेरिका के मनःशक्ति संस्थान के निर्देशक डा० ब्रूकेल्स के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में इस प्रकार की अतीन्द्रिय क्षमताएँ विद्यमान हैं, जिन्हें वह प्रयत्नपूर्वक

जागृत कर सकता है। कभी-कभी यह शक्तियाँ अनायास भी जागृत हो जाती हैं और व्यक्ति में ऐसी विशेषताएँ उत्पन्न हो जाती हैं जो आमतौर पर हर किसी में नहीं दिखाई पड़तीं। परामनोविज्ञान भी शोध, अन्वेषण और परीक्षणों के माध्यम से इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि मनुष्य की मानसिक शक्तियाँ इतनी सीमित नहीं हैं जितनी कि वह प्रतिदिन के कार्यकलापों में प्रयुक्त होती दिखाई देती हैं। उस का एक बहुत बड़ा अंश तो प्रसुप्त ही पड़ा रहता है और लोग उसका कोई उपयोग नहीं कर पाते, जिस प्रकार गढ़ा या गाढ़ा हुआ घन व्यक्ति के पास कितनी ही सम्पदा हो सकती है पर कोई भी व्यक्ति अपनी सारी जमा पूँजी का उपयोग नहीं कर पाता। उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपनी कुल जमा पूँजी मानसिक शक्ति का पूरा-पूरा उपयोग नहीं कर पाता।

उनके प्रसुप्त ही पड़े रहने का एक कारण यह भी है कि दैनंदिन जीवन में उनकी कोई आवश्यकता नहीं पड़ती यदि यह आवश्यकता अनुभव की जाने लगे कि उनका जागरण होना चाहिए तो ऐसी परिस्थितियाँ सहज ही विकसित होने लगती हैं, जिनसे व्यक्ति परोक्षानुभूति की उन विशेषताओं से सम्पन्न दिखाई पड़ता है जो चमत्कारी और अदभुत कही जा सकती हैं। इस तथ्य को प्रमाणित करने वाली अगणित घटनाएँ आये दिन मिलती रहती हैं और उनसे यह सिद्ध हो जाता है कि उस क्षमता को विकसित कर पाना किसी भी व्यक्ति के लिए सम्भव है। इस तथ्य पर की गई खोजों ने परामनोविज्ञान को और अधिक गहन अन्वेषणों के लिए प्रेरित किया है। तथा टैलीपैथी (विचार सम्प्रेषण) क्लेयर बायस (दूरानुभूति) प्रिकाग्नीशन (पूर्वाभास) अब परामनोविज्ञान की स्वतंत्र धारा बन गई है।

कुछ समय पूर्व तक इस तरह की बातों पर संदेह किया जाता था और उनकी यथार्थता अविश्वसनीय समझी जाती थी। ऐसी घटनाओं को मात्र जादूगरी के अतिरिक्त कोई महत्व नहीं दिया जाता था। किन्तु अब विज्ञान क्रमशः इन्हें ऐसे प्रामाणिक तथ्य मानता चला जा रहा है जिसकी खोज भौतिकी के अन्य क्रिया-कलापों की तरह ही आवश्यक है। चेतना के सम्बन्ध में अभी तक जितनी जानकारी प्राप्त हो सकी है, उससे स्पष्ट हो चला है कि मनुष्य-मनुष्य के बीच पड़ी हुई गोपनीयता की दीवार उठ सकती है और न केवल एक-दूसरे की अंतःस्थिति को जाना जा सकता है अपितु कार्यक या भौतिक उपकरणों का प्रयोग किये बिना भी दूरस्थ रहे व्यक्तियों से भावनात्मक आदान-प्रदान सम्भव है।

परामनोविज्ञान के अनुसार विश्व मानस (यूनिवर्सल माइण्ड) एक समग्र विचार सागर है और व्यक्तिक चेतना

उसकी अलग-अलग लहरें हैं। ये लहरें अलग-अलग दिखाई देने पर भी एक दूसरे से अविच्छिन्न रूप में संबद्ध हैं। उस समग्र विचार सागर से ही व्यक्तिगत चेतना अनेक विधि चेतनाएँ और स्फुरणायें उपलब्ध करती हैं। अध्यात्म शास्त्र तो इस मान्यता को काफी पहले से प्रामाणिक और अनुभव सिद्ध मानता रहा है। उसके अनुसार समस्त प्राणी एक ही विराट् चेतना का अस्तित्व है। काय-कलेवर की दृष्टि से अलग देखते हुए भी सभी प्राणी आत्मिक दृष्टि से एक ही हैं। व्यक्तिगत भौतिकता और स्वभावगत विभिन्नताएँ एक दूसरे के विपरीत स्तर की दिखाई देने पर भी न केवल उनकी मूल प्रवृत्ति में साम्य है; वरन् ऐसा पारस्परिक सम्बन्ध भी है जिसे पूर्णतया अलग कर पाना सम्भव नहीं हो सकता। अतीन्द्रिय क्षमताओं को प्रमाणित करने वाली घटनायें इसी तथ्य को सिद्ध करती हैं। भविष्य में जब इनका रहस्योद्घाटन होगा तो मनुष्य की सत्ता के बारे में यह विश्वासपूर्वक सप्रमाण कहा जा सकेगा कि वह उतना ही नहीं है जितना कि शारीरिक और मानसिक क्षमता के आधार पर जाना समझा जाता है।

आत्मचेतना विराट की प्रतिनिधि

एक समय था जब आधुनिक विज्ञान और आत्मविद्या कभी भी न मिल सकने वाले दो परस्पर विरोधी बिन्दु माने जाते थे। इसी कारण विज्ञान की प्रगति के साथ आध्यात्मिक अवमानना हुई, किन्तु आधुनिक विज्ञान भी बढ़ते-बढ़ते एक ऐसी स्थिति में आ गया है जब उसे यह विचार करना आवश्यक हो गया है कि क्या शरीर ही आत्मा है या आत्मा की अभिव्यक्ति के लिये शरीर अपर्याप्त माध्यम नहीं? मनुष्य की मस्तिष्कीय चेतना की भौतिक परिधि और उसकी विराट् अवस्था दोनों के व्यापक अध्ययन से धीरे-धीरे यह बात स्पष्ट होती जा रही है कि सारे शरीर में मस्तिष्क के विद्यमान होने की तरह विराट् चेतना सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। शरीर उसका एक स्टेशन और मन्दिर मात्र है जिसमें वह अपने अंश या जीव रूप में कुछ क्षण विश्राम के लिये आता है। उसका अन्तिम लक्ष्य विभु या विराट् बनना है। इस उद्देश्य की पूर्ति न होने तक सन्तोष नहीं होता।

मनुष्य की चिन्तन शक्ति, भावनाओं, संवेदनाओं को मात्र रासायनिक संवेग मानकर मनुष्य जीवन को नितान्त भौतिक मानने की भूल थोड़े से वैज्ञानिकों ने की है। अधिकांश ने या तो तथ्यों को अत्यन्त गूढ़ कहकर निष्कर्ष निकालने का विचार ही त्याग दिया या फिर श्रद्धापूर्वक उसने यही स्वीकार किया कि मानवीय चेतना

का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। वह भौतिकीय तत्वों का सम्मिलन मात्र नहीं, अपितु विराट् चेतना का ही अंश है। वह शरीर रूप नाम का पिंड मात्र नहीं, अनादि, अनन्त गुण वाला चेतन तत्व है। शरीरों का इन्द्रियों का विकास उसकी इच्छानुसार उसके संकल्प के आधार पर हुआ है।

भौतिक विज्ञान के जो पण्डित स्नायु-तंत्र (नाड़ी मंडल) को ही आत्मा मानते और उन्हीं से विचारों को उद्भूत हुआ मानते हैं उनमें जर्मनी के शरीर विज्ञानी डा० काल ह्याक्ट तथा डा० टेन्डाल आदि प्रमुख हैं। अपने सिद्धान्त की पुष्टि में उन्होंने अनेक प्रयोग शरीर पर किये। स्नायु-मण्डल की विस्तृत खोज की। उन्होंने उस गति की माप की जो शरीर में किसी अंग पर आघात के बाद उस अंग से भाव संदेश के रूप में मन तक और मन से शरीर के किसी अंग तक पहुँचते हैं। मस्तिष्क बोध की सूक्ष्मता का भी पता लगाया तथा विद्युत आवेश देकर उन संदेशों को घटाने-बढ़ाने में भी सफलता प्राप्त की। विचारों की उत्पत्ति को उन्होंने कहा यह मस्तिष्क की वैसी ही उपज होते हैं जैसे यकृत की पित्त। हालाँकि अब तक वैज्ञानिक मस्तिष्क के गहन अन्वेषण में झाँक कर जितना जान सके हैं वह अधिकतम १३ प्रतिशत है। मस्तिष्क के शेष ८७ प्रतिशत भाग की कोई जानकारी नहीं है। इतनी कम जानकारी को पूर्णता की संज्ञा देना वैसे ही अविवेकपूर्ण कहा जायेगा।

फिर कुछ ऐसी घटनायें और प्रसंग भी आये, दिन आते रहते हैं जो इस वैज्ञानिक मान्यता के सामने चुनौती बनकर खड़े हो जाते हैं। वैज्ञानिक उन कारणों की कोई व्याख्या करने में असमर्थ होते हैं। उदाहरणार्थ, इटली में गियोबानी गलान्ती नामक एक ऐसा बालक था जो रात के अंधेरे में भी पढ़ सकता था। १९२८ में उसे इसी स्वास्थ्य परीक्षा के बाद अमेरिका नहीं जाने दिया गया था। पढ़ते समय मुख्य कार्य मस्तिष्क करता है और कोई भी मस्तिष्क प्रकाश के बिना पढ़ नहीं सकता, फिर इस बालक में यह क्षमता कहाँ से आई?

स्काटलैण्ड में जेम्स क्रिस्टन नाम के एक बालक ने १२ वर्ष में ही अरबी, ग्रीक, यहूदी तथा फ्लेमिश सहित विश्व की १२ भाषायें सीख ली थीं। २० वर्ष तक वह विज्ञान की सभी भाषाओं का पण्डित हो गया था। उसके और सामान्य व्यक्ति के आहार और जीवन क्रम में जब कोई विशेष अन्तर नहीं था तब बौद्धिक क्षमता में आकाश-पाताल जैसे अन्तर का कारण क्या हो सकता है? फ्रान्स में जन्मे लुईस कार्डक ४ वर्ष की आयु के थे तभी अंग्रेजी, फ्रान्सीसी, जर्मनी तथा अन्य योरोपीय भाषायें बोल लेते थे। इससे भी बड़ा आश्चर्य यह था कि वह ६ माह में ही बाइबिल पढ़ लेते थे। ६ वर्ष की आयु

तक पहुँचने पर कोई भी प्रोफेसर गणित, इतिहास और भूगोल में इनकी बराबरी नहीं कर सकता था। जो ज्ञान और बौद्धिक क्षमतायें इतने अधिक अध्ययन और अभ्यास से विकसित हो पाती हैं और वैज्ञानिक मान्यता के अनुसार जिन्हें पदार्थ की परिणति होना चाहिए था, वह शारीरिक विकास के अभाव में ही इतने विकास तक कैसे पहुँची ?

ब्लेइस पास्कल ने १२ वर्ष की आयु में ही ध्वनि-शास्त्र पर निबन्ध प्रस्तुत कर सारे फ्रान्स को आश्चर्य में डाल दिया था। जॉन फिलिप बेरोटियर को १४ वर्ष की आयु में ही डाक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि मिल गयी थी। उनकी स्मरण शक्ति इतनी तीव्र थी कि दिन याद कराने की देर होती थी उस दिन की व्यक्तिगत, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय घटनायें भी टेप की भाँति दुहरा सकते थे। ज़ोनी नामक आस्ट्रेलियाई बालक को जब तीन वर्ष की आयु में विद्यालय में प्रवेश कराया गया तो वह उसी दिन से ८वीं कक्षा के छात्रों की पुस्तकें पढ़ लेता था। उसे हाईस्कूल में केवल इसलिये प्रवेश नहीं दिया जा सकता क्योंकि उस समय उसकी आयु कुल ५ वर्ष थी जबकि निर्धारित आयु १२ वर्ष न्यूनतम थी।

कोई भी अल्पबुद्धि व्यक्ति यह स्पष्ट समझ सकता है कि यह असामान्य ज्ञान पूर्व जन्मों के ही संस्कार हो सकते हैं। हमारे मनीषी निरन्तर स्वाध्याय की आवश्यकता अनुमोदित करते रहे और यह बताते रहे कि ज्ञान आत्मा की भूख-प्यास की तरह है। उससे उसका विकास होता है। यह बात समझ में आने वाली है कि चेतना का विकास ज्ञान साधना से ही सम्भव है जो अद्भुत क्षमता के रूप में हर किसी को मिलती है। बालकों के आहार, वातावरण, पोषण आदि की समान सुविधायें होने पर भी बौद्धिक असमानता इन्हीं भारतीय मान्यताओं की समर्थक हैं।

इटली के डॉ. लोम्बोसो जिन्होंने एक समय एक प्रतिष्ठापना दी थी कि रचना विज्ञान की दृष्टि से एक पागल और प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों में समरूपता होती है। इस बात को भौतिकवादियों ने बहुत अधिक उछाला किन्तु वे यह भूल गये कि देखने में नमक और शक्कर दोनों में समानता दिखाई देने पर भी उनके गुणों में कितना अन्तर होता है एक के भाव ५ रु० किलो होते हैं तो दूसरे के १० पैसे किलो। प्रतिभाशाली व्यक्तियों, आध्यात्मिक, धार्मिक संतों के विचारों में रचनात्मक जागरूकता और मार्गदर्शन की क्षमता होती है। उन्होंने सैकड़ों लोगों के जीवन में शान्ति, सुरुचि और सुव्यवस्था

दी जबकि पागल के विचार अस्त-व्यस्त होते हैं। उसे लोग दुत्कारते ही हैं, उसकी सुनता कोई नहीं।

लोम्बोसो के उक्त प्रतिपादन का खण्डन अनेक वैज्ञानिकों तथा मनोवैज्ञानिकों ने भी किया है। डा० मोर्शले ने उपरोक्त मत से असहमति व्यक्त की है और लिखा है कि सामान्य मस्तिष्क में दुनियादारी की प्रवृत्ति तो होती है, किन्तु सूक्ष्म चिन्तनशक्ति असाधारण लोगों में ही होती है।

मैडम ब्लैवटस्की का कथन है कि मस्तिष्क उस वीणा व बायलिन की तरह है जिसके तार को जितना अधिक खींचा व कसा जायेगा, ध्वनि कम्पन उतने ही सूक्ष्म और मोहक होंगे। असामान्य मस्तिष्क की असामान्य उपलब्धियाँ ऐसी ही हैं। तार कसने में उसके टूटने का भय होता है। इसलिये उसे धीरे-धीरे सावधानी से कसते हैं। मस्तिष्क को जिन साधनों (योग विद्या) से सूक्ष्म, तत्वग्राही और संवेदनशील बनाया जाता है उनकी भी यही प्रवृत्ति होती है। एकाएक कठोर अभ्यास पागल और विक्षिप्त कर सकते हैं, इसलिये साधना का क्रम मार्गदर्शकों की देख-रेख में धीरे-धीरे बढ़ाया जाता है। शारीरिक अभ्यास, उपवास आदि से शरीर शोधन, विचारों में प्रकाश अवधारणा आदि से ही उच्च क्षमतायें विकसित होती हैं। योगियों पर कोई स्नायविक दबाव नहीं पड़ता, कोई बीमारी नहीं होती। अतएव सूक्ष्म विचारों की महत्ता के साथ-साथ योग साधनाओं की भी प्रामाणिकता सिद्ध होती है। चिन्तन के सूक्ष्मतर होने से ज्ञान चेतना के कोश परस्पर जुड़ते हुए चले जाते हैं और सामान्य मस्तिष्क जो सन्देश, प्रेरणायें, अनुभूतियाँ नहीं ग्रहण कर पाते उनके लिये सुलभ हो जाती हैं। सर आलिवर लाज ने भी अपनी बौद्धिक क्षमतायें इसी आधार पर विकसित की थीं और यह माना था कि हमारी ज्ञान चेतना पदार्थ जन्म न होकर विराट चेतना का ही एक अंश और अंग है। जब तक इस बात को नहीं समझते तब तक हमारे दृष्टिकोण भी भौतिकतावादी बने रहते हैं। तब पाप-पुण्य में कोई अन्तर ही नहीं रहता, नैतिकता को कोई अर्थ ही नहीं होता। आज जो सर्वत्र पीड़ा और पतन के दृश्य हैं, स्वार्थ-संकीर्णता ने पुण्य-परमार्थ को दबोच रखा है, वह उसी मान्यता का दुष्परिणाम है।

पूर्वी मनोविज्ञान या भारतीय दर्शन के पीछे शोधों की एक लम्बी विज्ञान सम्मत मूलखला है जबकि पश्चिमी मनोविज्ञान अभी ३०-४० वर्ष का बालक मात्र है जो सतह पर खड़ा स्नान करता है, उसमें इतनी क्षमता भी नहीं कि गहरे जाकर गोता लगा सके। इसीलिये वह जितने समाधान प्रस्तुत करता है, उतने ही प्रश्न और समस्यायें उठ खड़ी होती हैं। ऊपर मस्तिष्क की जिन

अदम्य क्षमताओं का वर्णन किया गया है उन्हें कुछ देर के लिये भूल भी जायें तो भी जब मस्तिष्क सामान्य नहीं होता तब भी चेतन क्रियायें चलती रहती हैं। न केवल जाग्रत अवस्था में अपितु स्वप्न व सुषुप्ति अवस्था में भी चेतना बनी रहती है उसका भी समाधान आवश्यक है। डा० ड्यूप्रेल ने अपनी पुस्तकों में ऐसी घटनाओं का वर्णन किया है जिनसे यह सिद्ध होता है कि समय या अनुभूति के एक सेकण्ड के करोड़वें भाग में ही महाकाल या अनेक वर्षों में हुए ज्ञान की अनुभूति कैसे सम्भव हो जाती है। इसका अर्थ तो स्पष्टतः यही होता है कि कोई एक ऐसी चेतना है जो विराट है और उसके लघुतम अंश में भी वही सम्भवनायें सन्निहित हैं। अपनी पुस्तक में डा० प्रेल ने एक व्यक्ति के स्वप्न का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उस व्यक्ति की गर्दन का एक उँगली से स्पर्श किया गया उसकी नींद टूट गई। जब उससे अनुभव के बारे में पूछा गया तो उसने बताया कि उसने स्वप्न देखा कि मैंने किसी की हत्या कर दी, उस व्यक्ति के घरवालों ने पुलिस को रिपोर्ट लिखाई, पुलिस ने पकड़ा, जेल भेजा, मुकद्दमा चला, वकीलों की जिरह हुई, मुझे फाँसी की सजा हो गई। नियत समय पर जल्लाद आया, उसने मेरी गर्दन पर चाकू रखा और मेरी नींद टूट गई।

डा० प्रेल लिखते हैं—जिस तरह ज्ञान के अंश में ही विराट-काल व्याप्त होने का यह उदाहरण है उससे भी अधिक आश्चर्यजनक बात है सम्मोहन की अवस्था में (हिप्नोटिज्म) व्यक्ति अचेत हो जाता है, उसे अपनी स्थिति का भी बोध नहीं रहता, आँखें देख नहीं सकती, कान सुन नहीं सकते, पलकें तीव्र विद्युत प्रकाश में भी सिकुड़ती हैं, त्वचा स्पर्श ज्ञान से शून्य हो जाती है। हृदय की धड़कन बन्द-सी हो जाती है, अत्यन्त संवेदनशील यंत्रों से ही जीवन का बोध होता है। कार्बन तत्व अत्यधिक बढ़ जाने से मस्तिष्क संज्ञा शून्य हो जाना चाहिये था। जड़ता, अगति या मृत्यु हो जानी चाहिये थी किन्तु तब ज्ञान की क्षमतायें जाग्रति से भी अनेक गुनी अधिक बढ़ जाती हैं। अर्थात् सम्मोहन की अवस्था में बाल्यावस्था की जो घटनायें याद नहीं रहती वह भी स्मरण शक्ति में आ जाती हैं। सामान्य स्थिति में कोई पुस्तक का एक पैराग्राफ पढ़े तो तीव्र बुद्धि शक्ति ही उसके कुछ शब्द दोहरा सकते हैं पर सम्मोहित अवस्था में तो यदि भाषा उसकी पढ़ी हुई नहीं तो भी अक्षर-ब-अक्षर दोहरा सकता है। जाग्रत अवस्था में आँख की शक्ति सीमित होती है, किन्तु उस स्थिति में कमरे में बन्द रहकर भी सैकड़ों मील दूर की वस्तुयें तक दिखाई देती हैं यह सब कैसे सम्भव है ?

तब फिर यही निष्कर्ष निकलता है कि आत्म-चेतना विराट चेतना का ही अंश है, जिसमें असीम ज्ञान की शक्ति सन्निहित है। भूत, भविष्य और वर्तमान उसी में अवस्थित है, वह पदार्थ से परे है, उसे जानने में ही मनुष्य जीवन की सार्थकता है।

देखने वाली आत्मा को आँखें

आवश्यक नहीं

कई वर्ष पूर्व अप्रैल में मास्को से टेलिविजन पर एक अत्यन्त आश्चर्यजनक कार्यक्रम प्रसारित किया गया। निजनी तगिन की एक २२ वर्षीया तरुणी रोसा कुलेशोवा ने अपने दाहिने हाथ की तीसरी और चौथी उँगलियों से स्पर्श करके अखबार का एक लेख पढ़ा और फोटों, चित्रों को बिना आँख की मदद से देखकर पहचाना। इस कार्यक्रम को हजारों रूसियों और दूसरे देशवासियों ने देखा और बड़ा आश्चर्य व्यक्त किया।

रोसा निजनी के अन्य अन्ध विद्यालय में अध्यापन का कार्य करती है। एक दिन जब वह पढ़ा रही थी, तब एकाएक उसने अनुभव किया कि वह बिना आँखों की सहायता उँगलियों के पोरों से देख सकती है। उसने धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाया। स्पर्श से ही वह अंक पहचानने लगी। कुछ दिन में तो वह कागजों पर हुए रंग को भी केवल स्पर्श से जानने लगी। दिसम्बर ६२ को उसने सोवियत संघ, मनोवैज्ञानिक संघ की यूराल शाखा के सदस्यों के सामने प्रदर्शन किया। तुरन्त प्रेस से आये अखबार को उँगलियों की मदद से पढ़कर सुना दिया। यही नहीं अखबार पर जहाँ चित्र थे, उनके पोज और वह चित्र कैसे कपड़े पहने थे, यह सब अत्यन्त सूक्ष्म विभाजन तक उसने केवल स्पर्श से बता दिये, स्पर्श से वह किस प्रकार अक्षर रंग या चित्रों को पहचान लेती है, इसका कोई निश्चित उत्तर रोसा नहीं दे सकी किन्तु उसने इतना अवश्य बताया कि कोई भी वस्तु छूने से कुछ तरंग जैसी लाइनें मस्तिष्क तक दौड़ने लगती हैं और सब कुछ स्पष्ट होने लगता है।

वैज्ञानिक बहुत हैरान हुए, खारकोव विश्वविद्यालय के एक मनोविज्ञान शास्त्री ने कहा—“सम्भव है वस्तुओं से इन्फ्रारेड किरणें निकलती हों और उनके स्पन्दन से पता चलता हो, इसलिए रोसा पर कुछ प्रयोग किये गये। पालिस किये हुए काँच के पार से वस्तुयें दिखाई गईं। अब इन्फ्रारेड किरणों की सम्भावना को रोक दिया गया था तो भी रोसा ने पहले की तरह ही सब कुछ बता दिया। यही नहीं उसे एक लम्बी नली के पार से रंग दिखाये गये, तब उसने नली के मुँह पर उँगली रखकर

सब कुछ सही-सही बता दिया। वैज्ञानिक कोई कारण समझ न सके, अन्त में रूसी अखबार 'इजवेस्तिया' ने स्वीकार किया, यह किसी दिव्य दृष्टि का चमत्कार है।

टेलिविजन पर हुए कार्यक्रम को देखने के बाद खार्कोव के एक डाक्टर ओल्गा ब्लिजनोव ने अपनी पुत्री पर भी इस तरह का प्रयोग किया और देखा कि रोसा कुलेशोवा की तरह नीले, काले, हरे, लाल सब रंगों को केवल स्पर्श से जान लेती है। उसका भी परीक्षण किया गया। लेना ब्लिजनोव के सामने चौकोर कागजों का पूरा बण्डल रखा गया और उसके नीचे एक कागज पर कुछ लिखकर छुपा दिया गया। आश्चर्य कि उसने बण्डल के ऊपर वाले कागज को छूकर यह बता दिया कि सबसे नीचे वाले कागज में क्या लिखा हुआ है। इतना ही नहीं वह दो-ढाई इन्च दूर उँगलियाँ रखकर भी फोटो, चित्र, रंग और अक्षर पहचान लेती है, जबकि उसकी आँखों में मजबूत पट्टी बँधी होती है।

प्रोफेसर अलेक्जेंडर स्मिर्नोव ने इस विद्या का गहन अध्ययन किया। उन्होंने ऐसी क्षमता के कुछ लड़के भी खोज निकाले, पर इस रहस्य का सही पता न लगा सके। इन चर्चाओं को न्यूयार्क में बारनार्ड कालेज के प्रोफेसर डॉ० रिचार्ड पी० यूज ने भी सुना तो उन्होंने बताया कि १९३९ में कैण्टकी के हाईस्कूल में पैट्रिशिया आइन्सवर्थ नाम की एक लड़की भी इस तरह की दिव्य-दृष्टि रखती है। अब तक वह स्त्री कई बच्चों की माँ हो चुकी थी, इसलिये श्री डॉ० यूज ने कालेज के लड़कों पर प्रयोग दोहराये और बाद में उन्होंने बताया कि १३५ विद्यार्थियों में से १५ प्रतिशत छात्रों में इस तरह की क्षमता पाई गई, जो अभ्यास के द्वारा अपनी दिव्य दृष्टि बढ़ा सकते हैं। उनकी इस घोषणा से वैज्ञानिकों में हलचल उत्पन्न हो गई कि क्या सृष्टि का प्रत्येक प्राणी सचमुच आदिकाल से ही ऐसी क्षमतायें अपनी भीतर छुपाये हुये है। इतना स्पष्ट ज्ञान होते हुए भी वह सर्वथा अज्ञानी बना हुआ है। उसे भविष्य और दूरस्थ वस्तुओं का तो दूर कई बार तो पास की वस्तुयें भी पहचानना कठिन हो जाता है। अपने माता-पिता और बच्चों के मन की भी बात न जान सकने वाले मनुष्य में कोई विलक्षण दिव्य दृष्टि का होना सचमुच आश्चर्यजनक है, पर योग-विद्या और आत्मा का रहस्य जानने वाले भारतीय आचार्यों के लिये यह कोई कठिन बात नहीं रही। यहाँ आदि काल से सूक्ष्म तत्वों का ही परीक्षण, विश्लेषण, शोध और अभ्यास किया जाता रहा है।

ध्यान बिन्दूपनिषत् के ९४वें शोध मन्त्र में बताया है—

अथात्म निणयं व्याख्यास्ये हृदि स्थाने अष्टदल पद्मं वर्तते तन्मध्ये रेखा वलयं कृत्वा जीवात्म रूपं ज्योतिरूपं मणु मात्रं वर्तते, तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितं भवति सर्वं जानाति-----।

अर्थात्—अब आत्मा के विषय में विचार करते हैं। हृदय स्थान में अष्टदल कमल है, उसमें रेखाओं का आश्रय लेकर जीवात्मा ज्योतिरूप अणुमात्र रूप में रहता है। उसी में सब कुछ प्रतिष्ठित है, वही सब कुछ जानता है (बिना इन्द्रियों की मदद से अपनी सूक्ष्म इन्द्रियों के माध्यम से)।

गणपत्युपनिषत् की छःवीं ऋचा का एक अंश—

त्वं चत्वारि वाक्यरिमिता पदानि। त्वं गुणमयातीतः त्वं मूलाधारे स्थितोऽसि नित्यम्। त्वं शक्तित्रयात्मकः।

वाणी के चार रूप परा, पश्चन्ति, वैखरी और मध्यमा भी तुम हो, गुणातीत हो—मूलाधार में स्थित, इच्छाशक्ति, क्रिया-शक्ति और ज्ञान-शक्ति यह तीनों रूप तुम्हारे ही हैं।

योग उपनिषदों में आत्मानुभूति और आत्म-साक्षात्कार के साधनों का विस्तृत विवरण दिया गया है और यह बताया गया है, आत्मा को जान लेने पर मनुष्य की सम्पूर्ण चेष्टायें आत्मा बन जाती हैं, तब वह न केवल छिपी से छिपी वस्तु के रहस्य को समझ सकती है, वरन् लाखों मील दूर की वस्तु को देख, सुन-समझ और कोई सन्देश भी भेज सकती है। यह सब उसकी परा-शक्ति का प्रतिफल है। इन उपनिषदों में यह भी बताया गया है कि आत्मा शुद्ध-बुद्ध और निर्विकार है, इसलिये यह आवश्यक नहीं कि उसकी अनुभूति के लिये कठिन योग क्रियायें ही की जायें, मनुष्य अभ्यास द्वारा अपने मन के मैल और आत्मा पर चढ़ी बुराइयाँ, क्रम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि को त्याग डाले तो ही उन अनुभूतियों और शक्तियों का सहज स्वामी बन सकता है। योग का मार्ग वैसे कठिन है पर वह पूर्ण विज्ञान सम्मत तरीका है, इसलिये उसकी उपयोगिता भी कम नहीं है।

मेरुस्तम्भ के शिखर के सीधे ऊपर खोपड़ी के बीचों-बीच से थोड़ा हटकर लालिमा लिये हुये भूरे रंग की कोण शक्ल की एक वस्तु मस्तिष्क की पिछली कोठरी के आगे तीसरी कोठरी की तह से मिली हुई पाई जाती है। यह गुद्दी का पुंज है, जिसमें छोटे-छोटे खुरखुरे चूनेदार अणु होते हैं, इन्हें 'मस्तिष्क बालुका' कहा जाता है। इसे पाश्चात्य वैज्ञानिक 'पाइनल ग्लैण्ड' या 'पाइनल बाड़ी' कहते हैं, पर वे अभी उसके कार्य अभिप्राय और

उपयोग से बिल्कुल अनभिज्ञ है। मोटी जानकारीयाँ ही इस सम्बन्ध में मिलती हैं।

दूरवर्ती वस्तुओं और सूक्ष्म से सूक्ष्म मन तक के लगाव का कारण योगी लोग इसी स्थान को मानते हैं। यह आत्मा की ज्ञान-शक्ति का कोष कहा जा सकता है। इस अवयव के लिये यह आवश्यक नहीं कि इसमें कोई बाह्य द्वार हो जैसा कि कान, नाक, मुँह में होता है। इसमें से उठने वाले विचार कम्पन स्थूल पदार्थों का भेदन भी उसी तरह कर जाते हैं, जिस तरह 'एक्सरेज'। वह सूक्ष्म विचार कम्पन पहाड़ों की चट्टानों, लोहे आदि का भी भेदन कर उसके भीतर की आणविक संरचना का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

उल्लेखनीय है कि जमशेद जी टाटा को खनिज और इस्पात का कारखाना खड़ा करने का स्थान स्वामी विवेकानन्द ने लन्दन में तब बताया था, जब श्री टाटा जी वहाँ उसकी स्वीकृति लेने गये थे। खनिज पदार्थ, पानी और तेल के कुओं तक का पता धरती के भीतर हजारों फीट निचाई में हो तो वहाँ भी यह विचार कम्पन पहुँचकर वहाँ की स्थिति का रहस्य आत्मा को बता सकते हैं।

मस्तिष्क का 'कोनीला अणु' बेतार के तार की तरह अदृश्य जगत् के सूक्ष्म से सूक्ष्म कम्पन को भी पकड़ लेता है, इसलिये जो बात मन में तो न हो पर अवचेतन मन में हो, उसे भी जाना जा सकता है। उदाहरण के लिये कौड़ी वाले बैल देखे होंगे, जो अपने स्वामी के संकेत पर बता देते हैं कि ५ का नोट किसकी जेब में है—बैल चलता है और उस आदमी के पास जा पहुँचता है। वह आदमी पूछता है—इनमें 'रामशंकर' कौन है, उस समय भीड़ में खड़ा रामशंकर अपने मन में अपना नाम भी नहीं लेता, उस समय तो उसे केवल कौतूहल होता है पर चूँकि उसके अवचेतन मस्तिष्क में यह बात रहती है कि मैं रामशंकर हूँ, उसी को बैल का यह अवयव पकड़ लेता है और उस व्यक्ति के पास जाकर बता देता है।

ऐसे खेल प्रायः सभी ने देखे होंगे। अभी तक इनको चमत्कार माना जाता है पर मनुष्य और जीव दोनों में इस तरह की ज्ञान-शक्ति के आधार पर कुछ दिन में यह भी पता चल जायेगा कि आत्मा का अस्तित्व मनुष्य में ही नहीं अन्य प्राणियों में भी है। जिस दिन यह मान्यता लोगों के मस्तिष्क में उतर जायेगी, उस दिन पुनर्जन्म और कर्मफल के अनेक रहस्य भी मालूम होने लगेंगे और तब अबकी तरह चोरी, छल-कपट, धोखा, अपराध, अत्याचार करने वाले लोगों को मालूम होगा कि

इनके कारण उन्हें दूसरी योनियों में रहकर किस तरह कष्ट उठाना पड़ा और देहासक्ति से अब किस तरह बचा जा सकता है। तब लोग बिना समझाये हुए भी शुभ और पवित्र जीवन के अभ्यास के लिए समुद्यत होंगे।

आत्मा की यह गुप्त इन्द्रियाँ सब के होती हैं, जैसा कि अमेरिका के डाक्टर मूज ने माना। अभी उसे जीवन के क्रिया-कलापों के संगति देना शेष है। थोड़े से मनुष्यों ने ही इनका ऐसा विकास किया है कि वे इनका सचेतन उपयोग कर सके। रूस की यह घटनायें उसी का उदाहरण हैं, भारतवर्ष में ऐसी घटनायें तो आये दिन स्थान-स्थान पर घटित होती रहती हैं।

पाण्डिचेरी के चीफ जस्टिस श्री जंकालियट अश्वविश्वासी व्यक्ति नहीं थे, उनकी समालोचना शक्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी थी, जब पाल ब्रन्टन भारतवर्ष आये और यहाँ की गुप्त अध्यात्म विद्या पर एक पुस्तक लिखी तो उसकी भूमिका उन्होंने जंकालियट से लिखाई, उन्होंने लिखा है—“मैं ऐसे कई साधुओं से मिला हूँ, जो मन की बात ऐसे बता देते हैं, जैसे वह उनकी ही बात हो। एक बार एक साधु ने मुझसे कुछ लिखकर अपने पास रखने को कहा, मैंने कुछ लिखा और उसे थैली में बन्द कर लिया, साधु ने ध्यान लगाया और एक कागज पर लिखकर दिया। उस पर लिखा था—“एलबेन बुनियर, बॉर्ग इन ब्रेस्सी (एन) में ३ जनवरी सन् १८५६ में मरा था।” मैं यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि मेरे प्रश्न का ठीक यही उत्तर था। नाम, स्थान और तिथि इतने सही ढंग से बताया जायेगा, उसकी मैंने कल्पना ही न की थी। अब मुझे ऐसा लगता है कि सचमुच कोई ऐसी नैसर्गिक शक्ति है, जिसने मेरे और साधु के बीच बातचीत का मार्ग स्थापित किया।”

कुछ दिन पूर्व अणुवत संघ के तत्वावधान में एक योग प्रदर्शन कार्यक्रम रखा गया था, उसमें अणुवत आन्दोलन के एक मुनि ने ऐसे चमत्कार दिखाये थे। तमाम देशों के राजदूत उसमें सम्मिलित थे। योगी ने अरब के राजदूत की धर्मपत्नी के बटुये में कितने नोट हैं, बताये थे।

मास्को न्यूज के २२ अगस्त अंक में एक वोल्दया देन्शिक नामक आठ वर्षीय बालिका का विवरण छपा है। यह बालिका अंधेरे में भी अपने होठों से देख लेती है। अत्यन्त सूक्ष्म लिखे कागज के ऊपर पच्चीसों कागज ढक देने पर भी वह सब कुछ बता देती है कि नीचे वाले कागज में क्या लिखा है।

यह सब आश्चर्य सी दिखने वाली बातें आत्म-विद्या की एक अरबों अंश सी छोटी किरण हैं। आत्मा की

ज्ञान-शक्ति अनन्त और अपार है, अपने शुद्ध और सनातन रूप में उसे जान लेने पर मनुष्य उसी तरह त्रिकालदर्शी हो जाता है, जैसे हमारे ऋषि थे।

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्

ब्रह्माण्डव्यापी चेतना को ब्रह्म के नाम से सम्बोधित कर भारतीय ऋषियों ने कहा है कि वह निराकार और निर्गुण होते हुए भी सब ओर से हाथ-पैर वाला तथा सब ओर से नेत्र, सिर और मुख वाला है। वस्तुतः ब्रह्म का या चेतना का कोई स्थूल स्वरूप आँखों से नहीं देखा जा सकता फिर भी ऐसी कोई घटना नहीं होती जिससे चेतना को अनभिज्ञ रखा जा सके अथवा किसी घटनाक्रम में उसके अस्तित्व को, कारण को अस्वीकारा जा सके।

जो विभु में है वही अणु में भी है, जो ब्रह्माण्ड में है वह कण में भी है तथा जो ब्रह्म में है; वही चेतन में भी है—भारतीय दर्शन के अध्येताओं से यह सिद्धान्त अनावगत नहीं है। सामान्य जगत में भी यह देखा जा सकता है। एक बीज में वृक्ष की तमाम विशेषतायें और सम्भावनायें सन्निहित होती हैं। समुचित खाद-पानी और पोषण प्राप्त कर बीज ही वृक्ष बनता है। माता-पिता के रजवीर्य में अपने ही समान एक नया प्राणी जन्म देने की क्षमता अन्तर्हित होती है। आत्मा, जिसे शरीर तक सीमित रहने वाली चेतना का एक कण समझा जाता है, विकसित होकर परमात्मा के समान विभूतियों और विशेषताओं की भण्डार बन जाती है।

विज्ञान पहले इन तथ्यों को नकारता आ रहा था; पर नकारने से तो कोई तथ्य असत्य नहीं हो जाता। जो घटनायें अनादि काल से घटती आ रही हैं, आज भी घटती हैं। यदा-कदा घटने के कारण वे विचित्र और चमत्कारी भी लगती हैं, परन्तु उनके पीछे चेतना विज्ञान के सुनिश्चित नियम काम करते हैं। पहले लम्बे समय तक उन्हें गप्प, भ्रम या मनगढ़न्त कहा जाता रहा; परन्तु विज्ञान उनकी ओर से और अधिक आँखें मूँद नहीं रह सका।

अब इन घटनाओं के वैज्ञानिक अध्ययन भी किये जाने लगे हैं, उनके निष्कर्षों को पुष्ट करने के लिए प्रयोगशालाओं में परीक्षण भी होते हैं तथा जो तथ्य विदित होते हैं उन्हें निर्विवाद रूप से प्रकाशित किया जाता है। उदाहरण के लिए बिना किसी बाहरी संसाधनों के मीलों दूर घटी घटनाओं का आभास ही लिया जाय। अध्यात्म की भाषा में इसे दूरबोध कहते हैं। आत्मा की यह सामर्थ्य लम्बी योग साधनाओं के अनवरत अभ्यास से प्राप्त होती है किन्तु यदा-कदा सामान्य स्थिति में भी इसकी अनुभूति हो जाती है।

कई व्यक्तियों को रहस्यमय अनुभव होते हैं और कभी पता चलता है कि उन्होंने जो अनुभव किया है वह अमुक स्थान पर ठीक उसी प्रकार घटा है। वैज्ञानिकों ने जब इन रहस्यों को उद्घाटित करने का बीड़ा उठाया तो एक से एक चौंका देने वाले तथ्य सामने आये और सिद्ध हुआ कि साढ़े पाँच फुट ऊँची सौ पौण्ड वजनी काया में ब्रह्माण्ड व्यापी चेतना संयुक्त और ओतप्रोत है।

प्रसिद्ध जीवशास्त्री प्रो० फ्रैंक ब्राउन ने कई प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि सृष्टि में जो असंख्य प्राणी हैं वे ऐसे संग्राहक रिसीवर हैं जो ब्रह्माण्ड के स्पन्दन तथा संवेदन ग्रहण करते रहते हैं। संग्राहक का काम करने वाले बहुत सूक्ष्म परमाणु बताये जाते हैं जिनमें घनत्व, भार, विस्फुटन, चुम्बकत्व आदि कोई भौतिक लक्षण नहीं होते हैं।

अन्य वैज्ञानिकों ने भी इस दिशा में खोज की पाया कि प्रो. फ्रैंक ब्राउन का मत एकदम सही है। संग्राहक का काम करने वाले इन चेतन परमाणुओं को 'न्यूगिनी' नाम दिया गया है। वैज्ञानिकों का कहना है कि ये अणु अरबों की संख्या में प्रकाश की गति से बहते रहते हैं। यहाँ तक कि ये अणु के भीतर से भी पार हो जाते हैं, इतने सूक्ष्म होते हैं। यदा-कदा इनमें कुछ विशेष क्रियाशीलता आती है। इसी से इन्हें देख पाना सम्भव होता है।

एण्ड्रिया ड्राब्स नामक वैज्ञानिक ने न्यूट्रिनो के आधार पर ही साइत्रोन अणु का पता लगाया और कहा कि साइत्रोन ही मस्तिष्क के न्यूट्रिनो कणों से जुड़कर पराचेतना को जाग्रत करता है। एक्सेल फरसॉफ नामक अन्तरिक्ष वैज्ञानिक ने तो तथ्यों और प्रयोगों के आधार पर यह प्रमाणित कर दिखाया कि मनुष्य को कभी अनायास ही विचित्र अनुभूतियाँ होती हैं। उनमें से कुछ खास तरह की अनुभूतियाँ माइण्डोन नामक कणों के हलचल में आने से होती हैं। जब ये कण सक्रिय होते हैं तो हमारा अवचेतन मन (सब काशंस) ब्रह्माण्डीय चेतना के साथ जुड़ जाता है। यदि उन अनुभूतियों को पहचाना, जगाया अथवा समझा जा सके तो व्यक्ति बैठे ठाले ही किसी भी ग्रह-नक्षत्र की बातें जान सकता है।

योग साधना भी एक विज्ञान है और उसके अपने सुनिश्चित सिद्धान्त हैं। विज्ञान का यह सिद्धान्त जिस प्रकार अपने आप में अकाट्य है कि हाइड्रोजन के दो अणु और ऑक्सिजन का एक अणु मिलकर पानी बनता है उसी प्रकार योगविज्ञान के भी अकाट्य, अनुभूत और परीक्षित सिद्धान्त हैं, जिन्हें अपनाकर अभीष्ट दिशा में असाधारण सामर्थ्य अर्जित कर लेता है।

वैज्ञानिक परीक्षणों से जिस प्रकार यह सिद्ध हो गया है कि मनुष्य के भीतर कई केन्द्रों में ऐसी गुप्त सामर्थ्य छिपी पड़ी है जो अनुकूल परिस्थितियों में ही प्रकट होती है। योगाभ्यास द्वारा उन परिस्थितियों का निर्माण ही किया जाता है। रूस, जहाँ के स्कूलों में यह सिखाया जाता है कि धर्म अफीम है और ईश्वर फ्रॉड है—में ही अब इस दिशा में बहुत कार्य होने लगा है। पिछले दिनों इन घटनाओं की वास्तविकता जाँचने के लिए कई परीक्षण किये गये।

गत २९ अप्रैल, १९७६ को कार्ल निकोलायेव नामक युवा वैज्ञानिक को मास्को से साइबेरिया भेजा गया। उद्देश्य था—दूरानुभूति के कुछ सिद्धान्तों का प्रायोगिक परीक्षण। साइबेरिया के नियत स्थान पर गोल्डन वैली होटल में कुछ सोवियत वैज्ञानिकों के साथ बैठा हुआ था। उसी समय सैकड़ों मील दूर मास्को स्थित एक 'इन्सुलेटेड' कक्ष में वैज्ञानिक यूरी कामेस्की अपने कुछ साथियों के साथ बैठा था। यूरी को नहीं बताया गया था कि उसे किस प्रकार का सन्देश भेजना है। ठीक आठ बजे एक वैज्ञानिक ने कामेस्की के हाथ में एक सीलबन्द पैकिट पकड़ा दिया। उस पैकिट में धातु की बनी एक स्प्रिंग थी जिसमें सात क्वाइल लगे थे।

कामेस्की ने उस स्प्रिंग को उठा लिया और क्वाइलों पर उँगुलियाँ फेरने लगा। उस समय कामेस्की ने कार्लनिकोलायेव का ध्यान किया और पूरी एकाग्रता के साथ यह कल्पना की कि वह उसके सामने बैठा है तथा उस स्प्रिंग को देख रहा है—फिर वह कार्ल की आँखों से वह स्प्रिंग और क्वाइल देख रहा है।

उसी समय, मास्को से १८६० मील दूर अपने वैज्ञानिक साथियों के बीच बैठे कार्ल ने कुछ अजीब सा अनुभव किया। जैसे उसे अपने हाथों में कोई वस्तु दिखाई दे रही हो। कुछ ही क्षणों बाद वह बोला गोल, चमकती हुई चीज; धातु से बनी हुई है—क्वाइल है।

इसके बाद कामेस्की ने मास्को से एक पेचकश का चित्र देखा तो कार्ल ने उसका विवरण भी शब्दशः बता दिया। कार्ल निकोलायेव ने टैलीपैथी को सिद्ध करने में बड़ी मेहनत की है। एक प्रेस सम्मेलन में कार्ल ने इन प्रयोगों के सन्दर्भ में कहा है—टैलीपैथी के क्षेत्र में मैंने जो सफलता प्राप्त की है वह हर कोई प्राप्त कर सकता है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति में अन्तःशक्ति विद्यमान होती है। इसीलिए मैं अपनी योग्यता को विज्ञान की कसौटी पर कसा जाना महत्वपूर्ण मानता हूँ। यदि मैं ऐसी योग्यता प्राप्त कर सकता हूँ तो कोई कारण नहीं कि आप ऐसी योग्यता प्राप्त न कर सकें।

‘यह विद्या आपने कहाँ से सीखी?’ इस प्रश्न के उत्तर में कार्ल निकोलायेव ने बताया कि ‘बचपन में उन्हें योग पर किसी भारतीय महात्मा द्वारा लिखी हुई एक पुस्तक प्राप्त हो गयी थी। उसी से प्रेरणा प्राप्त कर मैं अपने मित्रों से कहने लगा कि वे मुझे कोई मानसिक आदेश दें। आगे चलकर मैंने योगदर्शन, राजयोग, प्राणायाम आदि साधनाओं का ११ वर्ष तक अभ्यास किया। इसका परिणाम वर्तमान सफलता के रूप में प्रस्तुत है।

इस क्षेत्र का और अधिक गहरा अध्ययन करने के लिए रूस ने भारत सरकार से कुछ योगियों को जिन्होंने योग साधना के क्षेत्र में उल्लेखनीय सफलतायें अर्जित की थीं—रूस भेजने के लिए भी आग्रह किया था। न केवल रूस में वरन् अन्य पश्चिमी देशों में भी इस प्रकार के प्रयोग सफलतापूर्वक किये गये हैं। तथा इस दिशा में बहुत आगे पहुँच गये व्यक्तियों से कई महत्वपूर्ण कार्यों में सहयोग लिया गया है।

चेकोस्लोवाकिया के व्रतिस्लाव कापका ने पराशक्ति के सम्बन्ध में अनेकों अद्भुत प्रयोग किये हैं। उन्होंने एक प्रयोगशाला भी स्थापित कर रखी है। कहते हैं कि द्वितीय महायुद्ध में जब मित्र राष्ट्रों के अधिकारियों को युद्ध की स्थिति के बारे में कुछ पता नहीं चलता था तो वे बेतिस्लाव कापका की ही सहायता लेते थे। कापका अपनी प्रयोगशाला में कार्यरत दूसरे मनोवैज्ञानिक को समाधिस्थ कर देते तथा उससे वही प्रश्न करते। प्रायः यह जानकारी सही निकलती थी।

प्रश्न उठता है कि परमात्मा ने यह सामर्थ्य क्या केवल मनुष्य को ही प्रदान की है ? उत्तर एक ही है—उसे अपनी सभी सन्तानें समान रूप से प्रिय हैं और उसने सभी प्राणियों में विभिन्न सम्भोजनाओं के बीज बो रखे हैं। क्योंकि शरीर भेद होने पर भी आत्मा तो सबमें समान रूप से विद्यमान है। अन्य प्राणियों की अलौकिक क्षमता का अध्ययन करने के लिए पिछले दिनों रूस में ही खरगोश पर एक प्रयोग किया गया।

सर्वविदित है कि पानी के भीतर पनडुब्बी से जमीन पर बैठे व्यक्ति का किसी भी प्रकार कोई सम्पर्क सम्भव नहीं है। यहाँ तक कि रेडियो और बेतार के तार भी काम नहीं कर सकते। पराशक्ति की अनुभूति का प्रयोग करने के लिए रूस के वैज्ञानिकों ने एक पनडुब्बी में खरगोश के बच्चों को बन्द कर दिया और उनकी माँ को बाहर जमीन पर एक प्रयोगशाला में रखा गया। खरगोश के बच्चों को पानी में उतारने से पूर्व उनके मस्तिष्क में ‘इलेक्ट्रोड्स’ लगा दिये गये थे। जब पनडुब्बी

समुद्र में बहुत नीचे चली गयी तो उसमें मौजूद व्यक्तियों ने एक-एक करके खरगोश के बच्चों की हत्या कर दी। मादा खरगोश को इस हत्या के विषय में कोई जानकारी नहीं थी; पर ठीक उसी समय जबकि समुद्रतल में उसके बच्चों की हत्या की जा रही थी, मादा खरगोश के मस्तिष्क में वैसी ही प्रतिक्रियायें नोट की गयीं जैसे उसके सामने ही बच्चों को मारा गया हो।

यह चेतना हर प्राणी में विद्यमान देखी गयी है। कारण स्पष्ट है कि आत्मा केवल मनुष्य में ही नहीं है, जीव-जन्तुओं, पेड़-पौधों और कीड़े-मकोड़ों में भी है। कई बार आत्मा की यह सामर्थ्य मनुष्यों की अपेक्षा दूसरे प्राणियों में ज्यादा देखी जाती है, जिन्हें अबोध, बुद्धिहीन और मनुष्य की तुलना में सृष्टि का तुच्छ घटक समझा जाता है। इस सन्दर्भ में तत्त्वदर्शियों का कहना है कि मनुष्य ने अपने जीवन में कृत्रिमता, राग-द्वेष, ईर्ष्या, डाह आदि विकारों के कारण उस शक्ति स्रोत को कमजोर बना लिया है अथवा उस पर पर्दा डाल दिया है।

महर्षि पातञ्जलि ने यम-नियमों के दृढ़तापूर्वक पालन करने और व्यक्तित्व, चरित्र को निष्कलुष, निर्विकार बना लेने मात्र से उन सभी सिद्धियों के करतलगत होने की बात कही है, जिन्हें लोग लम्बी तप-साधनाओं से प्राप्त होने की बात करते हैं। मैले दर्पण को साफ कर लेने पर जिस प्रकार उसमें स्पष्ट छवि देखी जा सकती है, उसी प्रकार अपनी अन्तरंग चेतना पर चढ़े मलीनता के आवरणों को हटाकर उसमें संसार की दृष्ट-अदृष्ट सभी वस्तुओं, घटनाओं को देखा जा सकता है, इसमें कोई दोराय नहीं है।

न यंत्र न विज्ञान फिर भी

दूरवर्ती का ज्ञान

शरीर के एक भाग में चोट पहुँचती है तो पूरे शरीर को इसकी तत्काल सूचना पहुँच जाती है और प्रत्येक अंग अपनी सामर्थ्य के अनुसार संकटग्रस्त अंग की सहायता के लिए तत्पर हो जाते हैं। पैर के अँगूठे में घाव हो जाने पर आँख में आँसू, चेहरे पर घबड़ाहट, हाथ में कँपकँपी और मस्तिष्क में विचार, समस्याओं से उबरने के उपाय उत्पन्न होने लगते हैं। इसका कारण यह है कि पूरा शरीर एक ही चेतना से ओत-प्रोत है। परन्तु यह भी नहीं मान लेना चाहिए कि वह चेतन सत्ता केवल शरीर तक ही सीमित है। शरीर के बाहर भी वह चेतना अखिल विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त है और अपने शरीर में विद्यमान चेतना को परिष्कृत, निर्मल तथा विशुद्ध बनाया जा सके तो संसार के किसी भी कोने में घटने वाली

घटना का तत्काल पता लगाया जा सकता है जैसे वह अभी भी आँखों के सामने घट रही हो।

सैकड़ों मील दूर टेलीविजन स्टेशन पर कोई फिल्म का दृश्य दर्शाया जाता है और वह दूर पड़े टी० वी० सैट पर ज्यों का त्यों देखा जा सकता है। रेडियो से हजारों मील दूर स्थित रेडियो स्टेशन पर प्रसारित समाचारों, सूचनाओं और विवरणों को शब्दशः सुना जा सकता है। आधुनिक विज्ञान ने जड़ साधनों द्वारा भी हजारों मील दूर सम्पर्क सूत्र तत्काल स्थापित करने में सफलता प्राप्त कर ली है फिर चेतना तो उससे हजार गुना समर्थ और लाख गुना शक्तिशाली है।

महाभारत का युद्ध कहीं लड़ा जा रहा है और अन्धे घृतराष्ट्र के पास राजमहल में बैठा संजय युद्ध का आँखों देखा विवरण बता रहा होता है। दूरबोध-परोक्ष दर्शन की सैकड़ों घटनायें शास्त्रों में भरी पड़ी हैं। प्रत्येक धर्म के इतिहास में इसके प्रमाण बिखरे पड़े हैं परन्तु आधुनिक विज्ञान का ध्यान करीब १०० वर्ष पूर्व ही इस ओर गया था। दूरबोध (क्लेअरवायेन्स) की ही तरह चेतना के माध्यम से दो विभिन्न दूरियों के बीच सम्बन्ध सूत्र जोड़ने का एक और प्रकार है, विचार संप्रेषण (टैलिपैथी)। लगभग १०० वर्ष पूर्व इंग्लैण्ड के वैज्ञानिक ए० ए० क्रीरी ने विचार संप्रेषण के सफल प्रयोग किये। इसके लिए उन्होंने कुछ छोटे-छोटे प्रयोग किये। इन प्रयोगों में उन्होंने अपनी पुत्रियों अथवा नौकरानियों को कमरे से बाहर भेजकर कमरे के भीतर की किसी वस्तु पर अपना ध्यान केंद्रित करने के लिए कहा। इन प्रयोगों के उत्साहजनक परिणाम सामने आये। बाहर गयी हुई युवतियों द्वारा दिये गये सही उत्तरों की संख्या इतनी अधिक पायी गयी कि उनके निष्कर्षों की ओर अनेक शोधकर्ताओं का ध्यान गया। डबलिन विश्वविद्यालय के प्रो० सर विलियम बैरट इंग्लैण्ड की सोसायटी फ़ोर साइकिकल रिसर्च के अध्यक्ष प्रो० सिजविंग व सोसायटी के सदस्यों ने भी क्रीरी के इन प्रयोगों की जाँच की और सामान्य अवस्था में भी विचार-संप्रेषण को थोड़े से अभ्यास द्वारा सम्भव, साध्य बताया।

रेडियो और टी० वी० कार्यक्रमों के प्रसारण में ध्वनि तथा दृश्य को तरंगों में रूपान्तरित भर कर दिया जाता है। उन तरंगों की रेडियो या टी० वी० सैट पकड़ते हैं तथा वापस ध्वनि या दृश्य में बदल देते हैं। विचारों की तरंगें ध्वनि और प्रकाश की तरंगों से बहुत अधिक सूक्ष्म होती हैं। ध्वनि और दृश्य तो कान और आँखों से भी सुने, देखे जा सकते हैं। इस तरह उनका एक प्रकट स्वरूप भी है परन्तु विचार तो जब तक स्थूल

माध्यमों द्वारा व्यक्त नहीं किये जाते, तब तक किसी को उनका पता ही नहीं चलता अर्थात् स्वरूपतः ही वे सूक्ष्म हैं और चेतना के निकट भी। पश्चिमी देशों में आजकल इस क्षेत्र में काफी शोध की जा रही है और इसमें काफी सफलता भी प्राप्त हो रही है। यह अनुभव किया जाने लगा है कि टैलीपैथी एकाग्रचित्त, ध्यान के केन्द्रियकरण तथा मानसिक शक्तियों की साधना से सिद्ध की जा सकती है। परन्तु परोक्ष दर्शन (क्लेयर वायन्स) के सम्बन्ध में वैज्ञानिक अभी भी मौन हैं।

डॉ० एण्डरीना पुहरिच ने, जो अमेरिका के सुप्रसिद्ध मनोचिकित्सक हैं, टैलीपैथी पर वर्षों तक अध्ययन किया तथा उनके आधार पर कुछ सिद्धान्त निश्चित किये। उनके अध्ययन में आधी दो प्रमुख घटनायें इस प्रकार हैं। सॉलिमॉस (कैलिफोर्निया) निवासी श्रीमती हायेस ने सुबह होते-होते एक सपना देखा। उनका पुत्र जॉन हायेस कार में घूमने जा रहा है। रास्ते में कार दुर्घटनाग्रस्त हो जाती है। जॉन का शरीर बहुत अधिक रक्त निकल जाने के कारण पीला पड़ गया है। जॉन लेटा हुआ है और उसका शरीर कपड़े से ढका है।” यह सपना देखकर श्रीमती हायेस की नींद टूट गयी और नीचे आकर उन्होंने सेंट जॉस स्टेट कॉलेज में फोन किया जहाँ जॉन पढ़ता था। उस समय तक कॉलेज अधिकारियों को ऐसी किसी भी दुर्घटना की जानकारी नहीं थी। उन लोगों को यह भी मालूम नहीं था कि इस समय जॉन कहाँ है?

इस घटना का उल्लेख डा० एण्डरीना पुहरिच ने अपनी पुस्तक “बिगॉण्ड टैलिपैथी” में किया है तथा लिखा है कि कॉलेज फोन करने के बाद भी श्रीमती हायेस का चित्त बेहद अज्ञान्त रहा। बारह घण्टे बाद हायेस के फोन की घण्टी बजी। हायेस ने फोन उठाया। फोन उसी कॉलेज से आया था और बताया जा रहा था कि कार दुर्घटना में जॉन को चोटें आयी हैं। उस समय लगभग साढ़े पाँच बजे का समय था।

श्रीमति हायेस ने भी इसी समय स्वप्न में दुर्घटना का आभास प्राप्त किया था। इस घटना और श्रीमति हायेस को हुए परोक्ष आभास की संगति के कारणों का अध्ययन करने के लिए डा० पुहरिच ने जॉन से पूछा कि क्या वह दुर्घटना के समय अपनी माँ के बारे में सोच रहा था तो जॉन का कहना था कि दुर्घटना इतने कम समय में हो गयी कि उसके पास अपनी माँ या किसी और बात के बारे में सोचने के लिए समय नहीं था।

इसी पुस्तक में एक और प्रमाणिक घटना का उल्लेख किया गया है। अमेरिका के ही बोस्टन शहर में जैक सुल्लीवान नाम का एक मजदूर खाइयों में लगे पानी के पाइप ठीक करने का काम किया करता था एक दिन वह वाशिंगटन स्ट्रीट में अकेला खाई में पाइप की बेल्टिंग कर रहा था। काम का समय समाप्त हो गया था। तभी खाइयों को बन्द करने वाला एक दस्ता वहाँ आया और उन्होंने यह समझकर कि खाई में कोई नहीं है, खाई को बन्द कर दिया। सुल्लीवान उसी खाई में दब गया।

उस स्थान के पाँच मील दूर काम कर रहे सुल्लीवान के मित्र वेल्डर टामी विटकर को अचानक इस प्रकार की कल्पना आयी कि उसके मित्र को खाई में बन्द कर दिया गया है। टामी का कहना था कि पता नहीं किस प्रकार यह विचार मेरे दिमाग में आया और काम करते-करते ही मैं सोचने लगा कि वाशिंगटन स्ट्रीट जाऊँ और अपने मित्र के बारे में मालूम करूँ। मैं वाशिंगटन स्ट्रीट पहुँचा तो मैंने देखा कि वास्तव में गलती से सुल्लीवान खाई में दब गया है और इस बात का किसी को पता नहीं चल सका है। टामी ठीक समय पहुँचा था, उस समय सुल्लीवान अपने जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था। सुल्लीवान को खाई खोदकर बचा लिया गया।

“बिगॉण्ड टैलिपैथी” में डॉ० पुहरिच ने बताया है कि शरीर की दो अवस्थाएँ दूरवर्ती घटनाओं का आभास करा देती हैं। पहली दशा को “कोलिनर्जिया” कहा गया है, जिसमें शरीर पूर्णतः शिथिल होता है तथा आराम कर रहा होता है। दूसरी दशा को “एडरेनर्जिया” बताया गया है, उस स्थिति में शरीर पूरी तरह तनावग्रस्त रहता है। ऐसी स्थिति में शरीर या चेतना सन्देशों का सम्प्रेषण करती है।

योग साधनाओं द्वारा मनुष्य वह सामर्थ्य भी विकसित कर लेता है, जिसमें एक स्थान पर बैठे-बैठे ही दूरवर्ती स्थानों पर क्या हो रहा है ? यह जान लेता है। उस स्थिति में व्यक्ति की चेतना शरीर तक ही सीमित नहीं रहती बल्कि विराट चेतना से एकाकार हो जाती है। जिस प्रकार अँगूठे में आयी चोट की सूचना तुरन्त मस्तिष्क को और वहाँ से रोम-रोम तक पहुँच जाती है, उसी प्रकार विश्व ब्रह्माण्ड के किसी भी क्षेत्र में घटने वाली घटना का प्रभाव वहीं तक सीमित नहीं रह जाता। पानी में फेंके गये ढेले के कारण उठने वाली लहरों की

तरह उसकी तरंगें सर्वत्र व्याप्त हो जाती हैं। योग साधनाओं द्वारा परिष्कृत अन्तःकरण और निर्मल चित्त हुए व्यक्ति उन तरंगों को पकड़ने में समर्थ हो जाते हैं। अनायास होने वाली परोक्ष अनुभूतियाँ चेतना की इसी सामर्थ्य का परिचय देती हैं और व्यक्ति को जड़ में ही उलझे न रहकर उससे भी सामर्थ्यवान चेतन को विकसित करने की प्रेरणायें देती हैं।

रहस्यमयी आत्मविद्या के अन्वेषण की आवश्यकता

यह संसार जितना विस्तृत है उसके रहस्य उससे भी अधिक गहन हैं। हमें उन रहस्यों को समझने के लिए मस्तिष्क खुला रखना चाहिए और तथ्य एवं प्रमाणों के आधार पर जो भी सत्य सिद्ध हो उसे स्वीकार करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

जो हम जानते या मानते हैं सर्वांगपूर्ण नहीं है। अभी उसमें सुधार और परिष्कार की बहुत गुंजायश है। यह क्रम अनन्तकाल तक चलता रहेगा क्योंकि मनुष्य की बुद्धि का क्षेत्र और विकास का क्रम बढ़ते रहने पर भी उसमें अपूर्णता बनी ही रहेगी। प्रकृति की परिधि निस्संदेह मनुष्य की समझ से कहीं अधिक बड़ी है। इसलिए बौद्धिक विकास के साथ-साथ नवीन तथ्यों के सामने आने और नवीन रहस्यों का उद्घाटन होने का सिलसिला बना ही रहेगा।

किसी समय मनुष्य ने आत्म-विज्ञान पर बहुत अधिक ध्यान दिया था और प्रयत्न करके अनेक ऐसी उपलब्धियाँ प्राप्त की थीं, जिन्हें आज अद्भुत और आश्चर्य समझा जाता है। आज भौतिक विज्ञान पर ध्यान दिया गया है और ऐसी उपलब्धियाँ प्राप्त की गई हैं जो प्राचीनकाल के लोगों की दृष्टि में अद्भुत और आश्चर्य समझी गई होंगी। आज से हजार वर्ष पूर्व का मनुष्य यह विश्वास करने को शायद ही तैयार होगा कि भविष्य में रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन, रेल, मोटर, वायुयान, कम्प्यूटर, अणु, आयुध जैसे आविष्कार सम्भव हो जायेंगे। जब जो वस्तु सामने होती है, उसे सामान्य कहते हैं और जिसका प्रचलन नहीं है उसी को अद्भुत और अविश्वस्त मानते हैं।

आध्यात्मिक अन्वेषणों, रहस्यों और उपलब्धियों के बारे में भी यही बात है। इस प्रकार के प्रसंग जब सामने आते हैं तो उन अलौकिकताओं को आश्चर्य ठहरा दिया जाता है। किम्बदन्तियों और दन्त कथाओं का प्रचलन

अधिक हो जाने से ऐसा अविश्वास उचित भी है। किन्तु हमें आग्रही होना चाहिए और तथ्यों के आधार पर अपनी मान्यताओं में हेर-फेर करने की कोमलता मस्तिष्क में बनाये रहनी चाहिए।

भौतिक वैज्ञानिकों द्वारा प्रकृति के अन्तराल में छिपे हुए नित नये रहस्यों का उद्घाटन होता रहता है। आत्मिक-विज्ञान की दिशा में भी यदि वैसा ही अन्वेषण-परीक्षण चल पड़े, उस दिशा में भी प्रयोग के लिए उत्साह उत्पन्न हो जाय तो ऐसे तथ्य सामने आ सकते हैं, जो आज समझ में नहीं आते किन्तु कल उन्हें सिद्धान्त घोषित किया जा सकता है।

अन्वेषण के लिए व्यापक क्षेत्र खाली पड़ा है। फिलीपीन के एक तान्त्रिक की ऐसी ही एक उपलब्धि साप्ताहिक 'धर्म-युग' में छपी है। उससे प्रतीत होता है कि संसार में ऐसी रहस्यमय शक्तियाँ भी विद्यमान हैं, जिनको यदि सर्वसाधारण के लिए उपलब्ध किया जा सके तो मानवीय कष्टों की निवृत्ति में महत्वपूर्ण योगदान मिल सकता है। घटना इस प्रकार है—

फिलीपीन में एक आश्चर्यजनक चिकित्सक है—टोनी एप गोआ। उसकी चिकित्सा प्रणाली इस युग के चिकित्साशास्त्रियों को अचरज में डालती है। वे उसे देखने जाते हैं। उसकी प्रणाली देखते हैं, तो चकित रह जाते हैं पर समझ नहीं पाते कि उसका कारण क्या है और यह सब कैसे सम्भव होता है?

२७ वर्षीय तान्त्रिक टोनी चिकित्सा व्यवसाय करता है। मुख्य रूप से वह शल्य-चिकित्सक है। ट्यूमर कैन्सर, मोतियाबिन्द के आपरेशन करता है और विकृत बाधा शरीर में से निकालकर बाहर रख देता है। उसके पास न चाकू है और न कैन्ची, न सुई फिर भी आपरेशन करते रहना एक अद्भुत काम है। जो जादू जैसा प्रतीत होता है।

टोनी क्लेजन के कुवाओं इलाके में दो मंजिल मकान में रहता है। ऊपर अपने परिवार सहित खुद रहता है नीचे उसका अस्पताल। विभिन्न रोगों से ग्रस्त आपरेशन योग्य रोगी ही उसके पास आते हैं, उन्हें वह एक मेज पर लिटाता है मन्त्र पढ़ता है। चाकू का काम उसका हाथ करता है। काटने-फाड़ने चीरने की क्रिया वह उंगली से करता है। ट्यूमर, कैन्सर, गाँठ, मवाद आदि को भीतर से निकालकर बाहर रख देता है। इसके बाद वह बिना सुई के घाव को जोड़ देता है। इस बीच उसका चचेरा भाई एल्फ्रेडो उसके साथ रहता है और तौलिया देने, चीजें उठाने का काम करता रहता है। थोड़ा खून तो निकलते

देखा जाता है पर रोगी को दर्द जरा भी नहीं होता और आपरेशन ठीक और सम्पन्न हो जाता है। प्रतिदिन ऐसे १० से लेकर बीस तक आपरेशन उसे करने पड़ते हैं।

रोगियों की—प्रशंसकों की भारी भीड़ उसे घेरे रहती है। पहले वह फिलीपीन की राजधानी मनीला में रहता था। ख्याति के साथ-साथ भीड़ बढ़ी तो उसने वह स्थान छोड़ दिया। नई जगह में उसने नाम का बोर्ड आदि कुछ नहीं लगाया है तो भी लोगों ने पता वहाँ पर लगा लिया और रोगी वहाँ भी पहुँचते हैं। जो आधुनिक आपरेशनों से सम्भव है वह कर देने का दावा तोनी भी करता है। उसकी चिकित्सा विधि देखने डाक्टर वैज्ञानिक आते हैं और सारे क्रिया-कृत्य के फोटो फिल्म ले जाते हैं पर इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाते कि यह असम्भव दिखने वाली बात सम्भव कैसे हो पाती है।

टोनी एप गोआ अपने इस कार्य का श्रेय किसी देवता को देता है। कहता है—उसका 'अद्भुत रक्षक' जो कराता है वह वही करता है। आपरेशनों में वही उसके साथ रहता है और सहायता करता है। इसके अतिरिक्त उस देवता के बारे में वह कुछ अधिक नहीं बताता।

मियामी फ्लोरिडा के वेल्क पैरा साइकोलोजी रिसर्च फाइनडेशन के प्रतिनिधि डॉ. बनर्जी वहाँ गये। यह सब देखा, क्रिया-कलाप के फोटो भी लाये पर इस निष्कर्ष पर न पहुँच सके कि यह सब कैसे और क्यों कर सम्भव होता है ?

क्या मनुष्य के भीतर ऐसी अद्भुत शक्तियाँ हैं, जिनसे वह मानवीय कष्टों के सरल करने की जटिल प्रक्रियाओं को सरल कर सके ? क्या कोई अदृश्य शक्ति और आत्माएँ विद्यमान हैं जो इस प्रकार के कार्यों में मनुष्य का सहयोग कर सकें ? क्या अतीन्द्रिय विज्ञान और गूढ़-विद्या में ऐसी सम्भावनायें विद्यमान हैं, जो मनुष्य की वर्तमान क्षमता में अधिक वृद्धि कर सकें और उसे अधिक सुखी एवं सफल बना सकें ? इन प्रश्नों का समाधान ढूँढ़ने के लिए हमें अपना मस्तिष्क खुला रखना चाहिए। फिलीपीन जैसी घटनायें प्रायः हर देश में समय-समय पर उपलब्ध होती रहती हैं। हमें बिना अन्ध-विश्वासी और अविश्वासी बने तथ्यों का अन्वेषण करना चाहिए।

उपेक्षित और लुप्त प्रायः आत्म-विज्ञान की यदि अन्वेषण और प्रयोगों का क्षेत्र मान लिया जाय और उसके लिए भौतिक विज्ञानियों जैसी तत्परता बरती जाय

तो अगले दिनों ऐसे अनेक उपयोगी रहस्य उद्घाटित हो सकते हैं जो भौतिक आविष्कारों से भी अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकें।

अद्वैत आत्मा की अद्वैत अनुभूतियाँ

सन् १९४३ की रात, द्वितीय महायुद्ध, पैसफिक् सागर में तेरहवीं एअर फ़ोर्स बटालियन के कमाण्डर जनरल नेथान एफ ट्वीनिंग दुर्भाग्यवश युद्ध के दौरान अपने बेड़े से अलग-अलग पड़ गये। वे एस्पेराइट सान्तो एअर बेस के लिए अपने चौदह साथियों के साथ रवाना हुये थे। युद्ध के दिन थे ही, बहुत खोज की गई पर उनका व उनके साथियों का कुछ भी पता नहीं चला।

जनरल नेथॉन की पत्नी उस समय अमरीका में अपने घर में सो रही थीं। प्रगाढ़ निद्रा के समय उन्हें लगा उनके पति उनके पास खड़े हैं और बेचैनीपूर्वक उसे जगा रहे हैं। श्रीमति ट्वीनिंग ने अपने पति का मुँह और हाथ स्पष्ट देखा उन्होंने पति के हाथ पकड़ने चाहे तभी उनकी एकाएक नींद टूट गई। स्वप्न उन्होंने पहले भी देखे थे किन्तु यह स्वप्न उनसे विचित्र था। जग जाने पर भी वह ट्वीनिंग को इस प्रकार रोमांचित कर रहा था कि उनकी गर्दन के बाल सिहरकर खड़े हो गये थे।

उसके बाद उन्हें नींद नहीं आई। रात पूरी जागकर बित गई। सबेरा हो चला था। तभी एकाएक टेलीफोन की घण्टी बजी। उनकी एक सहेली का फोन था। उसके पति भी दक्षिणी पैसफिक् सागर पर सैनिक अफसर थे इसलिये श्रीमती के हृदय में रात की रोमांचकारी घटना ने फिर एक बार उत्तेजना उत्पन्न की। उन्होंने जल्दी-जल्दी में पूछा—कहो सब ठीक तो है ना! उधर से आवाज आई सब ठीक है पर मेरा मन न जाने क्यों बड़ी देर से बार-बार तुम्हें ही याद कर रहा है। मैंने तुम्हारे पास आने का निश्चय किया है कहीं जाना मत, मैं दो तीन दिन में ही तुम्हारे पास आ रही हूँ।

श्रीमती ट्वीनिंग को अब भी आशंका थी कि उसे कोई बात कहनी है, जो अभी छिपाई जा रही है किन्तु जब वे घर आईं, तब भी ऐसी कोई बात उन्होंने नहीं बताई। इतने पर भी श्रीमती ट्वीनिंग की उस स्वप्न आशंका गई नहीं।

दो दिन रहकर जब उनकी सहेली वापस लौट गई तब श्रीमती ट्वीनिंग को सरकारी तौर पर जानकारी दी गई कि उनके पति अपने बेड़े के साथ लापता हैं, उनकी खोज की जा रही है। खोज करने वाले अधिकारी नियुक्त कर दिये गये हैं। इस समाचार से उनका मन बड़ा व्यग्र

जिसमें यह बताया गया था कि जहाज मिल गया है और श्री ट्वीनिंग शीघ्र ही उनसे मिलने आ रहे हैं।

भेंट होने पर श्रीमती ट्वीनिंग ने उस रात के स्वप्न वाली बात बताई इस पर श्री ट्वीनिंग ने बताया कि सचमुच उस दिन ठीक उसी समय वे संकट में पड़े थे जिस समय उन्होंने स्वप्न देखा। उन्होंने यह भी बताया कि कितने आश्चर्य की बात है कि ठीक उसी समय मुझे तुम्हारी (उनकी पत्नी की) तीव्र याद आई थी इस पारस्परिक अनुभूति का कारण क्या हो सकता है? इसके अतिरिक्त जिस आफिसर ने खोज की वह उनकी सहेली का ही पति था, उसे किसने वहाँ आने के लिये प्रेरित किया यह सब ऐसे रहस्य है, जो मनुष्य को बताते हैं जीवन में जो कुछ प्रकट है वही सत्य नहीं वरन् सत्य का सागर तो अदृश्य में छुपा हुआ है और वह विचित्र संयोगों के मध्य प्रकट हुआ करता है।

सत्य की खोज में “इन सर्व ऑफ दि टुथ” पुस्तक में इस घटना का हवाला देते हुये श्रीमती रूथ मान्टगुमरी लिखती हैं कि युद्धों के समय पाशविक वृत्तियाँ एकाएक आत्म-मुखी हो उठती हैं, तब कैसे भी व्यक्तियों को अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ स्पष्ट रूप से होने लगती हैं। युद्ध के मैदानों में लड़ने वाले सैनिक और उनके सम्बन्धी रिश्तेदारों के बीच एक प्रगाढ़ भावुक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, वही इन अति मानसिक अनुभूतियों की सत्यता का कारण होता है। ध्यान की गहन अवस्था में होने वाले भविष्य की घटनाओं के पूर्वाभास भी इसी कारण होते हैं कि उस समय एक ओर से मानसिक विद्युत दूसरी ओर से पूरी क्षमता के साथ सम्बन्ध जोड़ देती है और जिस प्रकार लेजर यन्त्र, दूरदर्शी (टेलीविजन) यन्त्र हमें दूर के दृश्य व समाचार बताने दिखाने लगते हैं, उसी प्रकार यह भाव सम्बन्ध हमें दूरवर्ती स्थानों की घटनाओं के सत्य आभास कराने लगते हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध की ही एक अन्य घटना का उल्लेख अपने इसी अध्याय में करते हुये श्रीमती रूथ मान्टगुमरी ने लिखा है कि चेकोस्लोवाकिया तथा थाईलैण्ड के भूतपूर्व राजदूत जो उसके बाद ही जापान के राजदूत नियुक्त हुये, श्री जानसन तब मुकड़ेन नगर में थे। युद्ध की आशंका से बच्चों को अलग कर दिया गया। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती पैट्रोसिया जानसन ने कैलीफोर्निया के लैगुना बीच में एक मकान ले लिया और वहीं रहने लगीं।

इसी बीच श्रीमती जानसन ने कई बार जापान के समाचार जानने के लिये अपना रेडियो मिलाया पर रेडियो

ने वहाँ का मीटर पकड़ा ही नहीं। एक दिन पड़ोस की एक स्त्री ने बताया कि उनका रेडियो जापानी प्रसारणों को (रेडियो ब्राडकास्टिंग) खूब अच्छी तरह पकड़ लेता है। तीन महीने तक श्रीमती जानसन ने इस तरफ कुछ ध्यान ही नहीं दिया। एक दिन उन्हें एकाएक रेडियो सुनने की इच्छा हुई। वे तुरन्त पड़ोस के घर गईं। रेडियो का स्विच घुमाया ही था कि आवाज आई—“हम रेडियो स्टेशन मुकड़ेन से बोल रहे हैं अब आप एक अमेरिकन आफिसर वी० जानसन को सुनेंगे।”

विस्मय विस्फारित श्रीमती जानसन एकाग्रचित्त बैठ गईं। अगले ही क्षण जो आवाज आई वह उनके पति की ही आवाज थी। वे बोल रहे थे—मैं वी. एलेक्सिस जानसन मुकड़ेन से बोल रहा हूँ जो भी कैलीफोर्निया अमेरिका का नागरिक इसे सुने कृपया मेरा सन्देश मेरी पत्नी पैट्रोसिया जानसन या मेरे माता-पिता श्री व श्रीमती कार्ल टी० जानसन तक पहुँचायें और बतायें कि मैं यहाँ कैद में हूँ। स्वस्थ हूँ, खाना अच्छा मिलता है और आशा है कि कैदियों की अदला-बदली में शीघ्र ही छूट जाऊँगा, अपनी पत्नी और बच्चों को प्यार भेजता हूँ।

दो माह पीछे जानसन कैदियों की बदली में छूट कर आ गये। पैट्रोसिया पति से मिलने गई तो वहाँ उसे पति से क्षणिक भेंट होने दी गई क्योंकि कुछ समय के लिये श्री एलेक्सिस जानसन को तुरन्त जहाज पर जाना था। पैट्रोसिया को थोड़ी ही देर में घर लौटना पड़ा। उसकी सहेलियाँ उसे घुमाने ले गईं पर अभी वे एक सिनेमा में बैठी ही थीं कि पैट्रोसिया एकाएक उठकर बाहर निकल आई और अपने घर को फोन मिलाया तो दूसरी ओर से अलेक्सिस जानसन बोले और बताया कि मैं यहाँ हूँ मुझे जहाज में नहीं जाना पड़ा। पैट्रोसिया सिनेमा छोड़कर घर चली आईं।

३ माह तक कभी भी रेडियो सुनने की आवश्यकता अनुभव न करना और ठीक उसी समय जबकि पति संदेशा देने वाले हों रेडियो सुनने की अन्तःकरण की तीव्र प्रेरणा का रहस्य क्या हो सकता है? कौन-सी शक्ति थी जिसने पैट्रोसिया को सिनेमा के समय फोन पर पहुँचने की प्रेरणा दी जब इन बातों पर विचार करते हैं तो पता चलता है कि कोई एक अदृश्य शक्ति है अवश्य, जिसने मानव मात्र को एक भावनात्मक सम्बन्ध में बाँध अवश्य रखा है। हम जब तक उसे नहीं जानते तब तक मनुष्य शरीर की सार्थकता कहाँ ?

मन की परतों में छिपी विलक्षणताएँ

अन्तराल को यदि व्यक्ति तनिक साध-सुधार, और परिष्कृत-विकसित कर ले, तो वह न सिर्फ अपना, वरन् अन्य अनेकों का कल्याण उससे कर सकता है।

घटना सन् १९१४ की जनवरी माह की है। एक व्यक्ति अपने सीने से चिपकाये एक किशोर को लिये बेतहाशा दौड़ा चला जा रहा था और किशोर बुरी-तरह चीखता-चिल्लाता जा रहा था। अलबामा नदी तट पर स्थित सेल्मा शहर के मिनेटा मुहल्ले की खिड़कियाँ और उसके साथ दरवाजे खड़खड़ाकर खुलने लगे, यह देखने के लिए कि आखिर बात क्या है? उस मुहल्ले में रहने वाले डॉ. युजिन भी जिज्ञासावश निकल पड़े, तो पता चला कि एक व्यक्ति अपनी गोद में एक बालक को लेकर दौड़ रहा है जो कि जल गया है। पीछे-पीछे वे भी अस्पताल पहुँच गये। वहाँ पहले से ही भीड़ इकट्ठी थी। उन्होंने बालक को देखा तो पता चला कि उसका चेहरा बुरी तरह झुलस गया है। यह सब कैसे हुआ ? उसके जवाब में पिता ने संभावना व्यक्त की कि 'फ्लोटो फ्लैश' का पाउडर फर्श पर बिखरा पड़ा था। अनुमान लगाया जाता है कि मेरी अनुपस्थिति में किशोर ने उसे इकट्ठा किया और माचिस जलायी होगी। इससे ज्वलनशील पाउडर में आग लगने और विस्फोट होने से इसका चेहरा जल गया।'

बालक को अस्पताल के गहन चिकित्सा कक्ष में लाया गया और उपचार आरंभ कर दिया गया। जब पिता पुत्र को लेकर अस्पताल के कमरे में पहुँचे, तो बाहर खड़ी भीड़ में से किसी ने उन्हें पहचानते हुए कहा कि ये सम्मोहन विद्या के विशेषज्ञ, विलक्षण क्षमता सम्पन्न विश्वप्रसिद्ध व्यक्ति एडगर केसी हैं और बालक उनका पुत्र हगलीन।

चिकित्सालय में अवलोकन कर विशेषज्ञ डॉक्टरों के दल ने अनुमान लगाया कि बालक को तो निसंदेह बचाया जा सकता है, पर उसकी आँखों को बचा पाना मुश्किल ही नहीं असंभव भी है। चिकित्सा चलती रही। एक सप्ताह बाद एक आँख में तेज दर्द आरंभ हुआ। डॉक्टरों ने विचार-विमर्श कर एडगर केसी से कहा कि बच्चे की एक आँख निकालनी पड़ेगी, अन्यथा स्थिति काबू से बाहर हो सकती है। किसी प्रकार यह बात बालक को ज्ञात हो गई तो उसने चिकित्सकों का विरोध करते हुए कहा 'नहीं आप ऐसा नहीं कर सकते। हमारे पिता स्वयं आध्यात्मिक चिकित्सक हैं। उन्होंने कईयों का

सफल उपचार किया और गंभीर रोगों से उन्हें मुक्ति दिलायी है।'

आप कृपया इस संदर्भ में उन्हें अपनी चिकित्सा करने की अनुमति प्रदान करें।' चिकित्सकों ने किशोर की प्रार्थना स्वीकार कर ली और एडगर केसी से अपना उपचार आरंभ करने को कहा। एडगर केसी बैंच में बैठे और थोड़ी ही देर में स्वसम्मोहन द्वारा गहन तन्त्रा की स्थिति में चले गये। पत्नी को इसके बाद क्या करना है इसे उसने पहले ही समझा दिया था।

पत्नी ने एडगर की बतायी प्रक्रिया आरंभ की। उसने पति के सम्मोहन अवस्था में प्रश्न करने प्रारंभ किये। इसी क्रम में एडगर ने बताया कि हगलीन की नेत्र ज्योति समाप्त नहीं हुई है। क्षति तो थोड़ी पहुँची है, पर उपचार द्वारा उसे पूर्व स्थिति में लाया जा सकता है। उनसे आगे कहा कि डॉक्टर जो दवा चला रहे हैं वह ठीक है, पर उसमें तनिक टेनिक एसिड भी स्वल्प मात्रा में मिलाना आवश्यक है। ऐसा ही किया गया। यद्यपि चिकित्सकों को विश्वास नहीं था कि नेत्र-दृष्टि लौट सकेगी, किन्तु सोलह दिनों के उपरान्त जब आँखों से पट्टी हटायी गयी तो बालक उत्फुल्लता से चीख पड़ा 'मैं देख सकता हूँ' और यह कहकर डॉक्टरों को अचम्भे में डाल दिया।

एक सामान्य-सा व्यक्ति नेत्र-विशेषज्ञ की वैज्ञानिक जानकारी से भी अधिक गहराई में कैसे प्रवेश कर सका ? यह प्रश्न इस घटना के बाद से अनेकों के मन में उभरा, जिसका समाधान स्वयं एडगर केसी ने यह कहते हुए किया कि जिन्हें अवचेतन मन की विलक्षण क्षमता का थोड़ा भी ज्ञान है, उनके लिए यह आश्चर्य की बात नहीं होनी चाहिए। यदि मन को परिष्कृत कर उसकी उस सामर्थ्य को जाग्रत किया जा सके, तो ऐसा करतब हर कोई कर दिखा सकता है यह माना हुआ तथ्य है और एक सत्य भी।

मनुष्य की सूक्ष्म आध्यात्मिक संरचना

एक वैज्ञानिक विवेचन

प्रकृति का अन्तराल अपार विद्युत सम्पदा से भरा हुआ है। जब से मानव की अन्वेषण बुद्धि जाग्रत हुई उसने इस विपुल सामर्थ्य की जानकारी एवं सदुपयोग में स्वयं को लगाया तथा उसे अपना घनिष्ठ सहयोगी बना लिया। वैज्ञानिक बताते हैं कि पृथ्वी की तरह और वायुमण्डल के आयनोस्फियर्स के मध्य लगभग तीन लाख वोल्ट की शक्ति का धन विद्युत विभव है। इसकी तुलना

में पृथ्वी उतनी ही ऋण विद्युत से युक्त है। ५ वोल्ट प्रति मीटर की औसत से विद्युत का दबाव पृथ्वी के हर जीवधारी पर ६० किलोमीटर ऊँचाई पर अवस्थित आयनोस्फियर की सबसे निचली परत से सतत बना हुआ है। यह भण्डार कितना समर्थ व सशक्त है, उसकी कल्पना मात्र से वैज्ञानिक हतप्रभ हैं। यह भी एक सर्वविदित तथ्य है कि मानवी क्राया एक अच्छी विद्युत चालक है। उल्लिखित विद्युत दबाव मानव शरीर में एक विद्युतधारा को प्रवाहित करता है। जिसका सूक्ष्मतम उपकरणों द्वारा मापन भी कर लिया गया है और यह लगभग १० पर ऋण सोलह धातु एम्पियर सैकिण्ड प्रति वर्ग सेण्टीमीटर बैठती है। मोटे अनुमान से लगभग दस पीको एम्पियर की ताकत (एक एम्पियर का एक अरबवाँ भाग) का यह विद्युत प्रवाह नगण्य-सा दिखाई पड़ता है पर वस्तुतः तथ्य कुछ और ही है। यह कितना सामर्थ्यवान हो सकता है, इसकी चर्चा करने से पूर्व मानवी क्राया के कुछ अदृश्य सूत्रों की मोटी रूपरेखा जान लेना समीचीन होगा।

यहाँ जिस वैज्ञानिक विवेचन की चर्चा की गयी है उसका आशय है, मनुष्य के इस सूक्ष्म क्राय-कलेवर की खोज जो विद्युत एवं चुम्बकत्व के रूप में हर क्राया में विद्यमान है और जिसे घटा-बढ़ाकर मानवी क्राया को सामर्थ्यवान तथा परिस्थितियों के अनुकूल बनाया जा सकता है। यह विद्युत शक्ति ही जीवधारियों के शरीर-संस्थान व मन-संस्थान का मूल प्राण-प्रेरक बल कहा जा सकती है। वैज्ञानिक तो मात्र उतना ही जान पाये हैं। जितना मापा जा सका या देखा जा सका, पर ऐसा भी कुछ अदृश्य इस ढाँचे में विद्यमान है जो भौतिकी के सिद्धान्तों के आधार पर अति सामर्थ्यशाली पॉवर हाउस के रूप में सिद्ध किया जा चुका है। मानव शरीर को एक प्रकार का महासागर कह सकते हैं, जिसमें असंख्यों नस-नाड़ियाँ, नदी-नालों की तरह बहती हैं, श्वाँस-प्रश्वाँस के रूप में ज्वार-भाटे उठते रहते हैं। अब तो समुद्र में उठने वाले साइक्लोन्स व ज्वार भाटों से भी विद्युत उत्पन्न करने की तकनीक खोज कर ली गयी है, परन्तु मानव शरीर एक मिनट में १५ से १५ बार जो श्वाँस-प्रश्वाँस लेता-निकालता रहता है, उससे वायुमण्डल से विद्युत आयनों का अन्दर प्रवेश एवं उसके शक्तिशाली विद्युत संचार के रूप में सारे शरीर में प्रवाहित होने की जानकारी पुरातन काल से मनीषियों को है। मस्तिष्क रूपी जेनरेटर और हृदय रूपी विद्युत उत्सर्जन केन्द्र मिलकर जिस स्तर की ऊर्जा उत्पन्न करते हैं, वह सारे जीवकोषों में समान रूप से प्रवाहित होकर कुछ स्थान विशेष पर प्रचुर मात्रा में विद्यमान पायी गयी है। इस सूक्ष्म स्तर की

विद्युत व चेतन स्तर की प्राणसत्ता का जब मिलन-संयोग होता है, तो वही समन्वित स्वरूप व्यक्ति विशेष के आस-पास परिलक्षित होने वाले आकर्षण क्षेत्र के रूप में प्रकट होता है। यह एक सुविदित तथ्य है कि जहाँ विद्युतधारा प्रवाहित होती है, वहाँ चुम्बकीय क्षेत्र का निर्माण होता है। इस चुम्बकीय क्षेत्र को 'ऑरा' या 'तेजोवलय' नाम से पुकारते हैं।

यान्त्रिक दृष्टि से तो चुम्बक शब्द से सामान्य अर्थ लोहे के कणों को आकर्षित करने वाले चुम्बक से किया जाता है जिसे 'मैग्नेट' कहते हैं। पर उसकी चर्चा जब जीवधारियों के सन्दर्भ में होती है तो उसे ऐसी सचेतन विद्युत के अर्थ में प्रयुक्त करते हैं, जो न केवल पदार्थ-परमाणुओं को वरन् वातावरण में अपने प्रवाह को फेंकती और सजातीय जीवधारियों को भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रभावित करती पायी जाती है। यदि इस आणविक ऊर्जा-प्रवाह तथा चेतना में संव्याप्त प्राण तत्व के सम्मिश्रण से उत्पन्न ब्रह्मवर्चस् की सामर्थ्य को किसी प्रकार मापा जा सके तो यह मानवी सत्ता की सबसे सशक्त-विभूति-सम्पदा कही जा सकती है। आध्यात्मिक भाषा में जिसे तेजोवलय कहते हैं और योगियों, देवपुरुषों के आस-पास जो इस स्तर का चुम्बकत्व पाया जाता है, वह वैयक्तिक चुम्बकत्व विचार शक्ति के माध्यम से अपने ऊपर सम्पर्क क्षेत्र में तथा समस्त ब्रह्माण्ड में उत्पन्न होने वाले संक्षोभों के आधार पर अनुभव किया जा सकता है। इसी शक्ति के सहारे अतीन्द्रिय क्षमताएँ उभरती हैं और ब्रह्माण्डीय चेतन प्राण प्रवाह के साथ सम्पर्क मिलाते हुए सूक्ष्म जगत की गतिविधियों को समझ सकना सम्भव हो पाता है।

ब्रह्म की अंशधर जीवसत्ता का चिन्तनपरक तथा संवेदनात्मक गतिविधियों का उभार एवं अवसाद इसी प्राणशक्ति पर निर्भर है, जो अपने सूक्ष्म रूप में प्राण प्रवाह का स्वरूप लेकर, जीवकोषों-ऊतकों से लेकर मस्तिष्क सुषुम्ना से स्नायु सिनेप्सों तक तथा एन्जाइम केमिकल्स के रूप में ग्रन्थि उपत्यिकाओं तक इसी प्रकार संव्याप्त है, जैसे समुद्र में घुला नमक। इस प्राण शक्ति की प्रखरता ही शरीर में चारों ओर वितरित-विस्तारित होकर मनुष्य को ओजस्वी बनाती है। मन-संस्थान में गतिमान होने पर उसे मनस्वी तथा अन्तःकरण में सक्रिय होने पर मनुष्य को तेजस्वी बनाती है।

ऐसे व्यक्ति जिसमें तीनों ही क्राया के स्तर समुचित रूप से प्रभावित हो सक्रिय होते हैं अपने आत्मतेज से समीपवर्ती वातावरण को भी प्रभावित करते हैं। इन आत्मबल सम्पन्न व्यक्तियों के समीप आने पर एक

विविध-सा आकर्षण, खिंचाव प्रतीत होता है। उनकी आँखों, वाणी, चेहरे की भाव-भंगिमाओं, हाथों-उँगलियों से मानो ऊर्जा का प्रवाह निरन्तर गतिशील बना रहता है। महामानव, ऋषि, देवदूत, अवतारी महापुरुष ऐसे ही होते हैं। उनके समीपस्थ वातावरण ऐसा बन जाता है कि व्यक्ति नजदीक आने पर अपने अन्दर भी उत्कृष्टता के भाव बढ़ते अनुभव करता है। इसके विपरीत अपराधी, छली, द्विमुखी व्यक्तित्व वाले, हीन-निषेधात्मक चिन्तन प्रधान, कामुक-लम्पटों के चेहरे, शरीर से एक अलग प्रकार का विकर्षण करने वाला (रिपेलिंग) प्रवाह निस्सृत होता है। ऐसे व्यक्तियों से दूर हटने की ही मन करता है, साथ ही आस-पास का वातावरण तक वे अभिशिष्ट बना डालते हैं। यह सारी मानवी विद्युत चुम्बकत्व-प्राण प्रवाह से युग्म की न्यूनाधिकता की ही परिणति है।

यह एक अकाट्य तथ्य है कि हर व्यक्ति अपने इस चुम्बकत्व को, ब्रह्मवर्चस् को साधना-उपचारों के माध्यम से बढ़ाते रह सकता है। शरीर में सतत् प्रवाहित इस प्राण-प्रवाह का ही कमाल है कि व्यक्ति स्वयं को समर्थ आत्मबल सम्पन्न अनुभव करता है। मानवी अन्तराल की इस सूक्ष्म संरचना की जानकारी व कैसे इस प्रवाह को बढ़ाया जाय, इनका अध्यात्मशास्त्र के ग्रन्थों में विशद रूप में विवेचन किया गया है। ओजस्, तेजस्वर्चस् को उभारने की विधाओं का ही साधना उपक्रमों के माध्यम से ऊहापोह किया जाता है। ध्यानयोग, क्रियायोग, प्राणयोग इत्यादि की साधनाओं के माध्यम से जिन उपचारों का वर्णन व साधकों का मार्ग-दर्शन प्रस्तुत विशेषांकों में किया जा रहा है, वे इस आध्यात्मिक कार्य-कलेवर की क्षमता मानवी चुम्बकत्व के सम्बर्धन से ही सम्बन्धित हैं। यह उचित समझा गया कि साधकों को इस सूक्ष्म काय-कलेवर की भी जानकारी करायी जाय जिसे माइक्रोसटलर (अति सूक्ष्म) कहा जा सकता है व जिसकी विकृति से ही अदृश्य रूप में रोगों का आक्रमण तथा जिसके परिष्कार-सम्बर्धन से व्यक्तित्व में आकर्षण, ऋद्धि-सिद्धियों का प्रवेश सम्भव हो पाता है। यह सारी आध्यात्मिक संरचना पूर्णतः विज्ञान-सम्मत है, सारे भौतिकीय व गणितीय प्रमाण इसकी पुष्टि भी करते हैं।

भूमण्डल पर बैठा मनुष्य वातावरण से न जाने क्या-क्या अदृश्य प्रवाह ग्रहण करता व उन्हें विसर्जित करता रहता है। गामा, बीटा, लेसर, एक्स किरणों तथा इन्फ्रारेड व अल्ट्रा वायलेट स्तर की तरंगों की शक्ति वायुमण्डल में काम करती रहती है। इन सबका ही समग्र समावेश मानवी कन्या में भी है। स्थूल शरीर तो पंच तत्वों में बँधा होने के कारण ससीम है, पर सूक्ष्म शरीर में इन शक्तियों की कोई सीमा नहीं। बाहर से एक

जीवधारी नजर आते हुए भी इस कारण मनुष्य असीम सामर्थ्यों का पुंज है। चूँकि वे प्रसुप्त पड़ी रहती हैं व उन्हें बाहर से ग्रहण करने का भी कोई आधार नहीं बन पाता, सामान्य जन इस शक्ति-स्रोत का लाभ नहीं उठा पाते।

पृथ्वी पर जिस भूमण्डलीय दबाव तथा विद्युत विभव के आकर्षण क्षेत्र में जीवधारी रहते हैं, वैज्ञानिकों के अनुसार शरीर रूपी जेनरेटर तथा मनःसंस्थान की विद्युत को सक्रिय बनाये रखने के लिये वह अत्याधिक आवश्यक है। यह विशेषकर तब देखा गया जब अन्तरिक्ष यात्रियों को पृथ्वी के वातावरण से दूर भेजा गया व उनमें स्फूर्ति का अभाव, निर्णय लेने में अक्षमता व अत्याधिक शारीरिक थकान पाई गयी। कृत्रिम रूप से अन्तरिक्ष यानों के अन्दर जब ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की गयीं जैसी पृथ्वी पर होती हैं, तब ये लक्षण समाप्त हो गये। इससे स्पष्ट होता है कि मानव जिस वातावरण में रहता है, वहाँ से विद्युतबल अपने अन्दर अवशोषित कर निरन्तर सक्रिय बना रहता है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक द्रय डाण्डेनियल एवं कर्ट वर्ग ने तो यह भी सिद्ध कर दिया है कि मानव का दीर्घजीवन तथा प्रजनन क्षमता अदृश्य बाह्य क्षेत्रों से आ रही विद्युत वर्षा पर निर्भर है। आज के आधुनिक युग में आयुष्म कम होने व नपुंसकता बढ़ने का कारण वे वातावरण की विद्युत सत्ता में कमी व मनुष्य की कृत्रिमता को अपनाने के कारण जो कुछ भी उपलब्ध है, उसे ग्रहण करने में अक्षम बताते हैं।

इस विशाल विद्युत संधारक को, जिसके मध्य हम सब बैठे हैं वैज्ञानिक 'ग्लोबल 'कंपेसीटर' कहते हैं। यह शान्त नहीं बैठा रहता वरन् उसमें प्राकृतिक हलचलें व विद्युत स्खलन निरन्तर होता रहता है। इस 'कंपेसीटर' से जो तरंगें निस्सृत होती हैं उनकी मूल आवृत्ति लगभग ७-८ तरंगें प्रति सेकण्ड होती है। वे पृथ्वी सतह तथा आयनोस्फियर के बीच निरन्तर गुंजायमान होती रहती हैं। इन तरंगों को 'शूमेन रेजोनेन्स' कहते हैं और यह एक अद्भुत साम्य है कि हमारे मस्तिष्क की विद्युत तरंगें इनसे हर गुण में मिलती-जुलती हैं। एक ही आवृत्ति 'फ्रिक्वेन्सी' पर दोनों चलायमान हैं। श्री आर० ए० वेद ने तो अपनी पुस्तक 'दि सर केडियन रिदम्स ऑफ़ मैन' में यहाँ तक सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य के रिदम् (क्रिया-कलाप) विद्युतीय क्षेत्रों और विद्युत चुम्बकीय तरंगों से विशेष रूप से प्रभावित होते हैं तथा आस-पास के वातावरण को अपने अन्दर चलायमान इन हलचलों से प्रभावित करने में भी पूर्णतः-सक्षम होते हैं।'

इसके अतिरिक्त मनुष्य जिस धरती पर रहता है उसके गर्भ में एक प्रचण्ड, प्रभावशाली विद्युतीय शक्ति क्षेत्र पाया गया है। प्रति वर्ग सेण्टीमीटर एक एम्पियर के लगभग प्रवाहित यह शक्ति धारा सारे पृथ्वी क्षेत्र में कुण्डलाकार व्याप्त होने के कारण कई गुना हो जाती व चुम्बकीय विद्युतीय तूफानों का रूप ले लेती है और मानवी काया के हर अंग-अवयव को, जीवकोषों, रक्त-कोषों तथा चक्र-उपत्यकाओं को प्रभावित करती है। रूस में इस दिशा में परामनोवैज्ञानिक शोधों ने बताया है कि अतीन्द्रिय क्षमता का जागरण बहुत कुछ अपने अन्दर के प्रवाह का इस चुम्बकीय धारा से साम्य बिठाना सम्भव है।

ऊपर वर्णित गूढ़ वैज्ञानिक विवेचन का सार समझने का प्रयास करें तो हम कुछ निष्कर्षों पर पहुँचते हैं। ब्रह्माण्ड में इलेक्ट्रोमैग्नेटिक सत्ता विद्यमान है, जो ग्रह-नक्षत्रों की भ्रमणशीलता और आकर्षण शक्ति के उभयपक्षीय प्रयोजन तो पूरा करती ही है, साथ ही अणु जगत की हलचलों के लिये भी जिम्मेदार होती है। ईश्वर के ब्रह्माण्डव्यापी महासागर पर इसी विद्युत चुम्बक का आधिपत्य छाया है। यह जड़ शक्ति नहीं है वरन् प्राण शक्ति का प्रवाह है। अणु परमाणुओं की संरचना व गतिविधियों के रूप में हर जीवधारी के अन्दर वह दृश्यमान होती है।

यह प्राण एक चेतन ऊर्जा है, जो मनुष्य में काय के इर्द-गिर्द फैली दिखाई देती है। इसे ही तेजोवलय कहते हैं। विश्वव्यापी महाप्राण के वैभव-मण्डार से हर जीवधारी अपनी-अपनी पात्रता के अनुसार इसे पाते रहते हैं। यह मानव के लिये ही सहज सम्भव है कि वह प्रयत्न करे, उत्साह सँजोये और संकल्प बल के माध्यम से इस समष्टिगत प्राण प्रवाह को अधिकतम अपने अन्दर खींच सके।

इस प्राण प्राण-चुम्बक को काया में प्रविष्ट कर कैसे प्रयोग किया जाता है, उसे जानने से पूर्व मानवी काया की संरचना की भी थोड़ी जानकारी ली जाय। मनुष्य शरीर लगभग ७५ हजार अरब कोषों का समन्वय है। हर जीवकोष के आर-पार ६० से ९० वोल्ट का विद्युत विभव होता है। इस प्रकार मानव शरीर एक शक्तिशाली-साधन एवं सम्पन्न बिजलीघर है। हर अवयव की गतिविधि-हृदय की धड़कन, माँस पेशियों का आकुंचन-प्रकुंचन, मस्तिष्क में संदेशों व प्रेरणाओं का आवागमन, अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों से रस स्त्रावों का उत्पादन आदि इसी विद्युत के क्रिया-कलाप हैं। वैज्ञानिक बताते हैं कि प्रत्येक मनुष्य अपने वायु मण्डल से ऋणविद्युत

आयनों को श्वाँस द्वारा सोखता रहता है। ये आयन (विद्युत आविष्ट कण) रक्त के माध्यम से शरीर के सभी भागों में फैलकर समस्त ऊतकों और कोषों को ऋण विद्युत से संतृप्त कर देते हैं। ये विद्युत आयनत्वचा से निष्कासित हो वातावरण में फैल जाते हैं। इस प्रकार वैज्ञानिक फ्रेड ब्लेस के अनुसार शरीर में एक विद्युत चक्र सतत् चलता रहता है।

सुषुम्ना को वैज्ञानिक स्थायी विद्युतीय द्विध्रुव केन्द्र (परमानेंट इलेक्ट्रिक डायपोल) मानते हैं। इसका निचला भाग जो मूलाधार चक्र में अवस्थित है। (कॉन्डा इक्वाइना स्थित) ऋण विद्युत आवेशयुक्त तथा ऊपरी सिरा सहस्रार (सेरिबम स्थित) धन विद्युतधारी है। असामान्य स्थिति में यह प्रवाह नीचे से प्रबल होकर उल्टी दिशा में अर्थात् ऊपर की ओर ऊर्ध्वगमन करता बह सकता है व मस्तिष्क को सतत् जाग्रत व अति सामर्थ्यवान बनाये रख सकता है। वैसे सामान्यतः जीवधारियों में इसका प्रवाह ऊपर से नीचे होता है। मात्र मनुष्य को यह सुविधा प्राप्त है कि वह प्राण-प्रहार विद्युत केन्द्रीकरण के माध्यम से लोअर पोल को सशक्त बनाकर अपने प्रवाह को क्षरण से रोककर ऊर्ध्वगमन की ओर दौड़ा दे। वैज्ञानिकों का चिन्तन अभी इस विषय में और भी सम्भावनाओं को लेकर गतिशील है और अध्यात्म विज्ञान तो इन मान्यताओं को पहले से ही प्रतिपादित करता आया है कि ओजस् का संग्रह किया जाता है व यही मनःशक्ति संकल्पबल को बढ़ाकर मनुष्य के तेजोवलय को प्रभावशाली बना देता है। यह 'ऑरा' और कुछ नहीं त्वचा से, आँखों से वाणी से सतत् प्रवाहित होते रहने वाला विद्युत प्रवाह ही है।

शरीर में कुल मिलाकर १ लाख वोल्ट प्रति सेण्टीमीटर का विद्युत दबाव होता है। अन्य जीवधारियों की भाँति यह भी श्वाँस से, त्वचा से, जननेन्द्रियों से क्षरित हो वातावरण में बहता रहता है। यदि इस विद्युतधारा को सुनियोजित किया जा सके तो इसी से उस चुम्बकत्व का निर्माण किया जा सकता सम्भव है, जो व्यक्ति को आकर्षक, शक्ति-सम्पन्न बनाता है। मनःक्षेत्र में यही साहस, विवेक, सन्तुलन आदि गुणों के रूप में तथा अन्तःक्षेत्र में संवेदनाओं आत्मबल ओज के रूप में विकसित होकर समीपवर्ती लोगों पर गहरी छाप छोड़ता है। ऐसे व्यक्तियों का लोग अनुगमन करने को बाध्य होते हैं।

ध्रुवीय प्रदेशों में जिस प्रकार चुम्बकीय तूफानों का प्रकाश "अरोरा बोरिएलिस" के रूप में छाया रहता है। उसी प्रकार महापुरुषों का चुम्बकत्व विद्युत ऊर्जा के प्रकाशवलय के रूप में उनके चतुर्दिक् व्याप्त रहता है।

यह प्रकाश बलय भी आन्तरिक चुम्बकत्व व विद्युत प्रवाहों के अनुरूप भिन्न-भिन्न होता है। तत्त्वदर्शी, मनीषी किसी व्यक्ति के चतुर्दिक व्याप्त इसी तेजोबलय से उसका आन्तरिक चेतना स्तर व अन्तःकरण में जन्म ले रही प्रवृत्तियों की झाँकी देख लेते हैं।

ब्रह्मतेजस् संवर्धन की इस विद्या को और विस्तार से समझने के लिये आध्यात्मिक काय-कलेवर के सूक्ष्म पक्ष को अभी और भी खोलना है, उसके विभिन्न प्रसुप्त पक्ष पर वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन किया जाना है। साधना विज्ञान के वटवृक्ष की जड़ों के रूप में इस विद्या को उपमा दी जा सकती है। इसका ज्ञान भी उतना ही अनिवार्य है जितना कि साधना उपचारों के विभिन्न पक्षों का।

सूक्ष्म शरीर की सामर्थ्य को समझें

‘नोवोत्सी’ न्यूज एजेन्सी ने ‘सोते समय अंग्रेजी पढ़ाने का परीक्षण’ शीर्षक से समाचार छपा है। समाचार पीछे, पहले शीर्षक पढ़कर ही पाठक चौंक पड़ेंगे। जाग्रत अवस्था में कई बार पुस्तकें पढ़ते हैं, अध्यापक पाठ याद कराते हैं तो भी विद्यार्थियों को एक ही रोंना बना रहता है, पाठ याद नहीं होता। फिर सोते हुए व्यक्ति को पढ़ाना तो एकदम असम्भव बात है।

इसी बात को हम यह कहते हैं कि आत्मा इतनी सन्वेदनशील है कि अपने सूक्ष्म प्रकाश-शरीर से वह सोते-जागते किसी भी अवस्था में पढ़ती और ज्ञान सम्पादन करती रह सकती है। कोई सामर्थ्यवान् व्यक्ति अपने विचार, ज्ञान, प्रज्ञाएँ और सन्देश कैसी भी अवस्था में किसी और को भी दे सकता है। तब तो लोग यह बात न मानते पर मास्को के पास दूबना स्थान पर विज्ञान इस बात को प्रत्यक्ष सत्य सिद्ध करने में लगा हुआ है, लगभग एक हजार लोगों को सोते समय गहरी निद्रा में अंग्रेजी सिखाई जा रही है। प्रयोगकर्ताओं का कहना है कि ये लोग ४० दिन में सोते-सोते ही अंग्रेजी सीख जायेंगे।

इस प्रणाली के अन्तर्गत गहरी नींद में सोने वाले लोग ही भाषा शिक्षण के लिये छाँटे जाते हैं, उन्हें सोते समय भाषा के टेप-रिकार्ड सुनाये जाते हैं। वे नींद में ही व्याकरण के नियम और शब्द और उनका प्रयोग सीख लेते हैं। अब तक हुये परीक्षण बहुत सफल हुये हैं।

एक ओर यह प्रयोग और दूसरी ओर वैज्ञानिकों की निरन्तर की शोध दोनों प्रक्रियाओं ने यह सिद्ध करना प्रारम्भ कर दिया है कि स्थूल शरीर में सूक्ष्म शरीर का अस्तित्व और उस सूक्ष्म शरीर में मन आदि सम्पूर्ण

इन्द्रियों व चेष्टाओं का पाया जाना असम्भव नहीं, असंदिग्ध तथ्य है। अभी यह विज्ञान अपनी भ्रूण अवस्था में है, अभी तो उसे कारण शरीर तक पहुँचाने में वर्षों लगेगे पर अब तक की उपलब्धियाँ ही भारतीय तत्त्व-दर्शन का जिस तेजी से समर्थन कर रही हैं, उसे देखकर सारा पाश्चात्य जगत भारतीय दर्शन की ओर मुड़ने लगा है।

अणुओं में ज्ञान के अस्तित्व की यह खोजें वैज्ञानिकों की दृष्टि में अभी अन्तिम नहीं है तथापि यह सिद्ध हो गया है कि ज्ञान विचार या चेतना का स्वतन्त्र अस्तित्व है और वह प्रकाश अणुओं के भीतर है। अमेरिका के जीव-वैज्ञानिक डॉ. इर्वन केमरान ने कुछ चूहे लेकर उन्हें एक विशेष बाक्स में संकेत पाने पर भोजन के लिये प्रशिक्षित किया। चूहे कुछ ही दिन के अभ्यास से प्रशिक्षित हो गये। जब भी उन्हें टार्च का प्रकाश दिखाया जाता, वे तुरन्त भागते हुए आते और बाक्स में रखे भोजन को प्राप्त कर लेते। इसके बाद इन प्रशिक्षित चूहों को मारकर उनके मस्तिष्क का ‘न्यूक्लिड एसिड’ निकाल लिया गया और फिर उसका इन्जेक्शन बनाकर कुछ ऐसे चूहों को दिया गया जिन्हें इस तरह का कोई प्रशिक्षण नहीं दिया गया था। उस समय डा० केमरान के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब यह चूहे भी टार्च का प्रकाश देखते ही भोजन के लिए उस विशेष बाक्स में बिना बताये ही प्रवेश कर गये। यही प्रयोग चूहों के अतिरिक्त दूसरे जन्तुओं जैसे—छछूँदर, गिलहरी आदि पर भी किया गया और वहाँ भी यही आश्चर्यजनक सत्य देखने को मिला। इससे यह तो निश्चित ही साबित हो गया कि ऐसी कोई चेतन शक्ति प्रकाश के अणुओं में ही है।

डॉ० केमरान ने यह प्रयोग कुछ मनुष्यों पर भी ‘मैग्नीशियम पैमुलीन’ नामक दवा का प्रयोग करके देखा कि एक व्यक्ति जो ताश के पत्ते नहीं पहचान पाता था, इस तरह की औषधि का सेवन करने के बाद फिर पत्ते पहचानने लगा। एक मैकेनिक वृद्धावस्था के कारण मशीनों के पुर्जे भूल जाने लगा, इस तरह की औषधि से उसकी ज्ञान क्षमता में विकास हुआ।

यह न्यूक्लिड एसिड क्या है, यह समझ लें तो बात स्पष्ट हो जायेगी। हमें पता है कि जिस प्रकार कोई भी पदार्थ का टुकड़ा छोटे-छोटे परमाणुओं से बना है, उसी तरह मनुष्य का शरीर जिन छोटे-छोटे परमाणुओं से बना है, उन्हें कोश (सेल) कहते हैं। एक कोश में जीवन के सारे लक्षण अमीबा की तरह विद्यमान रहते हैं। अमीबा एककोशीय जीव है, उसमें आहार, निद्रा, भय आदि वह

(साइनेप्सिस) बन जाती है, जैसी राख में या समतल धूल में किसी कीड़े के रेंग जाने से आड़ी-टोढ़ी रेखायें खिंच जाती हैं। किन्तु वैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि मस्तिष्क के तीव्र आवेग जैसे— क्रोध, प्रतिशोध, ईर्ष्या आदि के कारण यह रेखायें मिटती भी रहती हैं। कई बार मस्तिष्क में धक्के और चोटें भी आती हैं, उससे भी यह रेखायें मिट जाती हैं, फिर वर्षों पहले का ज्ञान ज्यों का त्यों सुरक्षित रखना तब तक असम्भव है, जब तक ज्ञान को संग्रहीत करने वाला कोई ऐसा बीज न हो, जो न तो कभी नष्ट होता हो और न जिस पर बाहरी आघातों का प्रभाव ही पड़ता हो।

आत्म-चेतना स्वयं ही वह शक्ति, वह बीज, वह केन्द्र है, जिसमें सम्पूर्ण संसार का ज्ञान अति सूक्ष्म रूप से भरा हुआ है, उस पन्ने को खोलें और साफ करें तो हम न केवल ज्ञान-सम्पदा का अक्षय संचय कर सकते हैं वरन् परलोक, पुनर्जन्म, कर्मफल आदि सिद्धान्तों को, भी अच्छी तरह समझ और उनका निराकरण कर सकते हैं। ज्ञान की इस सूक्ष्म अवस्था पर पहुँचकर ही अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ, विचार-संचालन और आकाश में व्याप्त सूक्ष्म विचार-तरंगों का ग्रहण आदि सम्भव होता है। ऊपर के उदाहरण इसी बात की पुष्टि करते हैं।

सूक्ष्म शरीर का आणविक विश्लेषण

बच्चा प्रश्न करता है—‘माँ ! भगवान राम या कृष्ण के मुख-मण्डल पर गोलाकार प्रकाश की आभा क्यों दिखाई जाती है? प्रकाश तो दीपक से ही निकलता है, सूर्य अथवा चन्द्रमा से भी निकलता है, फिर मनुष्य के मुख-मण्डल से दर्शाया जाने वाला यह प्रकाश क्या है?’ माँ जानती नहीं, कोई निश्चित उत्तर नहीं दे पाती और इस तरह महापुरुषों के मुख-मण्डल पर दीखने वाले तेजोवलय का रहस्य, रहस्य ही बना रह जाता है।

महापुरुषों के मुख-मण्डल पर ही नहीं, इस तरह का प्रकाश प्रत्येक मनुष्य के शरीर से प्रतिक्षण स्फुरित होता रहता है। परमाणु विज्ञान जानने वाले लोगों को पता होगा कि प्राकृतिक पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुओं से बने हैं। पदार्थ के परमाणु के मूल में जब हम प्रवेश करते हैं तो पता चलता है कि वहाँ भी सूर्य की सी चमक वाला एक सितारा विद्यमान है, उसे नाभिक, केन्द्रक या नाभिकेन्द्र (न्यूक्लियस) कहा जाता है। अणु आवेश की दृष्टि से पूर्ण उदासीन होता है। अर्थात् न तो उसमें धन आवेश होता है, न ऋण आवेश। किन्तु केन्द्रक स्थित प्रोटॉन अर्थात् धन आवेश अणुओं और केन्द्रक के आस-पास चक्कर काटने वाले इलेक्ट्रॉनों अर्थात् ऋण

आवेश अणुओं का सन्तुलन रखने में उसका बड़ा हाथ होता है। यदि परमाणु के भीतर का यह सन्तुलन बिगड़ जाता है तो उसका विस्फोट हो जाता है। उसमें कितनी जबर्दस्त शक्ति होती है हीरोशिमा प्रकरण से यह बात सारा संसार भली-भाँति जान गया है।

इसी बात को जब हम प्राण-धारी के ऊपर लागू करते हैं तो पता चलता है कि उसमें कोई एक अति विचारशील सत्ता काम कर रही है। यदि उसके अच्छे या बुरे दोनों भावों को निकाल दें तो मनुष्य एक प्रकार का मननशील पदार्थ ही है। महापुरुषों के मुख-मण्डल पर दिखाई देने वाला यह तेजोवलय उस विचार-सत्ता की तीव्र इच्छा-शक्ति, विचार-शक्ति या दिव्य संकल्प शक्ति का ही प्रतीक है। उसे ही इच्छा शरीर कह सकते हैं, क्योंकि यह प्रकाश अणु केवल मुख-मण्डल से ही प्रस्फुरित नहीं होते वरन् सम्पूर्ण शरीर से प्रस्फुरित होते रहते हैं। अमेरिका की सुप्रसिद्ध अध्यात्म साधिका श्रीमती डॉ० जे० सी० ट्रस्ट ने इस प्रकार स्फुरित होने वाले प्रकाश अणुओं को मानव-अणु नाम दिया है।

इन अणुओं की शक्ति का पता लगाना हो तो हमें भगवान राम, कृष्ण, गौतम बुद्ध, शंकराचार्य, ईसा आदि महापुरुषों के जीवन-चरित्र का अध्ययन करना होगा। इन मानव अणुओं में परमाणु विस्फोटक से भी अधिक कड़ों व्यक्तियों को बदल डालने वाली सामर्थ्य होती है।

इन मानव-अणुओं में भी कुछ धन आवेश (अग्नि प्रधान) कुछ ऋण आवेश (आपःप्रधान) होते हैं, किन्तु वह पदार्थ-अणुओं से भिन्न कोटि के होते हैं। पदार्थ से यद्यपि संसार को शक्ति मिलती है पर उनमें प्रकाश-अणु के निर्माण की क्षमता नहीं होती। यह मानव-अणुओं या प्रकाश-आभा अपने आप में एक नया ही विज्ञान है, पश्चिम में यद्यपि उनकी खोज का श्रेय श्रीमती ट्रस्ट को ही दिया जाता है, क्योंकि उन्होंने ही पहली बार अमेरिका के डेल कर्नेगी हॉल में विश्व के अनेक वैज्ञानिकों के समक्ष यह रहस्योद्घाटन करते हुये बताया था कि इन अणुओं की संख्या २० लाख से भी अधिक है। तथापि इस खोज का श्रेय भी भारतीय तत्त्वदर्शियों को ही है। इस लेखमाला से यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो जायेगी।

उस समय तक वैज्ञानिक ९५ भौतिक तत्वों की ही खोज कर सके थे, मानव के शरीर के इन सूक्ष्म प्रकाश अणुओं के बारे में उनमें से किसी ने भी नहीं सोचा था, इसलिये इस तथ्य का बड़ा उपहास किया गया, किन्तु बाद में संसार के सभी वैज्ञानिकों ने माना कि मनुष्य के शरीर में सचमुच ऐसे प्रकाश अणु विद्यमान हैं, जो

विद्युत चुम्बकीय रसायन-पदार्थ निकालते रहते हैं। उसी से केवल उनकी उपस्थिति का निश्चय होता है।

सूक्ष्मदर्शी भारतीय तत्त्वदर्शियों ने यह बात डॉ० जे० सी० ट्रस्ट से भी हजारों वर्ष पहले मालूम कर ली थी। ८४ लाख जीवों का अस्तित्व ८४ लाख प्रकार के मानव-अणुओं की ही खोज है। यह बात डॉ० जे० सी० ट्रस्ट ने भी अपनी पुस्तक 'अणु और आत्मा' (एटम एण्ड सोल) में स्वीकार की है कि मानव-अणुओं की प्रकाश-वाष्प न केवल मनुष्यों में वरन् अन्य जीवधारियों, वृक्ष-वनस्पति, औषधि आदि में भी होती है। यह प्रकाश अणु ही जीवधारी के यथार्थ शरीरों का निर्माण करते हैं खनिज पदार्थों से बना मनुष्य या जीवों का शरीर तो तभी तक स्थिर रहता है, जब तक यह प्रकाश-अणु शरीर में रहते हैं। इन प्रकाश अणुओं के हटते ही स्थूल शरीर बेकार हो जाता है, फिर उसे जलाते या गाड़ते ही बनता है। खुला छोड़ देने पर तो अपनी सड़ाँद से उसके पास एक क्षण भी ठहरना कठिन हो जाता है।

स्वभाव, संस्कार, इच्छाएँ, क्रिया-शक्ति यह सब इन प्रकाश-अणुओं का ही खेल है। हम सब जानते हैं कि प्रकाश का एक अणु (फोटॉन) भी कई रंगों के अणुओं से मिलकर बना होता है। मनुष्य शरीर की प्रकाश आभा भी कई रंगों से बनी होती है। डॉ० जे० सी० ट्रस्ट ने अनेक रोगियों, अपराधियों तथा सामान्य व श्रेष्ठ व्यक्तियों का सूक्ष्म निरीक्षण करके बताया है कि जो मनुष्य जितना श्रेष्ठ और अच्छे गुणों वाला होता है, उसके मानव-अणु दिव्य तेज और आभा वाले होते हैं, जबकि अपराधी और रोगी व्यक्तियों के प्रकाश अणु क्षीण और अंधकारपूर्ण होते हैं। उन्होंने बहुत से मनुष्यों के शरीरों के काले धब्बों को अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर उनके रोगी या अपराधी होने की बात को बताकर लोगों को स्वीकार करा दिया था कि सचमुच रोग और अपराधी मनोवृत्तियाँ काले रंग के अणुओं की उपस्थिति का प्रतिफल होते हैं, मनुष्य अपने स्वभाव में चाहते हुये भी तब तक परिवर्तन नहीं कर सकता, जब तक यह दूषित प्रकाश-अणु अपने अन्दर विद्यमान बने रहते हैं।

यही नहीं जन्म-जन्मान्तरों तक खराब प्रकाश अणुओं की यह उपस्थिति मनुष्य से बलात् दुष्कर्म कराती रहती है, इस तरह मनुष्य पतन के गड्ढे में बार-बार गिरता और अपनी आत्मा को दुःखी बनाता रहता है। जब तक यह अणु नहीं बदलते या निष्क्रिय होते, तब तक मनुष्य किसी भी परिस्थिति में अपनी दशा नहीं सुधार पाता।

यह तो है कि अपने प्रकाश अणुओं में यदि तीव्रता है तो उससे दूसरों को आकस्मिक सहायता दी जा

सकती है। रोग दूर किये जा सकते हैं। खराब विचार वालों को कुछ देर के लिये अच्छे सन्त स्वभाव में बदला जा सकता है। महर्षि नारद के सम्पर्क में आते ही डाकू वाल्मीकि के प्रकाश अणुओं में तीव्र झटका लगा और वह अपने आपको परिवर्तित कर डालने को विवश हुआ। भगवान् बुद्ध के इन प्रकाश अणुओं से निकलने वाली विद्युत विस्तार सीमा में, आते ही डाकू अंगुलिमाल की विचारधारायें पलट गई थीं। ऋषियों के अप्रभों में गाय और शेर एक घाट पानी पीने आते थे, वह इन प्रकाश अणुओं की ही तीव्रता के कारण होता था। उस वातावरण से निकलते ही व्यक्तिगत प्रकाश अणु फिर बलवान हो उठने से लोग पुनः दुष्कर्म करने लगते हैं इसलिये किसी को आत्म-शक्ति या अपने प्राण देने की अपेक्षा भारतीय आचार्यों ने एक पद्धति का प्रसार किया था, जिसमें इन प्रकाश अणुओं का विकास कोई भी व्यक्ति इच्छानुसार कर सकता है। देव उपासना उसी का नाम है।

उपासना एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसमें हम अपने भीतर के काले, मटमैले और पापाचरण को प्रोत्साहन देने वाले प्रकाश-अणुओं को दिव्य, तेजस्वी, सदाचरण और शांति एवं प्रसन्नता की वृद्धि करने वाले मानव-अणुओं में परिवर्तित करते हैं। विकास की इस प्रक्रिया में किसी नैसर्गिक तत्व, पिण्ड या ग्रह-नक्षत्र की साझेदारी होती है। उदाहरण के लिये जब हम गायत्री की उपासना करते हैं तो हमारे भीतर के दूषित प्रकाश अणुओं को हटाने और उनके स्थान पर दिव्य प्रकाश अणु भर देने का माध्यम गायत्री का देवता 'सविता' अर्थात् सूर्य होता है।

वर्ण रचना और प्रकाश की दृष्टि से यह मानव-अणु भिन्न-भिन्न स्वभाव के होते हैं। मनुष्य का जो कुछ भी स्वभाव आज दिखाई देता है, वह इन्हीं अणुओं की उपस्थिति के कारण होता है। यदि इस विज्ञान को समझा जा सके तो न केवल अपना जीवन शुद्ध, सात्विक, सफल, रोग-मुक्त बनाया जा सकता है, वरन् औरों को भी प्रभावित और इन लाभों से लाभान्वित किया जा सकता है। परलोक और सद्गति के आधार भी यह प्रकाश अणु या मानव अणु ही हैं।

महान शक्तियों यथा—राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मोहम्मद, गुरु नानक आदि के मुख-मण्डल पर प्रदर्शित प्रकाश-चलय इस बात के प्रतीक हैं कि उन्होंने अपने आपके उन सभी अन्य प्रकार के अणुओं को निकाल या नष्ट कर दिया है जो अज्ञान और पाप मूलक हो सकते हैं। उनमें दिव्य प्रकाश की उपस्थिति उनकी सर्वशक्तिमान सत्ता, सबके मन में प्रविष्ट होकर अन्तरंग की जान लेने

की क्षमता, किसी भी रोगी को अच्छा और आचरणहीन व्यक्ति को दंड देने की शक्ति का आधान उनमें हो चुका होता है। यह कोई अवैज्ञानिक तथ्य नहीं वरन् प्रकाश-अणुओं के विकास की प्रक्रिया मात्र है और उस अभ्यास को करके कोई भी व्यक्ति इन सत्तों की अनुभूति अपने वर्तमान जीवन में ही कर सकता है। क्योंकि प्रकाश ही एक ऐसी सत्ता है जो न केवल देखती, सुनती वरन् विचार और प्रज्ञाएँ एकत्रित करती है। मस्तिष्क के वह सभी केन्द्र जिनमें देखने सुनने, सूँघने आदि की क्रियायें सम्पन्न होती हैं, प्रकाश-परमाणुओं से ही बने होते हैं, इसलिये मानना पड़ता है कि प्रकाश के कुछ कण ऐसे हो सकते हैं, जो अन्तरंग अनुभूति की क्षमता से भी सम्पन्न हों। अपने प्रकार के अनजाने ज्योति स्रोतों (क्वासार) आदि की खोज ने भी यह सिद्ध कर दिया है कि प्रकाश के भिन्न-भिन्न और क्रमशः अधिक दिव्य केन्द्र ब्रह्मांड में विद्यमान हैं।

आत्मा या चेतना शक्ति जिन अणुओं से अपने को अभिव्यक्त करती है, वह यह प्रकाश अणु ही हैं, जबकि आत्मा स्वयं उनसे भिन्न है। प्रकाश-अणुओं को प्राण, विधायक शक्ति, अग्नि, तेजस् कहना चाहिये, वह जितने शुद्ध, दिव्य और तेजस्वी होंगे, व्यक्ति उतना ही महान तेजस्वी, यशस्वी, वीर, साहसी और कलाकार होगा। महापुरुषों के तेजोवलय इसी बात के प्रतीक हैं, जबकि निकृष्ट कोटि के व्यक्तियों में यह अणु अत्यन्त शिथिल, मन्द और काले होते हैं। हमें चाहिये कि हम इन दूषित प्रकाश-अणुओं को दिव्य अणुओं में बदलें और अपने को भी महापुरुषों की श्रेणी में ले जाने का प्रयत्न करें।

सूक्ष्म शरीर विज्ञान की दृष्टि में

सूर्य, चन्द्रमा, शनि, वरुण, यम, गुरु जितने भी ग्रह-नक्षत्र हैं, उनमें एक धरराष्ट्र या कम्पन काम करता है, उसी के द्वारा वे अपना प्रकाश स्फुरित करते हैं। यह प्रकाश उनमें सूर्य से आता है। सूर्य यह प्रकाश किसी आकाश-गंगा से लेता है और अब 'क्वासार' किरणों की शोष से यह भी सिद्ध हो गया है कि ब्रह्मांड में ऐसे अनजाने शक्ति-स्रोत हैं, आकाश-गंगाएँ उन्हीं से प्रकाश लेकर दौड़ती हैं। ऐसी-ऐसी आकाश-गंगाएँ या नीहारिकाएँ दस करोड़ से भी अधिक हैं। सूर्य, ग्रह-नक्षत्रों का तो पता ही नहीं, वे कितने हैं।

सौर-मंडल में आने वाला प्रकाश और अन्य प्रकाशस्रोत जहाँ से भी चलता है, उस स्थान से भी प्रभावित होता है। उदाहरण के लिये, पृथ्वी में प्रस्फुटित होने वाली प्रकाश किरणों में प्रकाश के मूल स्रोत के

गुण तो होंगे ही, पृथ्वी तत्व का सूक्ष्म प्रभाव भी उसमें होगा। इसी तरह संसार के सभी पिण्ड सूक्ष्म, स्थूल और कारण प्रक्रिया धारण किये हुये, प्रकाश कणों की निरन्तर बौछार करते रहते हैं, आकाश इन प्रकाश कणों की उपस्थिति से पूरी तरह आच्छादित है, भले ही स्थान-स्थान पर उनका वर्ण, स्वभाव भिन्न-भिन्न प्रकार का हो।

प्रश्न उत्पन्न होता है कि दिखाई तो किरणें देती हैं, प्रकाश में परमाणु कहाँ से आ गये ? पर अब इसका उत्तर देना सम्भव हो गया है। प्रकाश के ऐसे टुकड़े बनाये गये हैं, जो एक क्षण के एक लाख हिस्से के करोड़वें भाग में सीमित हैं। इस समय की अवधि को 'पिको सेकिन्ड' कहते हैं, ऐसे प्रकाश खंडों के उत्पादन तथा परीक्षण के लिये लेसर (एक प्रकाश यन्त्र) का प्रयोग किया जा रहा है। प्रकाश को सोखने वाले विरंजनों 'नीयोडाइमियम ग्लास लेसर' के भीतर प्रयोग करके इन प्रकाशखंडों को प्राप्त किया जाता है।

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि पोले आकाश में प्रकाश अणुओं की उपस्थिति अदृश्य है पर अर्थार्थ नहीं है। पृथ्वी के पास सूर्य, चन्द्रमा आदि ग्रहों के प्रकाश-कणों के साथ विद्युत आवेशित धूलिकणों की बहुतायत है तो सूर्य के समीप किसी और तरह के सम्मिश्रण की बहुतायत होगी। इस तरह आकाश एक प्रकार अणुओं का अन्तर्जाल अथवा व्यूहाणु बन गया है।

जो कुछ आकाश में है, वह मनुष्य शरीर में है 'यत् ब्रह्मांडे तत् पिण्डे' के अनुसार जहाँ शरीर में स्थूल पंच भौतिक पदार्थ हैं, वहाँ उसके पोले भाग में यह अदृश्य प्रकाश अणु भी विद्यमान हैं, इसमें सन्देह नहीं। हड्डियों के पोले भाग में अदृश्य लोकों के प्रकाश-अणु संकुल और सघन हो जाने से वहाँ उन लोकों का ही भान होने लगता है, इन्हें भारतीय भाषा में 'सूक्ष्म लोक' और अंग्रेजी में इन्हें ही 'एस्ट्रल बॉडी' के नाम से जाना जाने लगा है। योग ग्रन्थों में षट-चक्रों को स्थान-स्थान पर चर्चा हुई है। यह ६ चक्र, सूक्ष्म लोकों के ही प्रतिनिधि हैं। सातवाँ लोक शून्य लोक या सहस्रार चक्र मस्तिष्क में अवस्थित बताया गया है।

इनके अतिरिक्त शरीर में जितना भी पोला भाग है वहाँ विभिन्न वर्ण, रचना और गुण वाले वह प्रकाश अणु भरे पड़े हैं, जो आकाश में तैरते रहते हैं। श्वास, भोजन आदि के द्वारा भी ये प्रकाश-कण शरीर में विकसित होते रहते हैं और उनके योजनापूर्वक धारण की दूसरी प्राणायाम जैसी हतयोगी क्रियाएँ भारतीय योग में प्रचलित हैं, वह सब श्रमती जे. सी. ट्रस्ट के मानव-अणु विकास के द्वारा आन्मोनति के सिद्धान्त का ही प्रतिपादन करते हैं।

शरीर में सबसे अधिक प्रतिशत खनिज तत्वों का है, क्योंकि वे अधिक स्थूल होते हैं। ६० प्रतिशत तो केवल जल है। इस ६० प्रतिशत में ४० भाग हाइड्रोजन और २० भाग तो ऑक्सीजन के ही अणु होते हैं। शेष ४० प्रतिशत में फास्फोरस, कैल्सियम, सोडियम, आयरन, सोना, चाँदी और दूसरे खनिज होते हैं। सबसे कम भार इन प्रकाश-अणुओं का होता है, पर उनकी उपस्थिति में कोई सन्देह नहीं रह गया है।

कर्नल अलवर्ट डेरोचस ने मृत्यु के पूर्व एक व्यक्ति का भार लिया और फिर उसे अत्यन्त सूक्ष्म नाप तक करने वाले तराजू से सम्बन्धित कर लिया दिया। मृत्यु हो जाने के बाद शव के भार में सवा दो औंस की कमी आ गई। इस प्रयोग के आधार पर ही श्री डेरोचस ने सूक्ष्म शरीर का भार २ औंस बताया संसार के दूसरे कई वैज्ञानिकों ने भी इसकी पुष्टि की है।

सूक्ष्म शरीर का भार इतना कम होते हुए भी उसके अणु इतने हल्के और सूक्ष्म होते हैं कि वह सारे शरीर में आच्छादित रहकर रासायनिक क्रिया का प्रसार करते रहते हैं। शरीर के आस-पास इन्हीं की आभा-प्रदीप्तमान होती है। श्री डॉ० डेरोचस के अनुसार स्वतन्त्र अवस्था में यह प्रकाश अणुओं वाला सूक्ष्म शरीर तीन इन्च का होता है पर प्रकाश-अणुओं के द्वारा उसका कई गुना विस्तार हो सकता है।

हाइड्रोजन संसार का सबसे हल्का तत्व है और वह सारे विश्व में व्याप्त है। उसके एक अणु का विस्फोट कर दिया जाय तो उसकी शक्ति संसार के किसी भी तत्व की तुलना में अधिक होगी। जो जितना हल्का वह उतना ही आग्नेय, शक्तिशाली, सामर्थ्यवान और विश्वव्यापी; यह कुछ अटपटा सा लगता है पर है ऐसा ही।

किसी गुब्बारे में ३०० पौंड हवा भरी जा सकती है तो हाइड्रोजन उतने स्थान के लिये १०० पौंड ही पर्याप्त होगा। उसी प्रकार जितने स्थान में एक औंस पानी या २/३ औंस हाइड्रोजन रहेगा, उतने स्थान को मनुष्य के सूक्ष्म शरीर के प्रकाश-अणुओं का १२२४ वाँ भाग ही घेर लेगा। यदि प्रयत्न किया जाये तो इन अणुओं की सूक्ष्मतम अवस्था में पहुँचकर विरगट विश्वव्यापी आत्म-चेतना के रूप में अपने आपको विकसित और परिपूर्ण बनाया जा सकता है।

प्राण-विद्या के द्वारा इस रहस्य की जानकारी संसार में आज तक केवल भारतवर्ष ही कर सका है। इन प्रकाश अणुओं की शक्ति तुलना हाइड्रोजन के परमाणुओं से करें तो लोग अनुमान कर सकेंगे, भारतीय योगी के

पास कितनी अकूत शक्ति का भण्डार होता होगा। पूर्ण पुरुषों, अवतारों की क्षमता का तो अनुमान करना ही कठिन है।

सूक्ष्म शरीर, नैसर्गिक प्रकाश-अणुओं या आग्नेय-अणुओं को ही भारतीय तत्वदर्शियों ने एक शब्द 'प्राण' से सम्बोधित किया है। उसकी स्थान-स्थान पर विशद व्याख्या हुई है, जो ऊपर दिये गये विश्लेषण के अनुसार ही विज्ञान सम्मत है।

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य एष पर्जन्यो मधवानस

वायुः एष पृथिवी रपिदेवः सहस्रधामृतं चयत्।

—एतरेय,

यही प्राण अग्नि रूप से तपता है, सूर्य मेघ, इन्द्र, वायु, पृथ्वी, रवि (चन्द्रमा) यही है। सत्, असत् भी यही है और यही अमृत भी है।

एतमेकेदन्त्याग्नि मनुमन्ये प्रजापतिम्।

इन्दुमेके परे प्राणम् परब्रह्मशाश्वतम्॥

—मनुस्मृति अ. १२,

उसे ही अग्नि कहते हैं, वही प्रजापति (मनु) कहलाता है। उसे ही इन्द्र या प्राण कहते हैं, कोई उसे ब्रह्म कहता है।

यथाग्नेः क्षुद्रविस्फुल्लिगाव्युच्चन्तरेव मेवास्यादात्मनः सर्वप्राणाः।

—बृहदारण्यक २/१/२/२०,

जैसे अग्नि से छोटी चिनारियाँ निकलती हैं, वैसे ही इस आत्मा से समस्त प्राण निकलते हैं।

इसी प्रकार प्रश्नोपनिषद् के ६/७/८ मंत्रों तक विस्तार से कहा है—

अराइव रथ नाभी प्राणे सर्व प्रतिष्ठितम् ।

ऋचो यंजुषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म चा॥६॥

प्रजापतिश्चवरसि गर्भे त्वमेव प्रति जायसे।

तुभ्यं प्राण प्रजास्तित्वया बलि हरिन्तिमः प्राणे प्रतिष्ठिसि ॥७॥

देवनामासि वह्निमः पितृर्णां प्रथमः स्वधा॥

ऋषीणां चरितं सत्यमथर्वागिरसामसि ॥८॥

जिस प्रकार रथ के पहियों की धुरी में अरे लगे रहते हैं, उसी प्रकार चारों वेद, यज्ञ, ज्ञान-बल ये सब प्राण में हैं। हे प्राण! आप ही प्रजापति हैं, आप ही गर्भ में विचरण करते हैं। जन्म लेते ही प्राणी आप में ही मिल जाते हैं। आपके ही साथ स्थित रहते हैं॥७॥ हे प्राण ! आप ही देवताओं को हवा पहुँचाने वाली

अग्नि है। ऋषियों द्वारा अनुभूत सत्य आप ही हैं।

उपरोक्त प्रसंगों में यद्यपि शास्त्रकार ने स्वत्र 'प्राण' की व्याख्या एकवचन में की है पर उसके विभिन्न प्रकाश स्रोतों से निःसृत होने के प्रमाण भी उपयुक्त श्लोकों में है।

सूक्ष्म शरीर की अति समर्थ सूक्ष्म शक्तियाँ

प्रकाश एक शक्ति है पर वह अपने मौलिक रूप में पदार्थ भी है क्योंकि वह टुकड़ों में विभक्त हो जाता है, यह प्रकाश-परमाणु 'फोटो-सेल्स' कहलाते हैं। उनमें भी इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूक्लियस की रचना होती है। अर्थात् प्रकाश से भी सूक्ष्म सत्तायें इस संसार में हैं, यह मानना पड़ता है।

वस्तुयें हम प्रकाश की सहायता से देख सकते हैं। किन्तु साधारण प्रकाश कणों की सहायता से हम शरीर के कोश (सेल) को देखना चाहें तो वह इतने सूक्ष्म है कि उन्हें देख नहीं सकते। इलेक्ट्रॉनों को जब ५०००० वोल्ट आवेश पर सूक्ष्मदर्शी (माइक्रोस्कोप) में भेजा जाता है तो उनकी तरंग दैर्घ्य श्वेत प्रकाश कणों की तुलना में १/१००००० भाग सूक्ष्म होती है, तब वह हाइड्रोजन के परमाणु का जितना व्यास होता है, उसके भी ४२.४वें हिस्से छोटे परमाणु में भी प्रवेश करके वहाँ की गतिविधियाँ दिखा सकती हैं। उदाहरण के लिये, यदि मनुष्य की आँख एक इन्च घेरे को देख सकती है तो उसे भी ५०० अंश कम को प्रकाश-सूक्ष्मदर्शी और १०००० अंश छोटे भाग को इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी। इसी से अनुमान लगा सकते हैं कि मनुष्य शरीर के कोश (सेल्स) का चेतन भाग कितना सूक्ष्म होना चाहिये। इस तरह के सूक्ष्मदर्शी से जब कोश का निरीक्षण किया गया तो उसमें भी एक टिमटिमाता हुआ प्रकाश दिखाई दिया। चेतना या महत्त्व इस प्रकार प्रकाश की ही अति सूक्ष्म स्फुरणा है, यह विज्ञान भी मानता है।

मास्को के जीव वैज्ञानिक प्रो० तारासोव ने यह देखकर ही बताया था कि मनुष्य शरीर का प्रत्येक सेल एक टिमटिमाते हुये दीपक की तरह है, कुल शरीर ब्रह्माण्ड के नक्षत्रों की तरह तो यह सूक्ष्मतम चेतना ही उसमें जीवन है।

यह जीवन तत्त्व शरीर के प्रत्येक अंग में छिटका हुआ पर उसका एक नियत स्थान भी है, जहाँ से वह प्रभासित होता है। हम देखते हैं कि आत्मा नामक कोई वस्तु शरीर में है तो उसे प्रकाश-अणुओं के रूप में

पाया जाना चाहिये। पर जैसे सूर्य सारे ब्रह्मांड में बिखर गया है, यह चेतना भी सारे शरीर में संव्याप्त है और विचार तथा भावनाओं के रूप में निःसृत होती रहती है, इस तरह प्रत्येक व्यक्ति के साथ उसके विचारों की तरंगदैर्घ्य चलती रहती है। जो अधिक स्थूल स्वभाव दैर्घ्य और आचार-विचार के व्यक्ति होते हैं, उनका यह तरंग बहुत सीमित और दुर्गन्धित होता है, इसलिये बुरे लोग अपने पास वाले को भी प्रभावित नहीं कर पाते, जबकि विचारशील लोग, विशेष प्राणवान् लोग सभा-मंडप में बैठे हजारों लोगों को अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति भाषणों द्वारा इतनी शक्ति और प्रेरणा दे सकते हैं कि सैकड़ों लोग थोड़ी ही देर में अपने विचार पलटकर रख देते हैं। इस तरह के प्राणवान् व्यक्ति आदिकाल से हो लोगों की जीवन दिशाएँ बदलते और युगों में परिवर्तन लाते आये हैं।

हमारा शरीर एक प्रकार से आकाश है। यदि त्वचा के आवरण बाँधकर उसे एक विशेष गुरुत्वाकर्षण शक्ति द्वारा पृथ्वी से बाँध नहीं दिया गया होता तो हम आकाश में कहीं विचरण कर रहे होते। सूक्ष्म रूप से हमारी चेतना विचार और संकल्पों के रूप में आकाश तत्त्व में तरंगित होती रहती है। भारतीय योगियों ने उसे चेतना की विभिन्न प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि आदि योग क्रियाओं द्वारा मन के रूप में नियन्त्रित किया था। आज्ञा चक्र नामक स्थान जो माथे में दोनों भौवों के बीच पाया जाता है, ध्यान द्वारा देखा गया तो उस बिखरी हुई ज्योति के एकाकार दर्शन ऐसे ही हुये जैसे हजार दिशाओं में बिखरे होने पर भी सूर्य का एक पुंजीभूत रूप भी है और वह उन बिखरे हुए अस्त-व्यस्त कणों की तुलना में जो कि सारे सौर-मंडल की प्रकृति का निर्धारण करते हैं, कहीं अधिक ऊर्जा (प्रकाश, विद्युत, ताप) से सम्पन्न होता है। ऐसे ही मन जब शरीर के सब कोशों की ऊर्जा के रूप में नियन्त्रित हो जाता है तो उसकी शक्ति-सामर्थ्य और विभेदन क्षमता का कोई पाराबार नहीं रहता है। इस तरह का मन ही सर्वत्र गमनशील सर्वदर्शी और सर्वव्यापी होता है। वही क्षण में कहीं का कहीं पहुँचकर बेतार के तार की तरह सन्देश पहुँचाता रहता है।

ऊर्जा का प्रकाश में बदलना एक अत्यन्त जटिल प्रणाली है पर वैज्ञानिक यह जान चुके हैं कि जब यह ऊर्जा किसी वस्तु में प्रवेश करती है तो उसके परमाणु उत्तेजित हो उठते हैं। फिर थोड़ा शान्त होकर जब वे अपने मूल स्थान को लौटते हैं तो उस सोखी हुई ऊर्जा को प्रकाश में बदल देते हैं। इस क्रिया को 'संदीप्ति' कहते हैं। यह गुण संसार के सभी प्राणियों में पाया जाता है, हम उसे जानते नहीं, पर यह वैज्ञानिकों को पता है

कि मनुष्य जो कुछ सोचता है, वह कितना ही छुपाये, छुप नहीं सकता। वह इसी प्रकार सूक्ष्म प्रकाश-तरंगों के रूप में बाहर निकलता रहता है, यदि हम उन तरंगों से भी सूक्ष्म आत्म-चेतना द्वारा उन तरंगों में प्रवेश पा सकें, जैसा कि ऊपर के प्रयोग में बताया गया है तो हम आसानी से समझ सकते हैं कि यह व्यक्ति क्या सोच रहा है, भविष्य की इसकी योजनायें क्या हैं, आदि-आदि। पर यह सब तभी सम्भव है, जब नितान्त शुद्ध रूप में हम मन पर नियन्त्रण कर चुके हों।

पहले लोगों का विश्वास था कि प्रकाश छोड़ने का यह गुण (संदीप्ति) केवल जड़ वस्तुओं का ही गुण है पर अब यह स्पष्ट हो गया है कि यह गुण जीवधारियों में भी पाया जाता है। 'अणु और आत्मा' पुस्तक में श्रीमती जे० सी० ट्रस्ट ने इसी विज्ञान की व्याख्या की है और इस आत्म-विज्ञान के पहलू को प्रकाश में लाकर उन्होंने वैज्ञानिकों को शोध की नई दिशा भी दी है। हम उस बात को सामान्यतः फुंगी, मधुरिका, जुगनु आदि जीवों से समझ सकते हैं, जुगनु की तरह कई जीव-समुद्र में भी पाये जाते हैं, जो अपने शरीर में 'एन्जाइमी आक्सीकरण' की प्रक्रिया में मुक्त होने वाली ऊर्जा को प्रकाश में बदल देते हैं। यही प्रकाश इनमें टिमटिमाता दिखाई देता है। मादा जुगनु जब कभी क्रमोत्तेजित होती है तो उसके शरीर में एक जैव-रासायनिक क्रिया उत्पन्न होती है, जिसमें रासायनिक द्रव्य लूसी फेरस एन्जाइम, लूसीफिरिन और ए० टी० पी० कम्पाउण्ड भाग लेते हैं, इससे एक विशेष प्रकार की रासायनिक ऊर्जा-तरंग उत्पन्न होती है अर्थात् उस विद्युत-तरंग में उस मादा की गन्ध भी रहती है, इसीलिये उस विशेष सिगनल को नर जुगनु पहचान लेता है और मादा के पास जा पहुँचता है।

योग साधनाओं द्वारा जब किसी को कोई सन्देश देना होता है तो उसके शरीर के पसीने से लगा कोई कपड़ा इसीलिये आवश्यक होता है कि ठीक उस व्यक्ति के स्वभाव से मिलते-जुलते तत्वों वाली ऊर्जा उसके पास भेजी जाये और उसके मस्तिष्क में सन्देश भरकर अपनी ओर से उसे इतना प्रभावित कर दिया जाये कि वह वैसा ही करने को विवश हो जाये। यह सब शरीर में प्राप्त विद्युत के उन सूक्ष्म विकिरणों के फलस्वरूप ही सम्भव होता है, जिसकी चर्चा ऊपर कर चुके हैं।

एन्जाइम एक प्रकार के सूक्ष्म नाडी तन्तु हैं, जो साँस द्वारा प्राप्त आक्सीजन को सारे शरीर में पहुँचाकर जीवन-शक्ति बनाये रखते हैं। मानसिक शक्तियों का शुद्ध परिष्कार भी अधिकांश प्राणायाम के अभ्यास पर ही निर्भर

है, उसमें वायु में पाये गये प्राण-तत्व (प्राकृतिक ऊर्जा) के द्वारा मन को प्रखर और शुद्ध बनाया जाता है।

डॉ० हर्टलाइन ने सन् १९६७ में पहली बार नेत्र कोशिकाओं में उत्पन्न विद्युत आवेगों को इलेक्ट्रॉनिक युक्तियों से रिकार्ड करके बताया कि प्रत्येक कोश में उस बिम्ब की सारी बारीकियाँ अर्थात् रंग आकार, उपरी-धँसी रेखायें आदि निहित होती हैं, प्रत्येक कोश एक सेकिड के भी करोड़वें हिस्से में उस प्रतिबिम्ब को, अगले कोष को पार कर देता है और इस प्रकार सामने दिखाई देने वाले बिम्ब की सूचना प्रकाश की गति के हिसाब से मस्तिष्क के दृश्य-स्थान (आप्टिक सेन्टर) में पहुँच जाती है।

इस दृश्य को मन के द्वारा प्रकृति के प्राण विद्युत प्रवाह में घोलकर वह दृश्य जो हमारे मस्तिष्क में है किसी भी दूरवर्ती व्यक्ति को भेज सकते हैं। उपग्रह-संचार पद्धति के विकास ने इस मान्यता को भी पुष्ट कर दिया है, अब लन्दन में होने वाली शल्य-चिकित्सा को हजारों मील दूर के अस्पतालों में भी देखा जा सकेगा। अभी रायल फ्री हॉस्पिटल के सर्जनों द्वारा सम्पर्क परीक्षणों को मैनचेस्टर और बर्मिंघम स्थित मेडिकल स्कूल के विद्यार्थियों ने देखा। इसमें भारतीय विद्यार्थियों सहित २००० विद्यार्थी सम्मिलित थे। इस प्रणाली से किसी भी दृश्य को फोटो-सेल्स के माध्यम से संचार उपग्रह (टेलिस्टार) जो पृथ्वी की परिक्रमा लगा रहा है, को भेजा। संचार उपग्रह ने उसे एक नियत फ्रिक्वेन्सी पर सारे संसार में फैला दिया। इस तरह एक ही दृश्य को सारे संसार में पहुँचाना तक सम्भव है। दूरदर्शी दृश्यों को देखने के पीछे प्रकाश-परमाणुओं पर पड़े बिम्बों को ऊर्जा की एक धारा में बहाकर लाना या ले जाना होता है, जिसे नियन्त्रित मन से पूरा किया जा सकता है। हम किसी के मन में अचानक सन्देश और दृश्य भेज ही नहीं, सुनते और देख भी लेते हैं, वह सब इन प्रकाश-अणुओं और उसमें व्याप्त चेतना की ही करामात होती है।

अपनी उपस्थिति को कोई व्यक्ति और यत्र न पकड़ सके, प्रकाश-कणों के नियन्त्रण में ऐसी भी शक्ति है। 'देहरादून उपकरण अनुसंधान एवं विकास संस्थान' ने एक ऐसे उपकरण का आविष्कार किया है, जो अवरक्त प्रकाश (इन्फ्रारेड लाइट) उत्पन्न करके प्रकाश किरणों के मार्ग में इन किरणों का जाल फैला देता है, फलस्वरूप आपका यह शरीर ही दुश्मन के पास खड़ा हो तो वह भी आपको देख न सकेगा, जबकि आप उसे अच्छी तरह देख रहे होंगे।

प्रकाश के यह जादू ही मन के वह चमत्कार हैं, जिनका प्रयोग योगियों ने चेतना के स्तर पर किया और बिना पाँव-गमन, बिना आँखों-देखना तथा बिना कन के सुनना, जैसे चमत्कारों का स्वामित्व प्राप्त किया। मन की सामर्थ्य उससे हजार गुना अधिक है, उसे अच्छी प्रकार साध लिया जाये तो मारण, मोहन वशीकरण, उच्चारण, ईशत्ववशत्व जैसी दुर्लभ सिद्धियाँ भी मनुष्य इस शरीर में रहकर ही प्राप्त कर सकता है।

भाव चेतना को प्रभावित करे, ऐसी

विधा की खोज हो

एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को तर्क, प्रमाण, विचार, परामर्श आदि देकर प्रभावित कर सकता है, इसकी जानकारी सभी को है। अध्यापक अपने छात्रों के मस्तिष्क को विकसित करते हैं। पहलवान अपने शागिर्दों को कुश्ती, कसरत सिखाकर बलवान बनाते हैं। वक्ता, लेखक विचारों के हलचल उत्पन्न करते और लोगों के सोचने के तरीके में परिवर्तन करते हैं। नर-नारी के बीच शारीरिक आकर्षण भी काम करता है और प्रतिभाशाली व्यक्ति अपने रौब, दौब, आतंक का भी उपयोग करते हैं।

उपरोक्त प्रभाव प्रक्रिया का स्तर उथला ही रहता है। अध्यापक गणित, इतिहास, भाषा भूगोल, आदि की जानकारी करा देने पर अपने कर्तव्य से छुट्टी पा लेते हैं। वे चिन्तन की शैली, आकांक्षा और दिशा नहीं बदल सकते। अखाड़े के पहलवान शागिर्दों की मौस-पेशियाँ मजबूत कर सकते हैं, उनमें मनोबल उत्पन्न नहीं कर सकते।

इसी प्रकार लेखक, वक्ता, नेता, प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति अपनी तेजस्विता के सम्मोहन से तत्काल तो कुछ भी सोचने, करने का आवेश उत्पन्न कर सकते हैं पर वह क्षणिक होता है और उथला रहता है। वह नशा उतरते ही लोग अपने पुराने ढर्रे पर आ जाते हैं और वह कृत्रिम उत्साह अपनी क्षणिक चमक दिखाकर तिरोहित हो जाता है। कारण स्पष्ट है जो शिक्षण दिया गया था वह अन्तःकरण की गहराई तक प्रवेश न कर सका, केवल उथले बौद्धिक स्तर तक टकराकर बिखर गया। उस टकराहट की प्रतिक्रिया जितनी देर रह सकती थी उतनी देर रही और इसके बाद व्यक्ति की वही संस्कारगत स्थिति आ गई।

मनुष्य का समग्र व्यक्तित्व विकसित एवं परिवर्तित करने से ही उसकी गरिमा, महत्ता बढ़ सकती है। महामानव ही इस विश्व की सच्ची सम्पत्ति होते हैं। कोई

देश और समाज उन्हीं के कारण गौरवशाली बनते हैं और उन्हीं के अभाव में पतन के गर्त में गिरते चले जाते हैं। राष्ट्रीय सम्पदा का मूल्यांकन, धन के आधार पर नहीं मनस्वी, तेजस्वी और आत्मबल सम्पन्न प्रतिभा के आधार पर ही किया जाना चाहिए। वे यदि उद्भूत नहीं तो विपुल सम्पदा सम्पन्न होते हुए भी कोई समाज दरिद्र ही रहेगा। उसकी वह आर्थिक उन्नति भी ठोस प्रगति की दिशा में कुछ अधिक सहायता न कर सकेगी।

उच्चस्तरीय व्यक्तित्वों का निर्माण कैसे हो ? इसके लिए उसी स्तर के साँचे चाहिए। एकसाल के साँचे जैसे होते हैं वैसे ही सिक्के ढलते चले जाते हैं। बुद्ध के अनुगामी ढाई लाख व्यक्तियों ने संसार भर में सत्य, अहिंसा का संदेश पहुँचाया था। गान्धी के अनुचर स्वतंत्रता संग्राम में एक से एक बढ़े-चढ़े अनुदान लेकर आगे आये। यह प्रेरणायें बौद्धिक आधार पर नहीं-भावना स्तर पर दी जाती हैं। और इनको देने के लिए वैसा ही आत्म-शक्ति-सम्पन्न व्यक्तित्व चाहिये। आज आवश्यकता ऐसी ही हस्तियों की है जो अपने आत्मबल से जन साधारण के भावस्तर को विकसित और परिष्कृत कर सकें। विज्ञान इस संभावना को स्वीकार करता है कि अदृश्य शक्ति प्रवाह के द्वारा भी मानवीय चेतना को अभीष्ट दिशा में मोड़ा या ढाला जा सकता है।

मानव मस्तिष्क की अन्तस्त्वचिक्र के भीतर एक विशेष प्रकार की तंत्रिकाएँ पाई जाती हैं, उनका समूह भावात्मक मस्तिष्क कहलाता है। भय, क्रोध, शोक, चिन्ता, अवसाद, हर्ष, संतोष, प्रेम, व्यंग, संयम और कामोद्देग जैसी प्रवृत्तियाँ इसी भाग से संबंधित हैं। इनका स्वरूप बहुत कुछ वंश परम्परा से उत्तराधिकार में मिला था, कुछ वातावरण एवं संगति में और कुछ व्यक्तिगत चिन्तन की दिशा के आधार पर विकसित होता है। अविकसित और विकसित प्राणियों का यों मानसिक अन्तर कुछ तो बुद्धि के आधार पर भी होता है पर मुख्य अन्तर यह भावात्मक ही है। भावनाओं के आवेश में ही मस्तिष्क उत्तेजित और मस्तिष्क सक्रिय होता है। इन दोनों की बिखरी हुई दिशाओं को एक केन्द्र पर एकत्रित करने और क्रियाशील बनाने का श्रेय इन भावात्मक मस्तिष्क केन्द्र को ही है।

येल विश्वविद्यालय के न्यूरोलोजिस्ट डॉ॰ जोसे डैलगेडो ने ऐसे विद्युत रेडियो उपकरणों का आविष्कार किया है, जिनके आधार पर बिना शल्य चिकित्सा के ही रेडियो किरणों द्वारा मस्तिष्क के किसी भाग से सम्पर्क बनाना और इसे प्रभावित कर सकना संभव हो सके। भावनात्मक मस्तिष्क की तंत्रिकाओं और कोशिकाओं को

शरीर के आर-पार जा सकने वाली किरणों के द्वारा वहाँ के असंतुलन को मिलाया जा सकेगा। विशेष प्रकार का भावावेश उत्पन्न किया जा सकेगा। यह किरणें 'एक्स' किरणों से मिलती जुलती हैं जिन्हें शरीर के आर-पार जाने में मस्तिष्क की कठोर खोपड़ी में भी कोई बड़ी बाधा नहीं पहुँचती।

अब तक भावनाओं का समाधान भावनाओं से ही किया जाता रहा है। क्रोध को विनय से, घृणा को प्रेम से, असंतोष को उपलब्धियों से शमन किया जाता रहा है। इसके लिये सामने वाले व्यक्ति को अपनी वाणी, व्यवहार और क्रिया द्वारा असंतुलित व्यक्ति को वैसा विश्वास दिलाकर उस उद्वेग का समाधान करना पड़ता था जिसके अभाव में उसे असंतुलित होना पड़ा। इतनी लम्बी प्रक्रिया के बाद तब कहीं उत्तेजित व्यक्ति सामान्य स्थिति में आता था। उसके समाधान के लिए व्यक्ति विशेष को माध्यम बनाकर अथवा वातावरण को बदलकर मनोविकार प्रस्त मनुष्य की शान्ति संभव की जाती थी। उचित ही नहीं अनुचित समाधान भी प्रस्तुत करने पड़ते थे पर अब उपरोक्त वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण यह कठिन प्रक्रिया सरल हो गई। रेडियो विद्युत-धाराएँ आवेशग्रस्त मस्तिष्कीय खण्ड का शमन कर दिया करेंगी और मनुष्य चिकित्सक के इशारे पर अपने भाव-संस्थान में आवश्यक परिवर्तन कर लिया करेगा। इस सफलता के कारण न केवल भावनात्मक रुग्ण ग्रन्थियों को खोला जा सकेगा वरन् उनमें उपयोगी ऐसे भाव बीज भी जमाये जा सकेंगे जो उसे किसी दिशा विशेष में चलने के लिये आवश्यक रुचि एवं स्फूर्ति पैदा कर सकें।

मानवीय मस्तिष्क पर इलेक्ट्रॉनिक नियमन की इस प्रक्रिया पर विज्ञान के क्षेत्र में शोध कार्य बहुत तेजी से चल रहा है और प्रगति भी काफी हुई है। दो दशक पूर्व स्विट्जरलैण्ड के विज्ञानी डॉ० डब्ल्यू० आर० हेस ने इस दिशा में प्रयास आरम्भ किया उन्होंने जीवित प्राणी के मस्तिष्क में एक सुई घुसेड़कर उसके माध्यम से विविध स्तरों की विद्युत तरंगें पहुँचाई थीं और उसके प्रभाव का अध्ययन किया था। उन्होंने पाया कि चेतन और अचेतन मस्तिष्क के भागों में विभिन्न स्तर के जो चेतन केन्द्र बने हुए हैं, उनसे सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है और उन केन्द्रों को उत्तेजित करके उसी स्तर की विचारणा से प्राणी को ओत-प्रोत किया जा सकता है।

इसके बाद अमरीकी मस्तिष्क विद्या विशारद डा० जेम्स औल्ड्स ने इस कार्य को और आगे बढ़ाया। उन्होंने मानवी मस्तिष्क को हाथ में लिया जबकि पूर्ववत् स्विस् विज्ञानी जैसे प्रयोग अन्य प्राणियों पर करते रहे। भूख,

भय, इच्छा, कामुकता, क्रोध, पीड़ा, निराशा, उत्साह जैसे मस्तिष्क क्षेत्र तो पहले भी मालूम थे पर उनके केन्द्रीय कण उन्होंने ढूँढ़े और इस खोज के बाद उन्होंने वह पद्धति खोजी जिसके अनुसार उस केन्द्र तक बाह्य प्रभाव को पहुँचाया जा सकना संभव हो सके। इसमें सबसे बड़ी बाधा खोपड़ी को चारों ओर से जकड़ी हुई कपाल अस्थियों की थी। यह अस्थियाँ सिर की केवल सर्दी-गर्मी, चोट-आघात आदि से ही रक्षा नहीं करती वरन् बाहरी विद्युत प्रभावों को भी भीतर जाने से रोकती हैं। विचारों की बिजली अति सूक्ष्म होने से भीतर प्रवेश कर सकती है। एक संकल्पशील व्यक्ति के विचार दूसरे व्यक्ति पर आरोपित करने का सफल प्रयोग तो जर्मनी के डा० शेक्सर पहले ही कर चुके थे। मैस्मेरेज्म, हिप्नोटिज्म आविष्कारों ने उनमें इसी तथ्य को प्रत्यक्ष किया था। पर यह तो प्रश्न विचार तरंगों का नहीं विद्युत तरंगों के प्रवेश का था, इसमें कपाल अस्थियाँ प्रधान रूप से अवरोध उत्पन्न कर रही थीं। इसलिए उन्होंने चोर रास्ते से प्रवेश किया, रेडियो प्रभावित रसायनों को रक्त में मिलाकर और उस प्रभावित रक्त में विद्युत तरंगें पहुँचाकर नया रास्ता खोज लिया गया और अमुक केन्द्र को उत्तेजित करने के लिए अमुक स्तर की विद्युत का प्रयोग करने की पद्धति का निर्धारण कर लिया गया।

यह प्रयत्न और भी अधिक तेज कर दिये गये हैं और वह सरलता खोजी जा रही है जिसमें जिसे प्रभावित करना हो, उसके सहयोग की आवश्यकता न रहे। अभी तो यह कार्य तभी हो सकता है जब व्यक्ति पर लोहपट्टी बँधवाने और औषधालय सेवन के लिए सहायता हो। बाँधकर बलात्कार पूर्वक तो यह किया नहीं जा सकता। यदि व्यक्ति अपने ऊपर इस प्रकार का प्रभाव डलवाने के लिए सहमत न हो तब तो सारी योजना ही निरस्त हो जायगी। अस्तु शोध के चरण इस दिशा में चल रहे हैं कि मनुष्य को पता भी न चले और परोक्ष रूप से उसे बौद्धिक पराधीनता के पाश से मजबूती से जकड़ा जा सके।

प्रकृति की शक्तियों को वशवर्ती करने में बहुत बड़ी मात्रा में सफलता प्राप्त कर लेने के बाद अब चेतना की स्वतंत्रता को विज्ञान की मुट्ठी में कैद करने के लिये अन्वेषण गतिविधियाँ तीव्र कर दी गई हैं और विज्ञान क्षेत्र में समुन्नत देश गुपचुप इस दौड़ में परस्पर बाजी मारने के लिये तुले हुये हैं। अन्तरिक्ष पर नियन्त्रण करने से भी बढ़कर यह आविष्कार होगा।

इस दिशा में संतोषजनक सफलता मिलती है तो फिर युद्ध का सबसे बड़ा माध्यम यही होगा एक अणु

बम, हाइड्रोजनबम जैसे अस्त्र को बेकार समझकर त्याग दिया जायेगा क्योंकि उससे शत्रु देश के विनाश के साथ-साथ विश्वव्यापी वातावरण में विकरण उत्पन्न होने से मित्र देशों को भी खतरा उपस्थित होता है। फिर उसमें कई तरह के खतरे और झंझट भी हैं। खचीली तो वह प्रक्रिया है ही, उसकी सुरक्षा के लिए भी कम चिन्ता नहीं करनी पड़ती।

प्रगति जिस चरण में पहुँची है उसे देखते हुए मिशिगन विश्वविद्यालय अमेरिका के इस संदर्भ में संलग्न विज्ञानी डा० ओटो शिमल ने घोषणा की है कि अब हमारे हाथ में मानव मस्तिष्क को नियन्त्रित करने की शक्ति आ गई है पर आशा की जानी चाहिये कि उसका प्रयोग केवल अच्छाई के लिए ही होगा किन्तु साथ ही इस खतरे को भी ध्यान में रखना होगा कि इस नव उपाजित शक्ति का प्रयोग निजी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति एवं राष्ट्रीय विस्तारवाद के लिये भी किया जा सकता है। यदि ऐसा किया गया तो यह आविष्कार संसार का सबसे अधिक विघातक अस्त्र सिद्ध होगा।

कुछ दिन अमरीका प्रतिरक्षा विभाग के एक गधे पर यह प्रयोग किया गया था और उसे उपकरणों से प्रभावित करके अकेला छोड़ा गया था। उसे जिधर चलने और जो करने के लिए निर्देश किया उसने वही सब कर दिखाया।

इस अन्वेषण के आधार पर कई उपयोगी चमत्कार अमेरिका के मेयो क्लिनिक ने कनाडा के मोन्ट्रियल न्यूरोलोजिकल इन्स्टीट्यूट ने तथा नार्वे के गुस्टाड मेन्टल हॉस्पिटल ने दिखाये हैं। रोगी को खुशी-खुशी बिना डरे आपरेशन करा लेने के लिए इस आधार पर तैयार करने में आश्चर्यजनक सफलता पाई गई है। एक प्रयोग में तो एक १८ वर्ष से अन्धी चली आई महिला को उसका मस्तिष्कीय दृष्टि संस्थान उत्तेजित करके देख सकने की शक्ति ही प्रदान कर दी। यह इस अन्वेषण का उपयोगी पक्ष है। निस्संदेह इन आविष्कारों का उपयोग मानवी सुविधाओं की वृद्धि भी कर सकता है पर खतरा तो उस दिशा से है जिस पर कि आज के विश्व राजनेता घृष्टतापूर्वक चलते हुए एक दूसरे से बाजी मारने में तुले हुये हैं और तथाकथित शत्रु पक्ष को सर्वथा अपंग बनाने की बात सोच रहे हैं।

अवांछनीय दृष्टिकोण लेकर किया हुआ इस आविष्कार का उपयोग किसी भी अधिनायकवादी के हाथ में चक्रवर्ती विजय सौंप सकता है। इस क्षेत्र में प्रगति-सम्पन्न देश अपने विरोधी या असहयोगियों की जनता तथा सैन्य शक्ति में निराशा, भीरुता एवं भयाक्रांत मनःस्थिति व्यापक रूप से उत्पन्न कर सकता है और उस

व्यामोह में फँसे हुये विशाल जन समाज को मुट्ठी भर लोग अपने कबू में रखने और इशारे पर चलने के लिये विवश कर सकते हैं। गुलामी के बंधनों में जकड़ने के अब तक के प्रयासों में यह सबसे घृणित प्रयास होगा। जब आदमी सोचने की निजी क्षमता ही खो बैठ तो फिर उसका 'अपनापन' तो कुछ रहा ही नहीं, तब उसे जीवित होते हुए भी मृतकों की तरह कहीं भी खींचा घसीटा जाता रहेगा। ऐसे शक्ति सम्पन्न लोगों के चंगुल से तो मुक्त होने की भी फिर कोई आशा न रहेगी।

भौतिक विज्ञान मनुष्य के मस्तिष्क तक ही पहुँच सकता है। क्योंकि मस्तिष्क भी शरीर का ही एक अंग होने से उसे भी भौतिक क्षेत्र में सम्मिलित रखा गया है। मन को छठी या ग्यारहवीं इन्द्रिय ही माना गया है। वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा मस्तिष्कों को प्रभावित करने की विधि लगभग खोज निकाली गई है और वह निकट भविष्य में सामने आ भी रही है। इसका भला-बुरा प्रभाव जल्द ही देखने के लिये मिल जायगा।

पर भाव क्षेत्र फिर भी सूना ही पड़ा रहेगा। वह भौतिक विज्ञान की परिधि से बाहर है क्योंकि अन्तरात्मा विशुद्ध चेतना का अंश है। उसे प्रभावित, परिणत और परिष्कृत करने में केवल आत्मसत्ताएँ ही समर्थ हो सकती हैं।

आज आत्मसत्ता की दुर्बलता के कारण भौतिकवादी असुर सत्ता संसार की समस्त सम्पदाओं पर हावी होती जा रही है। मस्तिष्क की स्वतन्त्र चिन्तन शैली पर भी उसका दाँत है और आश्चर्य नहीं कि वह भी उसकी पकड़ में आ जाय। ऐसी विषम घड़ियों में इस बात की आवश्यकता और भी अधिक बढ़ जाती है कि आत्म सत्ता का पक्ष इतना प्रबल हो कि उसके द्वारा संसार की भाव चेतना को उत्कृष्टता की दिशा में अग्रसर किया जा सके। ऐसा हो सका तो भौतिक विज्ञान और उसकी समस्त उपलब्धियों को विश्व कल्याण में नियोजित किया जा सकेगा। यदि ऐसा न हो सका तो भौतिक विज्ञान के बढ़ते हुये चरण मनुष्य को एक मशीन मात्र बनाकर छोड़ेंगे और कुछ सत्ताधारियों की कठपुतली बनकर समस्त मनुष्य समाज को सबसे बुरी पराधीनता-मस्तिष्कीय गुलामी के निविड़ बंधनों में बाँधकर दयनीय स्थिति में जीना पड़ेगा। ऐसे विषम समय में आत्म-विज्ञान पक्ष को अधिक समर्थ और अधिक सक्रिय होने की आवश्यकता है।

आत्मिकी का अवलम्बन एवं उसके

प्रतिफल

यह विशाल ब्रह्माण्ड असीम और अनन्त शक्तियों का महान भाण्डागार है। इस विशालता के महासागर में कितने प्रचुर परिमाण में दिव्यता, विचित्रता एवं क्षमता भरी पड़ी है, इसकी मनुष्य की सीमित बुद्धि परिकल्पना तक नहीं कर सकती।

ब्रह्माण्ड की विशालता को देखते हुए अपनी आकाश-गंगा, अपना सौरमण्डल और उसके अत्यन्त छोटे भाग को घेरे हुए भू-मण्डल का अस्तित्व नगण्य है। धरती पर बसने वाले कोटानुकोटि प्राणियों में मनुष्य जाति मुट्ठी भर है। इसमें भी एक मनुष्य की क्षमता तो इतनी नगण्य है जिसे बाल की नोक से भी कम माना जा सकता है। मनुष्य की सत्ता में उसका शरीर, मस्तिष्क एवं साधन-सम्पदा ही गिने जाने योग्य है। इस परिधि में भी इतनी अधिक आश्चर्यजनक रहस्यमयी सामर्थ्यें सन्निहित हैं, उनका एक अत्यन्त ही छोटा भाग कार्यान्वित होता है शेष अधिकांश भाग तो प्रसुप्त स्थिति में ही पड़ा रहता है। यदि मनुष्य की दृश्यमान कलेवर की शक्तियाँ ही जगाई, काम में लाई जा सकें तो उतने भर से मनुष्य अगणित विभूतियों का स्वामी बनकर अत्यन्त विशिष्ट विकसित सामर्थ्यों का भण्डार बनकर प्रकट हो सकता है। उसकी निजी क्षमता ऋद्धि-सिद्धियों से भरी-पूरी दृष्टिगोचर हो सकती है। इसके आगे वे अनेकों सूत्र ब्रह्माण्ड के अनेक घटकों के साथ जुड़ते हैं जो अपनी सशक्त मानवी सत्ता पर उड़ेलकर उसे देवोपम बना सकते हैं। उसे कुबेर जैसा सम्पन्न, इन्द्र जैसा सशक्त देखा जा सकता है। यह असंभव उपलब्धियाँ कैसे हस्तगत हों ? उस प्रश्न का एक ही उत्तर हो सकता है कि अध्यात्म विज्ञान के आधार पर जब चुम्बकत्व को प्रखर, प्रचण्ड बना लिया जाय।

भौतिक विज्ञान के आधार पर कोई कितना ही उपार्जन, संग्रह क्यों न कर ले पर उसके उपयोग उपभोग की एक छोटी परिधि है जिससे अधिक के लिए हाथ-पैर मारना अपने आपको संकट में फँसाना है। पेट में अधिक खाना, शरीर सीमा से बढ़कर पहनना संभव नहीं। उपार्जन वैभव कितना ही अधिक क्यों न हो, पर वह अपने स्थल पर ही रखा रहता है। बचत का दूसरे उपयोग करते हैं। किन्तु चेतना क्षेत्र इससे सर्वथा भिन्न है, उसकी परिधि विशद है। सूक्ष्म शक्तियों के रूप में सम्पदा का अजख परिवार उसमें बीज रूप में भरा जा सकता है। उपलब्ध शक्तियों का जागरण और प्रभाव क्षेत्र का परिकर दोनों

मिलकर इतने अधिक हो जाते हैं, जिसका मूल्यांकन करने में देव-दानवों को ही मापदण्ड बनाया जा सकता है।

देवता मनुष्य लोक में आने के लिए ललचाते रहते हैं। उनकी उत्सुकता उससे कहीं अधिक है जैसा कि मनुष्य स्वर्ग लोक के सम्बन्ध में सोचता और वहाँ के आनन्द का रसास्वादन करने के लिए उत्सुक रहता है। इतिहास साक्षी है कि देवताओं ने मनुष्य से सहायता प्राप्त करने के लिए अनेक बार याचना की है। दशरथ अपना रथ लेकर देवताओं की सहायता करने गये थे। साथ में कैकेयी भी थी, जिनने पति की सहायता करके तीन वरदान प्राप्त किये थे। अर्जुन का इसी प्रयोजन के लिए देवलोक जाना प्रसिद्ध है जहाँ उनके सम्मुख अनिघ सुन्दरी उर्वशी प्रस्तुत की गई थी और गाण्डीव धनुष उपहार में दिया गया था। देवताओं में मानुषी नारी के साथ सम्पर्क साधने में अप्सराओं की सेवा से अधिक रसास्वादन माना है। इन्द्र और चन्द्र का अहिल्या पर मन डिगाना। कुन्ती से अनुरक्त होकर उसके गर्भ से सन्तानोत्पादन का उपक्रम करना यही बताता है कि धरती का वैभव स्वर्ग से अधिक है। यदि ऐसा न होता तो देव सुन्दरी मेनका विश्वामित्र की सहचरी बनने के लिए क्यों आतुर होती और क्यों इतनी लम्बी दौड़ लगाती ?

भगवान को ब्रह्माण्ड के असंख्य लोगों की व्यवस्था का दायित्व सँभालना पड़ता है पर वे धरित्री का विशेष ध्यान रखते हैं। जब भी यहाँ असंतुलन पैदा होता है तभी प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदलने के लिए अधर्म के उन्मूलन और धर्म के अभिवर्धन के लिए इसी धरातल पर विशेषतया भारत क्षेत्र में अवतार धारण करते हैं। दस या चौबीस अवतार इसी मनुष्य लोक में विशेषतया भारत देश में हुए हैं। इस भूमि को 'स्वर्गादपि गरीयसी' कहा गया है। पुरातन काल के सतयुगी मनुष्य देव मानव कहे जाते थे। मनुष्य जन्म को सुरदुर्लभ कहा गया है। देवता यज्ञादि उपासनात्मक कर्मकाण्डों द्वारा अपना पोषण प्राप्त करने के लिए आशा, उपेक्षा करते रहते हैं। जब वैसा कुछ मिल जाता है तो प्रसन्न होकर मनोवांछित वरदान प्रदान करते हैं। मनुष्यों की संकल्प शक्ति देवताओं को स्वर्ग से पृथ्वी पर आने के लिए विवश करती रही है। भागीरथ ने गंगा को स्वर्ग से उतारकर पृथ्वी पर बहने के लिए विवश किया था। वृत्रासुर से संतुष्ट होकर देवगण महर्षि दधीचि से अस्थियाँ लेकर वज्र बनाने और संकट से त्राण पाने में सफल हुए थे। हरिश्चन्द्र की आदर्शवादिता पर पुलकित होकर देवता स्वर्ग से पुष्प वर्षा करने के लिए दौड़ पड़े थे। सूर्य पुत्र कर्ण का पराक्रम और आदर्शवाद प्रख्यात है।

मानवी सत्ता देव वर्ग से कहीं अधिक है। पर वह आमतौर से प्रसुप्त स्थिति में मूर्छित पड़ी रहती है। जग पड़े तो कुण्डलिनी बनकर अपनी ज्वाल-माल से क्षेत्र विशेष को प्रचण्डता से ओत-प्रोत करती देखी गई है यदि वैसा न बन पड़े तो मात्र हाड़-मांस के पिटारे जैसा दोष-दुर्गण से लिपटा हुआ मनुष्य दीन, दुर्बल, दरिद्र, अनगढ़, उपेक्षित, तिरस्कृत बनकर रहता है। आत्म-प्रताड़नाएँ और लोक-भर्त्सनाएँ उसे शूलती-हुलाती रहती ही हैं। भव बंधन में जकड़ा हुआ, कोल्हू के बैल की तरह घिसता, पिसता हुआ किसी प्रकार मौत के दिन पूरे भर कर पाता है।

काया स्वस्थ, समर्थ हो तो मात्र युवावस्था की थोड़ी-सी अवधि में बलिष्ठ, सुन्दर, प्रबुद्ध सम्पन्न, स्वतंत्र-स्वच्छन्द रहा जा सकता है। बचपन और बुढ़ापे का अधिकांश समय तो अपंग, असमर्थ, परावलम्बी जैसी स्थिति में किसी प्रकार गुजर करता है। जरा-जीर्ण स्थिति तो रोग शोक में कलपते-कराहते दिन बीतते हैं। उस स्थिति में मौत के दिन गिनने पड़ते हैं। उसी के अंचल में मुँह छिपा लेने के लिए विवशता भरी उत्सुकता चढ़ी रहती है किन्तु आत्मिक प्रगतिशीलता इससे सर्वथा भिन्न है। यदि उस दिशा में प्रगति कर सकना बन पड़े तो लोक-परलोक में समान रूप सन्तोष छाया, ओजस् उभरा और उल्लास-आनन्द का सास्वादन करते रहने की परिस्थिति निरन्तर बनी रहती है। आत्मिक प्रगति अकेली ही ऐसी है जिस पर अनेकानेक भौतिक सफलताओं को निछावर किया जा सकता है। बुद्ध, गाँधी सरीखे आत्मवान अस्सी वर्ष से अधिक समय तक सन्तोष, सम्मान भरा जीवन जीते रहे और सदा-सर्वदा के लिए अजर-अमर हो गये। अपनी अनुकरणीय, अभिनन्दनीय स्तर की उपस्थिति इतिहास के पृष्ठों पर युग-युगान्तरों के लिए छोड़ गये। आत्मिक प्रगति की महिमा जितनी बखानी जा सके उतनी ही कम है। आत्मवान् स्वयं तो विभूतिवान् होकर जीता ही है अपने अनुदानों से अपने समय और परिकर को हर दृष्टि से कृतकृत्य करता है। भौतिक क्षेत्र में केवल स्वल्पकालीन उन्नति ही की जा सकती है। चिरस्थायी प्रगति का अर्थ तो आध्यात्मिक उपलब्धियाँ उपार्जित करने के अतिरिक्त और कुछ होता ही नहीं। उसी के साथ प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष श्रेय जुड़ा हुआ है। अस्तु, दूरदर्शिता इसी में है कि आत्मोत्कर्ष का ताना-बना बुना जाय। भले ही वह कष्टसाध्य ही क्यों न हो ? भले ही उसके लिए सामयिक सुख-सुविधाओं में, तृष्णा-महत्वाकांक्षाओं में, कटौती ही क्यों न करनी पड़े ? आत्मा को ऊँचा उठाना आरम्भ कर दिया जाय तो वह विकसित होते-होते देवात्मा परमात्मा का स्तर प्राप्त कर लेती है।

शरीर सर्वाधिक उपलब्धियों की एक सीमा है। तृष्णा बढ़ी-चढ़ी कितनी ही क्यों न हो पर प्रकृति अंकुश के कारण उसका संग्रह एवं उपभोग एक सीमा तक ही हो सकता है। सीमित समय तक ही वह वैभव पास में रह सकता है। मृत्यु का ग्रास बनना हर किसी के लिए अनिवार्य ही है। ऐसी दशा में यदि असीम और अनन्त की स्थिरता के सम्बन्ध में सोचा जाय तो फिर आत्मिक प्रगति और आध्यात्मिक सिद्धि-सम्पदा पर ही विचार करना पड़ेगा। उसी दिशा में कदम बढ़ाना पड़ेगा।

सांसारिक क्षेत्र के सुसम्पन्नों के साथ सम्पर्क साधना और उनकी अनुकम्पा अर्जित करना सरल नहीं है। पर अदृश्य क्षेत्र में जिन सूक्ष्म सत्ताओं का स्वच्छन्द निवास है उनके साथ आत्मिक मार्ग पर चलते हुए सरलता के साथ जुड़ सकता है। उनका परामर्श, सहयोग विपुल परिणाम में प्राप्त किया जा सकता है। जिस प्रकार याचक को सम्पन्न दानशीलों की तलाश रहती है उसी प्रकार हर क्षेत्र के सुसम्पन्न अपने मित्र, साथी तलाशते रहते हैं। उत्तराधिकारी को खोज सभी को रहती है। पाने की तरह देने का भी आनन्द होता है। इसे माता संतान के, पति पत्नी के संबंधों का विश्लेषण करते हुए सहज ही जाना जा सकता है। सूक्ष्म जगत की महान शक्तियाँ अपनी अनुकम्पा बरसाने के लिए बादलों की तरह आतुर रहती हैं। वे उपयुक्त भूमि पर बरसती भी हैं। रेगिस्तानों पर से तो मेघ मालाएँ बिना रुके पलायन कर जाती हैं।

साधना से सिद्धि का सिद्धान्त शत-प्रतिशत सही है। श्रम-शीलता के सहारे मात्र सम्पदा अर्जित की जा सकती है सो भी 'येन केन प्रकारेण' आगे चलने के लिए अपना रास्ता बना लेती है। किन्तु अध्यात्म सम्पदा के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। वह स्थिर ही नहीं रहती, बैंक ब्याज की तरह बढ़ती भी रहती है। पल्लवित वृक्षों की टहनियों की तरह फलती-फूलती भी रहती है। बाँटने पर विद्या की तरह उसकी अभिवृद्धि होती, परिपक्वता बढ़ती देखी जाती है।

भौतिक क्षेत्र में सफलता, असफलता के, सम्पन्नता विपन्नता के, ज्वार भाटे आते रहते हैं। दिन-रात की तरह अनुकूलता-प्रतिकूलता का उलट कर परिवर्तन होता रहता है किन्तु अध्यात्म क्षेत्र में ऐसा कुछ है नहीं। उस दिशा में बढ़ता हुआ हर कदम आगे की मंजिल ही पार करता है उसमें पीछे लौटने जैसी आशंका है नहीं। जब कभी इस राजमार्ग के पथिक को असफलता मिले तो समझना चाहिए कि दिशा भूल के भटकाने में उसे कहीं उलझना पड़ गया है। सही मार्ग पर सही गति से सही तैयारी के साथ जो भी इस क्षेत्र में बढ़ा है, उसे क्रमिक प्रगति का

समुचित लाभ मिलता रहा है। उसे निराश होने का, पछताने का कुयोग कभी भी मिला नहीं है। उसे भाग्य को कभी कोसना नहीं पड़ा है।

स्मरण रखने योग्य तथ्य यह है कि आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता का त्रिविध संयोग साधक को अपने साथ सँजोये रखना चाहिए। परमात्मसत्ता के साथ अपने आपे को समर्पित, विसर्जित कर देना ही ईश्वरावलम्बन है। ईश्वर जिसकी उपासना की जाती है, वह है सत्त्ववृत्तियों का समुच्चय। उत्कृष्टता एवं भाग्यवादिता का समन्वय। मात्र पूजा करने से नहीं, आत्मा को परमात्मा के साँचे में ढाल लेना ही योगाभ्यास है।

चिन्तन और चरित्र को शालीनता से समन्वित करना, आत्म-परिशोधन में निरत रहना, आध्यात्मिकता और कर्तव्यों के परिपालन में कटिबद्ध रहना एवं धार्मिकता, इन चारों को अपनाये रहने वाला ही सच्चा अध्यात्मवादी और सफल साधक होता है।

आत्मिकी की प्रगति एवं सुनियोजन की

आवश्यकता

विज्ञान, भौतिक जगत की एक महती शक्ति है प्रकृति के भण्डार में असीम प्रयोजनों में काम आने वाली अगणित क्षमताएँ भरी पड़ी हैं। उनमें से क्रमशः प्रयत्न-पूर्वक मनुष्य के हाथों कितनी ही सामर्थ्यें लगती चली गई हैं। अग्नि का, कृषि, पशु पालन, धातुओं के उपकरण बनाने का, पहिये के निर्माण का सिद्धान्त प्रगति के आरम्भिक दिनों में हस्तगत हुआ। तब का मनुष्य इतने भर से भौतिक जीवन में असाधारण सुविधाएँ हस्तगत करता गया। यह लोभ आगे भी संवरण न हो सका। एक के बाद एक खोज करते हुए वह विद्युत ही नहीं, अणु-शक्ति और लेसर किरणों तक का अधिष्ठाता बन गया। यान्त्रिक वाहन, जलयान, नभयान, उसने बनाये और मुद्रण कला जैसे अनेकों सुविधा-साधन ढूँढ़ निकाले। अब वह अन्तरिक्ष पर अधिकार जमाने के फेर में है। प्रक्षेपणास्त्र उसके हाथ आ गये हैं। अनेकों उपग्रह अन्तरिक्ष में विचरण कर रहे हैं। कल-कारखानों के सहारे अनेकों सुविधा-साधन बनते चले गये हैं विज्ञान ने मनुष्य के हाथों असीम सामर्थ्य प्रदान की है। इस आधार पर वह सम्पन्न भी हुआ है और बुद्धि-बल बढ़ाता प्रगति के पथ पर निरन्तर आगे बढ़ा है। यह प्रकृति के रहस्यों को खोजते जाने और उसके ज्ञान के सहारे उपयोगी उपकरण बनाते जाने का ही प्रतिफल है।

इन प्रशंसनीय प्रयासों के साथ एक दुर्भाग्य भी पीछा करता आया है कि मारक और घातक उपकरणों का निर्माण भी कम नहीं हुआ और उपाजित पूँजी का कम अंश उसमें नहीं लगा। इनके द्वारा करोड़ों को जान गँवानी पड़ी और उनके आश्रित बिलखते रह गये। ऐसे महायुद्ध का प्रतिफल यही तो हो सकता था।

विज्ञान ने सुखोपभोग के जहाँ अनेकों साधन प्रदान किये, वहाँ मनुष्य को आलसी, प्रमादी भी बनाया। नशे को ही लें। उसने अच्छे-खासों को निकम्मा बनाकर रख दिया। यान्त्रिक उत्पादन ने अमीरों की अमीरी, गरीबों की गरीबी बढ़ाकर दोनों के मध्य खाई चौड़ी कर दी। हर हाथ को काम मिलना सम्भव न रहा। बेकारी-बेरोजगारी के कुचक्र में असंख्यों पिसने लगे। वैज्ञानिक प्रगति में मानवी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा तो की जा सकती है, पर उसके द्वारा अपनाये मार्ग को देखते हुए यह भी कहना पड़ता है कि उपलब्धियों का सदुपयोग नहीं हुआ। उससे लाभ थोड़ों को हुआ और हानिकारक दुष्परिणाम असंख्यों को भुगतने पड़े। अभी भी जिस मार्ग पर कदम बढ़ रहे हैं, उन्हें देखते हुए भविष्य और भी अधिक अन्धकारमय दीखता है। स्वसंचालित विशालकाय मशीनें अगणित लोगों को बेरोजगार-भूखों मरने के लिए विवश करेगी। उत्पादन को खपाने के लिए, मण्डियों पर अधिकार करने के लिए समर्थों की लिप्सा, युद्धोन्माद बढ़ाकर नये-नये युद्धक्षेत्र रचेगी। वाहन और कारखाने जो जहरीला धुआँ उगलते रहते हैं उससे वायु मण्डल विषाक्त हो चला है। कारखानों की गन्दगी नदी-नालों के मारफत समुद्र में पहुँचती है जिससे जल-जीवों का ही सफाया नहीं होता, वर्षा भी जहरीली होती है। हवा की तरह पानी भी क्रमशः अधिक जहरीला होता चला जा रहा है। अधिक अन्न उपजाने के लिए रासायनिक खाद और फसल के कीड़े मारने के लिए बनने वाले जहरीले छिड़कावों ने खाद्य-पदार्थों को विषाक्त करना आरम्भ कर दिया है। अणुशक्ति का उपयोग चाहे युद्ध के लिए हो या बिजली बनाने के लिए, वह हर हाल में विकिरण उत्पन्न करती है। इस प्रकार वैज्ञानिक प्रगति जितनी सुविधाएँ उत्पन्न कर रही है उससे कहीं अधिक जीवन-संकट उत्पन्न करने वाले दुष्परिणाम भी खड़े कर रही है। मारक औषधियों ने स्वास्थ्य का संरक्षण कम और भक्षण अधिक किया है।

अच्छा होता, वैज्ञानिकों को पैसे के बल पर मुट्ठी में रखकर उनके द्वारा नई शोधें कराने और नये उपकरण बनवाने वाले सत्ताधीश एवं धनाध्यक्ष अपनी बिरादरी को अधिक समर्थ बनाने की अपेक्षा सर्वसाधारण का हित सोचते और ऐसे निर्माण करते जिससे देहातों में बिखरे अशिक्षित भारत में छोटे-छोटे उपकरणों के सहारे

बहुसंख्यक लोगों को उपयोगी उत्पादन में सुविधा मिलती। इस सन्दर्भ में मानवता की एक बड़ी चुनौती विज्ञान के सामने है। उसे एक दो हॉर्स पावर की बिजली से चल सकने वाली कुटीर उद्योगों के यन्त्र बनाने चाहिए। हवा और पानी की शक्ति से चलने वाले सस्ते बिजलीघर बनाने चाहिए। जमीन से ऊपर पानी लाने वाले पम्प, छोटे हल, ट्रैक्टर, कारवे, लकड़ी चीरने और लोहा गलाने की भट्टियाँ बना सकना कुछ अधिक कठिन नहीं होना चाहिए। वजन ढोने की हल्की गाड़ियाँ, बैलों पर कम वजन डालने वाले जुए, छोटी पवनचक्कियाँ जैसे यन्त्र मनुष्यों का, पशुओं का श्रम हलका कर सकते हैं, साथ ही रोजगार भी देते रह सकते हैं। अन्न के बाद मनुष्य की दूसरी आवश्यकता कपड़े की है। इसके लिए रुई बनाने, कातने-बुनने, धोने, रंगने की छोटी-छोटी मशीनें बन सकती हैं और क्षेत्र में बड़े मिलों की प्रतिद्वन्द्विता रोककर लाखों बेरोजगारों को काम दिया जा सकता है। सरकार ही शिक्षा का सारा भार अपने ऊपर उठाए, यह आवश्यक नहीं। निजी विद्यालय चलाने को भी एक स्वतन्त्र व्यवसाय (प्राइवेट सेक्टर) के रूप में छूट दी जा सकती है। इस प्रकार सरकार, जनता एवं वैज्ञानिक मिलकर देश के लिए एक ऐसा रचनात्मक तन्त्र खड़ा कर सकते हैं, जिसमें स्वल्प पूँजी वाले भी अपने लिए तथा दूसरे साथियों के लिए आजीविका, उपार्जन के नये स्रोत खोल सकें। विज्ञान को 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' के क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिए और सदा काम आने वाले छोटे यन्त्रों के निर्माण में तत्परतापूर्वक लगना चाहिए। इससे यन्त्र बनाने वाले उद्योगी और उनसे काम लेने वाले प्रयोक्ता सभी का हित साधन हो सकता है। यों अभी कुछ तो यन्त्र बने हैं पर वे बेमन से उपेक्षापूर्वक चलाये गये हैं, उनकी खामियाँ दूर नहीं की गई। अन्यथा अम्बर चरखा जैसे उपकरण असफल क्यों होते ? इस दिशा में अब नये सिरे से सोचा और सहकारिता के आधार पर कारगर कदम उठाया जाना चाहिए।

बड़े लोग इस दिशा में कम ध्यान दें तो छोटे लोग मिल-जुलकर सहकारी स्तर पर बड़ी पूँजी वाले कारखाने खड़े कर सकते हैं। करोड़ों की पूँजी वाले कारखाने शहरों में, बैंकों के ऋण से सरकारी अनुदान से बनकर खड़े हो जाते हैं तो कोई कारण नहीं कि देहातों में काम आ सकने वाले गृह उद्योगों के लिए आवश्यक उपकरण न बन सकें। शहरों पर आबादी का बढ़ता हुआ दबाव और बढ़ता हुआ गन्दगी का प्रभाव कम करने के लिए कस्बों को विकसित किया जाना चाहिए। सड़कों का जाल इस तरह बिछाया जाना चाहिए कि पास वाले

कस्बों तक सस्ते वाहन आसानी से पहुँच सकें। सरकारी कोष में धन कम हो तो वाहनों पर टैक्स लगाकर उसकी पूर्ति उसी प्रकार की जा सकती है। जैसे कि नये पुल बनाने पर यातायात टैक्स लगता है। विज्ञान को सब कुछ अमीरों के लिए बड़े पैमाने पर काट करने वाले साधन ही नहीं जुटाने चाहिए वरन् देहातों में चल सकने वाले उपकरण भी बनाने चाहिए। जिससे बेरोजगारी का निराकरण हो सके। कृषि में शाक और सस्ते फल उत्पादन की काफी गुंजायश है। आवश्यकता लगनपूर्वक काम करने भर की है।

यह सुविधा-साधन उत्पन्न करने वाले अर्थ प्रधान उपायों की चर्चा हुई। यह भौतिक विज्ञानियों का और उनके लिए बड़ी पूँजी जुटाने वालों का क्षेत्र हुआ। विज्ञान को इतने क्षेत्र तक ही सीमित नहीं होना चाहिए। उसे चेतना क्षेत्र में भी प्रवेश करना चाहिए और व्यक्तित्व निखारने वाले कामों में भी हाथ डालना चाहिए। यह कार्य अध्यात्म-विज्ञानियों का है। संसार में पदार्थ क्षेत्र ही सब कुछ नहीं है, उसके समतुल्य एवं अधिक महत्वपूर्ण चेतना क्षेत्र भी है। मनुष्य को, अन्य प्राणियों से स्वास्थ्य, बुद्धि, प्रतिभा, कला-कौशल, व्यवहार, संयम आदि की दृष्टि से अधिकाधिक समुन्नत और सुसंस्कृत बनाना अध्यात्म क्षेत्र के विज्ञानियों-प्राज्ञावान मनीषियों, योगी, तपस्वियों का काम है। उनका कार्यक्षेत्र भौतिक विज्ञान से भी कहीं अधिक बढ़ा-चढ़ा और अधिक उपयोगी है। पदार्थ विज्ञान सुविधा-साधन विनिर्मित कर रहा है। उन साधनों का उपयोग जिसको करना है उस मनुष्य का दृष्टिकोण परिष्कृत करना असामान्य काम है। उसने अनेकों कुटुंब अपना ली है। और ऐसे क्रिया-कलाप अपना लिये हैं जो मात्र व्यक्ति के लिए ही नहीं समूचे समाज के लिए हानिकारक हैं। ढेरों दुष्प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जिससे पीछा छूटना और छुड़ाया जाना चाहिए। ढेरों सत्प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जिन्हें अभी अपनाया नहीं गया। अन्यथा सामान्य परिस्थितियों में रहने वाला व्यक्ति भी महामानव स्तर का बन सकता था। इस सन्दर्भ में प्रयोग करना और उपलब्धियों से साधारण को अभ्यास कराना यह आत्म-वेत्ताओं का, मनीषियों का काम है।

मनुष्य का शरीर और मस्तिष्क बहुमूल्य यन्त्र है। उसके अन्तराल में प्रकृति की पदार्थपरक और परब्रह्म की चेतना परक अनेकानेक विभूतियाँ समाविष्ट हैं। वे बीज रूप से प्रसुप्त स्थिति में रहती हैं। उन्हें अंकुरित और पल्लवित किया जा सके तो नर के भीतर सोया हुआ नारायण जगाया जा सकता है और पुरुष में पुरुषोत्तम की झाँकी देखने को मिल सकती है। इस स्तर के प्रयत्नों को योगाभ्यास एवं तपश्चर्या कहते हैं। साधना भी इसी को

कहा जाता है। पुरातन काल के तत्वदर्शी अपनी काया में सन्निहित उन सूक्ष्म केन्द्रों को समझते थे, साथ ही उन्हें प्रखर बनाने की विद्या का प्रयोग करके न केवल अपने को असामान्य बनाते थे। वरन् अन्यान्यों को भी इस कौशल से लाभान्वित करते थे। यह हय विद्या है तो भी यथार्थ और प्रचण्ड। जिनमें श्रद्धा हो वे अनुभवी, प्रवीण, पारंगतों के मार्गदर्शन में यह प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते हैं और अभ्यास की परिणतियों से लाभान्वित हो सकते हैं। पिण्ड में ब्रह्माण्ड का समग्र ढाँचा विद्यमान है। बीज से समग्र वृक्ष और शुक्राणु से परिपूर्ण मनुष्य को उदय करने के लिए उस प्रसुप्ति को जागृति में बदलना होगा। यह योगाभ्यास का विषय है। इसे चेतना परक विज्ञान क्षेत्र ही समझना चाहिए। पिछले दिनों यह क्षेत्र पाखण्डियों के हाथों रहा है। अब उसे मनस्वी, तेजस्वी और तपस्वी हाथ में लें तो विज्ञान के अधूरे भाग की भी पूर्ति हो चले और उस प्रगति से ऐसा लाभ मिले जो भौतिक विज्ञान से भी उपलब्ध नहीं हुआ है।

इन दिनों 'ब्रेन वाशिंग' के नाम से जाने-जाने वाले प्रयोग की महती आवश्यकता है। इस क्षेत्र में भौतिक विज्ञानियों ने भी यत्किंचित प्रवेश किया है और विरोधियों को समर्थ बनाने में आंशिक सफलता पाई है। उनकी कल्पना है कि सशक्तों को दुर्बलों के मनों पर आधिपत्य करने के उपरान्त पालतू पशुओं जैसा इच्छानुवर्ती होने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। उनके प्रयोग सफल हुए तो समर्थ नफे में रहेंगे किन्तु मनुष्य का स्वतन्त्र चिन्तन और आत्मबल समाप्त हो जायेगा। अस्तु यह क्षेत्र विशुद्ध रूप से अध्यात्मात्मवादियों का है। उन्हें लोककल्याण की दृष्टि से उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व अपनाने के लिए जन-साधारण को प्रशिक्षित करना चाहिए। 'ब्रेन वाशिंग' उन्हीं का काम है। इसे हाथ में लेकर वे मनुष्य जाति की महती सेवा साधना कर सकते हैं।

पंच भौतिक मानवी क्रिया के हृदय, फुफ्फुस आदि अवयवों और रक्त-माँस-अस्थि आदि घटकों का स्वरूप और क्रिया-कलाप समझ लिया है। शल्य-क्रिया क्षेत्र में उसने श्रेय भी प्राप्त किया है। मस्तिष्कीय घटकों के स्थान एवं क्रिया-कलाप समझकर इलेक्ट्रोडों द्वारा उस क्षेत्र को वशवर्ती किया जा रहा है।

जिन रहस्यों पर अधिक प्रकाश पड़ने की आवश्यकता है उसमें मानवीय विद्युत मस्तिष्कीय घटकों के कम्पन अन्तःस्नायी ग्रन्थियाँ और उनसे निकलने वाले स्नायु पर नियन्त्रण करने की पद्धति मानवी चेतना को प्रभावित करने की दृष्टि से अत्यधिक आवश्यकता है। हारमोनों पर

नियन्त्रण की तरह ही गुण-सूत्रों को इच्छानुसार प्रवाह दे सकने की बात भी असामान्य है। शरीर में संव्याप्त रासायनिक पदार्थों में हेराफेरी की बात भी है। जीव-कोशों और ज्ञान तन्तुओं की सूक्ष्म संरचना को प्रभावित करना, मस्तिष्क की विभिन्न कोशिकाओं के प्रवाह में परिवर्तन करना वह तथ्य है जिनके ऊपर आध्यात्मिक ऋद्धि-सिद्धियों का आधार टिका है।

मनुष्य को हर दृष्टि से समुन्नत स्तर का बनाना है, उसमें देवत्व का अभ्युदय करना है तो इन रहस्यों को समझना ही नहीं, वशवर्ती करना भी आवश्यक है। यह कार्य भौतिक यन्त्रों, उपकरणों एवं क्रिया-कलापों से सम्भव नहीं। इसके लिए अध्यात्म क्षेत्र पर अधिकार रख सकने वाले पवित्रता एवं प्रखरता सम्पन्न लोगों की कार्य-क्षमता एवं विशिष्ट योग्यता की आवश्यकता पड़ेगी। भौतिक उपलब्धियों के समान ही यदि आत्म-विज्ञान अन्तःक्षेत्र की विभूतियों को करतल-गत कर सके तो ही समझना चाहिए कि समग्र विज्ञान में प्रवेश पाना सम्भव हुआ। मात्र पदार्थों पर अधिकार करना उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जिनके बिना मानवी विशिष्टता अवरुद्ध बनी रहे। बिना सुविधा साधनों के भी काम चल सकता है। आत्मवेत्ता तो विशेष रूप में कम से कम साधनों से काम चलाते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि यह सब इतना आवश्यक नहीं कि इनके बिना व्यक्तित्व को उत्कृष्ट स्तर का न बनाया जा सके और सच्चे अर्थों में विभूतिवान न बना जा सके। भौतिक साधनों की प्राचीनकाल में कमी थी। इतनी बहुलता न थी जितनी इन दिनों है तो भी मनुष्य आत्मबल के सहारे सुखी भी रहते थे और समुन्नत एवं सुसंस्कृत भी। इसके विपरीत इन दिनों जिनके पास साधनों की बहुलता है वे भी बहिरंग एवं अन्तरंग क्षेत्र में विपन्न, उद्विग्न पाये जाते हैं।

मनुष्य व्यक्तिगत जीवन में उल्लसित, विकसित रहें तथा आनन्द से अपरिपूर्ण दिखाई पड़ें तो समझना चाहिए कि उभयपक्षीय उपलब्धियाँ हस्तगत करके मनुष्य सच्चे अर्थों में अपनी गरिमा उपलब्ध कर सके। ऐसे व्यक्तित्वों की जितनी बहुलता होगी उतना ही वातावरण सुख-शान्ति से भरा-पूरा होगा और स्वल्प साधनों में भी प्रगति एवं समृद्धि की परिस्थितियों का अनुभव होगा।

ऋषियों ने इतने उच्चस्तर की विभूतियाँ उपलब्ध की थीं जिन पर आज तो सहसा विश्वास करना कठिन होता है। समूचे समाज को आगे बढ़ाने एवं ऊँचा उठाने की क्षमता जिस प्रवाह एवं वातावरण में है, उसकी उपलब्धि आत्म-विज्ञान की प्रगति से ही सम्भव हो सकती है।

हे मानव! तू पहले अपनी आत्मा को पहिचान

जीवन का महत्व, स्वरूप और उद्देश्य यदि सही रूप में समझा जा सके, तो वह दूरदर्शिता जगे, जिसके सहारे इस सुयोग के सार्थक बन सकने की सम्भावना उभरती है। आम आदमी दर्पण में शरीर को ही देखता है और उतने भर को 'स्व' अनुभव करता है। लोक व्यवहार में भी शरीर ही काम करता है और उसी को श्रेय अथवा अपयश का भागी बनना पड़ता है। सुख-सुविधाओं का उपयोग भी इन्द्रियाँ ही करती हैं। रोग, शोक भी शरीर को ही त्रास देते हैं। शरीर व्यवहार के कारण जुड़े हुए लोग ही सम्बन्धी परिवार कहलाते हैं और उनके साथ शरीर को लक्ष्य रखकर ही वार्तालाप चलता है। अनेक प्रकार के आदान-प्रदानों का माध्यम भी शरीर रहता है। चारों ओर फिरते और चित्र-विचित्र व्यवहार करते हुए भी शरीर ही देखते हैं। ऐसी दशा में लोग सम्मोहन के दबाव से यदि सामान्य बुद्धि आत्मसत्ता को शरीर ही मान बैठे तो उसमें आश्चर्य जैसी कोई बात भी नहीं है।

वातावरण का प्रभाव इसी को कहते हैं। भेड़ों के झुण्ड में रहने वाला सिंह शावक अपने को भेड़ मानने लगा था। शरीर समुदायों के बीच घिरा हुआ, शरीरगत आचरणों में निमग्न रहने वाला चिन्तन यदि समूची आत्म-सत्ता को शरीर मान बैठता है और उसी के लिए सब कुछ करने की बात सोचता है, तो इसे माया की प्रबलता ही कहा जायेगा। ऐसे ही प्रसंगों को देखते हुए ब्रह्मा से माया को बलवती कहा जाता है। माया अर्थात् भ्रान्ति। संसार की अनेकानेक भ्रान्तियों में सर्वोपरि यह है कि मनुष्य अपने आपको शरीर मात्र मान बैठता है। उसका सूत्र-संचालन करने वाली आत्मा को आँख से न देख पाने की बात ही नहीं, समझ का प्रयोग करके उसकी सत्ता का अनुभव तक न करने की दूसरी कठिनाई भी है।

नितान्त बौद्धमन से काम न लिया जाय और विवेक-बुद्धि का तनिक-सा प्रयोग किया जाय, तो यह प्रतीत हुए बिना न रहेगा कि जीवन-सत्ता शरीर पर नहीं, चेतन-आत्मा पर अवलम्बित है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि आत्मा के निकलते ही शरीर अपना अस्तित्व तक बनाये रहने में समर्थ नहीं रह पाता। मरण के तत्काल बाद काया स्वयमेव सड़ने लगती है, और विघटित होकर कलेवर को अति शीघ्र समाप्त कर डालने के लिए आतुरता दिखाती है। मुर्दे को देर तक रखा रहने दिया जाय तो उसे सड़ते, बिखरते, कृमि-कीटकों का शिकार

बनते देखा जाता है। सम्बन्धी लोग विधिवत् अन्येष्टि न करें तो गिद्ध, कौए, कुत्ते और उसके निमित्त आ पहुँचते हैं। आत्मा के अभाव से शरीर द्वारा कुछ करना-धरना तो अलग अपना स्वरूप यथावत् बनाये रहना तक सम्भव नहीं हो पाता है।

सबसे महत्वपूर्ण समस्या मनुष्य के सामने एक ही है कि वह अपने को पहचाने। इस सन्दर्भ में चले आ रहे भटकाव को, अवांछनीय प्रतिक्रिया को समझें और उल्टी राह पर न चले। आत्म-बोध की सबसे बड़ी उपलब्धि कहा गया है। भगवान बुद्ध को यह लाभ जिस दिन हुआ, उस दिन वे सनकी राजकुमार के रूप में अपना ज्ञान-पहचाना केंचुल छोड़कर सच्चे अर्थों में सन्त, ऋषि, अवतार-भगवान बन गये। आत्म विभ्रम एक जादुई सम्मोहन है। जब सभी अपने को शरीर मात्र मानते हैं और उसी की वितृष्णाओं के लिए खपते दृष्टिगोचर होते हैं तो कोई एककी क्यों झुण्ड छोड़कर अकेला चलने की बात सोचे और नई राह खोजे। प्रवाह में बहना जितना सरल होता है इसे सभी जानते हैं। बहती धारा में पड़कर पत्ते भी अविज्ञात की ओर मजे में बहते रहते हैं। साधियों के झुण्ड में उड़ना पक्षी भी जानते हैं। भेड़ों के बारे में कहा जाता है कि वे एक के पीछे एक चलने में इतनी अभ्यस्त और मस्त रहती हैं कि खाई-खड्ड में गिरते चलने तक में आगा-पीछा नहीं सोचती। हवा के रुख के साथ पतंग दिशा पकड़ती है, घूलि-तिनकों तक को दौड़ लगाने की सूझती है। माहौल का प्रभाव ही कुछ अजीब होता है।

मनुष्य समुदाय भी ऐसे प्रसंगों में सर्वथा रुढ़िवादी सिद्ध होता है। घूमघाम, दान-दहेज वाली खर्चीली शादियों के दुष्प्रचलन से असन्तुष्ट-अप्रसन्न रहने पर भी लोग जब प्रचलन के साथ-साथ रहने का प्रश्न सामने आता है तो सिद्धान्त सोचना छोड़कर उसी सड़े-गले ढर्रे को अपनाते और उसी तरह का सरंजाम जुटाते हैं। ऐसी दशा में इस वर्ग के प्रचलनवादियों का समूह आत्म-स्वरूप समझने में अनुकरण के अतिरिक्त और कुछ कर सकेगा, इसकी आशा नहीं की जाती है। आम आदमी अपने को शरीर ही मानता है और उसी की ललक-लिप्साओं के लिए अन्यायों की तरह मरने-खपने लगता है। औचित्य और यथार्थ का विचार कर सकने की विवेकशीलता मुट्ठी भर लोगों में भी तो नहीं होती।

अपने चारों ओर भ्रान्तियों का समुद्र लहलहा रहा है। पृथ्वी बन्दूक की गोली से भी अधिक चाल से दौड़ती और लट्टू से अधिक तेजी से घुरी पर घूमती है, पर सहज बुद्धि को कोई क्या कहे, जो इस लक्ष्य को आँखें

न देख पाने पर सहज स्वीकारती नहीं। अदृश्य परमाणु के समुच्चय ही हमें पदार्थों के रूप में दीखते हैं, इसको कौन माने ? सूर्य किरणों के सात रंग होने की बात भी हर किसी को समझाना मुश्किल है। स्वाद मात्र खाद्य पदार्थ का नहीं होता, मुख के स्नायु आहार से मिलकर जो प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं, उसी की अनुभूति मनुष्य में स्वाद के रूप में की जाती है। नीम मनुष्य के लिए ही कड़ुआ है, ऊँट के मुँह में प्रवेश करने पर वह नितान्त स्वादिष्ट बन जाता है। यत्रि को ऐसा लगता है, सूर्य समुद्र में डूब गया, पर वस्तुतः वह धरती की दूसरी ओर होने से आइ में छिपा भर होता है, डूबता नहीं। ऐसी अनेकों अनुभूति पहेलियों में ही एक यह भी है कि मनुष्य की सत्ता चेतन आत्मा होने पर भी शरीर के साथ जुड़ी रहने के कारण शरीर रूप में ही प्रतिभासित होती है। इसी भ्रान्ति को माया कहा जाता है।

तत्वज्ञानी इस विडम्बना की कठपुतली के नृत्य से तुलना करते हैं और लकड़ी के टुकड़ों का दृश्यमान नाच एक भ्रान्ति भर मानते हैं। छिपे बाजीगर की उँगलियाँ न दीख पड़ने वाले तारों के सहारे ही यह बहकाने वाला खेल खड़ा करती हैं। बाल बुद्धि उसे दृश्यमान कठपुतलियों का नाच देखकर तालियाँ बजाती है। मृत्यु का दृश्य आमतौर से आँखों के सामने रहता नहीं, अन्यथा यह सहज ही समझा जा सकता था, कि जीवन शरीर है या प्राण। इस श्मशान को यदि गम्भीरतापूर्वक समझा और देर तक टिकाये रखा जा सका होता तो फिर बुद्धि पर पड़ा हुआ वह पर्दा हट सकता था, जिसके अनुसार व्यक्ति अपने को शरीर भर मानता और उसी की अनगढ़ उचंगों पर सर्वस्व निछावर करता रहता है।

कहने-सुनने में तो आत्मा की चर्चा नित्य ही होती रहती है और उसके अनश्वर होने का कथा-प्रवचन, पठन-पाठन एक ढर्रे की तरह चलता रहता है पर उस तथ्य पर गम्भीरतापूर्वक कोई ध्यान नहीं देता। बाजारू मजाक की तरह उसे भी परी-कथाओं की तरह कथन-श्रवण का एक शुगल समझकर हवा में उड़ा दिया जाता है। यदि इस सन्दर्भ में गम्भीरतापूर्वक विचार किया जा सका होता, तो फिर उसके साथ जुड़े हुए अनेकों प्रश्न उभरकर सामने आते और वे सभी अपना समाधान पूछने के लिए नाक में दमकर रहे होते। सबसे पहले यह प्रश्न उठता है कि यह मनुष्य आत्मा है, तो उसकी कुछ इच्छा, आवश्यकता भी है क्या? उसे स्वच्छ रखने और पोषण देने के लिए भी कुछ करना पड़ता है क्या ? प्रगति और प्रसन्नता के लिए उसे भी अवसर और साधन चाहिए क्या ?

यह एक ज्वलन्त प्रश्न है, जिसका समाधान खोजने वाले को कम-से-कम शरीर जितना महत्व तो आत्मा को भी देना पड़ेगा और उसकी इच्छा, आवश्यकता, स्वच्छता एवं प्रगति के लिए संरंजाम जुटाने, श्रम करने की बात को उभरकर ऊपर आने देना होगा। जबकि इस सन्दर्भ में मात्र सन्नाटा ही छाया रहता है। यदि विचार में गम्भीरता का पुट रहा होता तो फिर यह भी सोचा गया होता कि आत्मा के निमित्त भी जीवनसम्पदा का उतना अंश लगना ही चाहिए जितना कि शरीर के लिए लगता है। यों आत्मा को सवार और शरीर को सवारी कहा जाता है। सवारी की तुलना में सवार का महत्व अधिक है तो फिर उसकी गरिमा को देखते हुए उसकी प्रतिष्ठा और व्यवस्था भी अधिक ऊँचे स्तर की होनी चाहिए। इतना न बन पड़े तो भी दोनों को समान महत्व और समान साधन तो मिलना ही चाहिए। जीवन को यदि आत्मा और शरीर को संयुक्त व्यवसाय माना जाय तो उपलब्धियों में दोनों की कम-से-कम बराबर की हिस्सेदारी भी होनी चाहिए। पूँजी और मेहनत आत्मा की, चेतना की लगे और मात्र हलचल करने वाले उपकरण के हिस्से में सारी कमाई लगती रहे तो इसे अनुचित ही कहा जायेगा। अनुचित को छूट देने वाली बुद्धि को भी उस पद की गरिमा गिराने वाली कहा जायेगा, जिसे न्यायाधीश की न सही, पुलिसमैन की भूमिका तो निभानी ही चाहिए थी। पता चलने पर अन्याय को रोकने के लिए अपनी ओर से कदम बढ़ाया जाना चाहिए था। शरीरगत सुविधाओं के लिए जितना समय श्रम मनोयोग लगता है, और उससे कम में आत्मा की स्वच्छता, तृप्ति एवं प्रगति के साधन जुटाने में किसी भी प्रकार काम चल ही नहीं सकता। यह विभाजन यदि बन पड़े तो समझना चाहिए कि जीवनचर्या के क्षेत्र में चल रही अनीति और अवस्था में सुधार-परिवर्तन आरम्भ हुआ।

ईश्वर का अंश होने के नाते आत्मा के कन्धों पर वे उत्तरदायित्व भी लदे हैं, जिनके कारण उसे अन्य प्राणियों से वरिष्ठ बनाया और विशिष्ट साधनों से सँजोया गया है। अतिरिक्त उत्तरदायित्वों के आधार पर ही किसी को अतिरिक्त साधन दिये जा सकते हैं, अन्यथा ईश्वर को अन्यायियों और पक्षपातियों का सरताज कहा जाता। मनुष्य को मौज उड़ाने के लिए इतना साधन सम्पन्न-बनाने के विरोध में सभी जीवधारी मिल-जुलकर आवाज उठाते और नीति-न्याय की कचहरी में इन मिली-भगत वाले ईश्वर और मनुष्य की चौकड़ी को कड़ी सजा दिलाकर रहते। ईश्वर बड़ा है। पर बड़े अर्थ यह तो नहीं, वह अपनी ही बनाई मर्यादाओं को तहस-नहस करदे और मात्र एक ही प्राणी पर स्वेच्छाचार सुख-साधनों का अम्बार

बरसा दे तथा दूसरे सभी उस सबके लिए तरसते भर रहे।

निश्चित रूप से मनुष्य को दो कुछ अन्य प्राणियों से अतिरिक्त मिला है, उसके दो ही प्रयोजन हैं। एक आत्म-कल्याण अर्थात् आदर्शों की दृष्टि से अपने को पूर्णता के स्तर तक पहुँचाना। दूसरा विश्व कल्याण अर्थात् विश्व उद्धान को अधिक व्यवस्थित और समुन्नत बनाने में सृष्टा का हाथ बँटाना, क्रिया कुशल माली की भावभरी भूमिका निभाना। इन दो उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही मनुष्य को युवराज जैसी वरिष्ठता दी गई है। इसकी उपेक्षा करके यदि वह शरीरचर्या में निरत रहकर असंयम बरतता है तो उसकी विलासिता, तृष्णा और अहिंसा द्वारा अपनाई गई उद्दण्डता अपराध श्रेणी में गिनी जायेगी। महत्वपूर्ण पदों पर अवस्थित अधिकारी जब उत्तरदायित्वों की अवहेलना करते हैं तो उन्हें भर्त्सना एवं प्रताड़ना भी उतनी ही बड़ी मिलती है। सेनानायकों को तनिक-सा प्रमाद बरतने पर कोर्टमार्शल होते और गोली से उड़ाये जाते देखा गया है। प्रमादी मनुष्य के साथ भी नियति के न्यायालय में इससे कम कठोरता नहीं बरती जा सकती।

माला घुमाकर, धूपबत्ती जलाकर, स्तवन सुनाकर, कर्मकाण्डों से फुसलाकर भगवान को उल्लू बना देने और निर्धारित जिम्मेदारी से मुक्त करके मन-माना स्वेच्छाचार बरतने की छूट पा लेना ऐसे ही लोगों की कुकल्पना है जिसने छल ही सीखा और सिखाया है। पूजा-पाठ का अपना उद्देश्य और स्वरूप है, पर वह मानवी कर्तव्य पालन का स्थान ग्रहण नहीं कर सकता। वह अनुशासन तो चट्टान की तरह अटल है। उसकी अवहेलना के लिए कोई विकल्प नहीं ढूँढ़ा जा सकता। पूजा-पाठ भी नहीं। भक्त और पुजारी का लबादा ओढ़ लेने पर भी कर्तव्य की आँखें भी धूलि झोंकने की चाल चलती नहीं। आत्मा को यदि जीवन में भागीदार मानना है तो ईमानदारी इसी में है कि उसकी आवश्यकता समझी जाय, उपलब्धियों में हिस्सेदारी दी जाय। प्रगति और प्रसन्नता का लाभ शत-प्रतिशत शरीर को ही न मिलता रहे। उसकी व्यवस्था आत्मा के लिए भी होनी चाहिए।

अपने को जानें, भव बन्धनों से छूटें

संसार में जानने को बहुत कुछ है। पर सबसे महत्वपूर्ण जानकारी अपने आप के सम्बन्ध की है। उसे जान लेने पर बाकी जानकारीयाँ प्राप्त करना सरल हो जाता है। ज्ञान का आरम्भ आत्मज्ञान से होता है, जो अपने को नहीं जानता वह दूसरों को क्या जानेगा ?

आत्मज्ञान जहाँ कठिन है वहाँ सरल भी बहुत है। दूसरी वस्तुयें दूर भी हैं और उनका सीधा सम्बन्ध भी

अपने से नहीं है। किसी के द्वारा ही संसार में बिखरा हुआ ज्ञान पाया और जाना जा सकता है। पर अपना आपा सबसे निकट है, हम उसके अधिपति हैं। आदि से अन्त तक उसमें समाये हुए हैं, इस दृष्टि से आत्मज्ञान सबसे सरल भी है। शोध करने योग्य एक ही तथ्य है, आविष्कृत किये जाने योग्य एक ही चमत्कार है—वह है अपना-आपा। जिसे पाने के बाद और कुछ पाना शेष नहीं रह जाता।

बाहर की चीजों को ढूँढ़ने में मन इसलिए लगा रहता है, कि अपने को ढूँढ़ने के झंझट से बचा जा सके। क्योंकि जिस स्थिति में आज हम हैं उसमें अँधेरा दीखता है और अकेलापन। यह डरावनी स्थिति है। सुनसान को कौन पसन्द करता है? खालीपन किसे भाता है? अपने को इस विपन्न स्थिति से परक है, स्वयं ही अपने को डरावना बना लिया है और उससे भयभीत होकर स्वयं ही भागते हैं। अपने को देखने खोजने और समझने की इच्छा इसी से नहीं होती और मन बहलाने के लिए बाहर की चीजों को ढूँढ़ते फिरते हैं। कैसी है विडम्बना?

क्या वस्तुतः भीतर अँधेरा है ? क्या वस्तुतः हम अकेले और सूने हैं ? नहीं, प्रकाश का ज्योति-पुंज अपने भीतर विद्यमान है और एक पूरा संसार ही अपने भीतर विराजमान है। उसे पाने और देखने के लिए आवश्यक है कि मुँह अपनी ओर हो। पीठ फेर लेने से तो सूर्य भी दिखाई नहीं पड़ता और हिमालय तथा समुद्र भी दीखना बन्द हो जाता है। फिर अपनी ओर पीठ करके खड़े हो जायें तो शून्य के अतिरिक्त और दीखेगा भी क्या ?

बाहर केवल जड़ जगत है। पञ्चभूतों का बना हुआ निर्जीव। बहिरंग दृष्टि लेकर तो हम मात्र जड़ता ही देख सकेंगे। अपना जो स्वरूप आँखों से दीखता है, कानों से सुनाई पड़ता है जड़ है। ईश्वर को भी यदि बाहर देखा जायेगा तो उसके रूप में जड़ता या माया ही दृष्टिगोचर होगी। अन्दर तो है वही सत् है। इसे अन्तर्मुखी होकर देखना पड़ता है। आत्मा और उसके साथ जुड़े हुए परमात्मा को देखने के लिए अन्तःदृष्टि की आवश्यकता है। इस प्रयास में अन्तर्मुखी हुए बिना काम नहीं चलता।

स्वर्ग, मुक्ति, सिद्धि, शान्ति आदि विभूतियों की खोज में कहीं अन्यत्र जाने की जरूरत नहीं है। बाहर भरी हुई जड़ता में चेतना कैसे पाई जा सकेगी। जिसे ढूँढ़ने की प्यास ओर पाने की चाह है वह तो भीतर ही भरा पड़ा है। जिसे कुछ मिला है यहीं से मिला है। कस्तूरी वाला हिरन तब तक उद्विग्न और अतृप्त ही फिरता रहेगा जब तक कि अपने ही नाभि केन्द्र में कस्तूरी ही सुगन्ध

सन्निहित होने पर विश्वास न करेगा, बाहर जो कुछ भी चमक रहा है सब अपनी ही आँखों व प्रकाश का प्रतिबिम्ब मात्र है।

श्रुति कहती है—अपने आपको जानो, अपने को प्राप्त करो और अमृतत्व में लीन हो जाओ। उसी को ऋषियों ने दुहराया है और तत्वज्ञानियों ने उसे ही सारी उपलब्धियों का सार कहा है। क्योंकि जो बाहर दीख रहा है वह भीतरी तत्व का ही विस्तार है। अपना आपा जिस स्तर का होता है संसार का स्वरूप भी वैसा ही दीखता है। बाहर हमें जैसा देखना पसन्द हो उसे भीतर से खोज निकालें। यही अन्वेषण की चरम सीमा है।

दुःख, दारिद्र्य, शोक, सन्ताप और अभाव, उद्वेग का निवारण करने के लिये इन अनात्म तत्वों की अन्तरंग में जमी हुई जड़ों को खोदना पड़ेगा। भीतर का दीपक जलने पर ही बाहर फैले हुए अन्धकार का समाधान होगा। जो कुछ हमारे लिए अभीष्ट और आवश्यक है उसकी समस्त सम्भावनाएँ अपने भीतर सुरक्षित रखी हुई हैं। आवश्यकता उन्हें प्रयोग करने की है। अपने आपे का प्रयोग करना यदि हमें आया होता तो हम दूसरे ईश्वर बन सकने में समर्थ होते। अपने को खोकर हमने खोया ही खोया है। बाहर ढूँढ़ने में जीवन गँवा डाला, पर मिला कुछ नहीं, मिलता तब जब बाहर कुछ होता।

अनात्म तत्वों की जो गन्दगी भीतर भर गई है उसे निकाल दें तो शेष वही रह जाता है, जो हमारा स्वरूप है। कुछ पाने के लिए कुछ खोने के लिए तप साधन किये जाते हैं। आत्मा तो स्वयं उपलब्ध ही है। उसे पाने के लिए कुछ करना नहीं है। करने की बात इतनी ही है कि जो अनुपयुक्त और अवांछनीय अपने भीतर भर लिया है उसे निकालकर फेंक दें। यह परिशोधन ही उपलब्धि का निमित्त बन जाता है।

किसी तत्ववेत्ता से जिज्ञासु ने पूछा—गुरुदेव, तप साधना से आपने क्या पाया ? उन्होंने उत्तर दिया—खोया बहुत पाया कुछ नहीं। जिज्ञासु ने आश्चर्य से पूछा—ऐसा क्यों ? ज्ञानी ने कहा—जो पाने लायक था वह तो पहले से ही प्राप्त था। जो खोने लायक विषय, विकार और अज्ञान, अन्धकार के अनात्म तत्व भीतर घुस पड़े थे, उन्हें साधना ने निकाला भर है। इस तरह साधक—साधना में खोता ही खोता है पाता कुछ नहीं। हम स्वप्न खोते हैं तब सत्य पाते हैं।

रोवर गोडॉल ने अपनी पुस्तक 'दी कन्टेन्टोटेरी साइन्सेज एण्ड दी लिवरेटिव एक्सपीरियेन्स ऑफ योग' में लिखा है—'मनुष्य के यह जानने से पहले कि वह वास्तव में क्या है, अब तक के जाने हुए को भूलना

होगा। वर्तमान नकारात्मक मान्यताओं के कारण मानव अपने भीतर स्थूल अहंवाद के साथ जुड़ी हुई मिथ्या मान्यताओं से ही परिचित हो पाया है। आत्मिक प्रगति के लिए हमें आत्म-बोध का प्रशिक्षण आरम्भ से ही करना होगा। क्योंकि उन तथ्यों को जिन पर आत्मोन्नति निर्भर है एक प्रकार से हमने भुला ही दिया है।'

कालीदास ने कहा है—अपने को जानने का प्रयत्न करो। अपने स्वरूप को समझो और जिस लिये जन्मे हो उस पर विचार करो। तुम्हें दिशा मिलेगी और सही दिशा में कदम उठ गये तो वह प्राप्त करके रहोगे जिसके पाये बिना अपूर्णता और अतृप्ति घेरे ही रहेगी।

स्वामी विवेकानन्द ने एक कथा सुनाई—'एक तत्व ज्ञानी अपनी पत्नी से कह रहे थे, सन्ध्या आने वाली है, काम समेट लो। एक सिंह कुटी के पीछे यह सुन रहा था उसने समझा सन्ध्या कोई बड़ी शक्ति है जिससे डरकर यह निर्भय रहने वाले ज्ञानी भी अपना सामान समेटने को विवश हुए हैं। सिंह चिन्ता में डूब गया और उसे सन्ध्या का डर सताने लगा।

पास के घाट का घोबी दिन छिपने पर अपने कपड़े समेटकर घेरे पर लादने की तैयारी करने लगा। देखा तो गधा गायब। उसे ढूँढ़ने में देर हो गई। रात घिर आई और पानी बरसने लगा। घोबी को एक झाड़ी में खड़खड़ाहट सुनाई दी, समझा गधा है। सो लाठी से उसे पीटने लगा—धूर्त यहाँ छिपकर बैठा है। सिंह की पीठ पर लाठियाँ पड़ीं तो उसने समझा यही सन्ध्या है, सो डर से धर-धर कॉपने लगा। घोबी उसे घसीट लाया सो कपड़े लादकर घर चल दिया। रास्ते में एक दूसरा सिंह मिला उसने अपने साथी की दुर्गति देखी तो पूछा—यह क्या हुआ ? तुम इस प्रकार लदे क्यों फिर रहे हो। सिंह ने कहा—सन्ध्या के चंगुल में फँस गये हैं यह बुरी तरह पीटती है और इतना वजन लादती है।'

सिंह को कष्ट देने वाली सन्ध्या नहीं उसकी भ्रांति थी, जिसके कारण घोबी को कोई बड़ा देव दानव समझ लिया गया और उसका भार एवं प्रहार बिना सिर हिलाये स्वीकार कर लिया गया। हमारी यही स्थिति है अपने वास्तविक स्वरूप को न समझने और संसार के साथ, जड़ पदार्थों के साथ अपने सम्बन्धों का ठीक तरह ताल-मेल न मिला सकने की गड़बड़ी ने ही हमें उन विपन्न परिस्थितियों में धकेल दिया है जिनमें अन्धकार के अतिरिक्त और कुछ दीखता ही नहीं। इस भ्रान्ति को ही माया कहा गया है। माया को ही बन्धन कहा गया है और दुःखों का कारण बताया गया है। यह माया और

कुछ नहीं वास्तविकता से अपरिचित रखने वाला अज्ञान ही है।

गीता में माया की व्याख्या और प्रतिक्रिया समझाते हुए भगवान ने कहा है—

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ।

ज्ञान अज्ञान के द्वारा ढँक दिया गया है, इस कारण सब प्राणी मोह को प्राप्त होते हैं।

नाह प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः ।

अपनी योग माया से ढँके हुए होने के कारण मैं सबके लिए दृश्य नहीं हूँ।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।

तीन गुणों से युक्त इस मेरी माया को पार करना बड़ा कठिन है।

शरीर को आत्मा समझ बैठने—शरीर के सुख-दुःख, हानि-लाभ और संयोग-वियोग को आत्मा पर घटित हुई मान लेने से मनुष्य दुःखी होता है, उपलब्धियों की अपेक्षा यदि अपना ध्यान आत्मा के निर्मल, निर्विकार स्वरूप में बना रहे और जीवनोद्देश्य की पूर्ति के लिए कर्तव्य कर्मों को करते रहने एवं दिव्य विचारों में रमण करने की प्रवृत्ति अपना ली जाय तो न दुःख की गुंजायश रहे न शोक की। अपने को आत्मा बना इस संसार को परमेश्वर का स्वरूप मानकर परमात्मा के लिए आत्मा द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले अनुदानों, कर्तव्य कर्मों को अपनाते हुए जीवन यात्रा पूरी करने लगे तो सारे दुःख दूर हो जायें जिन्हें अज्ञता के कारण मायाबद्ध जीव पग-पग पर भुगतता रहता है।

मानव जीवन का परम पुरुषार्थ—आत्मज्ञान

महर्षि याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थीं, मैत्रेयी और कात्यायनी। जब महर्षि ने संन्यास लेना चाहा, तब अपनी दोनों पत्नियों को बुलाकर कहा—‘हम सब संन्यास लेने वाले हैं, तुम दोनों घर की सम्पूर्ण सम्पत्ति को आधा-आधा बाँट लो। यह सुनते ही मैत्रेयी बोल उठी देव ! क्या इन धन-सम्पदाओं को प्राप्त कर मैं अमर हो जाऊँगी ? नहीं—याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया। जिस प्रकार धन-सम्पत्ति वालों का लोभ-मोह से भरा जीवन होता है, देवि ! उसी प्रकार का तुम्हारा भी जीवन हो सकेगा।’ तब तो ऐसे धन की हमें आवश्यकता नहीं मैत्रेयी ने बड़ी दृढ़ता के साथ कहा। पुनः निवेदन किया कि—‘देव हमें तो अमरत्व का साधन बताइये। हमें धन-सम्पदा नहीं चाहिए।’

मैत्रेयी के बार-बार आग्रह करने पर महर्षि को विवशतः अमरत्व का साधन आत्म-कल्याण का साधन बताना ही पड़ा। उन्होंने सूत्र रूप में कहा—

आत्मा वाऽऽदे मैत्रेयि ! ब्रह्मव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यः निविध्यसितव्यश्च। आत्मानः खलु दर्शनेन इदं सर्वं विदितं भवति।

(बृहदारण्यकोपनिषद्)

हे मैत्रेयी ! आत्मा ही देखने योग्य, सुनने योग्य, मनन करने योग्य और अनुभव करने योग्य है।’ अपने आपको-आत्मा को-जान लेने पर सब कुछ जान लिया जाता है।’ यही अमरत्व का साधन है—यही आत्मकल्याण का मार्ग है।

‘अपने को जान लेना ही सबसे बड़ी उपलब्धि है। गीताकार ने आत्मोत्कर्ष की गरिमा समझाते हुए कहा है—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मनः ॥

‘अपनी आत्मा द्वारा अपना उद्धार करो, आत्मा को पतित न करो। ‘आत्मा’ ही अपना बन्धु है और ‘आत्मा ही अपना शत्रु’ है।

व्यक्ति को दुनिया की, विश्व-ब्रह्माण्ड की यत्किंचित् जानकारी कितना सन्तोष प्रदान करती है। जान-पहचान के लोगों से मिलने पर कितनी प्रसन्नता होती है, कदाचित् अपने को पहचाना जा सके—आत्मा को जाना जा सके—तो कितने महान् आनन्द की प्राप्ति हो। उपनिषद्कार के शब्दों में अपने आपको जान लेने वाले को ही सर्वोपरि सुख की प्राप्ति होती है—

‘तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः

तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥

—कठोपनिषद् २/२/१२

‘उस अपने में स्थित आत्मा को जो विवेकी पुरुष देख लेते हैं, जान लेते हैं, उन्हीं को नित्य सुख प्राप्त होता है, अन्यो को नहीं।’

अपनी आत्मा को जान लेने पर भवबन्धनों से मुक्ति हो जाती है—

न मुक्तिर्जपनाद्योगमादुपवास शतैरपि ।

ब्रह्मैवाहमिति ज्ञात्वा मुक्तो भवति जीवभूतः ॥

जप, हवन, तथा सैकड़ों उपवास से भी मुक्ति नहीं मिल पाती, आत्मज्ञान हो जाने पर ‘जीव और ब्रह्म की एकता की अनुभूति’ होने पर आत्मा मुक्त हो जाती है।’

अनाद्यनन्तं यद्वत् परं ब्रुवं,

निचाव्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते।

—कठो० १।३।१५

‘उस अनादि, अनन्त, महत्त्व (बुद्धि) से परे तथा ध्रुव (निश्चल) आत्मा को जानकर मनुष्य मृत्यु के मुख से छूट जाता है।’

‘महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शेचति’ ।

—कठो० २।१।४

‘उस महान और विभु (सर्वसमर्थ) आत्मा को जानकर बुद्धिमान पुरुष शोकाकुल नहीं होता।

इस प्रकार अनेकानेक श्रुतिवचनों द्वारा आत्मज्ञान की गरिमा को प्रतिपादित कर उसे प्राप्त करने की प्रेरणा दी गई है। व्यक्ति को जिसमें अपना लाभ दिखाई पड़ता है, उस कार्य को बड़े परिश्रम, मनोयोग व प्रसन्नतापूर्वक सम्पन्न करता है। यदि आत्मज्ञान के लाभों को जाना जा सके तथा इसे प्राप्त करने का प्रयास किया जा सके तो व्यक्ति धन्य हो जायेगा।

व्यक्ति जब अपने को ईश्वर का परम पवित्र अविनाशी अंश समझता है, आत्मा के रूप में अनुभव करता है और शरीर को एक उपकरण भर स्वीकारता है तब वह दीन-हीन स्थिति से ऊपर उठकर, उन कार्यों को ही करता है, जो उसके गौरव के अनुरूप होते हैं—आत्म-सन्तोष प्रदान करते हैं।

‘आत्मा’ के इस स्वरूप को जानने की एक लम्बी प्रक्रिया है। आत्म-बोध, आत्म परिष्कार, आत्म-निर्माण और आत्म-विकास की लम्बी मंजिल पार करके ही आत्मा के सही स्वरूप का अनुभव किया जा सकता है।

सर्वप्रथम अपने को शरीर से भिन्न होने की धारणा को पुष्ट करना पड़ता है। हम दूसरे हैं और हमारा शरीर दूसरा है। शरीर केवल उपकरण है, साधन है, साध्य नहीं। हम अपनी सारी शक्ति शरीर को ही सुख पहुँचाने में न झोंक दें। शरीर से भिन्न भी कुछ है—वही मैं हूँ। इस प्रकार का बोध हो जाने पर अपने द्वारा किये जाने वाले ओछे कार्यों को छोड़ना पड़ता है। यहीं से आत्म-परिष्कार आरम्भ होता है।

दोष-दुर्गुणों के दूर हो जाने पर उनके स्थान पर सदगुणों—श्रेष्ठताओं का समावेश करना आवश्यक होता है। कषाय-कल्मषों से रहित होने पर शुद्ध अन्तःकरण में श्रेष्ठ-सदगुणों की अभिवृद्धि होने लगती है। यही आत्म-निर्माण है। अपने गुण, कर्म, स्वभाव में उत्कृष्ट स्तर के चिन्तन एवं कर्तव्य को स्थान देना आत्मज्ञान का तृतीय चरण है।

इसके उपरान्त आत्म-विकास आता है। अपने ही समान सभी प्राणियों को, जीव-जन्तुओं को समझना ही आत्म-विकास है। ‘आत्मवत् सर्वं भूतेषु’ का यही आदर्श है।

किन्तु ‘आत्मज्ञान’ की लक्ष्य प्राप्ति इतनी सुगम नहीं होती। अनेकानेक विघ्न-बाधाएँ चुनौती बनकर साधक के समक्ष आ खड़ी होती हैं। बिना परीक्षा के तो सामान्य कार्य की दक्षता भी प्रमाणित नहीं हो पाती, तो इतने महान लक्ष्य की कौन कहे ? काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य—यह छः दोष, छः बाधक तत्व, आत्मिक प्रगति के मार्ग में अवरोधक बनकर आड़े आ जाते हैं—

तत्त्वत्यूहाः षडाख्याता योगविघ्न करानघ ।

काम, क्रोधौ, लोभमौहौ, मदमात्सर्यं संज्ञकौ ॥

—देवी भागवत ७।३।३

‘काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य—यह छः योग मार्ग के—आत्मिक उन्नति के शत्रु हैं, जो इस कार्य में विघ्न डाला करते हैं।’

आत्म-साधना के अधिकांशतः साधक इन बाधकों द्वारा विचलित कर दिये जाते हैं। काम-क्रोध की लिप्सा में फँसकर अपनी साधन-सम्पत्ति को गँवा बैठते हैं। इस स्थिति को संभालना बहुत आवश्यक होता है। आत्मलाभ की फसल की रखवाली काम-क्रोधादि पक्षियों से इन्हीं दिनों करनी पड़ती है। इन बाधक तत्वों से बच निकलना बड़े पुरुषार्थ की बात होती है। इसी स्थिति को ‘साधना-समर’ कहा गया है।

आत्मज्ञान की प्राप्ति सर्वोपरि उपलब्धि है। ‘अपने आपको जान लेने वाला पुनः कुपथगामी नहीं होता है, फलतः दुष्कर्म जन्य दुष्परिणामों की ही तरह निर्विकार और शुद्ध हो जाता है—

‘यदा तु शुद्धं निजरूपि सर्वं कामक्षये ज्ञानमपस्तदोषाम्।’

—विष्णु पुराण

‘आत्मज्ञान प्राप्त होने पर मानव निर्दोष हो जाता है, तथा सभी कर्मों के क्षय हो जाने से अपने शुद्ध स्वरूप को पहचान लेता है।’ इस समय व्यक्ति अपने पराये में कोई भेद नहीं देखता है, क्योंकि अपने और पराये का भेद तो संकीर्णता की स्थिति में ही रहता है। संकीर्णता से ऊपर उठने वाले को ही आत्म-लाभ हो पाता है। उस समय सम्पूर्ण संसार को ही वह अपना परिवार मानने लगता है—

‘अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम् ।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥’

‘यह हमारा है, वह दूसरे का है—ऐसा विचार क्षुद्र हृदय वाले—संकीर्ण-विचारों वाले करते हैं, उदार चेता आत्मज्ञानी तो सम्पूर्ण विश्व को ही अपना परिवार समझते हैं।

इसके अतिरिक्त आत्मज्ञान हो जाने पर अपने सच्चे स्वरूप को पहचान लेने पर व्यक्ति परमात्म-शक्तियों से ओत-प्रोत हो जाता है। 'आत्मज्ञान' हो जाने पर 'ब्रह्मज्ञान और ब्रह्माण्ड ज्ञान' भी हो जाता है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड में तात्त्विक अन्तर कुछ भी नहीं है अन्तर है तो केवल स्वरूप का। इसलिए पिण्ड (आत्मा) को जानने वाला 'ब्रह्माण्ड' को भी जान लेता है—

ब्रह्माण्डे ये गुणाः सन्ति पिण्डमध्ये च ते स्थिताः।

ब्रह्माण्ड में जो गुण हैं, वे पिण्ड में भी विद्यमान हैं। 'आत्मज्ञान' के महान लाभ से लाभान्वित होना ही सर्वोपरि बुद्धिमत्ता है। उसी में जीवन की सार्थकता है।

आत्मज्ञान से ही दुःखों की निवृत्ति संभव है

संसार को दूरदर्शी दार्शनिकों ने दुःखालय की संज्ञा दी है। इस संज्ञा का आधार यही है कि मनुष्य संसार में जन्म लेकर सदा ही किसी न किसी प्रकार के दैहिक, दैविक अथवा मानसिक दुःखों से घिरा रहता है। मनुष्य का सारा पश्चिम, पुरुषार्थ एवं प्रयत्न दुःखों से बचने का ही एक उपक्रम है। किन्तु जीवन भर प्रयत्न करते रहने पर भी मनुष्य का प्रायः छुटकारा नहीं हो पाता और अन्त में वह कष्ट-क्लेशों की मानसिक अथवा शारीरिक स्थिति में ही इस संसार को छोड़ जाता है।

अनेक लोग अभावों को ही दुःख का कारण मानते हैं। संसार में एक से एक बढ़कर साधन-सम्पन्न व्यक्ति पड़े हैं किन्तु क्या वे सुखी अथवा सन्तुष्ट होते हैं? अपने विपुल साधनों के बीच भी वे तरसते-तड़पते और आह-कराह करते नजर आते हैं। जिनको अभाव का दुःख नहीं, उन्हें रोग-दोष आदि के शारीरिक दुःख से पीड़ित देखा जाता है, जिन्हें शारीरिक दुःख नहीं वे काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, ताप, अनुताप, पश्चात्ताप, तृष्णा अथवा 'एष्णाओं' के मानसिक दुःखों से घिरे पाये जाते हैं। ऐसे भी अनेक लोग हो सकते हैं जिनको शारीरिक, मानसिक अथवा अभावजन्य दुःख न भी हों तो वे अज्ञान के दुःख से पीड़ित पाये जा सकते हैं। यदि एक बार कोई सज्जन अथवा साधु पुरुष इन दुःखों से न भी दुःखी हों तब भी उसके आस-पास रहने वाले दुष्ट लोग अकारण ही उसके लिये अप्रिय परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकते हैं। कोई दुर्घटना अथवा आधि-व्याधि ही उनके दुःख का कारण बन सकती है। प्रकृति वाहित न जाने ऐसे कितने दुःख-क्लेश इस संसार में आते रहते हैं जिनसे अमीर, गरीब, साधु और खल सभी एक समान पीड़ित होते हैं और कोई

दुःख न भी हो तो जन्म, जरा और मृत्यु का दुःख ही क्या कम है ?

महात्मा बुद्ध एक राजकुमार थे। उनके जीवन में अभाव का प्रश्न ही नहीं उठता। वे स्वस्थ, सुन्दर और सच्चरित्र भी थे, शारीरिक कष्ट का उन्हें कोई अनुभव न होता था। सावधानीपूर्वक उनकी किसी भी इच्छा की आपूर्ति की जाती थी। हर प्रकार से हर दशा में उन्हें पूर्ण प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रखने का सफल प्रयत्न किया जाता था। ऐसी स्थिति में मानसिक दुःख का उनके जीवन से कोई सम्बन्ध न था। उनकी पत्नी यशोधरा सुन्दर, स्वस्थ, पतिव्रता एवं प्रिया थी। उनका पुत्र राहुल मनभावन तथा प्यारा था। तात्पर्य यह कि राजकुमार सिद्धार्थ को अपनी प्रिय एवं अनुकूल परिस्थितियों में किसी प्रकार का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक अथवा आकस्मिक कोई दुःख न था। तब भी दुःख की अनुभूति से पीड़ित होकर वे अपनी प्रिय परिस्थितियों को छोड़कर संसार का दुःख दूर करने का उपाय खोजने के लिये साधु हो गये।

राजकुमार सिद्धार्थ केवल एक बार ही अपनी अनुकूल परिस्थितियों तथा प्रिय वातावरण से निकलकर बाहर फैले हुए संसार में आये और एक रोगी, वृद्ध तथा मुर्दे को देखकर अनुभव कर लिया कि यह संसार दुःख-दर्दों से भरा हुआ दुःखालय है। उनका यह अनुभव सत्य यथार्थ एक वास्तविक था। इसने उन्हें इतना क्रन्तर कर दिया कि आखिर वे संसार का दुःख दूर करने का उपाय खोजते-खोजते राजकुमार सिद्धार्थ से वैरागी बुद्ध बन गये।

वैदिक, औपनिषदक, दार्शनिक एवं धार्मिक जितना भी आध्यात्मिक और ज्ञान-विज्ञान आदि का जो भी उच्च सहित्य है, वह सब किसी न किसी रूप में उन उपायों एवं सिद्धान्तों का ही विस्तार है, जिनके द्वारा मनुष्य दुःख से निवृत्त होकर सुख की ओर अग्रसर हो सके। ऋषियों, मुनियों तथा दार्शनिकों से लेकर जो भी तपस्वी, महात्मा एवं मनीषी, चिन्तक तथा विद्वान हुए हैं उनहोंने सारा जीवन मनुष्य के दुःख दूर करने और सुख पाने के उपाय खोजने में लगा दिया है। इन पावन प्रयत्नों एवं महान जीवनो को देखते हुए यही मानना पड़ता है कि यह संसार वास्तव में दुःखालय ही है और दुःख से बचने का प्रयत्न ही मानव जीवन का उपक्रम है।

यह भी माना जा सकता है कि संसार में सुख का भी एक अंश है, जिसका प्रमाण, लोगों के हँसने-बोलने, गाने-बजाने, खेलने-कूदने तथा आनन्द मनाने से मिलता है। लोग हास-विलास तथा भोग-भोगपूर्ण जीवन बिताते भी दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु यह सारे सुख क्षणभंगुर,

अस्थायी, परिवर्तनशील एवं दुःख के परिणाम वाले ही हैं। न तो इनमें स्थायित्व ही है और न वास्तविकता। सुखों का यह सारा आयोजन भी एक तरह से दुःख से बचने का उपक्रम मात्र ही है। संसार में सुखों की अपेक्षा दुःखों का ही बाहुल्य एवं स्थायित्व अधिक है।

संसार में दुःखों का आधिक्य है और मनुष्य को संसार में रहना ही है, तो क्या दुःखों में उलझ-उलझ कर उसे अपना बहुमूल्य जीवन नष्ट कर देना उसका अटल प्रारब्ध है ? नहीं मनुष्य का प्रारब्ध दुःख भोगना नहीं है। उसका लक्ष्य दुःखों पर विजय प्राप्त करना एक स्थायी सुख प्राप्त करना ही है। यही मनुष्य का पुरुषार्थ है और यही उसका श्रेय भी। दुःख से पूर्ण होने के कारण संसार को दुःखालय मानकर कष्ट एवं क्लेशों के बीच तड़प-तड़पकर मर जाना मनुष्य की लज्जास्पद पराजय है। मनुष्यता की शोभा इसी में है कि दुःख से छूटने और सुख प्राप्त करने के लिये अखण्ड पुरुषार्थ किया जाये। मनुष्य को चाहिये कि वह संसार को परीक्षास्थल समझे और इस दुःख सागर को संतरण कर सुख-शांति के सुहावने किनारे पर पहुँचकर अपने को श्रेय का अधिकारी बनाये।

जहाँ रोग है वहाँ उपचार भी, जहाँ उलझने हैं वहाँ उपाय भी हैं। जहाँ चाह है वहाँ राह भी, जहाँ दुःख हैं वहाँ उनसे छूटने का मार्ग भी है। आवश्यकता केवल इतनी है कि मनुष्य के हृदय में सच्ची जिज्ञासा हो। वह अपने उद्देश्य के प्रति निष्ठावान तथा अखण्ड, पुरुषार्थ एवं प्रयत्न करने का साहस रखता हो।

भारतीय मनीषियों ने परोपकारार्थ अपना पूरा जीवन तपकर दुःख निवारण के जो अमोघ उपाय खोज निकाले हैं वे बड़े ही सरल एवं सुकर हैं। उनका अवलम्बन लेकर न जाने कितने लोग इस दुःख-सागर से तरे हैं और तरते रहे हैं। उनके द्वारा खोजे हुये दुःख निवारण के उपाय सार्वभौम एवं सर्वमान्य हैं। उन आध्यात्मिक उपायों का अवलम्बन किये बिना न तो आज तक कोई दुःख से निस्तार पा सका है और न पा सकेगा। इसके विपरीत जो बुद्धिमान उन उपायों को काम में लाता है वह अवश्य ही दुःखों पर विजय पाकर सुख पाता है।

अधिकांश चिन्तकों का मत है कि मनुष्य की विषय तृष्णा ही सारे दुःखों का मूल है। यदि मनुष्य तृष्णा की मरु-मरीचिका में फँसने से अपने को बचा सके तो निश्चय ही दुःखों से उसका निस्तार हो जाये। संसार में जो कुछ देखा उसी को पाने के लिये लालायित हो उठना और पाये हुए से सन्तुष्ट न होकर अधिकाधिक पाने की इच्छा करना। इच्छा करना ही तृष्णा है जो कभी भी

पूरी नहीं होती। पाये हुए में सन्तुष्ट रहकर यदि अधिकाधिक पाने की अनावश्यक पिपासा को छोड़ दिया जाये तो मनुष्य अवश्य ही अनेक शारीरिक, सामाजिक तथा मानसिक दुःखों से बच सकता है।

विषयों का अत्यधिक भोग और वस्तुओं में सुख की कल्पना दुःख का एक विशेष हेतु है, यह एक अनुभूत सत्य है कि विषय-भोगों की प्राप्ति अन्य दुःख रूप में सामने आती है। मनुष्य भोगों को कितना ही क्यों न भोगे तृप्ति नहीं हो सकती। शरीर शिथिल होकर नष्ट हो जाता है किन्तु भोगों की वासना ज्यों की त्यों बनी रहती है। विषयों का भोग करने में लवलीन मनुष्य समझता तो यह है कि वह विषयों का भोग कर रहा है किन्तु वास्तव में होता इसके विपरीत है, विषय भोगी को स्वयं ही भोगकर नष्ट कर देते हैं। विषय भोग की अतृप्त तृष्णा के रहते हुए मनुष्य दुःख से मुक्त हो सके यह सम्भव नहीं। भोगों को मर्यादा की सीमा तक भोग कर अतृप्त तृष्णा के रहते हुए मनुष्य दुःख से मुक्त हो सके, यह सम्भव नहीं। भोगों को मर्यादा की सीमा तक भोगकर जो मनुष्य उनमें लिप्त नहीं होता और उन्हें दुःखदायी विषय मानकर उनसे विरक्त रहता है उसे सुखी होने से कोई बाधा रोक नहीं सकती।

संसार की प्रत्येक वस्तु नाशवान है। यहाँ तक कि शरीर भी। ऐसा जानकर जो बुद्धिमान उनके प्रति आसक्ति नहीं रखता, वह दुःख के विशेष हेतु मोहरूपी कटार से बचा रहता है। अन्यथा इनमें आसक्त व्यक्ति इनके क्षीण, क्षय अथवा नाश, वियोग से क्षण-क्षण पर दुःखी होता रहेगा। यदि यह वस्तुयें उसके देखते-देखते नष्ट न भी हों तब भी उनके नष्ट हो जाने अथवा बिछुड़ जाने की शंका सताया करती है। संसार की प्रत्येक वस्तु नश्वर एवं क्षयमान है। ऐसी बुद्धि रखकर जो मनीषी उनसे आत्मिक सम्बन्ध न रखकर व्यावहारिक सम्बन्ध रखता हुआ अनासक्ति का आचरण करता है संसार की कोई भी हानि उसे दुःखी अथवा विचलित नहीं कर सकती है। दुःख असल में वस्तु के विनाश अथवा वियोग से नहीं होता। दुःख का कारण वास्तव में उसके प्रति मनुष्य का वह मोह होता है जिसे वह अज्ञानवश वस्तु से स्थापित कर लेता है।

महात्मा बुद्ध की खोज के अनुसार दुःखों की निवृत्ति निर्वाण में है। अपने को राग-द्वेष से मुक्त कर लेना ही निर्वाण है, जिसे थोड़े से प्रयत्न द्वारा मनुष्य जीवन-काल में ही पा सकता है। बुद्ध प्रतिपादित निर्वाण अवस्था को वैराग्य द्वारा शुद्धाचरण करते हुए, इस नाशशील संसार के चिरन्तन सत्त्वों में विश्वास रखने से, मनुष्य विषयों की विभीषिका और तृष्णाओं की

मरु-मरीचिकाओं से सुरक्षित रहकर दुःखों से निवृत्त हो सकता है।

सांख्य दर्शनकार ने आत्मा एवं अनात्मा के बीच अन्तर न समझने के अज्ञान को दुःखों का कारण बतलाया है। उनका कहना है कि मनुष्य जब अज्ञानवश अपने को शरीर मान लेता है तभी वह दुःखों का अनुभव करता है। दुःखों का अनुभव करना शरीर का धर्म है। शीत, घाम, वर्षा, भूख, प्यास, वियोग, बिछोह आदि अप्रिय परिस्थितियाँ शरीर को ही व्यापा करती हैं और वही इनका अनुभव करता है। जब मनुष्य अपनी अनुभूतियों को शरीर तक सीमित कर लेता है अथवा अपने को शरीर मान लेता है तो स्वाभाविक ही है कि शरीर का कष्ट उसे अपना कष्ट अनुभव हो।

मनुष्य वास्तव में शरीर नहीं है। वह अनादि, अनन्त, चैतन्य एवं आनन्दस्वरूप आत्मा है। उसमें अज्ञान अथवा दुःखानुभूतियों का कोई विकार नहीं है। वह निर्विकार, एकरस चेतन तत्व है जिसको न तो शस्त्र काट सकता है, न पानी गीला कर सकता है, न हवा सुखा सकती है और न आग जला सकती है। वह अपनी ज्योति से स्वयं प्रकाशमान ऐसा शिव एवं शाश्वत दीपक है जिसको न तो विपरीततायें प्रभावित कर सकती हैं और न काल बुझा सकता है। आत्मा, शरीर, मन, इन्द्रियों तथा बुद्धि से भिन्न अविनाशी तत्व है जो कि सदा-सर्वदा स्वयं सन्तुष्ट एवं आनन्दित रहता है। उसे सुख के लिये न तो किसी वस्तु की अपेक्षा है और न किसी भोग की आवश्यकता। वह स्वयं ही आनन्दस्वरूप एवं शाश्वत है। मनुष्य ही अविचल एवं अविनाशी आत्मा है, शरीर नहीं। अब जो व्यक्ति अज्ञानवश अपने इस परमपद आत्मा से भिन्न होकर शरीर को निम्न पद पर उतार लायेगा वह उसकी विकृतियों से त्रस्त होगा ही। मनुष्य अपने को अविकल आत्मा समझे, अपने सत्यस्वरूप में विश्वास करे और शरीर को नश्वर संसार का एक अंश मानकर उसकी विकल्पनाओं को अप्रभावित रहकर दर्शन के रूप में देखे तो निश्चय ही वह दुःख के बन्धनों से मुक्त होकर सुख का अधिकारी बन सकता है।

वेदान्त दर्शन के व्याख्याकार जगद्गुरु शंकर ने दुःखों के निवारण का उपाय मोक्ष बतलाया है। मोक्ष की परिभाषा करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया है कि—‘इस सत्य ज्ञान की स्थायी अनुभूति ही मोक्षावस्था है कि आत्मा देश से परे, शरीर तथा मन, बुद्धि से विलग स्वभावतः मुक्त, नित्य एवं अविकल्पी है।’ ऐसी अनुभूति का साक्षात्कार कर लेने पर मनुष्य का शरीर अथवा मन के विकारों में प्रभावित होना समाप्त हो जाता है।

एक अज्ञात समय से निरन्तर शरीर एवं संसार के संसर्ग में रहते-रहते मनुष्य अपने सत्य-स्वरूप आत्मा को ही नहीं भूल गया, बल्कि जगत के परम कारण परमात्मा को भी भूल गया है। संसर्गजन्य अविद्या के कारण वह परमात्मा के स्थान पर उसकी माया, इस संसार को ही सत्य समझ बैठा है जहाँ दुःख के सिवाय उसे कुछ भी हाथ नहीं लगता।

इस प्रकार यदि मनुष्य अपने सत्य-स्वरूप आत्मा में आस्था रखकर संसार में परिव्याप्त कारणभूत परमात्मा को देखे और उसके दिये हुए पदार्थों, विषयों तथा भोगों को मर्यादापूर्वक भोगते हुए भी उनसे अप्रभावित रहने के अभ्यास के साथ जीवनयापन करे तो निश्चय ही उसके सारे बन्धन कट जायें और वह अपने जीवनकाल में ही मुक्ति, मोक्ष एवं निर्वाण की चिदानन्द स्थिति को पा सकता है।

आत्म-ज्ञान की आवश्यकता

जब तक ड्राइवर को यह ज्ञान नहीं होता कि किस मशीन के संचालन से मोटर चलेगी और किसके द्वारा वह ठहरेगी तथा किसके द्वारा उसकी गति का नियंत्रण होगा, वह कुशलतापूर्वक मोटर चला नहीं सकता और यदि उसने चलाई भी तो दुर्घटना में निज को, दूसरों को व मोटर को भी साथ ले डूबेगा। ऐसा ही हाल हमारा भी हो सकता है, जो “अपने आप” को पहचानते नहीं। आत्मा इस जीवन के द्वारा प्रगति की ओर उन्मुख होता है, किन्तु उसके वास्तविक स्वरूप के प्रति अनभिज्ञ होने की अवस्था में दुर्घटना का ही अंदेशा रहता है, जिसमें अमूल्य जीवन की विनाशिता के साथ आत्मा भी पतन के मार्ग पर चला जाता है और पतित आत्मा अपने कुप्रभाव से अन्य जीवों को भी अपने साथ ले डूबता है।

आत्मस्वरूप के प्रति अनभिज्ञता का एक प्रधान कारण यह भी है कि हमारे देश का बहुत बड़ा हिस्सा ‘अवतारवाद’ में विश्वास करता है। ‘यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत’ के सिद्धान्तानुसार संसार को संकटों से उबारने के लिए स्वयं ईश्वर ही भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न रूप में अवतरित होते हैं। कभी राक्षसों के अत्याचारों को समाप्त करने के लिए “नरसिंह” तो कभी “राम” और “कृष्ण” रूप लेकर उन्होंने संसार की गति को सत्य की ओर मोड़ा। इसके सिवाय वे लोग यह भी विश्वास रखते हैं कि वही ईश्वर सृष्टि का कर्ता भी है तथा उसकी मर्जी के बिना धरती का एक भी कण और पेड़ का एक भी पत्ता नहीं हिलता। मनोवैज्ञानिक रूप से सोचें तो इस मान्यता के पीछे साधारण जनता में आत्मविस्मृति व अकर्मण्यता का

भाव फैलता गया। निज की शक्ति के प्रति अविश्वास समाता गया और यह सोचा जाने लगा कि इस विशाल विश्व में उनका अस्तित्व किसी महत्व का धारक नहीं। इस प्रकार की हीन मान्यता की भावना ने जनता में फैलने वाली सजगता व चेतनता का विनाश किया और उसे यह मानने पर मजबूर किया कि परमात्मा ही सब कुछ है; जो उनकी आत्म-शक्तियों से परे एक अलग विशिष्टतम तथा अनौखी आत्म-शक्ति है। किन्तु आज के वैज्ञानिक युग में इस अश्ववादिता से दूर होने की और यह समझने की आवश्यकता है कि हमारा अपना अस्तित्व हमारे लिए क्या महत्व रखता है और वह किस विकास की तरफ जाने से प्रगमनशीलता के क्षेत्र में पूर्णतया प्रस्फुटित हो सकता है।

जैन दर्शन स्पष्ट कहता आया है कि जीवन का विकास किसी बाह्य शक्ति की प्रेरणा से नहीं, अपितु निज में रही हुई शक्ति को पहचान लेने से होता है। मानव स्वयं अपने जीवन का निर्माता है और उसके उत्थान-पतन का उत्तरदायित्व केवल उसी पर है। जितने भी महापुरुष होते हैं, वे कठिन विपदाओं के कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलकर ही महानता को प्राप्त करते हैं और इसीलिए उनका आदर्श समाज के लिए अनुकरणीय व प्रेरणा प्रदायक बन जाता है। अवतारवाद में इस प्रेरणा का अभाव ही मिलेगा, क्योंकि अवतार का जीवन तो एक अभिनेता के समान होता है, जिसके जीवन में वास्तविकता कुछ नहीं, बल्कि दूसरों के लिए की गई क्रियाओं का पुंज होता है और अस्वाभाविक क्रियाओं में कभी प्रेरणा नहीं रहती। अतः यह समझना अनिवार्य है कि प्रत्येक प्राणी ही अपनी समस्याओं को उलझाता और सुलझाता है तथा उनका उचित निराकरण करते हुए आगे बढ़ जाता है, जो आगे बढ़ना उसे मुक्ति की सीमा तक ले जा सकता है। नर से नारायण की रीति जैन-दर्शन मानता है और उसी के द्वारा समाज में प्रगति के प्रति उत्साह, कर्मण्यता के भाव तथा स्वशक्ति की परिचय-प्रेरणा व्याप्त हो सकती है।

इसलिए जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मोटर चालक की तरह हमको यह जानना जरूरी है कि आत्मा का सच्चा स्वरूप क्या है और उसका सही संचालन करने के लिए किन साधनों का प्रयोग अति आवश्यक है।

भौतिकवादियों की मान्यता के अनुसार आत्मा कोई ऐसा तत्व नहीं जो इस जीवन के साथ ही पैदा होता है और जीवन की समाप्ति के साथ विनष्ट। किन्तु केवल भौतिक द्रव्यों के सम्मिश्रण से समुत्पन्न इस देह में निवास करने वाली सूक्ष्म चेतना की झलक ही आत्म-तत्व के अस्तित्व का प्रमाण है। यह आत्म-तत्व ही नासिका, चक्षु,

कर्ण आदि इन्द्रियों का संचालक तथा शरीर के प्रत्येक प्रदेश में व्याप्त होता है। वह इतना सूक्ष्मातिसूक्ष्म है कि चर्म-चक्षु की दृष्टि उसे नहीं देख सकती।

‘मैं कौन हूँ’ का रहस्य प्रतिक्षण उद्भूत होता रहता है। ‘मेरा हाथ, मेरा काम, मेरा शरीर’ ऐसी अर्न्तध्वनि का जो संचालक है वह इन्द्रियातिरिक्त है और वही चैतन्य शक्ति है। इनके साथ ही ‘मेरा घर’, ‘मेरी पुस्तक’ जिस प्रकार सम्बन्धित होने पर भी हम से अलग है, इसी तरह शरीर की पौराणिक माया भी आत्म-तत्व से पृथक् है। इसका प्रमाण यह है कि बड़े-बड़े वैज्ञानिकों का, जो नास्तिक होते हैं, अपने अनुसन्धान आदि में आत्मानुभव नहीं होता तो यह आत्मानुभव जड़ पदार्थों के संसर्ग में भले हो किन्तु उनके अस्तित्व से पृथक् एक अनुभूति होती है और उसी का नाम आत्मिक अनुभूति है। आचारारंग सूत्र में कहा है—

‘तत्त्वा तत्त्वा न विज्जदुह’

अर्थात् तर्क से आत्मिक शक्ति की अनुभूति नहीं हो सकती। उपनिषद् में तर्क करने वालों के लिए ‘नेति—नेति’ शब्द का प्रयोग किया गया है। अतः आत्म-स्वरूप को समझने के लिए सच्ची जिज्ञासा वृत्ति ही आवश्यक है।

अनादि काल से आत्मा का देह के साथ सम्बन्ध है, अतः दोनों एक समान ही प्रतिभासित होते हैं, किन्तु वस्तुतः दोनों भिन्न-भिन्न हैं, क्योंकि शरीर जड़ ज्ञान रहित तथा स्वरूप को पहचानने में अयोग्य होता है। चैतन्य आत्मा के द्वारा ही आत्मा के तथा आत्मा जड़ के स्वरूप को पहचाना जा सकता है। घड़ी, मोटर, रेल चलते जरूर हैं, किन्तु वे चैतन्य की प्रेरणा से ही चलते हैं। केवल चलने से उनमें चैतन्य नहीं माना जाता, उसी प्रकार शरीर स्वयंचालित नहीं, बल्कि चैतन्य शक्ति द्वारा चलाया जाता है। किन्तु अज्ञान की प्रबलता के कारण आत्मा स्वयं अपने अस्तित्व के विषय में शंकित रहता है। इसके लिए इन प्रश्नों पर रोज चिन्तना की जाय कि ‘मैं कौन हूँ ? इस ‘मैं’ की अनुभूति का उद्गम कहाँ से होता है ? मेरा क्या स्वरूप है ? मेरी गति और प्रगति की दिशा क्या है ?

इस महान शक्तिशाली आत्म-तत्व को पहचानना और उस व्यापक शक्ति को पूर्ण प्रकाशित करना ही हमारे जीवन की पुनीत लक्ष्य होना चाहिये। इसी शक्ति में पूर्णत्व के चरम विकास या मुक्ति का आवास रहा हुआ है। भगवान महावीर की अमर वाणी यही सन्देश सुनाती है—

एवं भव संसारे संसरई सुहासुहेहिं कम्मेहि ।

जीवो पमाय बहुलो, समथ गोयम । मा पमायए ॥

उत्तराख्यबन सूत्र अ० १० गा० १५ ।

अर्थात् प्रमाद बहुल जीव अपने शुभाशुभ कर्मों व आत्म-स्वरूप को न पहिचानने के कारण इस प्रकार अनन्त भवचक्र में इधर से उधर पर्यटन करते हैं। अतः हे गौतम, तू समय मात्र का भी प्रमाद न कर और आत्म-स्वरूप को समझते हुए उस शक्ति को प्रकाशित करने में पराक्रम फोड़ ! उपनिषद् से भी ऐसे ही भाव झलकते हैं—

**आत्मैव वा अरे श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो
नान्यतोऽस्ति विज्ञानतः ।**

अर्थात्—आत्मा के सम्बन्ध में श्रवण, मनन और चिन्तन करना ही हमारी जिज्ञासा का चरम बिन्दु है। यही ज्ञान की परकाष्ठा है। आत्मा को पहिचानना ही परमात्मपन को उपलब्ध करना है, जहाँ से संसार के बदलते हुए भावों का अवलोकन किया जा सके। आत्म-स्वरूप को न पहिचानने के कारण ही आज संसार में इतना अज्ञानान्धकार व दुःख छाया हुआ है।

यह निश्चय है कि जब तक मनुष्य को 'मैं हूँ' की आध्यात्मिक एकता प्राप्त नहीं होगी, तब तक वह इच्छा, वासना और परस्पर विरोधी मनोविकारों का शिकार होता ही जायगा और इनका गुलाम बना ही रहेगा। मनुष्य बार-बार यह सोचता रहता है कि वह स्वयं को तो जानता है, किन्तु अन्य पदार्थों के विषय में ही सन्देह है। परन्तु बाह्य शरीर का ज्ञान आत्मा का ज्ञान नहीं है और इसीलिए आप अनुबुझ रहकर औरों को भला कैसे भली प्रकार से बुझ सकते हैं ?

जीवन में नित्य परिवर्तन होते रहते हैं और विचार एवं भावनाओं में नई क्रान्तियाँ हो जाती हैं, किन्तु यदि हम आत्म-तत्त्व को गम्भीरतापूर्वक समझने का प्रयास करेंगे तो ज्ञात होगा कि मूलतः जीवन में एक ऐसा स्थल है, जो शाश्वत, स्थिर और शान्त है और जिसे विशाल प्रभञ्जन, महान् भूकंप, प्रचंड ज्वालामुखी तथा इस भौतिक युग में संहारक शस्त्र और बम भी स्पर्श तक नहीं कर सकते। अशान्ति का ताण्डव नर्तन भी आत्म-शक्ति को बाधित नहीं कर सकता।

आत्म-शक्ति का अन्तर्दर्शन ही व्यक्ति विकास की कुंजी है। आत्मिक शक्ति को प्रकाशित करने का अपूर्व साधन है—आध्यात्मिक ज्ञान। आज के जड़वादी युग ने इस ज्ञान को लुप्त करने के प्रयास किये हैं, किन्तु भारतीय-संस्कृति पटल से इसे मिटाया नहीं जा सकता और जिस दिन यह पुनीत स्थिति पूर्णरूप से हमारे हृदयों से लुप्त हो जायेगी, उस दिन एक सांस्कृतिक प्रलय आयेगा, जो मानवता को क्रूर 'बर्बरता' में परिणित कर देगा। अतः सच्चे विकास के लिए हमें आत्म-स्वरूप को

यथार्थ अर्थ से समझ लेने के बाद आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा में प्रगति की पावन मंजिल तक आत्मा को पहुँचाना है।

आत्मा अपना विकास करने के लिए स्वतन्त्र है। उसके विकास को अवरुद्ध करने वाली दुनिया में कोई शक्ति नहीं और यह विकास भी पूर्ण विकास जहाँ उसमें और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं रहता। भगवान् महावीर गौतम स्वामी के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवती सूत्र में कहते हैं—

हे गौतम ! अस्तित्व रूप भावना और नास्तित्व रूप भावना क्रमशः अस्तित्व और नास्तित्व रूप में जिस प्रकार मेरे अन्दर परिणित हो जाती है, उसी प्रकार तुम्हारे अन्दर और सम्पूर्ण लोक की आत्माओं के अन्दर परिणित होती है। उनकी, तुम्हारी और मेरी आत्मा चेतना में आत्म-शक्ति में कोई भेद नहीं है।

अतः मनुष्य को अपने स्वरूप को समझकर विवेक रखने की आवश्यकता है। संसार में रहते हुए भी आध्यात्मिक ज्ञान संसार से भागना नहीं सिखाता। वह तो मानव को अनासक्ति योग की शिक्षा देता है। आत्म-ज्ञान भी खाते-पीते व सब कुछ करते हैं, किन्तु उनमें आसक्ति का रंचमात्र भी भाव नहीं होता है और यही कारण है कि वे दुखों में घबराने नहीं और सुखों में लुब्ध नहीं होते। सम्पत्ति और विपत्ति की अनुभूति से उनका मानस परे हो जाता है।

अध्यात्म-ज्ञानी 'जीओ और जीने दो' के सिद्धान्त को केवल समझता ही नहीं, अपितु अपने जीवन में उसका पूर्ण आचरण करता है। वह समझता है कि वह जैसा व्यवहार दूसरों के प्रति करेगा, यदि वैसा ही व्यवहार उसके प्रति भी किया जाय तो उसकी अनुभूति कैसी होगी तथा उसी विचारणा के अनुसार वह अपनी सारी प्रवृत्तियाँ निर्धारित करता है।

इस प्रकार 'सोऽहम्' का स्पष्ट ज्ञान ही हमको मुक्ति के द्वार तक पहुँचा सकेगा और हमारे जीवन को तेजोमय व प्रकाशमय बना सकेगा।

आत्मज्ञान जीवन की महानतम् उपलब्धि

बाहरी दुनिया की जानकारी चाहे कितनी ही अधिक क्यों न प्राप्त कर ली जाय पर अपने सम्बन्ध में आवश्यक ज्ञान प्राप्त किये बिना वह बहुत कुछ जानना भी अधूरा रहेगा। यह ठीक है कि हमें सांसारिक वस्तुओं तथा परिस्थितियों से पाला पड़ता है और उनके सहारे प्रगति-अवनति का आधार बनता है, इसलिए दुनिया की जानकारी अधिकाधिक मात्रा में प्राप्त करना आवश्यक है। यह भी ठीक है कि सम्पर्क में आने वाले और विविध

सूत्रों से अपने जीवन-क्रम में जुड़े हुए व्यक्ति हमें असाधारण रूप से प्रभावित करते हैं—उनकी गतिविधियों का अपनी प्रसन्नता अप्रसन्नता के साथ सघन सम्बन्ध रहता है इसलिए उनके सम्बन्ध में ध्यान देना एवं व्यवस्था बनाना आवश्यक है। पारिवारिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों का सही तरह निर्वाह किया जा सके, इसलिए लोक व्यवहार की जानकारी संग्रह की जानी चाहिए।

यह दोनों ही बातें आवश्यक हैं। इसलिए उनसे सम्बन्धित जानकारीयाँ बढ़ाने और परिस्थितियों के साथ सफलतापूर्वक निपटने के साधन जुटाने में निरत रहना भी आवश्यक है। सांसारिक ज्ञान की उपयोगिता सर्वमान्य है। स्कूल, कालेजों से लेकर सभा, गोष्ठियों तक विविध-विधि क्रिया-कलाप इस प्रयोजन के लिए चलते हैं। साहित्य सृजन और प्रचार तन्त्र इसी निमित्त खड़े किये जाते हैं। विचार-विनिमय, परामर्श और भावनात्मक आदान-प्रदान के लिए लेखन और वाणी के उपयोग अनेक स्तर पर होते रहते हैं। यह जानकारीयाँ जितनी अधिक होंगी उतनी ही बुद्धि प्रखर होगी और प्रतिभा निखरेगी। सफलताओं की दिशा में इन्हीं साधनों के सहारे ही तो आगे बढ़ा जाता है।

इतना सब होते हुए भी यदि अपने सम्बन्ध में अभीष्ट ज्ञान प्राप्त न किया जा सका तो समझना चाहिए कि संसार में सम्बन्धित सुविस्तृत ज्ञान अपूर्ण और अपंग रह गया। अपने सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने का तात्पर्य है आत्म-ज्ञान। मोटी जानकारीयाँ तो अपने सम्बन्ध में सभी को होती हैं। नाम, पता, वंश, स्वास्थ्य, शिक्षा, धन, परिवार, पद आदि के सम्बन्ध में पूछने पर कोई भी व्यक्ति आसानी से अपना परिचय दे सकता है पर यह तो बहिरंग परिचय हुआ। भौतिक जानकारी रही। आत्मज्ञान का तात्पर्य इससे गहरा है। अपनी सत्ता का तात्त्विक स्वरूप, जीवन का लक्ष्य, अन्तः चेतना की गरिमा, इच्छा और संकल्प शक्ति का महत्व, आदतों एवं आस्थाओं की प्रतिक्रिया आदि कितनी ही जानकारीयाँ ऐसी हैं जिन्हें यदि ठीक तरह हृदयंगम न किया जाय तो व्यक्तित्व का विकास सम्भव न हो सकेगा। प्रस्तुत समस्याओं का हल न निकाला जा सकेगा और कोई कहने लायक जीवन-लाभ भी उपलब्ध न किया जा सकेगा। अपूर्ण और अविकसित, विपन्न और उलझे, टूटे हुए व्यक्ति प्रायः वही होते हैं जिन्हें अपनी आन्तरिक विशेषताओं और क्षमताओं के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी से वंचित रहना पड़ा।

चुम्बक लौह कणों को खींचकर अपने इर्द-गिर्द इकट्ठा कर लेता है। मनुष्य का आन्तरिक व्यक्तित्व ऐसा अद्भुत चुम्बक है कि सजातीय परिस्थितियों एवं व्यक्तियों

को अनायास ही अपने निकट जमा कर लेता है। भली या बुरी परिस्थितियाँ अनायास ही कहीं से नहीं टपक पड़तीं। मनुष्य की निज की जैसी भी स्थिति होती है उसी के अनुरूप समस्त परिकर धीरे-धीरे बनता रहता है और उनका एकत्रीकरण विशिष्ट परिस्थितियों के रूप में सामने आता है। जैसे भी कुछ हम होते हैं वस्तुतः वैसा बनने का, बनाने का पूरा-पूरा उत्तरदायित्व अपना ही रहा होता है। व्यक्तियों तथा परिस्थितियों का योगदान तो उसमें नगण्य जितना ही रहता है।

मनुष्य जिस प्रकार जिस दिशा में सोचता है—उसी प्रकार की उसकी जानकारी बढ़ती है और क्षमता विकसित होती है। सम्पर्क बनता है और साधन जुटते हैं। जो कुछ सोचा जाता रहेगा क्रमशः उसी दिशा में प्रगति होती जायेगी। प्रगति की दिशा में सोचा जाय अथवा अवगति की दिशा में, यह पूर्णतया अपने हाथ की बात है पर उस निषेधात्मक या विधेयात्मक चिन्तन के बुरे-भले प्रतिफल से बचा नहीं जा सकता है। व्यक्ति कर्म करने में स्वतन्त्र है—हाँ, फल प्राप्त करने में उसे नियति का पराधीन रहना पड़ता है। अशुभ चिन्तन करते रहें और समुन्नत परिस्थितियाँ प्राप्त हो जायें, यह नहीं हो सकता। यदि हेय स्तर के विचार मन में भरे रहेंगे तो कुकर्म करने की सुविधाएँ बढ़ती चलेगी और निकृष्ट स्तर का कर्तव्य दुखद, दुष्परिणामों को दल-बल सहित सामने लाकर खड़ा कर देगा। इस तथ्य को यदि ठीक तरह समझ लिया जाय तो जिस स्थिति में रहना या पहुँचना अभीष्ट हो उसी प्रकार के विचारों का संचय करने और निरन्तर मस्तिष्क में भरे रहने का सर्वप्रथम कदम उठाना पड़ेगा। चिन्तन की अवगति एवं अस्त-व्यस्तता को यदि देखा-समझा न जाय उसमें सुधार परिवर्तन न किया जाय तो बाह्य क्षेत्र में भी अभीष्ट परिवर्तन सम्भव न होगा। जैसे विचार होते हैं वैसा जीवन का स्वरूप बनता है। इसी बात को यों भी कह सकते हैं कि जैसा बनना है उसी स्तर के विचारों की मनःक्षेत्र में स्थापना की जानी चाहिए।

विचारों के आधार पर क्रिया-कलाप की दिशा बनती है। दोनों के समन्वय से अभ्यास का स्वभाव बन जाता है। मन के रुझान को स्वभाव और शरीर के अभ्यास को आदत कहते हैं। स्वभाव और आदतों का नाम ही व्यक्तित्व है। विचारणाओं की असंख्य धाराएँ इस संसार में बिखरी पड़ी हैं। वे एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न स्तर की हैं। उनमें से किन्हें अपनाया और किन्हें दूर रखा जाय यह निर्णय करना आस्थाओं का काम है। मूल मान्यताएँ इन्हीं को कहते हैं। हमें क्या बनना है, क्या करना है, क्या प्रिय है—क्या हितकर है? जैसे महत्वपूर्ण निर्णय

आस्थाओं के क्षेत्र में ही किये जाते हैं। बुद्धि इन निर्णयों का सहज, समर्थन करने लगती है। उसका काम आस्थाओं के पक्ष में तर्क, प्रमाण, उदाहरण आदि एकत्रित करके कुशल वकील की तरह अपने ग्राहक का केस तैयार करना होता है। बुद्धि के निर्णय स्वतन्त्र नहीं होते, उनकी पीछे संचित आस्थाओं के साथ पूरा-पूरा पक्षपात जुड़ा रहता है। निष्पक्ष चिन्तन कर सकने वाले तत्त्वदर्शी विवेकवान तो कोई विरले ही होते हैं।

हमें क्या बनना है, क्या प्राप्त करना है? यह निष्कर्ष आस्थाएँ ही प्रस्तुत करती हैं। इस निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए पहले मस्तिष्कीय शक्तियाँ आगे आती हैं इसके बाद शरीर की हलचलें भी उसी दिशा में चल पड़ती हैं। मन स्वेच्छाचारी नहीं है और न बुद्धि में स्वतन्त्र निर्णय की क्षमता है। उन्हें आस्थाओं का गुलाम बनकर रहना पड़ता है। सबको समान वस्तुएँ या समान परिस्थितियाँ प्रिय नहीं होतीं। लोगों की अभिरुचियों में जमीन-आसमान जैसा अन्तर पाया जाता है। एक को जो कुछ प्राणप्रिय लगता है वह दूसरे को फूटी आँखों भी नहीं सुहाता। यह अन्तर पूर्णतया स्वनिर्मित है। भले ही हम उसे आगत या दैव प्रदत्त मानें। वस्तुतः प्रकृति प्रदत्त मूलभूत प्रवृत्ति शरीर रक्षा के मोटे प्रयोजन पूरे करने तक ही सीमित है। व्यक्तित्व को ढालने और उसे दिशा देने का काम पूरी तरह अपनी चेतना ही करती है। इस मर्मस्थल को सही रूप से समझा जा सके और उसे अवांछनीयता से हटाकर दूरगामी श्रेय साधना में लगाया जा सके तो समझना चाहिए कि आत्मज्ञान और आत्मबल की प्रखरता सिद्ध हो गई।

आमतौर से लोग बाह्य परिस्थितियों को ही प्रगति-अवगति का, सुख-दुख का कारण मानते हैं। इसलिए बाह्य साधनों को तलाशते अथवा मनुष्यों या देवताओं के अनुग्रह की याचना करते रहते हैं। असफलताएँ या कठिनाइयाँ आती हैं तो भी ये किसी कारणों को अथवा व्यक्तियों को दोषी ठहराते हैं। सस्ते छूटने के लिए बेचारे ग्रह-नक्षत्रों को, अथवा भाग्य प्रारब्ध को दोषी ठहराकर सन्तोष कर लेते हैं। घटना-क्रम गुजर चुका हो और जो हो चुका उसे बदला न जा सकता हो तो भाग्य प्रारब्ध की बात करना मन समझाने की दृष्टि से बुरा नहीं है। पर वस्तुतः वैसा कुछ होता नहीं। किसी का भी भाग्य पूर्व निश्चित नहीं है। प्रयत्नों और परिस्थितियों के आधार पर पूर्व कल्पनाओं, सम्भावनाओं, आकांक्षाओं एवं योजनाओं में जमीन आसमान जैसा अन्तर हो सकता है। अपने भाग्य का निर्माण मनुष्य स्वयं ही करता है। प्रारब्ध की बात पर जोर दिया जाय तो वह भी पूर्वकृत कर्मों का प्रतिफल ही ठहरता है। ताजी या वासी का विवाद

भर ही पुरुषार्थ और प्रारब्ध का झंझट है। कल के पुरुषार्थ को आज का प्रारब्ध परिपाक मानना पड़ता है। प्रारब्ध भी तो हम स्वयं ही बनाते हैं।

प्रस्तुत परिस्थितियों से छुटकारा और अभीष्ट आकांक्षाओं का आधार निर्माण, यह दोनों का कार्य हम सरलतापूर्वक स्वयं ही सम्पन्न कर सकते हैं। इसके लिए करना इतना भर पड़ेगा कि आत्म-निरीक्षण की गइराई में उतरे, अपनी आस्थाओं और अभिरुचियों को टटोलें, विचार प्रवाह की समीक्षा करें और आदतों का विश्लेषण करने में सूक्ष्म बुद्धि के सहारे जुट जायें। यह आत्म-समीक्षा जितनी ही प्रखर होगी उतनी ही सरलतापूर्वक यह समझ में आ जायेगा कि प्रस्तुत अवगति का मूलकारण अन्तःक्षेत्र में क्या-क्या है और उन्हें किस प्रकार बदला-सुधारा जा सकता है। अन्तः प्रदेश को सुधारने और बदलने में यदि सफलता मिल सके तो समझना चाहिए कि भविष्य में जो कुछ बनने की आकांक्षा है उसके लिए रुका हुआ मार्ग खुल गया और प्रगति की सम्भावना सुनिश्चित हो गई।

भौतिकवाद का अर्थ है, सुख साधनों को बाहर खोजना और उसके लिए साधन जुटाना। अध्यात्मवाद का तात्पर्य है, अभीष्ट प्रयोजन के लिए आन्तरिक क्षमताओं को विकसित एवं व्यवस्थित बनाना। यदि भौतिक प्रगति ही लक्ष्य हो तो भी यह आवश्यक है कि मान्यताओं, विचारणाओं एवं आदतों का तदनुरूप ढाला जाय। प्रगति की दिशा कुछ भी क्यों न हो सफलता इसी आधार पर मिलेगी। ऊपर से थोपी हुई मात्र समेटे हुए साधनों के आधार पर प्राप्त की गई सफलता न तो स्थिर रहेगी और न लाभदायक सिद्ध होगी। दूसरों के सहारे या आकस्मिक कारणों से यदि कुछ सफलता मिल भी जाय तो उससे दूरगामी प्रगति का आधार नहीं बनता और न आत्म-सन्तोष का गर्व-गौरव भरा आनन्द ही उपलब्ध होता है।

उच्च आदर्शों के अनुरूप जीवन ढालने, महामानव की भूमिका में विकसित होने एवं अध्यात्म लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम साधना, अपनी आस्थाओं-विचारणाओं और आदतों को उसी स्तर का विनिर्मित करना पड़ता है। कदाचित् वैसा लक्ष्य न हो और भौतिक सफलताएँ ही प्राप्त करने तक बात सीमित रखी जानी है, तो भी सफल मनोरथ मनस्वी पुरुषार्थी व्यक्तियों के व्यक्तित्व का गहन पर्यवेक्षण करते हुए हमें इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि जो बनना हो उसके अनुरूप ढलना आवश्यक है। सफलताएँ चाहे आत्मिक हों, चाहे भौतिक उनके लिए गुण, कर्म, स्वभाव की अनुकूलता का होना अनिवार्य है।

बाह्य जगत की जानकारीयों अधिकाधिक मात्रा में एकत्रित करते रहने में कुछ हर्ज नहीं पर उस ज्ञान के उपार्जन में भी दत्तचित्त रहना चाहिए कि व्यक्तित्व का विकास ही सर्वतोमुखी प्रगति का केन्द्रबिन्दु है। इसलिए आत्म-ज्ञान का गहनतम अनुशीलन होना चाहिए। अवांछनीय मान्यताएँ एवं आस्थाएँ तो अन्तःस्थल में नहीं जमी बैठी हैं, इन्हें परखना चाहिए और बुद्धि को यथार्थवादी समीक्षा कर सकने योग्य बनाना चाहिए। जो इतना कर सकेगा उसके लिए यह भी सम्भव होगा कि अभीष्ट प्रयोजन के लिए आवश्यक क्षमता उत्पन्न करने के लिए मनोयोगपूर्वक जुट जायँ और जिन अयोग्यताओं एवं अभावों के कारण मार्ग अवरुद्ध पड़ा था, उस व्यवधान का सरलतापूर्वक निराकरण कर लें। व्यक्तित्व का निर्माण, सफलता की किसी दिशा में बढ़ चलने का द्वार खोलता है। यह उपलब्धि आत्म-ज्ञान के आधार पर ही प्राप्त की जाती है। इसलिए हमारी उपलब्धियों में उसे प्रथम स्थान की विभूति का स्थान दिया जाना चाहिए।

आत्म-ज्ञान का तत्व दर्शन

भारतीय दर्शन के प्रणेता ऋषियों ने मानव जीवन में जिज्ञासा के अन्यतम महत्व को जाना-पहचाना तथा प्रत्येक श्रेयार्थी को जिज्ञासा का सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त करने की प्रेरणा दी—

“नान्योवरस्तुल्य एतस्य कश्चित्”

(कठ०-१।२२)

—“सत्य की प्राप्ति में जिज्ञासा से श्रेष्ठ अन्य कोई सहायक नहीं।”

मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? मैं भविष्य में भी रहूँगा या नहीं ? प्राणी दुःखी क्यों होता है ? सच्चा सुख क्या है ? इन्द्रियों से प्राप्त होने वाला ज्ञान विश्वसनीय है या नहीं ? कर्मों का फल मिलता है या नहीं ? इस जन्म से पूर्व मेरा अस्तित्व था या नहीं ? इत्यादि असंख्य प्रश्नों की जिज्ञासा न केवल संसार के दुःखों से पीड़ित प्राणी को ही झकझोरती है, अपितु कई बार सब प्रकार से सुखी मनुष्यों के मन में भी ये प्रश्न उथल-पुथल मचा देते हैं। यह जिज्ञासा दिव्य अग्नि के समान है जिसमें तपने पर मनुष्य का हृदय सत्य के अवतरण का पुण्य तीर्थ बन जाता है।

जिस समय मनुष्य के मन में इन विचारों का चक्र चलता है, उस समय उसे समस्त सांसारिक सुख विषवत् प्रतीत होने लगते हैं। राजमहलों के वैभव-विलास में सुकुमारता से पले राजकुमार सिद्धार्थ, महाराजा भर्तृहरि और महावीर जैसे असंख्यों की जीवन-गाथाएँ इतिहास के

पृष्ठों में बिखरी पड़ी हैं। विचारों का यह झंझावात ही सच्ची जिज्ञासा है जिससे दर्शन का जन्म होता है।

जिज्ञासा के लिए दर्शन का अर्थ मात्र बौद्धिक कलाबाजियों खाने से नहीं है। वह कमरे के भीतर बन्द होकर कुर्सी पर बैठा हुआ अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं समझता। आंग्ल भाषा में दर्शन के लिए प्रयुक्त होने वाला ‘फिलॉसफी’ शब्द यूनानी भाषा के ‘फिलो’ और ‘सोफिया’ के मिलने से बना है, जिसका अर्थ होता है—ज्ञान का प्रेम। यहाँ ज्ञान का तात्पर्य बुद्धिकृत मीमांसा से है। तत्सम्बन्धी रुचि ही ‘फिलॉसफी’ है। इसके विपरीत भारतीय शब्द दर्शन का तात्पर्य ‘देखने’ से है जिसका अर्थ है, तत्व का साक्षात्कार करना। ज्ञान के जिस विवेचन में सत्य या तत्व को स्वयं न देखा जाय उसे ‘दर्शन’ कहना युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता है। अतः वही तत्व सत्य है, जिसके सम्बन्ध में हम यह कह सकें कि हमने उसका साक्षात्कार किया है, यह हमारे अनुभव का विषय है अर्थात् यह हमारा ‘दर्शन’ है।

बिना सच्ची जिज्ञासा के तत्वज्ञान की उधेड़-बुन बुद्धि का कौतूहल मात्र बनकर रह जाती है। आर्ष साहित्य में जिज्ञासा वृत्ति का सर्वोत्तम उदाहरण नचिकेता है। नचिकेता शब्द यथार्थ जिज्ञासा का सूचक है और यह जिज्ञासा वृत्ति मनुष्य में प्रायः मृत्यु (यम) के सन्निकट होने अर्थात् मृत्यु का भय उपस्थित होने पर जाग उठती है।

मृत्यु के नाटक को नजदीक से देखते हैं तब ‘कस्त्वम् कोऽहम्’ वे प्रश्न हमें सच्चे और आवश्यक जान पड़ते हैं। नचिकेता की जिज्ञासा का उदय भी यम के सान्निध्य में ही होता है। नचिकेता (न + चिकेतस्) शब्द का अर्थ ही यह है कि जिसके अन्दर जानने की इच्छा हो, परन्तु जो जानता न हो।

भगवान बुद्ध अपने उपदेशों में बहुत जोर देकर कहा करते थे कि—“मैं जिस मार्ग का पथिक हूँ, मैंने उसे स्वयं देख लिया है।” जब तक किसी उपदेष्टा या ज्ञानी की ऐसी विश्वस्त स्थिति न हो तब तक वह मानव जीवन के लिए असंदिग्ध या महत्वपूर्ण तत्व का व्याख्यान नहीं कर सकता।

यास्कचार्य ने लिखा है—

ऋषिदर्शनात्

(निस्क-२।११)

अर्थात् ‘ऋषि’ शब्द का अर्थ है, द्रष्टा या देखने वाला। शुष्क ऊहापोह करने वाला तार्किक भारतीय अर्थ में ‘दार्शनिक’ की पदवी का अधिकारी नहीं बनता। दार्शनिक बनने के लिए ‘दर्शन’ होना चाहिए दूसरे शब्दों में दार्शनिक में ऋषित्व का होना आवश्यक है। जो व्यक्ति

अपने आपको ज्ञान का अधिकारी कहता है, उससे पूर्व उसमें यह कहने की सामर्थ्य होना जरूरी है कि 'मैंने ऐसा देखा है।' यजुर्वेद की परिभाषा के अनुसार सच्चा 'एवं मया श्रुतं' (ऐसा मैंने सुना) नहीं, बल्कि आत्मविश्वास के साथ कहता हूँ—

'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।'

अर्थात् मैं उस परमसत्ता को जानता हूँ जो आदित्य के सदृश भास्वर और तम से परे है।

दर्शन का अर्थ है—'आत्मानुभव'। दूसरों के दर्शन के आधार पर सच्ची तृप्ति सम्भव नहीं है। तार्किक, प्रश्नात्मक-जिज्ञासा का अर्थ श्रद्धा का अभाव नहीं है। इसके विपरीत जिज्ञासा का अभाव अश्रद्धा है। जिज्ञास्य विषय को अपने अध्यवसाय की क्षमता से अनुभव का विषय बना लेना श्रद्धा का लक्षण है।

दार्शनिक काण्ट ने कहा है—'नीतिमय जीवन का प्रारम्भ होने के लिए विचार-क्रम में परिवर्तन तथा आचार का ग्रहण आवश्यक है।' जिज्ञासा उत्पन्न हो जाने पर यदि जीवन-क्रम में परिवर्तन नहीं होता है तो इसका अर्थ है कि व्यक्ति वास्तविकता के साथ अपना सीधा सम्बन्ध जोड़ना नहीं चाहता है।

सन्देह या प्रश्नों को परास्त करने की शक्ति ही जिज्ञासु की श्रद्धा है। सत्य को जानने के लिए मात्र प्रश्नों या तर्कों का उदय ही पर्याप्त नहीं है। गीता के अनुसार इसके लिए योगमुक्त एकनिष्ठ अभ्यास की भी आवश्यकता है—**'अभ्यास योग युक्तेन चेतसा नान्यगामिना।'**

'ज्ञान' का सामान्य अर्थ जानकारी है। भौतिक पदार्थों एवं परिस्थितियों की एवं प्रयोग विधियों की जानकारी में ही लोक-व्यवहार में ज्ञान कहा जाता है किन्तु आत्म-विज्ञान में उसे आत्मसत्ता की स्थिति एवं परिणिति के सम्बन्ध में आवश्यक अनुभव कराने वाली अनुभूति को 'ज्ञान' कहा गया है। इसी की उपलब्धि मानव जीवन की सबसे बड़ी सफलता है। अपने सम्बन्ध में भ्रान्तियाँ बनी रहने पर लोक-व्यवहार एवं पदार्थों का उपार्जन, उपयोग सभी गलत हो जाता है और सुख-सम्बर्धन के लिए किया गया पुरुषार्थ उल्टा संकट भरे जाल-जंजालों में फँसाता जाता है। शान्ति एवं प्रगति का सही मार्ग उसी को मिल सकता है जो आत्म-चेतना और लोक-व्यवस्था के मध्यवर्ती अन्तर को—जोड़ने वाली सूत्र शृंखला को भली प्रकार समझ लेता है। उसी जानकारी को शास्त्र में 'आत्म-ज्ञान' कहा गया है। यह आत्म-ज्ञान ही वह अमृत है जिसे पाने के उपरान्त और कुछ पाना शेष नहीं रह जाता।

'छान्दोग्य उपनिषद्' में एक कथा आती है, प्राचीन काल में दो पुरुष थे एक का नाम विरोचन था दूसरे का

इन्द्र। दोनों के मन में यह प्रश्न उठा कि 'मैं' कौन हूँ ? शिष्य भाव से जिज्ञासु की भाँति दोनों हाथ में समिधाएँ लिए प्रजापति के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने प्रश्न किया आचार्य श्रेष्ठ हमें बताइये कि हम कौन हैं ?

प्रजापति ने उत्तर देने के पूर्व उनकी योग्यता की परीक्षा लेना उचित समझा। उन्होंने कहा थाली में पानी भर लो और उसमें अपना मुख देखो, अपने आपका साक्षात्कार कर लो। उत्तम वस्त्र धारण करके दोनों ने जल में अपनी आकृति देखी। विरोचन अपना सौन्दर्य देखकर प्रसन्न हो उठा और कहने लगा। मैं कितना सुन्दर हूँ। वह अपने सभी साथियों से कहने लगा, हमने 'मैं' का पता लगा लिया है। अपने शरीर को ही 'मैं' समझकर वह उसे ही पुष्ट करने एवं सँवारने में लग गया।

किन्तु इन्द्र दूरदर्शी थे। उसने सोचा यदि वस्त्र, आभूषण एवं शरीर ही मेरा स्वरूप है, तो इसका अर्थ यह है कि उनके मैले होने, जरा-जीर्ण पड़ने पर मेरी भी वैसी ही स्थिति हो जायेगी। निश्चित ही यह मेरा स्वरूप नहीं हो सकता। वह कहने लगा, **नाहमाम भोग्य पश्यामि'** अर्थात्—मैं तो उसमें कुछ भी कल्याण नहीं देखता।

इन्द्र की आशंका उचित थी। जिन आकर्षक वस्त्रों द्वारा हम शरीर को सजाते-सँवारते हैं, वह मैला होता है और फटता भी है। किन्तु 'मैं' का भाव तो सदा एक जैसा बना रहता है। सम्बोधन किये जाने वाले स्थूल अवयव का स्वरूप बदल जाता है।

बचपन में भी मैं का सम्बोधन किया जाता था, युवावस्था एवं वृद्धावस्था में भी। शरीर तो परिवर्तित होता जाता था किन्तु 'मैं' सदा एक जैसा बना रहता है। स्पष्ट है नित्य परिवर्तनशील यह शरीर 'मैं' नहीं हो सकता है। 'मैं' का भाव शाश्वत, अपरिवर्तनशील होना इस बात का प्रमाण है कि उसे कोई शाश्वत, अविनाशी एवं परिवर्तनरहित सत्ता होनी चाहिए।

'मैं' की सत्ता का शरीर से अलग होना अन्य प्रमाणों से भी स्पष्ट हो जाता है। उँगली कटने, बीमार पड़ जाने पर सामान्यतया यह कहा जाता है कि मेरी उँगली कट गई या मेरा शरीर रोगग्रस्त हो गया। कोई भी यह नहीं कहता कि मैं कट गया। यह इस बात का परिचायक है कि मैं की सत्ता शरीर नहीं है।

उपनिषद् के इस सम्वाद, सन्देह का निष्कर्ष यह है कि आत्मसत्ता को शरीर से पृथक् और स्वतन्त्र मानकर चला जाय। अपना हित साधन, आत्म-कल्याण एवं

आत्मोत्कर्ष की समस्याओं एवं उपलब्धियों के साथ जोड़ा जाय। इस स्तर का दृष्टिकोण न अपनाया जाय जैसा कि पेट और प्रजनन तक अपनी आकांक्षा तथा चेष्टा को सीमाबद्ध रखने वाले नर पशु अपनाते देखे जाते हैं। वासना और तृष्णा—लोभ और मोह के भव-बन्धन उन्हीं को बाँधते हैं जो अपने को शरीर मानकर चलते हैं और उसी के साथ जुड़े हुए परिकर के साथ बाल-क्रीड़ा करते रहते हैं। इस स्तर से ऊँचे उठकर जीवन सम्पदा का महत्व एवं सदुपयोग को समझते हुए परम लक्ष्य की दिशा में चल पड़ने की प्रेरणा आत्मज्ञान पर अवलम्बित है। इसी प्रेरणा को ऋतम्भरा प्रज्ञा एवं ब्रह्मविद्या गायत्री कहते हैं।

व्यक्ति के तीन चित्र हैं—(१) लोग उसे किस रूप में समझते हैं (२) दूसरे वह किस रूप में जीता है (३) तीसरे वह किस रूप में अपने आपको प्रस्तुत करता है। तीनों चित्रों में से पहला मान्यता का, दूसरा यथार्थ का और तीसरा अयथार्थ का है।

राजा भोज की राज्यसभा जुड़ी हुई थी। बड़े-बड़े विद्वान अपने-अपने आसनों पर विराजमान थे। उसी समय एक भद्र सा पुरुष आभूषणों से विभूषित राज-सभा में उपस्थित हुआ। राजा भोज सिंहासन से उठे। अभिवादन किया और सम्मान दे ऊँचे आसन पर बिठाया। उसी समय एक दूसरा व्यक्ति फटे-पुराने, कपड़े पहिने हुए सभा में आया। राजा में उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया और वह एक किनारे पर बैठ गया।

विद्वानों के वक्तव्य हुए, चर्चा-परिचर्चा चलने लगी। फटे कपड़े पहने हुआ व्यक्ति प्रभावशाली वक्ता एवं विद्वान था। सभा विसर्जन होने पर राजा स्वयं उसके साथ दरवाजे तक विदा करने के लिए गया और उसे विविध प्रकार के वस्त्राभूषणों से सम्मानित किया। जाते समय जो व्यक्ति वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर आया था उसकी ओर राजा ने ध्यान तक नहीं दिया।

इतने में एक विदूषक घुँघट लगाये रूपसी जैसे आवरण पहनकर दरबार में दाखिल हुआ और फरियाद सुनने की प्रार्थना करने लगा। आरम्भ में सभी का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ, पर पीछे जब वास्तविकता का पता चला तो सभी दरबारी उस छद्म पर ठहाका भरकर हँस पड़े और बहुरूपिये को कुछ दे दिला-कर भगा दिया।

उपस्थित विद्वानों ने तीन प्रकार के लोगों के प्रति तीन तरह का व्यवहार करने और आरम्भ में प्रदर्शित किये रुख को बदल देने का कारण पूछा तो उन्होंने कहा—प्रथम व्यवहार में प्रारम्भिक परिचय, दूसरे में यथार्थ

निरूपण और तीसरे में भ्रम निवारण के तथ्यों ने काम किया और प्रारम्भिक मान्यता को बदल दिया।

पूर्णत्व की प्राप्ति का एक ही राजपथ

सीढ़ियाँ चढ़नी हों, तो एक के बाद एक कदम बढ़ाना पड़ता है और एक-एक सीढ़ी पार करते हुए आगे बढ़ना पड़ता है। कोई यदि छलाँग लगाकर शीर्ष पर पहुँचना चाहे, तो दुर्घटना घटे बिना नहीं रह सकती। यही बात आत्मोत्थान के संदर्भ में भी है। मनुष्य जिस परिवार में, समाज में, राष्ट्र और युग में जीता है, वह उसके लिए आगे बढ़ने-ऊँचा उठने के एक-एक सोपान के समान है। इनसे होकर ही आगे बढ़ना पड़ता है। प्रगति-क्रम में इनकी उपेक्षा करते हुए कोई यह सोचे कि वह कोई बजरंगी छलाँग मारकर चरम लक्ष्य तक पहुँच जायेगा, तो इसे उसकी प्रवचना और अध्यात्म विज्ञान की अवमानना ही समझना चाहिए।

बालक जब छोटा होता है, तो पहले अक्षर ज्ञान कराना पड़ता है, तभी वह उस स्थिति में पहुँच पाता है कि पुस्तकें पढ़ सके। फिर जैसे-जैसे उसकी योग्यता बढ़ती जाती है, वैसे-ही-वैसे एक-एक कक्षा ऊपर उठते हुए वह स्कूल से कॉलेज में पहुँचता और स्नातक एवं स्नातकोत्तर की डिग्रियाँ प्राप्त करता है। यह प्रगति का स्वाभाविक क्रम है। भौतिक सफलता से लेकर आत्मोन्नति तक में इसी सिद्धान्त का अनुसरण करना पड़ता है, तभी वह पद प्राप्त होता है, जिस पर गर्व-गौरव अनुभव किया जा सके। हाथ पर सरसों जमाने जैसी जल्दबाजी तो बाजीगरी में ही देखी जाती है, इसलिए तुरंत-फुर्त का प्रतिफल वहाँ तत्क्षण में समाप्त हो जाता है। अध्यात्म न तो बाजीगरी है और न ऐसा कुछ, जिसमें सुनिश्चित कर्तव्यों की उपेक्षा करते हुए कुछ कहने लायक उपलब्धि की आशा की जा सके। इसमें तो परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व के निर्धारित मार्ग से होकर गुजरना पड़ता है, और स्वयं को उन कसौटियों में खरा सिद्ध करना पड़ता है, जिसे साधना विज्ञान में आवश्यक अनुबन्ध के रूप में स्वीकारा गया है। संसारी व्यक्तियों के लिए यह दुनिया ही साधना-भूमि है। इससे बढ़कर अनुकूल स्थान साधना के लिए कोई दूसरा हो नहीं सकता। इस साधना स्थल में उसे उपासना के प्रथम चरण के रूप में पहले परिवार की प्रारम्भिक भूमिका से होकर गुजरना पड़ता है। इसके पूरा होने के उपरान्त उसे दूसरी भूमिका-समाज-साधना में प्रवेश करना पड़ता है। इसके पश्चात् राष्ट्र-साधना की तीसरी अवस्था में अवस्थान करना होता है। अन्तिम भूमिका विश्व-साधना की है, जिसे ठीक-ठीक ढंग से पूरा कर लेने के बाद व्यक्ति की अवस्था योग-सिद्ध योगी स्तर की

हो जाती है। इस दशा में वह योग साधना की वह सारी विभूतियाँ हस्तगत कर सकता है, जिसका अधिकारी एक यती है। जो संसार छोड़ने और वैरागी बनने की बात करते हैं, तो उनका वैराग्य भी समाज के बिना अधूरा है। भला साधन-सुविधाहीन वन में वैराग्य की परीक्षा किस भाँति हो सकेगी ? यदि कोई ऐसी अभावग्रस्त स्थिति में रह भी रहा हो, तो इसे उसकी मजबूरी कहना चाहिए, वैराग्य नहीं। जो जीवन भर सरोवर में कभी उतरा नहीं, वह बढ़-चढ़कर जल में नहीं डूबने का दंभ करे, तो इससे बड़ी विडंबना क्या हो सकती है ? डूबने, नहीं डूबने की परख तो उसके पानी में प्रवेश करने के बाद ही हो सकती है, बाहर रहकर नहीं। जो दुनिया में रहकर भी निर्लिप्त बना रहता है, वास्तविक वैरागी वही है और जिसने यह अवस्था प्राप्त कर ली, उसके लिए कंदरा और वन का एकांत सब कुछ दिखावा है। इस आडंबर में वही पड़ते, जिन्हें बड़प्पन की, मान-सम्मान की चाह होती है, अन्यथा जो सही-सही योग साधना चाहते हैं, उनके लिए समाज से बढ़कर कोई दूसरी उपयुक्त योगस्थली नहीं।

महाकवि गेटे ने अपने नाटक 'फास्ट' में एक ऐसे चरित्रनायक का वर्णन किया है, जो आत्मज्ञान-संग्रह का अभिलाषी है। संसार में रहकर ही वह इसे प्राप्त करना चाहता था, पर कुछ समय पश्चात् उसे ऐसा अनुभव होने लगा, जैसे इस ज्ञान-संपादन में दुनिया सबसे बड़ी बाधा है। वह इसे छोड़ समाज से बहुत दूर कहीं एकांत वन-प्रांत में चला जाता और तपस्या करने लगता है, पर यहाँ भी उसकी एकाग्रता सध नहीं पायी। अभावजन्य पीड़ा और कुटुंबियों की याद उसे सताती रही। थक-हारकर वह पुनः समाज में आ जाता है, किंतु अब तक उसकी अधिकांश आयु चुक चुकी थी। वह हताश हो जाता है। उसे संतोष था, तो मात्र इतना ही कि जीवन के अंतिम समय में उसे उस सत्य का बोध हो गया, जिसके न होने के कारण ही वह अब तक संसार के अंदर और बाहर वनों में भटकता रहा।

कुछ ऐसा ही निष्कर्ष भारतीय पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास "विराट" में आस्ट्रियाई उपन्यासकार स्टीफन ज्वीग ने प्रस्तुत किया है। नायक विराट निष्कर्म योग का पक्षधर है। वह अपने अनुयायियों समेत समाज से दूर चला जाता है, फिर भी अनुभव करता है कि पूर्ण निष्कर्म नहीं हो सका। वह वहाँ से और घने जंगल में आ जाता है। यहाँ भी वह बिल्कुल निष्कर्म नहीं हो पाता। यह अहसास होते ही विराट पुनः समाज में आकर निष्कर्म अवस्था त्यागकर कर्ममय जीवन अपना लेता है।

समाज में रहते हुए, कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए ऐसा लग सकता है कि सांसारिक उलझनों में पड़कर व्यक्ति अपने लक्ष्य से भटक जायेगा। शायद इसीलिए इनसे बचने के लिए वह दूर चला जाता है, सोचता है कदाचित् इससे लक्ष्य-प्राप्ति में शीघ्रता होगी, पर सच्चाई यह है कि अपने ढंग से वह जितनी जल्दबाजी करता है, ध्येय से उतना ही दूर हटता जाता है, विलंब उतना ही ज्यादा होता जाता है, क्योंकि दायित्वों की उपेक्षा द्वारा आत्मलाभ कराने वाला कोई मार्ग दुनिया में है नहीं। जो रास्ता निर्धारित है, वह मध्यम मार्ग का राजपथ ही हो सकता है, जिसमें आवश्यक कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए आगे बढ़ना पड़ता है। यहाँ एकदम भौतिकवादी बन जाने में भी हानि है और पलायनवादी बनने में भी घाटा है। नफा तो, अतिवाद तो त्यागकर ही उठाया जा सकता है। सांसारिकता में आकंठ डूब जाना जीवन का एक सिरा है, तो वैरागी बनकर संसार त्यागना इसका दूसरा छोर। जीवन में इन दोनों का समन्वय करके चलने से ही कुछ कहने लायक सफलता अर्जित की जा सकती है। वस्तु का ग्रहण और विसर्जन, बंधन और वैराग्य-यह दोनों ही आवश्यक हैं। किसी एक को छोड़कर और दूसरे को अपनाकर सत्य की प्राप्ति नहीं की जा सकती, वरन् इनका सम्मिलित स्वरूप ही पूर्णता तक ले जाने में सफल हो सकता है। शंकर त्याग की और अन्नपूर्णा भोगी की प्रतिमूर्ति है, दोनों मिलकर जब परिवार में, समाज में, राष्ट्र व विश्व में एक हो जाते हैं, तो पूर्णता का वास्तविक आनन्द-लाभ मिलता है, अन्यथा जहाँ कहीं भी बंधन और मुक्ति में, भोग एवं त्याग में, अनुराग व विराग में वैर-विरोध हुआ, वहीं नाना प्रकार के अशांति और असंतोष पैदा होने लगते हैं। इन दिनों के भटकाव का एकमात्र कारण इस संसार-व्यूह को भलीभाँति न समझ पाना ही है। इस व्यूह में हमें प्रवेश करना भी आना चाहिए और उससे बाहर निकलना भी। केवल प्रवेश करना आता हो और बाहर निकलने की कला नहीं मालूम हो, तो उसी में उलझकर हमारी मौत हो जायेगी। निस्संदेह इसमें भी हम वीरता दिखा सकते हैं, किन्तु इसे तो विजय नहीं कहा जा सकता, क्योंकि हमारी मंजिल जीत अर्जित करना है, बहादुरीपूर्वक मर जाना नहीं। यह वीरोचित मरण युद्ध का एक अच्छा पहलू हो सकता है, किन्तु है अधूरा। दूसरी ओर जो इस चक्रव्यूह में अन्दर जाने से डरते हैं, उन कायरों के लिए वीरगति नहीं है। इस तरह यह दोनों प्रकार के लोग अपूर्ण हैं। अपूर्णता से संपूर्णता की प्राप्ति भला कैसे हो सकती है ? यह तो तभी सम्भव है, जब निवृत्ति के साथ प्रवृत्ति, शिव के साथ शक्ति और सत्य के साथ सुन्दर भी हो।

इस दिशा में गड़बड़ी तब पैदा होती है, जब जीवन के किसी एक पक्ष को पूर्ण मान लिया जाता है और उसी एक क्रियाविधि को पूरा करने में सारा जीवन खपा दिया जाता है। यदि कोई व्यक्ति स्वयं को राज्य रक्षा का उपकरण मान बैठा हो, तो वह अपने को सैनिक बना लेगा। यदि किसी को सामाजिक समृद्धि का आधार माना गया है, तो हम उसे वणिक बनाने की चेष्टा करेंगे। किसी के जिम्मे शासन-संचालन का भार है, तो वह राजनेता से बढ़कर कुछ नहीं हो सकता। कोई नाट्यकार, रंगकर्मी और अभिनेता है, तो अपना श्रेय-सौभाग्य वह स्वयं को विदूषक बनाने में ही मानता रहेगा और उसी के गिर्द जीवन भर उसके क्रिया-कलाप चलेंगे, पर मनुष्य इतना ही है, सो बात नहीं। यथार्थ तो यह है कि मनुष्य न तो केवल सैनिक है, न व्यापारी है, न नेता, न अभिनेता है। यह तो उसके गुण, अभिरुचि, स्वभाव, संस्कार के हिसाब से विकसित हुआ व्यक्तित्व का एक हिस्सा है। उसका वास्तविक आपा इन्हें नहीं कहा जा सकता। मूलतः वह ब्रह्म का प्रकाश है। प्रकाश की पूर्णता उद्गम में मिलकर ही हो सकती है, पृथक् रहने में नहीं। संसारी लोगों की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि वह व्यक्तित्व के इन अंगोपांगों को ही सब कुछ मान बैठते और समस्त ध्यान इन्हीं को निखारने, उभारने, सुधारने, सँवारने में लगा देते हैं, जबकि मूल प्रयोजन अछूता बना रहता है। व्यक्तित्व की प्रखरता भौतिक सफलता के लिए आवश्यक तो है, पर साथ ही इस बात पर भी विचार करते रहना चाहिए कि लौकिक समृद्धि के साथ आत्मिक प्रगति कितनी हुई ? हुई या नहीं ? समय-समय पर ऐसी समीक्षा के द्वारा ही इस प्रवृत्ति मार्ग में निवृत्ति मार्ग जैसी भावभूमि और अंतःकरण विकसित किये जा सकते हैं। इस दिशा में जितनी और जैसी गति होगी उसी हिसाब से मनुष्य लक्ष्य के करीब पहुँचता जायेगा।

इस प्रकार का समन्वयात्मक मार्ग वर्तमान समय की ही अनिवार्यता है, सो बात नहीं। प्राचीनकाल में भी इसकी आवश्यकता अनुभव की गई थी। उपनिषदों में यत्र-तत्र इस बात की झलक-झाँकी मिल जाती है—

ईशोपनिषद् में स्पष्ट उल्लेख है—

अंधं तमः प्रविशति ये अविद्यामुपासते।

ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रतः॥

अर्थात्—जो केवल अविद्या अर्थात् संसार की ही उपासना करते हैं, वे अंध तमस् में प्रवेश करते हैं और

उससे भी अधिक अंधकार में वे प्रवेश करते हैं, जो केवल ब्रह्मचर्या में निरत रहते हैं। अन्यत्र कहा गया है—

विद्याज्याविद्याज्य यस्तद्वेदोभयं सह ।

अविद्याया मृत्युं तीर्त्वाविद्यायामृतमश्नुते ॥

अर्थात्—विद्या और अविद्या दोनों को ही जो एकत्र करके जानते हैं, वे अविद्या के द्वारा मृत्यु से उत्तीर्ण होकर विद्या द्वारा अमृत को प्राप्त करते हैं।

श्रुति कहती है—“एव त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।” हे नर ! कर्म करो। कर्म में लिपि न होना पड़े, ऐसा कोई पथ इस संसार में नहीं।

स्पष्ट है, प्राचीन समय में कर्म करते हुए, समाज और संसार में रहते हुए ही ईश्वर-प्राप्ति का सर्वसम्मत मार्ग निर्धारित था, पर साथ ही इस बात की भी कड़ी चेतावनी थी कि संसार को साध्य न मान लिया जाय। साध्य तक पहुँचने का यह साधन मात्र है। इसका उपयोग और उपभोग तो हो, पर लक्ष्य प्राप्ति के निमित्त। ऐसा आज भी संभव है। यदि ऋषि निर्दिष्ट “तेन त्यक्तेन धुञ्जीथा” के आदर्श को अपनाया और जीवन में उतारा जा सके, तो इन दिनों की विषमताजन्य विष-व्रण को न सिर्फ मिटाया जा सकना सम्भव है, वरन् स्थिर शांति और सुव्यवस्था को भी प्रतिष्ठापित करना शक्य है।

ऋषियों ने इस भूमा के सुर में ही समाज के सभी बाँधने की चेष्टा की थी। समाज को इन मर्यादाओं में बाँधकर फिर मनुष्य को ब्रह्म-उपलब्धि कराने का प्रयास किया था। शरीर को अशम बताकर उसे पीड़ा देना नहीं चाहा, समाज को कलुषित कहकर उसका परित्याग करना नहीं चाहा, जीवन को अनित्य घोषित करके उसकी अवज्ञा करना नहीं सिखाया। उसने सब कुछ को ही ब्रह्म के द्वारा अखण्ड-परिपूर्ण करना चाहा था। इसके लिए चार आश्रमों की विशिष्ट व्यवस्था थी। प्रथमावस्था में गलाई और ढलाई की क्रिया सम्पन्न होती, ताकि उसमें भावी व्यक्तित्व की मजबूत इमारत खड़ी की जा सके। श्रद्धा, संयम, शिक्षा और ब्रह्मचर्य के द्वारा इसका संपादन होता। द्वितीय चरण में गृहस्थ की जिम्मेदारियों को निबाहते हुए परिवार और समाज की सुव्यवस्था में योगदान करना पड़ता। इसी में अग्रिम भूमिका की पृष्ठभूमि विनिर्मित होने लगती है। तृतीय चरण अर्थात् वानप्रस्थ में द्वितीय भूमिका का ही विराट् विस्तार हो जाता और जो कर्तव्य पहले घर-परिवार तक सीमित थे, वह अपरिमित बनकर कार्यक्षेत्र पूरी पृथ्वी हो जाता। इसी अवस्था में “वसुधैव कुटुम्बकम्” की भावना विकसित होती और व्यक्ति समस्त संसार को अपना वृहत्तर परिवार और यहाँ के निवासियों को भगवान की साकार प्रतिमा मानकर उनकी सेवा करता।

इस प्रकार विराट् ब्रह्म की सेवा करते-करते वह 'जीवन मुक्ति' की चतुर्थ और अंतिम अवस्था संन्यास में अवस्थान करता।

पूर्णता प्राप्ति के यहाँ चार क्रमिक सोपान थे, पर अब जबकि समाज और संसार के साथ-साथ संपूर्ण नियम, मर्यादाओं की ही अवहेलना करने पर मनुष्य उतारू हो गया है, तो देखना यह है कि उसकी मुक्ति किस हद तक कितनी जल्दी हो सकेगी। आज सात्विकता के सुनिश्चित राजमार्ग को हम भूल चुके हैं। राजसिकता का ऐश्वर्य भी हमारे लिए दुर्लभ हो गया है। अभी तो हम केवल तामसिकता के छीना-झपटी वाले पतनोन्मुख पथ पर बढ़ते चले जा रहे हैं। ऐसे में हमारे प्राचीन आदर्श मात्र कहने भर के सिद्धान्त बनकर रह गये हैं। सरोवर की पूर्णता किसी समय चाहे कितनी ही सुगम्भीर क्यों न रही हो, शुष्क अवस्था में उसकी रिक्तता का गड्ढा भी उतना ही बड़ा कहलायेगा। हमारी स्थिति भी संप्रति लगभग ऐसी ही है। इन दिनों मैत्रेयी की तरह "येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम् ?"—"जब इनसे हमारी सद्गति नहीं हो सकती, तो इन्हें लेकर मैं क्या करूँगी ?" कहने और करने वाले दुनिया में कुछ गिने-चुने लोग ही दिखाई पड़ते हैं। अधिकांश तो "ऋणं कृत्वा घृतं पीबत" वाला निम्न आदर्श ही चरितार्थ करते देखे जाते हैं। यह स्थिति तब तक बनी ही रहेगी, जब तक हम पूर्णता को संसार के बाहर के वैराग्य एवं वस्तुओं में तलाशते रहेंगे। मुक्ति कहीं बाहर नहीं, वरन् वह अपने ही अन्दर की एक विशेष अवस्था है। इसको समाज में रहते हुए ही विकसित करना पड़ता है, तभी जीते जी उस अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है, जिसे स्वर्ग, सद्गति, शांति कहकर पुकारा गया है।

समर्थ सत्ता को देखें, सुनें, प्राप्त करें

न्यूरोसाइक्रोटिक संस्थान कैलीफोर्निया के डाइरेक्टर प्रो० क्रेग को नियेशन नाम की एक ऐसी महिला की जानकारी मिली, जिसके बारे में यह कहा जाता था कि वह किसी भी अज्ञात व्यक्ति की कोई भी वस्तु स्पर्श करके उसके सम्बन्ध में गोपनीय से गोपनीय बातें बता देती है न केवल अतीत अपितु वर्तमान और भविष्य सम्बन्धी उनके उद्घोष सर्वथा सत्य पाये गये। विज्ञान ने दूर से दूर स्थान से शीघ्रतम सन्देश के टेलीफोन, बेतार के तार माइक्रोवेव यन्त्र बनाये तो हैं, ऐसे यन्त्र भी बने हैं, जो ऋतु और उसमें परिवर्तनों की कुछ भविष्यवाणी भी कर सकते हैं। किन्तु संसार के अरबों व्यक्तियों में से किसी भी एक व्यक्ति के अज्ञात, विश्वसनीय और गोपनीय भूत व भविष्य का सत्य उल्लेख विज्ञान के लिये

एक चुनौती है इसका अर्थ तो स्पष्टतः आइन्स्टीन के सापेक्षवाद सिद्धान्त के उस तत्व की खोज होनी है जिसके बारे में उन्होंने यह कहा था, कि यदि कोई वस्तु प्रकाश की गति से भी अधिक वेग ले सकती हो तो उसे अपने स्थान से चलकर ब्रह्माण्ड की परिक्रमा लगा आने में ऋण-समय लगेगा अर्थात् यदि वह अपने स्थान से २१ नवम्बर, १९९५ को चलती है तो ब्रह्माण्ड का चक्कर लगाकर वह २० नवम्बर, १९९५ को ही उसी स्थान पर आ जायेगी। यह स्पष्टतः आत्मा या परमात्मा की ही विशेषता हो सकती है अतएव प्रो० क्रेग ने घटना की विस्तृत शोध का निश्चय किया।

उन्होंने श्रीमती नियेशन को एक बन्द कमरे में रखा और एक उनके सर्वथा अजनबी व्यक्ति की एक वस्तु दी। उस वस्तु को हाथ में लेते ही उन्होंने उस व्यक्ति का न केवल नाक-नक्शा अपितु उसके पूर्व जीवन की अनेक घटनाएँ यों कह सुनाई, मानो वे चलचित्र में सब देख रही हैं। कु० एडम नामक एक अन्य लड़की की अतीन्द्रिय क्षमता के बारे में भी प्रो० क्रेग ने लिखा है कि वह सूँघकर टेलीफोन पकड़कर दूरवर्ती वस्तुओं को ऐसे बता देती थी मानो वह सामने पड़ी पुस्तक पढ़ रही हो।

इन घटनाओं का उल्लेख करने के बाद प्रो० क्रेग ने लिखा—परामनोविज्ञान ने (१) दूरानुभूति (२) क्लेसर वापेन्स (३) दूरदृष्टि (४) विचार संचालन (टेलीपैथी) सम्बन्धी अन्य घटनाओं की प्रामाणिक खोजें की हैं उनसे मनुष्य की विलक्षण अतीन्द्रिय क्षमता का पता चलता है कि घटनाओं को इनमें से किसी भी कोटि में नहीं रखा जा सकता। यदि कोई ऐसी शक्ति जो भूत, भविष्य को एक ही बिन्दु पर देख सकती हो वह शक्ति आत्मा की या परमसत्ता ही हो सकती है विज्ञान उसे झुठला नहीं सकता।

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो० फर्नीनड वान न्यूट्राइटर को उनके एक सहयोगी ने बताया कि ल्यूथिनियन लड़का किसी भी भाषा का कितना ही बड़ा वाक्य गद्य अथवा पद्य आप कहें, बच्चा उसी भाषा में अर्द्ध विराम, पूर्ण विराम सहित दोहरा देता है, यही नहीं आप बोलना प्रारम्भ करें तो वह स्वयं भी वही शब्द, उसी मोड़ और लचक के साथ इस तरह शब्द से शब्द मिलाकर, बोलता चला जाता है मानो उसे स्वयं ही वह पाठ कंठस्थ हो। प्रो० फर्नीनड ने कहा—सम्भव है वह होठों की हरकत से उच्चारण पहचानने में सिद्धहस्त हो सो उन्होंने स्वयं जाँच करने का निश्चय किया। उन्होंने उस बच्चे को एक कमरे में और दूसरे व्यक्ति को दूसरे कमरे में बैठाकर उसे कई भाषाएँ बदल-बदल कर लगातार बोलने को कहा दोनों

कमरों से माइक एक सामने के कमरे में लाकर रखे गये जिसमें डा० फर्नान्ड स्वयं बैठे, प्रयोग प्रारम्भ हुआ तो वस्तुतः आश्चर्यचकित रह गये कि लड़का एक दो भाषाओं का तो ज्ञाता हो सकता है पर वह तो किसी को भी लाकर खड़ा करने से उसकी की भाषा दोहरा देता था इसका अर्थ यह हुआ कि बिना पढ़े हर विद्या में निष्णात होना। ऐसा किसी भी पार्थिव या भौतिक सिद्धान्त से सम्भव नहीं। उन्होंने माना कि स्थूल शरीर की अपेक्षा सूक्ष्म की शक्तियाँ और क्षमतायें अधिक अलौकिक हैं जो भौतिकी, बायोलॉजी सबसे परे। इन साक्षियों में तो उस तत्व का मृत्यु के उपरान्त भी जीवित बने रहना सम्भव है क्योंकि किसी भी भूत की जानकारी का अर्थ ज्ञाता की उपस्थिति अनिवार्य है। अभी तक इन बातों को इमेजिनरी (काल्पनिक) मानता था किन्तु अब उनकी वास्तविकता पर कतई सन्देह नहीं रहा।

जीवशास्त्री कैरिंग्टन ने लिखा है जब तक मैं इस घटना से दूर था तब तक धर्म और अध्यात्म के प्रति मेरी मान्यतायें बड़ी निजीव और निर्बल थीं किन्तु (उक्त घटना का उल्लेख) जब मैं अपनी प्रयोगशाला से लौट रहा था, मुझे एकाएक सामने से आता हुआ मेरा मित्र इलियट दिखाई दिया, मैं सहमा, आँखें मलीं कि कहीं भ्रम तो नहीं हो रहा। इलियट की मृत्यु हुये ३ माह हो चुके थे मैं उसकी शव यात्रा में स्वयं रहा हूँ और इन्हीं आँखों से दफन होता देखा है कि फिर इलियट यहाँ, वैज्ञानिक के नाते मैं भ्रम पर ही विश्वास कर रहा था मुझे डर नहीं थातभी क्षीण से आवाज सुनाई दी—“मित्र ! मेरी पत्नी आर्थिक तंगी का जीवन जी रही है। मैंने उसके लिए एक लाख डालर जोड़कर अमुक तहखाने में रखे हैं, जिसकी चाबी गुप्त रूप से अमुक स्थान पर छिपी है वह आप उसे चुपचाप बता दें आप से अधिक विश्वासपात्र कोई और नहीं इसीलिए यह बात आप तक पहुँचा रहा हूँ।” इन्हीं शब्दों के साथ ऐसा लगा जैसे पानी में पड़ने वाला नंगा प्रतिबिम्ब लहर आ जाने से हौले-हौले ओझल हो रहा हो, मैंने उस सूक्ष्म अस्तित्व को अनुभव किया, सुना, स्पर्श किया और वह मेरे सामने ही घुल गया (मेल्टेड) इसे भ्रम (इलूजन) भी मान लेता पर उन कही हुई बातों की सत्यता पर अविश्वास करूँ, तो अपने आपसे धोखा होगा। लगता है इससे प्राणिशास्त्र में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है। पदार्थ का शक्ति और शक्ति का पदार्थ में इच्छाभूत परिवर्तन व पंजीकरण की इस घटना से तो यही लगता है कि अतीन्द्रिय तत्व बहुत अधिक समर्थ है। इससे मरणोत्तर जीवन तो प्रमाणित होता ही है। नैतिकता का धर्म सम्मत सिद्धान्त पुष्ट होता है। आज भौतिकता की

बाढ़ आ गई है। उसने नैतिकता को मानवीय दुर्बलता माना है, पर अब यह लगता है कि मनुष्य की मनुष्यता नीति, सदाचार और उसकी परमार्थ-परायणता आदि शाश्वत महत्व रखते हैं। इनको व्यावहारिक और सामयिक लाभ समाज की सुख, शान्ति और व्यवस्था के रूप में गौण है। पारलौकिक जीवन में उनका मूल्य और महत्व और अधिक सिद्ध होता है।

कैप्टान में एक बिल्डिंग इन्जीनियर वानवान्डे के बारे में कहा जाता है कि समय उनकी इच्छा से चलता है, ज्ञात नहीं रहस्य क्या है किन्तु वे सोने जा रहे हों और आप कहें महोदय आप ८ बजे सो रहे हैं पर जगिये आप ठीक बारह बजे सात मिनट उनसठ सैकिण्ड पर और आप घड़ी लेकर बैठ जाइये क्या मजाल कि उनकी नींद एक भी सैकिण्ड आगे पीछे टूटे। परीक्षण के लिए उन्हें कई दिनों तक किसी से न तो मिलने दिया गया, उनकी घड़ी भी छीन ली गई। एक टूटी घड़ी रखकर उसकी चाबी घुमाकर ८ बजे का समय लगा दिया गया और प्रातःकाल ८ बजे सोने को कहा गया और सांयकाल ८ बजे जगने का आग्रह किया गया और तब भी जब उनकी नींद टूटी तो लोग आश्चर्यचकित रह गये कि ठीक ८ ही बजे थे।

बिना किसी संकेत और वह भी सुषुप्त अवस्था में समय का ज्ञान इस बात का प्रमाण है कि उस स्थिति में भी घटनाएँ चलती रहती हैं क्योंकि समय कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं वह घटनाओं का सापेक्ष माप मात्र है।

डॉ० केमिले फ्लेमरियन लिखते हैं बिना इन्द्रिय सहयोग दूर से कार्य करने की क्षमता से ओत-प्रोत होना आश्चर्यजनक बात है। यह नहीं छिपाना चाहिये कि उपरोक्त प्रकार की घटनायें अज्ञात लोक में प्रवेश करती हैं, इस सन्दर्भ में और विस्तृत जानकारीयों की अपेक्षा है ताकि आत्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व एवं उसकी अलौकिक क्षमताओं की ओर भी अधिक सार्थक जानकारीयें उपलब्ध हो सकें।

श्रद्धा और विश्वास के द्वारा आत्मा और परमात्मा की अनुभूति किन्हीं संस्कारवान् आत्माओं को पूर्व जन्मों में की गई साधनाओं के पुण्य स्वरूप हो सकती है किन्तु सर्वसाधारण उसका लाभ नहीं ले सकता इसलिये भारतीय तत्त्वदर्शियों ने उस क्रिया विज्ञान की खोज की जिसे “योग साधना” कहते हैं। भले ही आत्म-सत्ता अशरीरी, अतीन्द्रिय, चैतन्य मन से भी परे हो पर अन्ततः वह अपने भौतिक शरीर में भी तो निवास करती है। दूर के देव-दर्शन दुर्लभ हो सकते हैं किन्तु अपने ही भीतर बैठे अधिदेव की प्राप्ति असम्भव कैसे हो सकती है ? ध्यान, धारणा, प्रत्याहार, प्राणायाम, मनोलय आदि यौगिक

क्रियाओं से क्रमशः शरीर की चंचलता पर विजय, मन की एकाग्रता, प्राणों पर नियन्त्रण करते हुये अपना अहंकार उसी तत्व में घुल जाता है और “तत्त्वमसि” अर्थात् जो तत्व वह है वही “मैं हूँ” के रूप में विकसित हो जाता है।

भौतिकीय चेतना से परे चेतना के अस्तित्व को इन वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है और माना है कि वह सर्वसमर्थ सत्ता है। दूरदर्शन, दूर अनुभूति, विचार संचालन जैसी सामर्थ्य उसके नन्हें-नन्हें खेल हैं। वह इन सबसे भी अधिक अति समर्थ एवं सर्वव्यापी चेतना है। उसे देखें, सुनें और उसी को प्राप्त कर अपनी क्षुद्रता मिटाये यही मनुष्य जीवन का ध्येय है उसे प्राप्त करने में ही उसकी सार्थकता है।

आत्मा में परमात्मा की निकटतम अनुभूति

ईश्वर ज्ञान की वस्तु नहीं है, इसलिये वैज्ञानिक उस सम्बन्ध में कोई निश्चित विचार देने से हिचकिचाते हैं तो भी वह इस बात को मानते हैं कि संसार में एक कोई ऐसी वस्तु अवश्य है, जिससे निकलकर ही यह त्रिविधतापूर्ण संसार आया। निर्माण-कर्ता और पालनकर्ता के रूप में विज्ञान भगवान् को नहीं देखता। १७वीं शताब्दी ईश्वर के अस्तित्व की मान्यता का सबसे बुरा युग था, क्योंकि इस शताब्दी के अधिकांश वैज्ञानिकों ने तो यही माना कि ईश्वर की कल्पना भ्रामक है। जे० बी० एस० हाल्डेन ने पाश्चात्यों के ईश्वर विश्वास का खण्डन करते हुए बताया—“जब मैं कोई प्रयोग करने बैठता हूँ, तब मैं विचार करता हूँ कि कोई ईश्वर अथवा देवदूत अपने क्रियाकलापों द्वारा मुझको बाधा नहीं डाल रहे, इसलिये मैं कह सकता हूँ कि ऐसी कोई सत्ता नहीं है, जिसे ईश्वर कहा जा सके।

बरनाल ने भी ऐसी विचारधारा व्यक्त की और सन्देह व्यक्त किया—“ईश्वर का कार्य या दायित्व रौल वस्तुवादी संसार में भी धीरे-धीरे क्षीण होता जा रहा है, भौतिक-शास्त्र में ईश्वर की आवश्यकता केवल विश्व की उत्पत्ति व्यक्त करने के लिये तो हो भी सकती है।”

न्यूटन ने इस स्थिति को न सम्भाला होता तो सम्भवतः आज ईश्वर के सम्बन्ध में थोड़ी-सी मान्यतायें शिक्षित वर्ग में बनी हुई हैं, वह भी समाप्त हो जातीं। न्यूटन ने कहा—“सृष्टि के उत्पादन में जो एक सिद्धान्त और क्रम है, उसे न तो विज्ञान बिगाड़ सकता है, न ही उस पर शासन या निर्माण थोप सकता है। इसलिये हम एक ऐसी सत्ता से इन्कार नहीं कर सकते जिसको ईश्वर कहा जा सके।”

इस प्रकार विज्ञान भी एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमें ईश्वरीय अस्तित्व के सम्बन्ध में शंकायें भी हैं और धारणायें भी। तथापि सभी बड़े वैज्ञानिकों का विश्वास ईश्वरवादी रहा है। पिछले दिनों आइन्स्टीन सबसे बड़े वैज्ञानिक होकर चुके हैं, उनसे जब इस सम्बन्ध में अपनी सम्मति देने को कहा गया तो उन्होंने बताया—“संसार के सम्पूर्ण उच्च वैज्ञानिक कार्यों में अपराध स्वीकृति, बौद्धिकता और निपुणता का सन्निहित होना यह व्यक्त करता है कि धार्मिक भावनायें गलत नहीं हैं, इसलिये गहन भावनाओं से घिरे हुये इस विश्वास को हमें मानना ही पड़ेगा कि ईश्वर है और वह एक श्रेष्ठ मस्तिष्क है, जो संसार के अनुभवों में स्वयं व्यक्त होता है।”

गैलीलियो का कथन है—“प्रकृति की वृहद् पुस्तकें गणित की भाषा में लिखी हुई हैं, उसे कोई बुद्धि ही लिख सकती है, इसलिये हम भगवान् को बुद्धि या विचार कह सकते हैं।” ईश्वर सदैव रेखागणित कर रहा है (गॉड इज आलवेज ड्रिंग ज्योमेट्री) यह मान्यता प्लूटो की है। इसी प्रकार एडिंग्टन ने भी बौद्धिक सूक्ष्म दर्शन को ईश्वरीय अस्तित्व के रूप में प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है।

संसार में बुराइयों, कष्टों की विद्यमानता कभी-कभी ईश्वर की सत्यता पर शंका उत्पन्न करती है कि किस प्रकार ईश्वर निर्दयता, अन्याय और युद्ध की अनुमति देता है। अन्यथा विश्व के सभी धर्म और महापुरुषों ने ईश्वरीय सत्ता को माना और उसकी सर्वशक्तिमत्ता, सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता, सर्वन्याय प्रियता, करुणाशीलता, सुरक्षा-शक्ति पर विश्वास किया है।

महापुरुषों के रूप में ईश्वर की प्रामाणिकता का प्रयत्न भी प्रायः सभी धर्मों में किया गया है। किसी-किसी धर्म में वह पैगम्बर या फरिश्ते के रूप में प्रकट होता है, किसी-किसी में अवतार के रूप में। पर ईश्वर की सत्यता के बारे में संसार के सभी धर्म एकमत हैं। किसी ने उसे न्यायकारी गुणवाचक से संबोधित किया और किसी ने उसे धर्म-उद्धारक के रूप में। पर उसका पूर्ण वैज्ञानिक विश्लेषण कोई धर्म नहीं कर सका, ऐसा कि जिसमें संसार की सम्पूर्ण परिस्थितियों में उसे विश्वस्त ठहराया जा सका होता। इसीलिये संसार के सभी धर्म अपनी इस मान्यता पर लड़खड़ाते रहे हैं।

मुसलमानों में से अनेक ऐसे हुए हैं, जिन्होंने अल्लाह की सत्ता को प्रवंचना कहा। अनेक कैथोलिकों ने ईसा को भगवान् मानने से इन्कार किया, ‘प्रोटेस्टैंट’ मत उसीका परिणाम था। अवतारवाद का झगड़ा हिन्दू-धर्म में भी कम नहीं है। वे राम, कृष्ण, बुद्ध, शंकर आदि को

ईश्वर के रूप में मानते हैं, जैन तीर्थंकरों के रूप में, तो सिख गुरुओं के रूप में। अनेक प्रकार के ईश्वरों का अस्तित्व ही इस संसार को भ्रमित करता है। प्रत्यक्ष प्रमाणों द्वारा उसे सिद्ध करना वैसे ही कठिन था। जब धर्मों में भी प्रतिद्वन्द्विता दिखाई दी तो तर्कवादी लोगों का उस मान्यता से फिसलना स्वाभाविक ही था।

इस स्थिति में वेदान्त ही एक मात्र ऐसा धर्म है, जिसकी ईश्वरीय व्याख्या को पूर्ण शुद्ध और बुद्धि-संगत कहा जा सकता है। सम्पूर्ण मीमांसा पढ़ने के बाद किसी के भी मन में तर्क या सन्देह नहीं रह जाता है। क्योंकि वह व्याख्यायें विज्ञान के आधार-भूत सिद्धान्तों को लेकर चली हैं और उनमें सम्पूर्ण दार्शनिक एवं लौकिक परिस्थितियों का विवेचन भी आ जाता है।

वेदान्त ईश्वरीय सत्ता की अनुभूति के लिये सबसे पास से अपने आपसे चलने को कहता है। हम शरीर की स्थूलता में भी गुण हैं और गुणों को अपने शरीर से अधिक महत्त्व देते हैं। आत्म-तुष्टि के लिये माता-पिता अपनी प्रिय वस्तुयें अपने बच्चों को दे देते हैं, जबकि उसका उपभोग करने से उन्हें सुख मिल सकता था। शरीर की आकांक्षा को मन की आकांक्षा से निम्नतर मानने के साथ ही संसार में दो तत्वों की विलगता का स्पष्ट आभास हो जाता है, एक को चेतन और दूसरे को जड़ कहते हैं। जड़ एक देशीय पदार्थ है और चेतन सर्वव्यापी। यहीं से ईश्वर के सिद्धान्त का तात्त्विक विकास वेदान्त ने प्रारम्भ किया है।

ईश्वर साकार है या सशरीर है, यह एक तथ्य नहीं अपितु कल्पना मात्र है और चूँकि मृत्यु का प्रभाव उस पर पड़ता है, जिसके शरीर है किन्तु जब हम इस विश्वास को पुष्ट कर लेते हैं कि हमारी चेतना का अन्त नहीं होता, हम विश्वात्मा या परमात्मा के बिल्कुल अनुरूप हैं तो मृत्यु भी इस विचार के सामने शक्ति और सामर्थ्य-विहीन हो जाती है। यह एक कल्पना मात्र नहीं वरन् सत्य भी है कि शरीर ही मरता है, अहंभाव या अपना मन, अपनी चेतना का नाश नहीं होता, वह एक अविनाशी तत्व है। हम जब स्वप्न की अवस्था में होते हैं, तब भी हमारी क्रियायें शरीरधारी जैसी ही होती हैं, वैसे ही संवेगों से हम प्रभावित होते रहते हैं, वैसे ही दुःख-सुख हमारे अनुभव में आता है। इसलिये उस स्थिति में भी हम जीवन से बँधे होते हैं, ऐसा कहना कोई निराधार कल्पना नहीं है।

दुःख और सुख इन दोनों से जब हम अपने आपको रहित मानने लगते हैं और इस विश्वास को अन्तिम स्थिति तक सिद्ध कर लेते हैं कि हमारे लिये

संसार में मोह-माया की भ्रान्ति कुछ है ही नहीं, न यहाँ कोई अपना है, न हम किसी के हैं, सब चेतना ही अपनी इच्छा से बनती-बिगड़ती रहती है, तब हमारे सामने उसका तात्त्विक रूप प्रकट होता है और हम अपने आपको मुक्त अनुभव करने लगते हैं।

कथक उपनिषद् में कहा है—

हम ब्रह्म हैं और मृत्यु हमारे लिये एक खाद्य है, (१।२।२५) छांदोग्य (६-८-७) में उसे ही 'तत्त्वमसि' तू वही है—कहा है। वृहदारण्यक (२।४।४।५) अहं ब्रह्मास्मि 'मैं ही ब्रह्म हूँ', एतरेय उपनिषद् (३।१।३) शुद्ध ज्ञान ही ब्रह्म है, वृहदारण्यक ४।४।५ में अयमात्मा ब्रह्म—यह आत्मा ही ब्रह्म है। इसी उपनिषद् के ४।४।९ मंत्र में कहा है कि यहाँ इस संसार में कुछ भी बहुतायत नहीं है और यथार्थ ही संसार के प्राणियों में जो गुण बँटते हैं अर्थात् इच्छाओं, आकांक्षाओं को यदि निकालकर मानसिक चेतना का विश्लेषण किया जाय तो ऐसा समझ में आ जाता है, चेतना एक अगाध सिन्धु की तरह है और मनुष्य उसमें से इच्छाओं की लहरों की तरह है। 'अहं ब्रह्मास्मि' इच्छाओं और वासनाओं से ग्रस्त मानसिक स्थिति को नहीं कहा गया तो उस सबसे परमपद में अर्थात् विश्व चेतना तादात्म्य की स्थिति होती है, जिसमें न तो किसी प्रकार का राग होता है और न द्वेष, वह कर्म भी करता है और किसी से आसक्त भी नहीं होता इसीलिये सर्व न्यायकारी है। उसमें व्यक्ति के गुणों का समावेश हो गया है, वह गुण है, प्रेम, दया, करुणा, उदारता, पर वही वह स्वयं इन गुणों से प्रभावित नहीं होता अर्थात् उनसे अलग नहीं है, शुद्ध चेतन अवस्था में वह यह गुणों की ही संज्ञा मात्र है, भाव मात्र है। इस बात को 'बर्कले' ने भी स्वीकार किया था और कहता था—“सारे जगत् के पदार्थ मानसिक संवेदना ही हैं।” माण्डूक्यकारिका २।१९ में उसे ही 'क एतान्बुध्यते भेदान्को वै तेषां विकल्पकः ?' अर्थात् कौन इस भिन्न-भिन्न विश्व में दिखाई देने वाले पदार्थों का दृष्टा और कौन इनकी कल्पना करता है ?

इसी अवस्था में वेदान्त ने मन का तादात्म्य ब्रह्म से कराने का यत्न किया है। शास्त्रों में स्थूल अन्न की सात अवस्थायें कही हैं—अन्न से रस बनता है, रस से रक्त, रक्त से माँस, माँस से मज्जा, मेदा, अस्थि और वीर्य बनता है। वीर्य अन्न की सूक्ष्म अवस्था है और शरीर में व्याप्त है पर किसी एक स्थान को काटकर उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता है। वह मन्थन से ही दिखाई देता है। वीर्य ही अन्तःकरण चतुष्टय, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के रूप में सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होता चला गया है। यह क्रमशः इच्छा, आवेग और भावनाओं की गहराइयाँ

हैं, जो अन्त में जाकर एक ही विश्व चेतना—अहंकार में ढल जाती हैं।

पैगल उपनिषद् में इस बात को और स्पष्ट कर दिया है कि चूँकि अहंभाव प्रत्येक क्षुद्र प्राणी में होता है, इसलिये शास्त्र की उक्त मान्यताओं को लेकर ही कोई अपने को ब्रह्म न कहने लगे। बहुत से पाखण्डी और दम्भी लोग ऐसा करते भी हैं, इसीलिये वेदान्त ने पहले ही स्पष्ट कर दिया कि—“हृदय को निर्मल करके और अनामय ब्रह्म का चिन्तन करके यह अनुभव करना चाहिये कि मैं ही सर्वरूप ब्रह्म हूँ, मैं ही परम सुख रूप हूँ। जल में जल डालने से, दूध में दूध डालने और घी में घी मिला देने से वे एकरूप हो जाते हैं। उसी प्रकार परमात्मा के मिल जाने पर उनमें कोई अन्तर नहीं रह जाता। जब इस तरह ज्ञान द्वारा देहाभिमान नष्ट हो जाता है और बुद्धि अखण्डाकार हो जाती है। कर्मों में कोई आसक्ति नहीं रह जाती, मोह और वासनायें जलकर नष्ट हो जाते हैं, तभी अद्वैत ब्रह्म की प्राप्ति होती है।”

इस स्थिति में मनुष्य पृथ्वी पर ही निवास करता हुआ भी उससे भिन्न रहता है, उसका नियन्त्रण भी करता है। उत्पत्ति, रक्षा और विनाश इसी प्रकृति के स्पष्ट गुण हैं, वह अच्छाई और बुराई से परे तत्त्व रूप मात्र है। यह कल्पना और वैज्ञानिक शोध केवल वेदान्त ही संसार को दे सका है और इन तथ्यों का जितना अधिक चिन्तन, मनन और धारण किया जाता है, ईश्वरीय सत्ता का बोध उतना ही निर्मल होता चला जाता है। उसके लिये न तो मनुष्य को कहीं अलग जाने की आवश्यकता है और न कुछ और अध्ययन की। गीता के ९वें अध्याय में इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए भगवान् कृष्ण ने कहा था—

मया ततमिदं सर्वं जगद व्यक्तभूतिना ।

मत्स्यानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ट्ववास्थितः ॥४॥

सर्वभूतानि कौंतेय प्रकृति यान्ति मायिकाम् ।

कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥७॥

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।

हेतुं नानेन कौंतेय जगद्विपरिवर्तते ॥१०॥

हे अर्जुन ! मैंने (विश्व-चेतना) अपने अव्यक्त स्वरूप से इस समग्र जगत् को फैलाया अथवा व्याप्त किया है, परन्तु यह आश्चर्य देख कि मुझमें ही सब सृष्टि सन्निहित है पर मैं उनमें नहीं हूँ, कल्प के अन्त में सब भूत मेरी प्रकृति में आ मिलते हैं और फिर कल्प के आरम्भ में मेरी अध्यक्षता में प्रकृति ही सब चराचर सृष्टि को उत्पन्न करती रहती है।

अदृश्य की इतनी अच्छी शोध किसी धर्म में नहीं हुई। यहाँ उसका विकास भी किया गया है, जीव को ही ब्रह्म रूप में शुद्ध करके उसके सर्वव्यापी, सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान्, शुद्ध, चैतन्य, मुक्त, कर्माध्यक्ष, साक्षी, दृष्टा स्वरूप को प्रमाणित किया है।

आत्मा की परमात्मा से गुहार

आत्मा ने परमात्मा से याचना की “असतो मा सद्गमय”। “तमसो मा ज्योतिर्गमय”। “मृत्योर्मा अमृतं गमय” यह तीनों ही पुकारें ऐसी हैं, जिनमें द्रौपदी और गज की पुकार के समतुल्य समझा जा सकता है। निर्वस्त्र होते समय द्रौपदी ने अपने को असहाय पाकर भगवान् को पुकारा था। गज जब ग्राह के मुख में फँसता ही चला गया, पराक्रम काम न आया, जब जौ भर सूँड़ जल से बाहर रह गई तो उसने भी गुहार मचाई। दोनों को ही समय रहते सहारा मिला। एक की लाज बच गई दूसरे के प्राण बच गये। जीवात्मा की तात्त्विक स्थिति भी ऐसी ही है। उसका संकट इनसे किसी भी प्रकार कम नहीं है।

मोटेतौर पर मनुष्य खाता, सोता, रौब गाँठता और शान दिखाता है। विलास वैभव का यथास्थिति लाभ उठाता है। किन्तु यह सारा संरजाम शरीर तक ही सीमित है और अवस्थित भी है। समय गतिशील है। वह तेजी से बदलता और आगे बढ़ता है। साथ ही उपलब्धियों की अनुभूतियाँ भी भूतकालीन बनती जाती हैं। इसी बीच इच्छाएँ प्रबल हो लेती हैं। पिछली उपलब्धियाँ स्मरण आती रहती हैं और उससे भी अधिक अच्छी स्थिति पाने की ललक उभरती है। लिप्सा जगती है। पिछले दिन जो मिला था, अगले दिन उससे भी अधिक पाने का मनोरथ इस आतुरता से उभरता है कि वर्तमान की स्थिति असंतोष से ही भरी रहती है। जो मिल चुका वह चला गया। जो इच्छित है, उसके मिलने का कोई निश्चय या समय नहीं। इसलिए मृग-तृष्णा स्तर की प्यास से हर घड़ी गला सूखता रहता है। संतोष और चैन का अनुभव हो नहीं पाता, न विगत को वापस बुलाया जा सकता है और न आगत कोई निश्चित आश्वासन ही देता है। इस स्थिति में अशान्त, उद्वेग के अतिरिक्त और कुछ पल्ले नहीं पड़ता।

प्रश्न सहज ही उठता है कि इस स्थिति का कारण क्या है ? जब इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार किया जाता है, तब पता चलता है कि जो असत् था, अस्थिर था, नाशवान था, जाने वाला था, उसे चाहा गया, उसे पकड़ा गया। जो स्थिर था, शाश्वत् था, सनातन था, सत् चित् और आनन्द से ओत-प्रोत था, उसकी ओर से मुँह

मोड़ लिया गया उपेक्षा की गयी और नगण्य समझा गया। इसी भूल का परिणाम है कि भीतर और बाहर से सब प्रकार सम्पन्न होते हुए भी अभावग्रस्तों की तरह, दीन-हीन की तरह, अभागी जिन्दगी जियी गई। सान्त्वना न मिल सकी और न किसी को दी जा सकी।

सत् स्थिर आत्मा है। गुण-कर्म-स्वभाव में सन्निहित नानवी गरिमा ही सत् है। जो सत् को पकड़ता है, अपनाता है और धारण करता है, उसका आनन्द सुरक्षित रहता है। कस्तूरी नाभि में है, यह पता चलने पर हिरन की भगदड़ बन्द हो जाती है और अपनी ही सुवास सूँघते हुए हर घड़ी आनन्द-विभोर रहता है। भीतर से उभरी गरिमा बाह्य जीवन को भी उत्लसित, विकसित, विभूतिवान बना देती है। चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में ऐसी शालीनता भर देती है, जिसका प्रतिफल दसों दिशाओं में अमृत तुल्य अनुदान बरसाता है। आत्मा ने उसी के लिए पुकार की है कि उसे “सत्” की उपलब्धि हो। असत् की ओर आँखें मूँदकर दौड़ने की प्रवृत्ति रुके। शान्ति का सरोवर सामने रहते हुए भी सड़न भरे दल-दल में घुस पड़ने और चीखने-चिल्लाने की आदत पर अंकुश लगे। इतना बन पड़े तो किसी से कुछ माँगना-चाहना न पड़े। अपने अन्तराल से ही आनन्द का ऐसा निझर बहे जो अपने को भी गौरव प्रदान करे और दूसरों की हित साधना करते हुए धन्य बने।

आत्मा की दूसरी पुकार है—“तमसो मां ज्योतिर्गमय”। हे सर्व-शक्तिमान ! हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चला। जो क्रम अपनाया गया है, वह अन्धकार में भटकने के समान है। रात्रि की तमिस्रा में कुछ पता नहीं चलता कि किस दिशा में चल रहे हैं। यथार्थता का बोध न होने से ठोकर खाते और कंटकों की चुभन से मर्माहत होते हैं। कुछ का कुछ समझ में आता है, कुछ का कुछ देख पड़ता है। शरीरगत सुविधाएँ भी लक्ष्य रखती हैं। जड़ का जड़ता के साथ पाला पड़ता है। चेतना का अमृत कुंभ कहाँ रखा है ? इसकी प्रतीति ही नहीं होती। वर्तमान और भविष्य अन्धकारमय दीखता है। वैभव बटोर लेता है, पर वह अंगार बनकर जलता भर है। सदुपयोग न बन पड़ने से उत्तम वस्तु भी घातक और निकृष्ट बन जाती है। मनुष्य जीवन में भरी हुई विभूतियाँ यदि सही रूप में पहचानी और प्रयुक्त की गई होतीं, तो उसका लाभ भी मिला होता। पर अन्धकार में तो सर्वत्र भय ही भय है। मृत्यु का भय, हानि का भय, अपहरण का भय अपनों से भय, बिरानों से भय। अन्धकार का-अज्ञान का, ही दूसरा नाम भय है। भयानकता कितनी डरावनी होती है, इसे हम रोज ही अनुभव करते हैं। प्राप्त करना चाहते हैं पर कुछ के

बदले कुछ हाथ लगता है। अपने बिराने दीखते हैं और बिराने अपने। सुन्दर आकृतियाँ भी अंधेरे में भूत-प्रेत जैसी कुरूप और भयंकर लगती हैं। डर से जीवन भर सा गया है। यह अज्ञान अन्धकार की ही करतूत है। प्रकाश भीतर दबा पड़ा है। ऊपर से बरसता नहीं। इस विपन्नता से घिरी हुई आत्मा अपने सृजेता से पुकारता है—“अन्धकार से प्रकाश की ओर”। “अज्ञान से ज्ञान की ओर ले चल”। भटकव से निकाल और उस राह पर खड़ा कर जिसे अपनाकर सफलतापूर्वक लक्ष्य तक पहुँचा जा सके।

तीसरी पुकार जीवात्मा की है कि मृत्यु की ओर नहीं अमृत की ओर ले चला। कुसंस्कारिता के कषाय-कल्मष सम्पर्क क्षेत्र के प्रचलन, उस ओर घसीट लिए जा रहे हैं, जिस पर मरण ही मरण है। आत्म हनन के उपरान्त जो कुछ हस्तगत होता है, उसे मरण धर्मा ही कहा जा सकता है। आकांक्षाओं की बाढ़ के बहाव में न धैर्य टिक पाता है, न विवेक। जीवन कूड़े-करकट की तरह एक गंदे नाले में बहा जा रहा है। न ही किनारा दीखता है, न ठहराव न आश्रय।

मनुष्य को जीवन रूपी अनुपम सम्पदा विभूतियों से भरी-पूरी मिली है। पर उनमें से किसी को भी जाग्रत जीवन्त करने का अवसर नहीं मिला। जिस संचित पुण्य के आधार पर यह अनुदान मिला था, उसे कौड़ी मोल बेचा, लुटाया और बहाया जा रहा है। यदि बन पड़ा होता तो पंचतत्वों की काया चले जाने के उपरान्त यश शरीर जीवित रहता—अनुकरणीय, अभिनन्दनीय बनता। प्रकाश स्तम्भ की तरह भटकते, टकराते जलयानों को सचेत करता और उनकी विपत्ति टालता। पर ऐसा भी तो कुछ नहीं बन पा रहा है। वासना और तृष्णा के दो पाटों के बीच अपना अस्तित्व पिसता-जा रहा है। अपहरण और शोषण ही रुचिकर लग रहा है। शरीर को, इन्द्रियों को, विचारणा को, भविष्य को, सभी को बर्बाद करने वाली विडम्बना ने चेतना पर आधिपत्य जमाया हुआ है। पत्नी से लेकर संतान तक को ऊँचा उठाने की अपेक्षा नीचे गिराने में ही मोह की पूर्ति होती दिखाई पड़ती है। ऐसी है अपनी अनगढ़ समझ जो अमृत बरबाद करती और विष चाटती है।

हे परमात्मन ! अपनी सत्ता का मरण हो रहा है। मौत एक-एक कदम आगे बढ़ती आ रही है, और अब-तब में दबोचने ही वाली है। इससे पूर्व हम अपने अन्तःकरण को, आनन्द को, भविष्य को निरन्तर मारते-कुचलते रहते हैं। हे परमप्रभु ! इस महामरण से हमें बचा ले और हमें अपनी गोद में बिठाकर अमृत का रसास्वादन करा दे।

परमात्मा को जानने के लिए अपने आपको जानो

सन्त वास्वानी से एक दिन कुछ लोगों ने प्रश्न किया—“भगवान क्या है ?” “भगवान् ज्योतियों की ज्योति है—“मध्यवर्ती सूर्य है” उन्होंने उत्तर दिया। लोगों ने फिर प्रश्न किया—“इस ज्योति से, इस मध्यवर्ती सूर्य से अपना नाता कैसे जोड़ें ?” वास्वानी ने पुनः समझाया—“बस सूर्यमुखी बन जाओ। जैसे सूर्यमुखी सदैव सूर्य के प्रति मुख किये रहता है यद्यपि उसकी देह में अन्य क्रियायें अपनी-अपनी मर्यादा में चलती रहती हैं, जड़ें रस खींचती रहती हैं, पत्तियाँ साँस लेती रहती हैं, हवा में वह हिलता-डुलता रहता है पर उसका सूर्यमुखी नाम इसीलिये पड़ा क्योंकि वह सदैव सूरज की ओर मुख किये रहता है, इसी तरह परमात्मा को पाने के लिये सदैव परमात्मा की ओर मुख किये रहो।

“किन्तु सूर्यमुखी बनें कैसे ? लोगों ने तीसरा प्रश्न किया। उन्होंने उत्तर दिया—“अपने हृदय को तीव्र अभीप्सा से भर लो। एक बार खूब अच्छी तरह निश्चित कर लो कि मनुष्य जीवन का ध्येय अनन्त ऐश्वर्य, सुख-सन्तोष, शान्तिप्रद परमात्मा की प्राप्ति है। जब वह तुम्हारा लक्ष्य बन जायेगा तो भगवान की ओर मुख किये रहोगे और धन्य हो जाओगे।”

ईश्वर प्राप्ति की सच्ची आकांक्षा का होना ही प्रधान बात है, परमात्मा कहीं अन्यत्र नहीं। उसे ढूँढ़ने, प्राप्त करने और पहचानने का प्रयत्न नहीं किया जाता, इसीलिये अधिकांश लोगों के हृदय अन्धकार से भरे हैं। लोगों के भीतर तामस का, रात का, अज्ञान का राज्य है। जब अपने हृदय को ही जीवन का केन्द्र- बिन्दु बना लिया जाता है तो आनन्दस्वरूप परमात्मा का अस्तित्व वहीं झलकने लगता है, उसे ढूँढ़ने के लिये कहीं भागने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

हमारा हृदय हमारी आत्मा के विश्वास का ही अंश है। जिस तरह सूर्य की किरणें सूर्य का अंश है, पर पृथक् दीखती हैं, उसी तरह आत्मा भी परमात्मा का अंश है पर पृथक् दीखता है। अपने को, अपनी गहनतर आत्मा को विश्वात्मा का अंश जान लेना ईश्वर को जान लेना है।

मनुष्य अपने शरीर के बाह्य क्रिया-कलापों की व्यस्तता से कुछ क्षण बचाकर शरीर, भावनायें, मन और बुद्धि इनके परे अपनी चेतना की गहराई में डूब सकता है, यह सभी उसके गुण हैं, विशेषतायें हैं, पर वह स्वयं इनसे परे है। वह इनसे परे जाकर अपने को इनसे भिन्न,

शक्तिशाली और परम तेजस्वी, सर्वदृष्टा, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, विशुद्ध आनन्द-स्वरूप प्रकाश अनुभव कर सकता है।

जिन लोगों ने अपने भीतर ईश्वर की शोध की है वे सब अन्ततः इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। सबने यही बताया है कि मनुष्य चिन्तन के द्वारा मन, बुद्धि और भावनाओं पर ध्यान जमाता हुआ आत्मा के अस्तित्व तक पहुँचता है और इस अनुभव के बाद इस बोध को प्राप्त करता है कि वह परमात्मा जिसमें आत्मा विकसित हो जाती है, आत्माओं से भी परे और सभी में एक ही प्रकार से व्याप्त है

एक गाँव में एक बार नानक का आगमन हुआ। वे कहते थे—ईश्वर सबके अन्दर है। हिन्दू, मुसलमान का कोई भेद नहीं। उस गाँव के नवाब ने उनसे कहा—आपके लिये तो मन्दिर और मस्जिद एक बराबर हैं तो क्या आप आज हमारे साथ मस्जिद में नमाज पढ़ने को तैयार हैं ? नानक ने बहुत आनन्दित होकर कहा—जरूर ! जरूर !! परमात्मा की प्रार्थना में सम्मिलित होने से बड़ा आनन्द और क्या है ?

फिर सब लोग मस्जिद गये और नमाज शुरू हुई। सब लोग नानक की नमाज देखना चाहते थे किन्तु नानक चुपचाप एक कोने में खड़े हो गये और सबको देखने लगे। उनको इस प्रकार खड़ा देखकर नमाजिये बहुत गुस्सा हुए। वे नमाज भी पढ़ते जाते थे और बीच-बीच में नानक की ओर क्रोध से देख भी लेते थे। जल्दी-जल्दी किसी तरह बेचारों ने नमाज पूरी की और सब एकदम नानक पर टूट पड़े। किसी ने उन्हें धोखाबाज कहा, किसी ने वचन तोड़ने वाला। नवाब ने आँखें लाल-पीली करके डाँटा, आपने नमाज क्यों नहीं पढ़ी ? नानक हँसे और बोले आप लोगों ने भी नहीं पढ़ी, इसलिये हमने भी नहीं पढ़ी। आप लोगों का खेल देखता रहा, यदि आप नमाज पढ़ते रहते तो फिर मेरे लिये भी चुपचाप खड़ा रहना कठिन ही हो जाता।

उन नमाजियों की तरह जो लोग ईश्वर प्राप्ति की बात तो करते हैं किन्तु उनकी सारी उलझन जीवन के बाह्य क्रिया-कलापों तक सीमित रहती है इसलिये उनका नानक, (उनका मन) भी आत्मानुभूति में खो नहीं पाता। जिस दिन शरीर और मन की सारी चेष्टायें सिमटकर आत्मा में केन्द्रित हो जाती हैं, अन्धकार उसी दिन दूर हो जाता है और मनुष्य परमात्मा के निकट पहुँचा हुआ अनुभव करने लगता है।

‘मज्झिम निकाय’ में तथागत का एक सुन्दर उपदेश है, वह कहते हैं—कल्पना करो कि किसी मनुष्य के पैर

में विष बुझा तीर चुभ गया है। यदि यह मनुष्य कहे, मैं तब तक तीर नहीं निकलवाऊँगा जब तक मुझे ज्ञात न हो जाये कि तीर चलाने वाले का नाम, कुल और गोत्र क्या था ? वह ऊँचा था या मझले कद का। धनुष कैसा था, प्रत्यंचा कैसी थी, तीर कैसा था ?

लोग परमात्मा के सम्बन्ध में भी ऐसे ही तर्क-वितर्क, वाद-विवाद करते हैं पर अपने हृदय में जीवन के बोझ, दुःख, कठिनाइयों, दैवी आपत्तियों का जो तीर चुभा हुआ है उसे निकालने की ओर किसी का ध्यान नहीं। हमें सर्वप्रथम आत्मा के दर्द को अनुभव करने की आवश्यकता है। बाह्य जीवन के प्रपंचों को छोड़कर अन्तर्मुख होने की बड़ी आवश्यकता है। बाहरी क्रियाओं को केवल सहयोगी मानना चाहिये। वे लक्ष्य सत्य या परमात्मा की प्राप्ति की साधन बनाई जा सकती हैं नहीं, इसलिये अपने शरीर मन और भावनाओं के केन्द्र बिन्दु को बेधने की आवश्यकता है, यह जानने की आवश्यकता नहीं कि कौन-सा तत्व कितना सुखद है ? किस सुख की प्राप्ति के लिये किधर दौड़ना चाहिये ? जब इन सब बातों को साधन बना लिया जाता है तो आवश्यकतायें भी घट जाती हैं और लक्ष्य भी अपने समीप ही स्पष्ट होने लगता है। उसे पाने के लिये न तो लम्बे साधनों के लिये दौड़ना पड़ता है और न घर ही छोड़ना पड़ता है।

उपनिषदों में—आत्मावारे श्रोतव्यो, मन्तव्यो, निदिध्यासितव्यः नान्तोऽस्ति विजानतः—कहकर इसी तथ्य को व्यक्त किया है और बताया है कि विभिन्न साधनों से तुम अपने आपको पहचानो। जिस दिन आत्मशक्ति का विश्वास जाग जाता है उस दिन परमात्मा के अस्तित्व का विश्वास घूमते देर नहीं। विश्वास का जमना उतना ही आनन्ददायक जितना परमात्मा की प्राप्ति।

मनुष्य अपनी छुपी हुई शक्तियों को पहचाने बिना शक्तिशाली नहीं बन सकता। जो जैसा अपने को जानता है या जिसकी जैसी अभीप्सा है वह वैसा ही बन जाता है। अपने को जानना सब सिद्धियों से बड़ी सिद्धि है। लाखों में एक-दो होते हैं जो अपने को जानने का यत्न करते हैं, यत्न करने वालों में भी थोड़े से ऐसे होते हैं जो आत्मा के अस्तित्व को पहचानने के लिये देर तक अपने आपको निर्दिष्ट किये रहते हैं। जिसने भी मनुष्य देह में जन्म लिया है वह आत्मा के समीप पहुँचा दिया गया है, किन्तु थोड़े ही हैं जो उसमें प्रवेश पाते हैं।

शरीर में काम-क्रोध, मोह, सन्तोष, दण्ड, दया आदि अनेकों भावनायें हैं, यह सब या तो आनन्द की प्राप्ति के लिये हैं अथवा आनन्द में विघ्न पैदा होने के

कारण हैं। आनन्द सबका मूल है वैसे ही आनन्द सबका लक्ष्य है। लक्ष्य और उसकी सिद्धि दोनों ही आत्मा में विद्यमान हैं, जो आत्मा को ही लक्ष्य बनाकर आत्मा के ही द्वारा अपने आपको बेधता है वह उसे पाता भी है। आत्मा ही परमात्मा का अंश है, इसलिये आत्मा का ज्ञान हो जाने पर परमात्मा की प्राप्ति अपने आप हो जाती है।

अन्तरात्मा की प्यास और तृप्ति

पौधे खाद-पानी और भूमि की उर्वरता प्राप्त करके ऊँचे उठते हैं। मनुष्य का शरीर भी आहार, व्यायाम और संयम के सहारे परिपुष्ट होता है। दूसरी अगली भूमिका अन्तःचेतना की है। विचारणा एवं भावना उसी क्षेत्र में आती हैं। इस क्षेत्र का विकसित होना और भी अधिक आवश्यक है। यह तत्व शरीरगत स्वर्ण घटकों को देखता है। दुर्बल या रुग्ण रहने पर व्यक्ति अपने और अपने स्वजन सम्बन्धियों के लिए भारभूत हो जाता है। उपार्जन करने की क्षमता गँवा बैठने पर परावलम्बी एवं तिरस्कृत जीवन जीना पड़ता है। इस प्रकार दिन गुजारने वाला व्यक्ति सोचता है यदि उसने आहार, श्रम, और संयम का संतुलन नाप रखा होता तो इस प्रकार की दुर्गति क्यों सहन करनी पड़ती ? मनोभूमि को समुन्नत बनाने के लिए शिक्षा, स्वाध्याय, सत्संग के अतिरिक्त मनन-चिन्तन की भी आवश्यकता पड़ती है। इन्हें व्यक्ति स्वयं भी जुटा सकता है। आवश्यक नहीं कि इस सन्दर्भ में दूसरों की सहायता अनिवार्य ही हो। सदज्ञान स्रोतों की कमी नहीं, उनके साथ सम्बन्ध जोड़ने के लिए उत्सुक व्यक्ति गई—गुजरी स्थितियों में अवसर प्राप्त कर लेते हैं जिनके सहारे वह विज्ञानों की पंक्ति में बैठ सकें, सन्ध और सुसंस्कृत रहना सीखें। शारीरिक स्वास्थ्य के समतुल्य ही मानसिक विकास-परिष्कार की भी अपनी महत्ता है। उपलब्ध उसे भी किया जाना चाहिए।

अन्तःकरण की ऊँचे स्तर वाली तीसरी भूमिका है। उसमें आस्थाएँ विराजती हैं। मान्यताएँ, आकांक्षाएँ, संवेदनाएँ उसी परिकर में रहती हैं। साहस, उत्साह एवं संकल्प जैसे सदगुण उसी क्षेत्र में उभरते हैं। पोषण अन्तःकरण को भी चाहिए। खुराक की वहाँ भी आवश्यकता पड़ती है। विकास के लिए आवश्यक साधन जुटाए बिना काम नहीं चलता।

अन्तःकरण की तीन आवश्यकताएँ हैं। एक प्यार, दूसरा प्रोत्साहन, तीसरा प्रशंसा। इनका सुयोग जितनी मात्रा में मिलता है, मनुष्य उतना ही अधिक आत्मबल अर्जित करता है। उस अर्जन के सहारे उस प्रकार का पुरुषार्थ बन पड़ता है जिसके सहारे महापुरुष स्तर के गुण, कर्म, स्वभाव से सुसम्पन्न बना जा सके। इसी को व्यक्तित्व की

वरीयता कहते हैं। शालीनता और प्रतिभा इसी आधार पर हस्तगत होती है। इनके होने पर अपने लिए आप प्रगति का मार्ग ढूँढ़ निकाला जा सकता है। मार्ग के अवरोधों को निरस्त कर सकना इसी वर्चस्व के आधार पर बन पड़ता है। जो इन विभूतियों से वंचित हैं उन्हें गई-गुजरी, अनगढ़ स्थिति में पड़े रहने का दुर्भाग्य ही सहना पड़ता है।

मनुष्य भीतर से उठता है। वृक्ष का विकास जड़ों की गहराई पर निर्भर रहता है। छोटे पौधों को बाहरी खाद पानी चाहिए पर बड़े वृक्ष अपनी जड़ें गहराई में प्रवेश करके स्वावलम्बी बन जाते हैं। उन्हें गहरी जड़ें ही आवश्यक पोषण प्रदान करती रहती हैं। जड़ें वह दृढ़ता भी प्रदान करती हैं जिनके सहारे ग्रीष्म ऋतु को सहन कर सके और आँधी-तूफानों के बीच भी तनकर खड़े रह सकें।

मानवी सत्ता का वास्तविक उद्गम उसका अन्तराल ही है। मन, मस्तिष्क और काय-क्लेवर उसके आवरण मात्र हैं। आवरणों को स्वच्छ, सुन्दर होना भी आवश्यक है। उनसे भी शोभा-सज्जा की आवश्यकता पूरी होती है, किन्तु जिस आधार पर किसी का मूल्यांकन किया जाता है, वह उसका अन्तराल ही है। इसी के बलबूते उच्चस्तरीय सफलताएँ प्राप्त होती हैं।

कहा जा चुका है कि अन्तराल को विकसित करने के लिए तीन आधार चाहिए। प्यार, प्रोत्साहन, प्रशंसा। यह तीनों ही ऐसे प्रतीत होते हैं, जो बाहर कहीं से उपलब्ध होने चाहिए। कोई प्यार करने वाला होना चाहिए। प्रोत्साहन दे सकने वाले मनस्वीजनों का सहयोग मिलना चाहिए, साथ ही ऐसे शुभ-चिन्तक भी होने चाहिए जो सद्गुणों की, सफलताओं की प्रशंसा करते रहें और मनोबल बढ़ाते रहें। अन्तराल को इन्हीं की प्यास रहती है। वह जिसकी जितनी मात्रा में पूरी होती रहती है उसे अपना पौरुष, पराक्रम दिखाने में उतनी ही सफलता मिलती है।

जिन्हें इनकी उपलब्धि स्वाभाविक रूप से नहीं मिल पाती, वे उन्हें खरीदकर जुटाने का प्रयत्न करते हैं। प्यार की प्यास बुझाने वैश्यालयों के चक्कर काटते हैं। प्रोत्साहन के लिए दरबारियों की ऐसी भीड़ जुटाते हैं, जो मित्र प्रशंसक जैसा दीख पड़ें। प्रशंसा खरीदना तो और भी अधिक सस्ता है। पुराने जमाने में इसके लिये चारणों को मोटी रकम दी जाती थी। वे प्रशंसा के पुल बाँधने वाले गीत लिखा करते थे और उन्हें उत्तेजक ढंग से राज-दरबार में सुनाया करते थे। अब यह कार्य प्रेस के माध्यम से कराया जा सकता है। समारोह प्रवचनों में

माइक, रिकार्ड बजाने, साधियों से पहचान कराने पर भी यह कार्य बन पड़ता है। विज्ञापन माल-असबाव को बेचने के लिए अनेक रंग से किये जाते हैं। अब आत्म-श्लाघा की पूर्ति पैसा देकर विज्ञापन-बाजी के रूप में भी कराई जा सकती है। इसके लिए पत्र-पत्रिकाओं के पृष्ठ सदा स्वागत की प्रतीक्षा करते रहते हैं। इन माध्यमों से अन्तःकरण की प्यास बुझाने का जो उपक्रम किया जाता है, वह बहुत ही उथला होता है। छद्म को अपना मन तो पहचानता ही है। दूसरे लोग तो धोखे में आ सकते हैं, पर अपने को तो असली-नकली का भेद विदित ही रहता है। औरों को प्रपंच में फँसाकर किसी प्रकार बहकाकर फुसलाया जा सकता है परन्तु अपने आप पर स्वनिर्मित वह छद्म कैसे लगे ? अपने ही पाखण्ड में अपनी अन्तरात्मा संतोष अनुभव कैसे करे ? कीचड़ से प्यास कैसे बुझे ?

अन्तरात्मा को जिन तीन उपहारों की आवश्यकता है, वे देखने में तो नितान्त बाजिव और सस्ते प्रतीत होते हैं वस्तुतः वे उतने उथले हैं नहीं जिन्हें प्रवचना के रूप में पाकर मन को संतोष दिया जा सके। खरीदने पर नकल मिलती है असल नहीं। सस्ते मोल के शेर हाथी खिलौने के रूप में ही पाये जा सकते हैं उनसे वह प्रयोजन पूरा नहीं हो सकता है जो सरकस में पलने पर वे कौतूहल करके दीख पड़ते रहें। वनराज या गजराज को अलमारी के किसी कोने में बन्द करके नहीं रखा जा सकता।

प्यार बहुमूल्य है, वह सच्चे रूप में किसी की प्रगाढ़ आत्मीयता में से झँकता है। माँ बच्चे को निःस्वार्थ प्यार करती है। इसके बाद उसे उस दाम्पत्य जीवन में जहाँ-तहाँ देखा जाता है, जिसमें दोनों एक-दूसरे के लिए समर्पित होकर जी रहे हैं। इसके बाद तो मित्रता शिष्टाचार की तरह निभती है, जिससे जिसका जितना स्वार्थ सिद्ध होता है, वह उसी अनुपात से मित्रता का दम भरता है। स्वार्थ में कमी आने पर आँखें बदल जाती हैं। परिस्थितियाँ बदलने पर कल के मित्र कल अपरिचित और परसों शत्रु बन जाते हैं।

प्रोत्साहन भी इसी आधार पर दिये जाते हैं। दूसरों को बड़ी जिम्मेदारियाँ लादने के लिए उन्हें गुब्बारे की तरह फुला दिया जाता है। भावावेश में किसी से कुछ कराया जा सकता है। पर पीछे उसका वजन लादने पर प्रोत्साहन देने वाले पल्ला झाड़कर अलग हो जाते हैं। सामर्थ्य से अधिक कर गुजरने वाले मित्रों से जिस सहायता की आशा करते थे, उन्हें मिल नहीं पाती, तो अकेले ही भार वहन करते हैं। उसी में दिवाला निकाल बैठते हैं, खर्चीली शादियों में, मृतक भोजों में, असाधारण

आयोजन करने, धन जुटाने के लिए प्रोत्साहन देने वाले ही पतंग की डोरी चढ़ाते हैं। जीत की आशा न होते हुए भी चुनाव लड़ने के लिए मूजी को भी खड़ा कर देना और उसके पीछे उपहास में सम्मिलित होकर मूर्ख बताना भी उन्हीं का काम होता है, जो प्रोत्साहन देने में सर्वप्रथम अग्रणी थे।

प्रशंसा अब एक अत्यन्त सस्ता ठगी का व्यवसाय बन गया है। चाटुकारिता, चापलूसी ही प्रशंसा के विविध रूप बनाती और चित्र-विचित्र नजारे दिखाती है। जो आघात शत्रु अस्त्र-शस्त्रों से नहीं पहुँचा पाते उसे मित्र का मुखौटा पहनकर प्रशंसा के तीर छोड़े हुए बड़ी आसानी से सम्पन्न कर लेते हैं। किसी का विश्वास अर्जित करने और फिर उसे भयानक जाल-जंजाल में फँसा देने का सरल तरीका प्रशंसा ही ढूँढ़ निकाला गया है। कभी इस कार्य को मात्र चारण वर्ग के लोग किया करते थे, अब उस कला को अधिकांश लोगों ने सीख लिया है। इसी हुनर के सहारे वे कितनी ही चिड़ियाँ, कितनी ही मछलियाँ आये दिन फँसाते रहते हैं।

पहचानने वालों ने यह मान लिया है कि किसी को दावत खिलाकर, उपदेश देकर, ज्ञान साधन जुटाकर अब उतनी जल्दी किसी को कृतज्ञ अथवा मित्र नहीं बनाया जा सकता। इसके बिना एक शिकार पर शिकंजा कैसे कसा जाय ? उसका उत्तर प्रवचना की दीवार से यही मिला है कि प्यार दिखाने, प्रोत्साहन देने, प्रशंसा करने के अमोघ अस्त्रों का प्रयोग किया जाय और लक्ष्य को वेध कर दिखाया जाय। निशाने को धराशायी बनाया जाय। इन दिनों इसी छद्म का सर्वत्र विभिन्न आकार-प्रकारों में प्रयोग होता देखा जाता है। यह कला अब व्यवहार कौशल में सम्मिलित हो गई है। बीन की मधुर झंकार सुनकर कितने ही मृग बहेलियों के घर गरदन कटाने के लिए पहुँचते देखे गये हैं।

ऐसी दशा में मूल प्रश्न जहाँ का तहाँ रह जाता है कि आत्मोत्कर्ष के लिए जिन तीन साधनों की अनिवार्य रूप से आवश्यकता है, उन्हें सच्चे रूप में प्राप्त कर सकने का सुयोग किस प्रकार बिठाया जाय। इन्हें जहाँ से वस्तुतः पाया जा सकता है, उस भाण्डागार तक पहुँच सकने के लिए किस प्रकार आधार खड़ा किया जाय ?

इस हेतु दूर जाने की आवश्यकता नहीं। न किसी के सामने पल्ला पसारने की। याचना तो उनसे की जाय जिनके पास मनोरथ पूरा कर सकने वाली वस्तु हो। आत्मीयता भरा गहन गम्भीर जो प्यार कर सकते वे कहाँ हैं ? यदि हैं भी तो क्या आवश्यक है कि वे हमें इसका पात्र समझें और अपनी आत्मा का रस निचोड़ने

की अनुकम्पा दिखायें ? प्रोत्साहन देना सरल है। किसी को भी एक के बदले लाख मिलने का सब्ज-बाग दिखाकर लाटरी को खरीदने के लिए सहमत किया जा सकता है। सामर्थ्य से बड़ी छलाँगें लगाने वालों में से अधिकांश ऐसे ही होते हैं, जिन्होंने दलाली के लालच में दिवान्ध बना दिया है। प्रशंसा के पुल बाँधते देखकर किसी भी समझदार को सावधान होना चाहिए कि दाल में कहीं काला है। ऐसी निराशाजनक परिस्थितियों में क्या किसी भी प्यासे अन्तःकरण को मन मसोसकर ही बैठना पड़ेगा या कोई ऐसा रास्ता भी मिल जायेगा जहाँ से अन्तरात्मा की प्यास बुझाने का अवसर मिल सके।

इसके लिए नाभि में कस्तूरी होने पर भी सुगंध के लिए दिशा-दिशा में भटकने वाले हिरन का उदाहरण सही सिद्ध होता है। उसे शान्ति तब मिलती है, जब बाहर की ढूँढ़-खोज करने की अपेक्षा अपनी नाभि पर नाक रखकर देखता है कि जो अभीष्ट था वह तो अपने ही निकटतम मौजूद है।

दूसरों का आश्रय तकने की अपेक्षा यही अच्छा है कि हम अपने आप से स्वयं सच्चा प्यार करें। अपने कल्याण की बात स्वयं सोचें। शरीर के प्रति सच्ची मैत्री प्रदर्शित करके उसे संयम साधना द्वारा स्वस्थ सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न किया जाय, उसे सर्वत्र सुन्दर और दीर्घजीवी बनने का अवसर दिया जाय। मन को ज्ञानवान, विचारवान, एकग्र एवं दूरदर्शी, विवेकवान बनाने के लिए निजी प्रयत्न किया जाय। यह अपने निजी प्रयत्न से भी किया जा सकता है। सत्संग न मिले तो संसर्ग से काम चलाया जा सकता है। तर्क और तथ्य पर आधारित विवेक जगाया और उसका आश्रय लिया जा सकता है। कुटेबों का परिमार्जन किया जा सकता है। दोष-दुर्गुणों को ढूँढ़ और खोज-खोजकर उन्हें बाहर फेंकना चाहिए। अपनी स्वच्छता और सुसज्जा की कमान स्वयं ही सँभालनी चाहिए। दूसरों की हम सहायता करें या दूसरे हमारी सहायता करें ? दूसरों की आशा करने, खोज तलाश करने की आशा सँजोये रहने से कुछ काम बनने वाला नहीं है। अपने आप को ही अपने में सीमित करना चाहिए और वे सब साधन स्वयं ही जुटाने चाहिए जिनकी अपने को आवश्यकता है।

रोटी स्वयं कमाई जा सकती है, अध्ययन अपने बलबूते किया जा सकता है तो कोई कारण नहीं कि अपने को प्यार न दिया जा सके। अपने को प्रोत्साहित न किया जा सके। अपनी गरिमा का स्मरण करके स्वयं की प्रशंसा न की जा सके। जो वस्तुएँ दूसरों को दी जा सकती हैं। उन्हें अपने को अपने भण्डार में से निकाल कर दिया न जा सके ऐसी कोई बात नहीं। आत्मा के

अजस्र भाण्डागार में किसी वस्तु की, किसी विभूति की कोई कमी नहीं जो अभीष्ट है उसे जानना जगाना भर है। अन्तराल की चुम्बकत्व सक्षम होते ही वह सभी सामग्री खिंचती चली आती है, जिसकी आवश्यकता समझी और चेष्टा की जाती है।

अपने आपे को, शरीर तथा मन को सच्चा प्यार करें ताकि इन तीनों का ही समग्र हित साधन हो सकें। अपने को अग्रगमन के लिए प्रोत्साहित करें और अपने उदगम को, भविष्य को, वर्तमान को जगा सकने को निरन्तर सराहें ताकि वह वैसा ही बन सके, जिसे सर्वत्र प्रशंसा के योग्य समझा जा सके। हर कोई प्रोत्साहन भरा सहयोग प्रदान करें। अपने को प्यार करने वाले, उसकी प्रखरता उभरने वाले आत्म-भाव के धनी पर सभी प्यार उछालते हैं। अपने भी, पराये भी, देवता भी।

सच्चिदानन्द स्वरूप—अन्तरात्मा

परमात्मा को सच्चिदानन्द स्वरूप कहा गया है। विराट का ही एक अंश होने से जीवात्मा भी उन्हीं गुणों से सुशोभित है। सत्, चित्, आनन्द ये तीनों मिलकर कारण शरीर का ढाँचा बनाते हैं। सत् अर्थात् शाश्वत, अजर, अमर और अविनाशी स्वरूप। चित् अर्थात् चेतना दिव्य गुणों से सुसज्जित, उच्चस्तरीय आदर्शों, आस्थाओं से युक्त। आनन्द अर्थात् भाव संवेदनाओं, सरसता मृदुलता से सिक्त अन्तःकरण। आशा, उत्साह, संतोष के परस्पर समन्वय पर आधारित जीवन क्रम। आत्मा का सहज स्वभाव है ऊँचा उठना, अपने विराट स्वरूप की स्वयं को प्रतिमूर्ति बनाने के लिए इन्हीं गुणों से स्वयं को समृद्ध करना तथा अंततः समस्त आवरणों को हटाते हुए अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त करना। परिष्कृत जीवात्मा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आध्यात्मिक पुरुषार्थ करती है एवं जीव-ब्रह्म सम्मिलन से निस्तुत परमानन्द की स्थित को प्राप्त करती है।

इस आत्म-गरिमा से अपरिचित मनुष्य भटकता है। यह विस्मृति अनेकानेक समस्याओं को जन्म देती है। इन्हें ही माया का आवरण, मनुष्य का विभ्रम कहा जा सकता है। ये ही रोग-शोको के रूप में अंततः बाहर प्रकट होते हैं। सच्चिदानन्द का पहला चरण है सत्। 'सत्' मनुष्य को जीवन के क्षणभंगुर होने का बोध कराता है। हम अजर-अमर अविकारी हैं। पंचतत्वों से बनी इस काया को बिखर जाने पर भी हमारी सत्ता बनी ही रहेगी। यह बोध बना रहे तो भटकाने से बचा रहा जा सकता है। पर कायिक इन्द्रियों की बनावट ही कुछ ऐसी है कि वह बहिर्जगत को देखती और जड़ पदार्थों के प्रति सहज ही

आकर्षित हो जाती है। सत् की अनुभूति व्यक्ति को यह विचार करने पर विवश करती है कि यह शरीर मरणधर्मा है। परन्तु आत्मा कभी नष्ट नहीं होती है। वह तो एक सतत् प्रवाह है। आत्मा का स्वास्थ्य ही मनुष्य की सारी सफलताओं का प्राण है। यह तभी संभव है, जब मानव अपने वर्तमान जीवन को श्रेष्ठ, उदार तथा उदात्त भावनाओं से युक्त करने का प्रयास करता है।

सत् में आस्था रखने वाला व्यक्ति सृष्टि को चलाने वाली बुद्धिमान, उद्देश्यपूर्ण व्यवस्था में दृढ़ विश्वास रखता है। वह जानता है कि विधि-विधानों, नियमों के अनुरूप चलने वाली इस सृष्टि की व्यवस्था में किसी तरह की अनुशासनहीनता, अनियन्त्रण, अदूरदर्शिता का स्थान नहीं है। कर्मफल से पूर्णतः अवगत यह व्यक्ति अपनी समस्त गतिविधियों का निर्धारण सुघड़तापूर्वक करता है। वह जानता है कि आत्मा कभी नहीं बदलती। बदलता तो यह चोला है। फिर उसके लिए व्यर्थ मोह क्यों करना? अनावश्यक संग्रह एवं उपभोगों में स्वयं को लीन करना इस सृष्टि के मुकुटमणि मानव के लिए कतई शोभनीय नहीं है। ऐसा चिन्तन प्रखर होने पर स्वयं को ऊँचा उठा हुआ पाता है। आत्मिक प्रगति के विभिन्न सोपानों को पार करता हुआ अपने लक्ष्य तक जा पहुँचता है।

आत्मा की दूसरी विशेषता है 'चित्'। उच्च-स्तरीय आस्थाओं, मान्यताओं एवं आदर्शों से युक्त व्यक्ति चित् परायण कहलाता है। चित् अर्थात् स्वयं के विषय में उत्कृष्टतापूर्ण मान्यता, अपने लक्ष्य के प्रति चेतनता, सजगता। ये वे निष्ठाएँ हैं, जो मनुष्य की जीवनयात्रा की रूपरेखा बनाती हैं। देवत्व में आस्था, आदर्शवादी उत्कृष्टता में अटूट विश्वास, सुपर सत्ता के प्रति समर्पण भाव 'चित्' के परिष्कृत स्वरूप है।

'चित्' एक गुण है जो परिष्कृत स्वरूप में व्यक्ति को महामानव बना देता है। पर जब यही विकृति की ओर अग्रसर हो जाता है, जो अनेकानेक समस्याओं, मानसिक असंतुलनों एवं शारीरिक-संतापों को जन्म देता है। आदर्शवादिता से निष्ठा हटते ही पतन तेजी से होता है। दृष्टि बहिर्मुखी होने के कारण स्वयं के विषय में मान्यताएँ गरिमायुक्त नहीं रहती। श्रेष्ठ चिन्तन का अभाव एवं उत्कृष्टता के प्रति अनास्था अंततः उद्दण्डता को जन्म देती है। विकृत चिन्तन से सद्विचारों की अपेक्षा नहीं की जा सकती। सिद्धान्तों के प्रति, अपनी दिव्यताओं के प्रति अनास्था मनुष्य को एकाकी, स्वार्थी एवं अहंकारी बनाती है।

आवेश तथा जल्दबाजी के कारण व्यक्ति को जो भौतिक दृष्टि से हानि होती है। वह अविज्ञात नहीं है। परन्तु वह व्यक्ति स्वयं इस तथ्य से अनजान बना रहता है कि वह व्यक्ति उद्धत आचरण उलटकर उस पर ही हमला करेगा। मानसिक तनाव और उससे होने वाली समस्त मनोशारीरिक व्याधियाँ ऐसे व्यक्तियों को होती हैं, जो स्वयं उच्छुंखल हैं, उसके अंग, अवयव, ऊतक भी क्यों कर किसी का कहा मानेंगे। आवेश-क्रोध से होने वाला स्राव समस्त शरीर-संस्थानों के परस्पर संतुलन को गड़बड़ा देता है। इसके विपरीत स्वयं की गरिमा व महत्ता में चित्त की विशिष्टता में, आदर्शों के प्रतिनिष्ठा रखने वाला व्यक्ति, आत्मिक दृष्टि से तो संपन्न होता है ही, मानसिक संतुलन व समस्वरता तथा शरीरगत सुव्यवस्था भी उसकी एक बहुमूल्य वर्जित सम्पत्ति है।

सच्चिदानन्द आत्मा का तीसरा ओर अंतिम पक्ष है 'आनन्द'। इसके बिना आत्मा की परिपूर्ण व्याख्या संभव नहीं। जीवात्मा का लक्ष्य ही आनन्द है। इसे परिष्कृत भाषा में कहा गया है 'रसो वै सः' वह परमात्मा रस से, आनन्द से परिपूर्ण है। इस रस को प्राप्त करने के लिए विभिन्न मार्गों से साधक पुरुषार्थ करता है एवं संतोष का आनन्द लेता है। इस रस का अंतरंग पक्ष है—भाव-संवेदनाओं से लबालब अन्तःकरण करुणा, दया, सेवा भावना, भक्ति भाव रस के परिष्कृत स्वरूप हैं। जब इनका विकास सहज स्वाभाविक रूप से होता है, तो ये व्यक्ति को भावनात्मक दृष्टि से ऊँचा उठाते हैं। ऐसे महामानव विश्व मानवता की सेवार्थ अपने जीवन की आहुति दे देते हैं। इन्द्रियों से प्राप्त होने वाला आनन्द क्षणिक है, ऐसी मान्यता रखने वाले ये महापुरुष अपनी क्षमताओं का पूरा उपयोग उच्च उद्देश्यों की ओर नियोजित करने में करते हैं।

चेतना पर काया, काम, क्रोध, लोभ, मोह-मल्ल के जो आवरण पड़े हैं। उनके कारण जीव इस उद्गम स्रोत तक नहीं पहुँच पाता। प्यास निरन्तर बनी रहती है। कस्तूरी अपनी नाभि में लिये गये हिरन जिस प्रकार सुगन्ध की खोज में चारों ओर मारा-मारा फिरता है, उसी प्रकार जीव आनन्द की खोज में विविध योजनायें बनाता, कल्पना करता एवं अथक् प्रयत्न करता है। यह पुरुषार्थ असफल असमाधान कारक ही होता है। अन्तःकरण की गहन परतों में छिपे आनन्द के स्रोत की खोज बाह्य जगत में जलने के कारण भटकाव, थकान, अशांति, निराशा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं मिलता।

आनन्द की मिठास और भी गहन है। इसकी विकृति वासना, तृष्णा, अहंता के रूप में बाहर परिलक्षित

होती है। आनन्द की प्रतिच्छाया होने के कारण वासना आकर्षक एवं लुभावनी लगती है। विषयों के सेवन में मन लगने लगता है तो व्यक्ति विलासी, प्रमादी, आलसी होता चला जाता है। जिह्वा का असंयम, कामेन्द्रियों का उपभोग, संग्रह का लोभ अनेकानेक मानसिक एवं शारीरिक व्याधियों को जन्म देता है।

विषयों के सेवन में जब इतनी तृप्ति और तुष्टि मनुष्य को मिलती है तो उसके मूल स्रोत में कितनी मिठास होगी, इसकी कल्पना मात्र से ही हृदय पुलकित हो उठता है। भगवान् रसयम है। इस रस को आत्मा-सत्ता के रूप में ईश्वर ने मनुष्य को धरोहर बनाकर दिया है। यह रस भौतिक नहीं आत्मिक है। इसे अन्तःकरण के उल्लास, संतोष, शान्ति जैसी दिव्य संवेदनाओं के रूप में अनुभव किया जाता है। भक्ति रस की धाराएँ ऐसे ही अन्तःकरण में बहती हैं। ये ही कभी मीरा, कभी चैतन्य एवं कभी रामकृष्ण परमहंस जैसी विभूतियों के रूप में प्रकट होती हैं। सुपर सत्ता परब्रह्म से मिलन संयोग की स्थिति ऐसी ही जागृति पर आती है।

आनन्द की गंगोत्री अपने ही भीतर

कस्तूरी की खोज में हिरन भटकता रहता है। वनों, कन्दराओं में वह दूँढ़ता है, पर कहीं नहीं मिलती। जो भीतर है, उसे बाहर खोजने में उसका जीवन खप जाता है। व्यर्थ की इस भाग-दौड़ से उसे निराशा ही हाथ लगती है। अतृप्ति यथावत् बनी रहती है। यह बोध हो सके कि जिसे प्राप्त करने की आकुलता में वह वन एवं कन्दरा में विचरता रहता है, वह उसके अपने ही भीतर विद्यमान है, तो उसे तृष्णा की आग में इस तरह न जलना पड़े। उसकी निकटता प्राप्त कर मृग स्वयं परितृप्त हो जाय।

मृग ही क्यों? मनुष्य भी तो आनन्द की खोज में मृग-मारीचिक की तरह जीवनपर्यन्त भटकता रहता है। आनन्द की प्राप्ति उसकी मूलभूत माँग है। बचपन से लेकर जरावस्था तक वह इस आकांक्षा की पूर्ति में लगा रहता है। पर हिरन की भाँति दृष्टि बहिर्मुखी होने के कारण मनुष्य सोचता है कि आनन्द के स्रोत बाहर हैं। दृश्य संसार और उससे सम्बद्ध परिवर्तनशील पदार्थों के आकर्षण में वह स्थायी और शाश्वत आनन्द की खोज करता है। इन्द्रियों की तुष्टि के लिए विषय रूपी साधन जुटाता है। पर उनका उपभोग अतृप्ति की आग को और भी अधिक भड़काता और बढ़ाता है।

बचपन से लेकर वृद्धावस्था की मध्यावधि में शारीरिक एवं मानसिक स्थिति में अनेकों तरह से परिवर्तन

होते हैं। उन परिवर्तनों के साथ-साथ आनन्द प्राप्ति के बाह्य साधन भी बदलते रहते हैं। शैशव अवस्था की माँग अलग प्रकार की होती है और किशोरावस्था की अलग। युवा वय की मनःस्थिति और वृद्धों की मनःस्थिति सर्वथा एक-दूसरे से भिन्न प्रकार की होती है। इस कारण आनन्द प्राप्ति के बाह्य स्रोत भी क्रमिक रूप से बदलते रहते हैं। नवजात शिशु माँ की छाती से चिपका रहता है। पयपान में ही उसे सामयिक तृप्ति मिलती है। पर थोड़ा बड़ा होते ही दुग्ध पान के प्रति उसकी अभिरुचि प्राप्त हो जाती है। जो कभी माँ के हृदय से चिपका रहता था, वह अब चित्र-विचित्र खिलौने में रमण करता है। सुखानुभूति के केन्द्रबिन्दु खिलौने बनते हैं। पर यह स्थिति भी अधिक दिनों तक नहीं चलने पाती। खिलौने जो बचपन में अत्यन्त ही आकर्षक मनोरंजक लगते थे, किशोरावस्था में नहीं भाते। घर की सीमा से बाहर वह प्रवेश करता है। मित्रों की टोली में उसका अधिकांश समय व्यतीत होता है। पढ़ने-लिखने की आगे बढ़ने की प्रतिस्पर्धा चल पड़ती है।

बचपन में जो खिलौनों से चिपका रहता था अपना भविष्य बनाने में जीतोड़ परिश्रम करता है। उसकी प्रसन्नता इस बात में सन्निहित रहती है कि वैसी अधिक से अधिक योग्यता सम्पादित की जाय। सन्तुष्टि इस आकांक्षा की पूर्ति से भी नहीं होती। एक की आपूर्ति दूसरे तरह की इच्छा को जन्म देती है। वयस्क होते ही अनुकूल साथी जीवनसंगिनी की खोज चलती है। मिलते ही पत्नी के यौवन, रूप और लावण्य पर वह मुग्ध बना आनन्द की अनुभूति करता है। किन्तु यह स्थिति भी अधिक दिनों तक नहीं रहने पाती। शरीराकर्षण कुछ ही दिनों बाद समाप्त हो जाता है। तब तक प्रजनन का दौर चल पड़ता है।

नवागन्तुक शिशु प्रसन्नता का नवीन केन्द्रबिन्दु बनता है। उसकी किलकारियाँ सुनकर वह बड़े से बड़ा दुःख भी भूल जाता है। उसकी एक मुस्कान के लिए अपना सर्वस्व लुटाने के लिए मनुष्य तैयार रहता है। जिससे प्रेरित होकर मानव बच्चे के लिए कष्ट उठाने के लिए तत्पर रहता था।

धनोपार्जन सम्पदा संग्रह तथा लोकयश पाने की आकांक्षा पूर्ति में वह अब सुख, आनन्द ढूँढ़ने लगता है। तदनु रूप प्रयासों का ताना-बाना बुनता है। वह सब मिलने के बाद भी संतोष नहीं होता। अतृप्त और अशान्त मनःस्थिति पुनः नये तरह के खेल-खिलौने मन बहलाने के साधन ढूँढ़ती है। सम्पूर्ण जीवन ही इन बाह्य प्रयासों में

खप जाता है। जितना मनुष्य आनन्द पाने का प्रयत्न करता है उतना ही वह उससे दूर होता चला जाता है।

हर मनुष्य की प्रकृति एक जैसी नहीं होती। परस्पर एक-दूसरे की अभिरुचियाँ भी भिन्न होती हैं। एक को एक तरह के काम में आनन्द आता है, दूसरे को भिन्न प्रकार के काम में। स्वास्थ्य, धन, ऐश्वर्य, यश, सम्मान योग्यता की प्राप्ति में अधिकांश व्यक्ति जीवन खपाते और तदनु रूप सफलता मिलने पर मोद मनाते हैं। पर वह प्रसन्नता भी चिरस्थायी नहीं होती। कुछ ऐसे भी होते हैं जो समाज के ढर्रे से अलग हटकर अपना मार्ग चुनते हैं। वे असामान्य दुस्साहस का परिचय देते तथा ऐसे काम कर गुजरते हैं। जिन्हें देखकर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। जीवन के धनी व्यक्तियों को संकटों से युक्त कार्यों को करने में ही आनन्द आता है। कुछ व्यक्तियों की मनःस्थित विकृत स्तर की बन जाती है। निकृष्ट कामों में ही उन्हें रस आता है। व्यसनी शराब के प्याले में आनन्द देखता और ढूँढ़ता है—उसी में डूबा रहता और अपना सर्वस्व गँवाता है। कामी कामतृप्ति की क्षणिक रसानुभूति में अपने शरीर को गलाता, मनःशक्ति को क्षीण करता रहता है। क्रूर आताताइयों को जघन्य अपराधों को करने में प्रसन्नता होती है। दूसरों को रोते-कलपते, पीड़ा से कराहते-तड़पते देखकर आनन्द आता है। इसकी विकृति उनसे हत्या जैसे पाप कराती है।

बाह्य संसार में आनन्द प्राप्ति के लिए मनुष्य भटकता रहता है, यह इस बात परिचायक है कि शाश्वत सुख की अनुभूति उसके जीवन की सर्वोपरि आवश्यकता है। इसकी पूर्ति के लिए कभी वह एक तरह का माध्यम ढूँढ़ता है तो कभी दूसरे प्रकार का। व्यक्ति के सुख का केन्द्र सदा बदलता रहता है। शैशव काल माँ की गोद में, बाल्यावस्था खिलौने में, छात्र जीवन पुस्तकों में, यौवन पत्नी तथा धन संचय में, गृहस्थाश्रम पुत्र, मोह, यश प्राप्ति में नियोजित रहता है। गम्भीरता से विचार करने पर पता चलता है कि जिन भौतिक चीजों से आनन्द प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। वे पदार्थ वस्तुतः आनन्द से रहित हैं। यदि आनन्द होता तो मन सदा उनमें लीन रहता, पर आनन्द प्राप्ति के केन्द्र सतत् बदलते रहना इस बात का प्रमाण है कि यह विशेषता उन भौतिक वस्तुओं में नहीं है।

सुख एवं आनन्द का केन्द्र भीतर है, बाहर नहीं। आनन्द की भावना मनुष्य की अन्तरात्मा में विद्यमान है। यह भावना ही विभिन्न वस्तुओं में आरोपित होकर हमें आनन्ददायक प्रतीत होती है। इसी कारण भ्रमवश लोग वस्तुओं को ही आनन्द का हेतु समझ लेने की भूल कर

बैठते हैं। भ्रमवश विभिन्न वस्तुओं में उसे ढूँढ़ने का प्रयास करते हैं। फलस्वरूप असफलता ही हाथ लगती है। यह स्थिति उस हिरन जैसी ही है जो कस्तूरी की गंध से मोहित होकर उसे बाहर तो खोजता है पर भीतर नहीं झाँकता।

आनन्द आत्मा का शाश्वत गुण है। वही भीतर बैठा आनन्द प्राप्ति का भाव सम्प्रेषित करता तथा अपनी आनन्दमय स्थिति का भान कराता है। इन्द्रियों की बनावट बहिर्मुखी है। अन्तर्मुखी होकर मूल केन्द्र को तलाश ने की अपेक्षा वे बाहर की ओर चंचल रहती हैं। सांसारिक आकर्षणों में वे सुख और आनन्द खोजती हैं। उन्हें ही सुख का आधार मान लेती हैं।

आनन्द की प्रतिच्छाया भावों के रूप में आरोपित होकर जड़ वस्तुओं तक को आकर्षक बना देती है, जबकि उनमें अपना कोई आकर्षण नहीं होता और न ही आनन्द। लुभावने दृश्य तथा संसार वही रहते हैं। समग्र इन्द्रियों से युक्त काया का स्वरूप भी नष्ट नहीं होता, पर चैतन्य आत्मा में शरीर से निकलते ही सब खेल समाप्त हो जाता है। कहीं कोई आकर्षण नहीं दिख पड़ता। जड़ काया के भीतर विद्यमान अन्तरात्मा सौन्दर्य प्रवाह किरणें ही वस्तुओं पर पड़कर सुन्दरता का आभास कराती हैं। दर्पण में दिखायी पड़ने वाली मुखाकृति की प्रतिच्छाया को देखकर दर्पण को माना जाय तो यह मान्यता अविवेकपूर्ण ही होगी। प्रतिच्छाया से आनन्द प्राप्ति का भ्रमपूर्ण प्रयास असफल ही सिद्ध होगा।

विषयों में कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ रमण करती कुछ क्षणों के लिए आनन्द की अनुभूति करती हैं। पर उनकी ये विशेषताएँ तब तक ही रहती हैं जब तक कि आत्मा काया में निवास करती है। इन्द्रियाँ उसी से गति एवं सामर्थ्य प्राप्त करती हैं। उनकी विभिन्न तरह की क्षमताएँ आत्मशक्ति का ही अनुदान हैं। रंग, रूप गंध स्पर्श स्वाद आदि कायिक अनुभूतियों से लेकर प्रसन्नता, प्रफुल्लता, उत्साह, उमंग आदि की मानसिक विशेषताएँ तक उस आन्तरिक चेतन शक्ति की ही प्रतिच्छाया हैं। शरीर एवं मन से जुड़ी हुई विभिन्न इन्द्रियाँ काय-कलेवर में आत्मसत्ता के बने रहने से ही पदार्थों, दृश्यों एवं विषयों में सुख की अनुभूति कर पाती हैं। ऐसे सुख की जो क्षणिक, अस्थायी और अतृप्ति को और भी अधिक बढ़ाने वाला है। आत्मा के शरीर छोड़ते ही इन्द्रियाँ किसी प्रकार की अनुभूति नहीं कर पातीं। पार्थिव शरीर मिट्टी तुल्य हो जाता है। उसे गाढ़ने-दफनाने-जलाने की तुरन्त बात सोची जाती है।

आनन्द का केन्द्रबिन्दु अन्तरात्मा है। वह चैतन्य गतिविधियों का प्रेरणा-स्थल भी है। पर चेतना की यह विशेषता होती है कि वह जड़ वस्तुओं में अधिक समय तक नहीं टिक सकती। जब तक उसका प्रकाश आनन्द की किरणें वस्तुओं, व्यक्तियों अथवा विषयों पर पड़ती हैं, तब तक वे आकर्षक लगती हैं। जैसे ही किरणें सिमटती हैं। वह दृश्यमान सौन्दर्य लुप्त हो जात है। वस्तुतः अन्तरात्मा से निकली भाव तरंगें दृश्य संसार तथा उससे सम्बद्ध वस्तुओं में अपने उद्गम स्थल की खोज करती हैं। बाहर वह नहीं मिलता। अतृप्ति मिटाने के लिए वह सांसारिक चीजों का सहारा लेती हैं। मिटने के स्थान पर वह और भी बढ़ती हैं तथा उसकी स्थिति उस प्यासे व्यक्ति की तरह होता है जो पानी की तलाश में निकलता है, पर मदिरालय पहुँचकर मद्यपान से अपना होश-हवाश गवाँ बैठता है। शराबी की तरह ही हालत जीवात्मा की हो जाती है, जो सदा अतृप्त बनी आकुल-व्याकुल रहती है।

यह एक विडम्बना ही है कि जीव स्वयं आनन्द का स्रोत होते हुए भी जीवनपर्यन्त उस अमृतत्व से वंचित रहता है। खेल-खिलौने, भोग विलास, इच्छाओं आकांक्षाओं, ऐषणाओं की पूर्ति में बचपन, किशोरावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था खप जाती है। तब वृद्धावस्था में मनुष्य हाथ-मलता रह जाता है। व्यतीत हुए भूतकाल के जीवन को स्मरण करके हर व्यक्ति हर व्यक्ति की अन्तर्व्यथा जेम्स एलन की भाँति मूक रूप से प्रस्फुटित होती है-“मैंने सांसारिक जीवन एवं उससे जुड़ी वस्तुओं में आनन्द की खोज का प्रयास किया किन्तु वह नहीं मिल सका। विद्याभ्यास किया, ऐश आराम के साधन जुटाये, श्रेय-सम्मान अर्जित किया पर अशान्ति बढ़ती ही गयी। मैंने दर्शनों का अनुशीलन किया किन्तु मेरा हृदय अहंभाव से विदग्ध हो गया तब पहली बार मुझे अनुभव हुआ है कि शान्ति एवं आनन्द का केन्द्र बाहर नहीं भीतर है।”

ऐसी व्यथा-वेदना की अनुभूति हर व्यक्ति को कभी न कभी अवश्य होती है। जिसकी अभिव्यक्ति विभिन्न व्यक्तियों में अलग-अलग प्रकार की होती है। यह एक ऐसा अभाव है, जिसकी आपूर्ति भौतिक वस्तुओं, विषयों अथवा भौतिक ज्ञान द्वारा नहीं हो सकती। वे मनुष्य के अन्तराल को तृप्त नहीं कर सकती। अन्तराल में इस पीड़ा का होना इस शाश्वत तथ्य की परिचायक है कि शाश्वत आनन्द की प्राप्ति जीव की प्रमुख प्राँग है। उसे पाने की उत्कंठा भी उसमें प्रबल है। भीतर की यह आकांक्षा और उत्कंठा उस दिव्य आनन्द की प्राप्ति के लिए सतत् प्रेरित करती रहती है। दृष्टि बहर्मुखी होने के कारण मानव उसे

बाह्य संसार में दूँढ़ता है। उसका पुरुषार्थ एवं सामर्थ्य इस प्रयास में ही खप जाता है। इन्द्रियों की क्षणिक तृप्ति आग में घी डालने का काम करती है तथा अतृप्ति अग्नि को और भी तीव्र करती है। एक कामना की पूर्ति दूसरी कामना को और दूसरी तीसरी को, इस तरह अनेकों प्रकार की कामनाओं की शृंखला चल पड़ती है। उन सभी की पूर्ति कभी नहीं हो पाती। छोटा जीवन और अनन्त कामनाएँ। ईश्वर प्रदत्त अलभ्य अनुपम जीवन कामनाओं की पूर्ति में होकर नष्ट होता है और अन्ततः पल्ले पड़ती है—अशान्ति, अतृप्ति, असन्तोष और पश्चात्ताप।

आन्तरिक भावों पर ध्यान दिया जा सके तो प्रतीत होगा कि आनन्द का अजस्र अन्दर बैठा सतत् अपना प्रवाह संप्रेषित कर रहा है। यह समझते ही दुश्चिन्तन, कुचेष्टाएँ समाप्त होने लगती हैं। लालसाएँ कम होने लगती तथा चेष्टाएँ अन्तर्मुखी बन जाती हैं। ऐसा आत्म-बोध चेतना के उद्गम स्थान पर ही पहुँचने पर सम्भव है।

अजस्र शान्ति के बीज अन्तःभूमि में उगते हैं

संसार के कोलाहल एवं अशान्त वातावरण में एक विशेषता यह दिखायी देती है कि प्रत्येक व्यक्ति शान्ति पाने के लिए व्याकुल है। सारे प्रयत्न पुरुषार्थ इसीलिए किये जा रहे हैं। इस बात का प्रमाण है कि शान्ति शाश्वत है, अशान्ति तो बाह्य हलचलों की प्रतिक्रिया मात्र है। शान्ति का भाव मानव के अन्तःकरण में बीज रूप से विद्यमान है। अनन्त कोलाहल के मर्मस्थल से भी एक मंत्र ध्वनित हो रहा है— 'शान्तिः शान्तिः'। शान्ति, वह प्रेरक शक्ति शान्त स्वरूप में समस्त जड़, चेतन में विराजमान है मनुष्य की अन्तरात्मा में स्थिति होकर वह अपनी सत्ता प्रेरणा देती रहती है।

उस शान्त स्वरूप परमात्मा का दर्शन अपने अन्तःकरण में किस प्रकार किया जाय? इसका एक ही उत्तर है— अनन्त शान्ति का अनुभव शान्त मनःस्थिति द्वारा ही किया जा सकता है। आन्तरिक चंचलता का कोलाहल हमें अपनी ही अन्तरात्मा से दूर रखता है। हमारी प्रवृत्तियाँ अनेकों दिशाओं में दौड़ती हुई शक्ति को छिन्न-भिन्न किये दे रही हैं। बाह्य भाग-दौड़ के असंयमित कारणों से मन सदा अशान्त बना रहता है। मन की व्यग्रता से वह एकाग्रता बन ही नहीं पाती कि वृत्तियाँ को अन्तर्मुखी करके उस शान्तस्वरूप आत्मा का दर्शन कर सकें।

सामान्यतः लोग जीवन के ह्रास और शक्ति के अभाव को शान्ति समझ लेते हैं। किन्तु जीवन विहीन शान्ति तो मृत्यु है। शक्तिहीन शान्ति जड़ता की परिचायक है। गति एवं क्रिया से रहित निश्चेष्ट होना शान्ति नहीं है। शान्ति तो एक सुसन्तुलित मनःस्थिति है, जिसे प्राप्त कर मनुष्य सांसारिक कोलाहल एवं विपन्नताओं में भी निर्लिप्त बना रहता है। जीवन को सम्पूर्ण शक्ति के स्वरूप में जो विद्यमान है वही शान्ति है। जो सृष्टि के सौन्दर्य को प्रकाशित एवं प्रमाणित के कल्याण करने के लिए सचेष्ट है वह शान्ति है।

इसे एक सामान्य उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। विशालकाय रेल इंजन चलता है। उसके पहिये घूमते हैं किन्तु इंजन का चलना ही चालक नहीं है। वरन् चालक वह है जो इंजन में बैठा उसे गति दे रहा है। गतिशील संसार के मध्य अदृश्य रूप में विद्यमान चेतना शान्त स्वरूप है। रेल के डिब्बे में बैठे यात्री उसकी तीव्र गति से भयभीत नहीं होते। वे जानते हैं कि इंजन को चलाने एवं नियंत्रित करने वाला बुद्धिमान ड्राइवर बैठा है। यह अभय की भावना तभी बनती है जब यात्री इस बात से परिचित होते हैं कि रेल की भयंकर गति अनियंत्रित नहीं है।

विशाल कारखाने में यदि कोई अनभिज्ञ व्यक्ति पहुँचे तो यही समझेगा कि यहाँ कोई दानवीय काण्ड हो रहा है। चक्रों की तीव्र ध्वनि, मशीनों की गड़गड़ाहट उसके मन को विक्षुब्ध बना देगी। किन्तु जब उसे पता चलता है कि उनको नियंत्रित संचालित करने वाला कोई विशिष्ट मनुष्य मौजूद है तो उसे वह भयरहित होकर शान्ति का अनुभव करेगा। कारखाने के कोलाहल एवं गति में परिणाम की सार्थकता में उसे शान्ति का दिग्दर्शन होगा।

जगत के प्रचण्ड शक्ति वेग एक विभीषिका के रूप में मानव मन को उद्वेलित कर रहे हैं। रेल की गड़गड़ाहट एवं कारखाने की भयंकर ध्वनि के समान सृष्टि के आवेग क्रिया-प्रतिक्रियाओं से मनुष्य विक्षुब्ध बना रहता है। सामान्य प्राकृतिक आघातों से भयभीत हो जाता है। इसका मुख्य कारण है—अर्न्तदृष्टि का अभाव, मन की उद्विग्नता। उसे जगत के मध्य विद्यमान शान्त सत्ता के दिग्दर्शन से वंचित रखती है। फलस्वरूप जीवनपर्यन्त मनुष्य सांसारिक अभावों, आघातों से भयभीत होकर विक्षुब्ध बना रहता है। अपने अज्ञान के कारण उस दिव्य सत्ता का अनुभव नहीं कर पाता जो निर्लिप्त भाव से बैठी संसार को गति प्रदान कर रही है।

वह प्रकृति को चेतना से, प्राण और सौन्दर्य से भरपूर बनाकर मंगलमय बना रही है। सृष्टि के शक्ति के वेग को भी एक मंगलमय लक्ष्य की ओर लिए जा रही है। धात्री के समान अनादि काल से जगत की रक्षा कर रही है। समस्त ग्रह-नक्षत्रों को जड़ पदार्थों को आबद्ध किये सुव्यवस्थिति ढंग से संचालित कर रही है। चेतन प्राणियों का पालन-पोषण कर रही है। अनेकों स्वरूपों में वह पालन-शक्ति के रूप में जगत में विचरण कर रही है। जीवन उसका एक स्वरूप है मृत्यु दूसरा। सुख-दुःख, हानि-लाभ उसके ही विभिन्न रूप हैं। जीवन व्यापार की समस्त गतिविधियों में कल्याणकारी भाव में शान्ति रूप में विराजमान है। यदि ऐसा न होता तो आज संसार में जो सौन्दर्य, आकर्षण दिखाई दे रहा है। वह आघातों द्वारा लुप्त हो जाता। मानव-मानव अन्यान्य प्राणियों के बीच जो सम्बन्ध बन्धन आकर्षित कर रहा है वह समाप्त हो जाता। वह शान्त स्वरूप कल्याणकारी परमात्मा हो जाता। वह शान्त स्वरूप कल्याणकारी परमात्मा ही समस्त संसार की रक्षा कर रहा है।

मन की चंचलता ही उस शान्त स्वरूप को जो अन्तरात्मा में बैठा अपना भाव प्रेषित करता रहता है, के सानिध्य लाभ से वंचित रखती है। बाह्य संसार में मन शान्ति की तलाश में भटकता रहता है। कभी उसे वस्तुओं के आकर्षण में ढूँढ़ता है तो कभी व्यक्तियों में। आकर्षणों के ये बन्धन उसे और भी आबद्ध करके अशान्त बनाते हैं। वस्तुओं व्यक्तियों से बद्ध होकर मनुष्य अपने आन्तरिक स्रोत से दूर हटता चल जाता है। जीवन-पर्यन्त मन की भाग-दौड़ चलती रहती। तथा मनुष्य को व्यग्र बनाये रहती है। भाग-दौड़ का परिणाम यह होता है कि मनुष्य की शक्ति क्षीण हो जाती है। शक्ति क्षीण होने से अशान्ति उसी अनुपात में बढ़ती जाती है। शान्ति प्राप्त करने का यह अविवेक पूर्ण प्रयास अशान्ति के परिणाम के रूप में मिलता है। थकी इन्द्रियाँ निश्चेष्ट जीवन की बाह्य स्थिरता को शान्ति का स्वरूप मान बैठने की भूल करती है। शक्ति के ह्रास होने पर भी मन की चंचलता उसी प्रकार बनी रहती है। फलस्वरूप मनुष्य अपने जीवन के अन्तिम दिनों में और भी अधिक व्यग्र बना रहता है तथा आन्तरात्मा के अमृत पान से सदा वंचित रहता है।

अन्तरात्मा के शान्त स्वरूप का दर्शन शान्त मनःस्थिति द्वारा कर सकना सम्भव है। इसके लिए मन को नियमित करना अति आवश्यक है। असंयमित मन सदा चलायमान रहता है। शास्त्रकार इसी कारण मन को निग्रहीत करने का निर्देश देते हुए कहते हैं— “मनएव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः”

(गीता)

मन बन्धन और मुक्ति का कारण है। बाह्य आकर्षणों में आबद्ध मन के कारण ही अशान्ति बनी रहती है। अशान्ति दूर करने एवं शान्ति प्राप्त करने का मन तो करता है। किन्तु उसका प्रयास बहिर्मुखी होता है। जड़ वस्तुओं के क्षणिक आकर्षणों में शान्ति पा सकना सर्वथा असम्भव है। आन्तरिक भाव प्रेरणाओं को समझा जा सके तथा मन की घुड़-दौड़ को अन्तर्मुखी बनाया जा सके तो स्पष्ट होगा कि न केवल अपनी अन्तरात्मा में वर्तमान सृष्टि में शान्तिस्वरूप परमात्मा विद्यमान है। बाह्य कोलाहल सुख-दुःख तो परिवर्तनशील तरंगें हैं। उन तरंगों का प्रेरणा स्रोत तो इन हलचलों के प्रभाव से रहित कल्याणकारी परमात्मा है, जो निर्लिप्त भाव में सम्पूर्ण चराचर में शान्त रूप में स्थित है। मानवी काया में अन्तरात्मा के रूप में वही विराजमान होकर अपने दिव्य गुणों का आभास प्रेरणाओं के रूप में कराता रहता है। उन प्रेरणाओं को समझा जा सके तथा अपनी चेष्टाओं को अन्तर्मुखी बनाया जा सके तो जिस की प्राप्ति के लिए मन सदा व्यग्र बना रहता है उस स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है।

सांसारिक सुख-दुःख, एवं अभाव उसे ऐसी स्थिति में पहुँचने पर प्रभावित नहीं कर पाते। सर्वत्र आनन्द की शान्ति की निर्झरिणी बहती दिखायी देती है। जगत के कोलाहलों में भी उसे कल्याणकारी भाव का दर्शन होता है। मन का भटकन बन्द हो जाता है। अनन्त कोलाहल में भी उसे एक ही ध्वनि सुनायी पड़ती है—शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः।

स्रोत अन्दर है, बाहर नहीं

आनन्द आत्मा का शाश्वत गुण है। मनुष्य जब प्रसन्नचित होता है तो उसकी आत्मा प्रफुल्लित हो उठती है। शरीर में जीवनी शक्ति का प्रवाह तीव्र हो जाता है। समस्त आत्मिक शक्तियाँ विकसित होती हैं। आत्मिक शक्ति की स्फुरण से शरीर की आकृति एवं मन की प्रवृत्ति में परिवर्तन होता है। मुख से चेतनता एवं सजीवता टपकने लगती है। शरीर रोमांचित हो उठता है। कभी-कभी इस प्रकार का आभास प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवनकाल में होता है।

जन्म से मृत्यु तक की अवस्थाओं पर विचार करने पर प्रतीत होता है कि व्यक्ति के सुख का केन्द्र सदा बदलता रहता है। शैशव काल माँ की गोद में, बाल्यावस्था खिलौने में, छात्र जीवन में पुस्तकों में यौवन पत्नी तथा धन संचय में, गृहस्थाश्रम पुत्र में, यश की प्राप्ति में रहता है। गहराई से विचार करने पर पता चलता

है कि जिन चीजों में आनन्द प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। वस्तुतः वे भौतिक पदार्थ आनन्द से रहित हैं। यदि उनमें आनन्द होता तो मन सदा उनमें लीन रहता किन्तु आनन्द प्राप्ति का केन्द्र सतत् परिवर्तित होते रहना इस बात का प्रमाण है कि यह विशेषता भौतिक वस्तुओं में नहीं है।

सुख, आनन्द का केन्द्रबिन्दु आत्मा है जो मनुष्य के अन्दर विराजमान है। वही आनन्द प्राप्ति का भाव प्रेषित करती तथा अपनी आनन्दमय स्थिति का भान कराती है। किन्तु मनुष्य अन्तर्मुखी होकर उसे प्राप्त करने के स्थान पर बहिर्मुखी होकर भौतिक पदार्थों में ढूँढ़ता है। वस्तुओं को सुख का आधार मान लेता है।

अन्तरात्मा की प्रकाश किरणें वस्तुओं में आरोपित होकर सौन्दर्य पैदा करती हैं। जिसके फलस्वरूप उनके प्राप्त करने तथा उनके उपभोग से आनन्द प्राप्त करने का लोग असफल प्रयास करते हैं। कुछ समय तक तो वे आनन्ददायक लगती हैं। किन्तु यह थोड़े समय उपरान्त ही समाप्त हो जाती है। वे निस्सार तथा आकर्षणरहित प्रतीत होने लगती हैं। वस्तुतः अन्तरात्मा की प्रकाश किरणें वस्तुओं से हट जाती हैं, जिसके फलस्वरूप जो कभी सुन्दर आनन्ददायक प्रतीत हो रही थीं वे ही असुखकर लगने लगती हैं।

यह कैसी विडम्बना है कि जीव का उपहासास्पद प्रयास जीवनपर्यन्त चलता रहता है। जीव पृथ्वी पर अवतरित होते ही आनन्दप्राप्ति का प्रयास विभिन्न रूपों में आरम्भ कर देता है। स्वयं आनन्द स्रोत होते हुए भी जीवनपर्यन्त उस अमृतत्व से वंचित रह जाता है। बचपन के खेल-खिलौने, किशोरावस्था के अध्ययन एवं युवावस्था के भोग-विलास से गुजरते हुए थके हुए खिलाड़ी की भाँति अपनी वृद्धावस्था पूरी करता और काल के गर्भ में चला जाता है। आनन्द प्राप्ति का भ्रम पूर्ण, पदार्थवादी प्रयास उसे अपने ही आनन्द स्रोत अन्तरात्मा से दूर रखते हैं। फलस्वरूप मनुष्य विशुद्ध बना रहता है।

आन्तरिक भावों पर ध्यान दिया जा सके तो प्रतीत होगा कि आनन्द का अजस्र स्रोत अन्दर बैठा अपना प्रवाह सप्रेषित कर रहा है। इस प्रकार के भावों के उत्पन्न होते ही कुप्रवृत्तियाँ नष्ट होने लगती हैं। चेष्टाएँ अन्तर्मुखी बन जाती हैं तो भौतिक लालसाएँ नष्ट हो जाती हैं। उनका स्थान दया, करुणा, प्रेम, जैसी सत्प्रवृत्तियाँ ले लेती हैं। प्राणिमात्र के दुःखों को दूर करने में मनुष्य को आनन्द आने लगता है। प्रेम का सतत् प्रवाह चारों ओर बहता दिखायी देता है। इस स्थिति को प्राप्त करने के उपरान्त कोई कामना अवशेष नहीं रह जाती है।

मृग के कस्तूरी के लिए जंगल में भटकते रहने के समान बाह्य-वस्तुओं में आनन्द ढूँढ़ने का अविवेकपूर्ण प्रयास करने की अपेक्षा आवश्यकता इस बात की है कि अपनी चेष्टाओं को अन्तर्मुखी के दर्शन एवं उससे मिलने वाले अजस्र आनन्द के अनुदान को प्राप्त करने के लिए आध्यात्मिक साधनओं का ही अवलम्बन लेना होगा। चेतना अपने उद्गम स्थल पर पहुँचकर सी शान्ति एवं आनन्द की शाश्वत अनुभूति कर सकती है। जीवनपर्यन्त मनुष्य जिसकी प्राप्ति के लिए सांसारिक आकर्षणों में भटकता रहता है, आत्म दर्शन से ही सम्भव है।

आत्म विस्तार-अखण्ड आनन्द का

एकमात्र साधन

आनन्द की उत्पत्ति प्रियता से ही होती है। यह सारा संसार पंचतत्त्वों से बना है। पंचतत्त्वों की स्थिति जड़ है। जड़ता में न तो सुन्दरता होती है, न आकर्षण और न आनन्द। इस प्रकार यह सारा संसार एक प्रकार से असुन्दर एवं अनाकर्षक ही है। तब भी लोगों का मन संसार में लगता है। उसमें आनन्द और सुख की प्राप्ति होती है।

यह बात सही है कि संसार में लोगों का मन लगता है, आनन्द आता है। किन्तु यह बात भी गलत नहीं है कि सन्त को न तो संसार की सब चीजें अच्छी लगती हैं और इन सब बातों में आनन्द ही आता है। किसी को आनन्द केवल उसी विषय अथवा वस्तु में प्राप्त होता है, जो उसे प्रिय होती है। उदाहरण के लिए, परस्पर विरोधी वस्तुएँ होने पर भी किसी को दूध पसन्द आता है, उसे सेवन करने में आनन्द मिलता है और किसी को शराब पीने में। यदि उनमें से किसी एक ही वस्तु में आनन्द होता तो वही एक चीज सबको प्रिय एवं पसन्द होती। लेकिन ऐसा नहीं होता। वास्तविक बात यह है कि जिस मनुष्य की जिस वस्तु में प्रियता संलग्न होती है, वही चीज उसे पसन्द आती है और उसी में आनन्द प्राप्त होता है। इस सारे विवेचन का अन्तिम निष्कर्ष यही निकलता है कि आनन्द और आकर्षण वस्तु अथवा विषय में नहीं बल्कि मनुष्य की प्रियता में होता है।

प्रियता की उत्पत्ति आत्मीयता से होती है। जमीन, जायदाद, घर, मकान, पशु-पक्षी जो भी जब तक अपने रहते हैं उनके प्रति आत्म-भाव बना रहता है। बड़े प्रिय लगते हैं, उनकी सुरक्षा, सुन्दरता और पालन-पोषण में बड़ी रुचि रहती है। उनकी जरा-सी क्षति होते ही हृदय पर चोट लगती है। उन्हें देख-देखकर बड़ा आनन्द मिलता

है किन्तु जब किन्हीं कारणों से वे अपनी वस्तुएँ पराई हो जाती हैं तो आत्मीयता का भाव समाप्त हो जाने से उनके प्रति किसी प्रकार का आकर्षण नहीं रह जाता। उन वस्तुओं के प्रति प्रियता का भाव नहीं रहता और तब उनके टूट-फूट कर मिट जाने पर भी अपने को कोई कष्ट नहीं होता। यदि आनन्द और प्रियता उन वस्तुओं में रही होती तो अवश्य ही अपनी न रहने पर भी उनके प्रति वही प्रियता और आकर्षण बना रहता। आनन्द की उत्पत्ति प्रियता से ही होती है और प्रियता की उत्पत्ति आत्मभाव से।

आत्मीयता में प्रियता की उपलब्धि इसलिए होती है कि आत्मा अपने को बहुत प्यार करता है। जिस वस्तु अथवा विषय में वह अपनी छाया की झलक पाता है वही उसे प्रिय लगने लगती है। अन्य बच्चों की अपेक्षा मनुष्य को अपने बच्चे अधिक प्यारे लगते हैं दूसरे के बच्चे चाहे जितने सुन्दर और सुशील क्यों न हों तब भी वे उतने प्रिय नहीं लगते जितने कि अपने बच्चे। इसका कारण यही होता है कि अपने बच्चे अपनी आत्मा के अंश होते हैं। वे आत्मा का ही एक प्रतिबिम्ब होते हैं। चूँकि आत्मा अपने को प्यार करता है। इसलिये अपने अंश रूप बच्चों को भी प्यार करता है। परमात्मा की तरह निराकार होने पर भी आत्मा बड़ा सुन्दर और आनन्दमय है और उसी की तरह वह अपने स्वरूप को भली-भाँति जानता है। अपनी सुन्दरता, गुण और विशेषताओं से अच्छी तरह परिचित होता है। इसलिए उसका अपने को प्यार करना स्वाभाविक ही है। इसमें किसी प्रकार को प्यार करना स्वाभाविक ही है। इसमें किसी प्रकार की अवगति नहीं है। एक सामान्य मनुष्य जो सुन्दर होता है, गुणी और विशेषतापूर्ण होता है, जब वह भी अपने को प्यार करता है, तब आत्मा तो अलौकिक सुन्दरता और गुणों का निधान होता है। फिर भला वह अपने को प्यार क्यों न करेगा। यही वह नैसर्गिक कारण है, कि जहाँ-तहाँ जिस वस्तु में आत्मा को अपना आभास मिलता है, वहाँ-वहाँ वह उस वस्तु को प्यार करने लगता है और उसी में रसानुभूति और आनन्द पाने लगते हैं।

सौन्दर्य और आनन्द आत्मा का सहज धर्म है। जहाँ-जहाँ तक आत्मा का विस्तार होता जायेगा वहाँ-वहाँ तक सौन्दर्य और आनन्द का विस्तार होता जायेगा। यों तो संसार में न तो आनन्द है और न सुन्दरता। लेकिन आत्मा की उपस्थिति से वह सुन्दर भी भासता है और आनन्दपूर्ण भी लगता है। यदि हम सांसारिक जीवन में वास्तविक रूप में आकर्षण और आनन्द चाहते हैं और इच्छा रखते हैं कि इसके दुख क्लेश और शोक-संताप न व्यापें। सब ओर और सब काल सुख और उत्साह की

ही प्राप्ति होती रहे तो हमें अपनी आत्मा का विस्तार करना होगा। इस दुःखपूर्ण संसार में भी अखण्ड और अर्निवर्चनीय आनन्द की सम्भावना है और उसको प्राप्त किया जा सकता है। इसका प्रमाण हमारे ऋषि-मुनियों का जीवन रहा है। उन्होंने इस तथ्य को समझा कि इस नीरस और नश्वार संसार में जो भी सुख, जो भी आनन्द और जो भी रस है वह सब आत्मा की उपस्थिति से है। इसलिए उन्होंने आनन्द की खोज विषय अथवा वस्तु में न करके आत्मा में करने की बुद्धिमानी की। उन्होंने अपनी इस बुद्धिमता के बल पर आनन्द के आदि स्रोत आत्मा को प्राप्त किया और अपने जीवन में अक्षय और अनन्त आनन्द की स्थापना कर ली। महान ऋषि-मुनियों का आनन्द किसी वस्तु अथवा विषय पर निर्भर नहीं था। वे स्वतः आत्मा से आनन्दित रहते थे, विषय वस्तु के सम्बन्ध में वे इतने निरपेक्ष रहते थे कि सामान्य जीवनयापन के साधन भी उनके पास अपर्याप्त मात्रा में ही रहते थे। तब भी वे पूर्ण सन्तुष्ट, पूर्ण शान्त और पूर्ण सुखी रहते थे। आनन्द का उद्गम स्रोत आत्मा ही है उसी की उपस्थिति से इस संसार में सुख की प्रतीति होती है। सच्चा आनन्द आत्मा को ही प्राप्त करने पर मिल सकता है, दूसरे उपाय से नहीं।

आत्मा के विस्तार का महत्व अकथनीय है। उसकी सफलताएँ अनन्त हैं। इसीलिए विवेकवान व्यक्ति भौतिकता के हाथ न बिककर आध्यात्मिक जीवन को महत्व देते थे। वे बड़े से बड़ा कष्ट सहकर और त्याग करके भी आत्मिक विस्तार के प्रयत्न में संलग्न रहते थे। यह सोचना कि आध्यात्मिक जीवन को प्रमुखता देने पर व्यवहार जगत की अपेक्षा हो जायेगी, गलत है भारतीय आर्ष पुरुष अज्ञानी नहीं थे। वे व्यवहार जगत का महत्व समझते थे और बड़े कुशल व्यवहारवादी थे। अन्तर केवल इतना था कि भौतिकवादी दृष्टिकोण रखने वालों का व्यवहार स्वार्थ पर ही निर्भर रहता था और उनके व्यवहार का आधार हर प्रकार से परमार्थ रहता था। अपने व्यवहार जगत की क्रियाओं को स्वार्थ से हटाकर परमार्थ पर निर्भर कर देने से रंचमात्र भी हित की हानि नहीं होती है। बल्कि जहाँ स्वार्थ पर आधारित हितों के नष्ट हो जाने का भय रहता है, वहाँ परमार्थ पर निर्भर हित सदैव सब प्रकार से सुरक्षित रहता है। परमार्थपूर्ण व्यावहारिक नीति का गृहण सब प्रकार से पवित्र और कल्याणकारी होता है। उससे लोक और परलोक दोनों की सफलता निश्चित होती है।

मनुष्य जब तक स्वार्थ के संकीर्ण दायरे में बन्दी रहता है, तब तक ही दुःख पाता है। संकीर्णता का परिणाम दुःख है। किन्तु जब संकीर्णता से निकलकर

विशालता में प्रवेश करता है तो आनन्द की अनुभूति अनायास ही उसके पास आ जाती है। जब तक मनुष्य स्वार्थ के वशीभूत होकर यह मेरा है, इतना मेरा है, की संकीर्ण भावना से अभिभूत है, उसकी उपलब्धियाँ उसकी भावना के अनुसार सीमित तथा संकीर्ण बनी रहेगी। किन्तु जब वह संकीर्णता के दायरे से निकल कर यह सोचने लगता है कि यह सारा संसार हमारा है इसकी हर वस्तु मेरी अपनी है, संसार के सारे प्राणी परम पिता परमात्मा के नाते मेरे भाई बन्धु हैं। मेरे आत्मीय जन हैं तो सम्पूर्ण संसार पर सकी सम्पूर्ण वसुधा के साथ अपना अधिकार अनुभव होने लगता है और वह अपने इस आत्म-भाव से ही तृप्त यथा सन्तुष्ट हो जाता है। उसकी ऐषणाएँ, तृष्णाएँ, लिप्साएँ एक साथ नष्ट हो जाती हैं, जिसका फल उसे अखण्ड एवं अनिवर्चनीय आत्मसुख के रूप में ही मिलता है। आत्म विस्तार के अनुपात से मनुष्य संकीर्णता के बन्धन से मुक्त होकर व्यापकता की ओर बढ़ता और तदनुसार ही आनन्द तथा तृप्ति पाता चला जाता है।

आत्मीयता के अभाव में आनन्द की उपलब्धि नहीं हो सकती फिर उसके लिए चाहे वस्तुओं के विधान संचय कर लिए जायें या विषयों में आजीवन आकंट निमग्न रहा जाय। इस कुरूप तथा क्लेशपूर्ण संसार में सुख अथवा सुन्दरता कहाँ? यदि सच्चे सौन्दर्य और वास्तविक आनन्द की अनुभूति करनी है तो आत्मा को दिशा में अभियान करना होगा। आत्मा को प्रबुद्ध कर उसको सब और सबके साथ सम्बद्ध करना होगा। अपनी आत्मा का ही सौन्दर्य और उसी की रसानुभूति बाह्य संसार में प्रतिभासित होकर संसार को सौन्दर्य तथा आनन्दपूर्ण बनाती है। यह जड़ संसार न तो अपने में सुन्दर है और न आनन्दपूर्ण। प्रियतम आत्मा का आनन्द छलक-छलककर जब संसार के पदार्थों पर प्रक्षेपित होता है, तभी वे अपने को प्रिय तथा आनन्ददायक अनुभव होते हैं। संसार का कोई पदार्थ कोई व्यक्ति क्यों न हो, उसका प्रिय-अप्रिय लगना उसकी विशेषता पर निर्भर नहीं है। वह अपनी उस निःस्वार्थ आत्मीयता पर निर्भर है, जो उसके साथ सम्बन्धित होती है। इस आध्यात्मिक क्रम को सदा याद रखना चाहिये कि आनन्द की उत्पत्ति प्रियता से, प्रियता की उत्पत्ति आत्मीयता से होती है।

यदि सच्चे सुख और वास्तविक आनन्द की आकांक्षा है तो सांसारिक वस्तुओं अथवा विषयों का नहीं आत्मा की शरण में जाना होगा। उसी की आराधना एवं उपासना से आनन्द की यह आकांक्षा पूर्ण होगी। बाहर संसार में कुछ भी नहीं है। जो भी सुख आनन्द और रूप स्वरूप है वह सब अपने अन्दर और अपनी आत्मा

में ही है। बाह्य संसार में जो रसानुभूति होती है। वह सभी अपने अन्तर की ही छाया मात्र होती है। जिसका आत्मा जितना-जितना स्पष्ट और व्यापक होता जाता है। उसकी छाया भी उतनी ही उतनी गहरी और स्थायी होती जाती है आभास के अनुपात से ही बाहर संसार के पदार्थों में भी उसी के अनुपात से सुख-सौन्दर्य की अनुभूति होती जाती है।

बाह्य वस्तुओं तथा विषयों से आत्मा को सुखी करने का प्रयास गलत है। सही प्रयास यह है कि आत्मा द्वारा उसके विकास और आभास द्वारा बाह्य संसार की विषय वस्तुओं को सुख एवं सौन्दर्य के योग्य बनाना चाहिए। जो कुछ है अपने अन्दर ही है। इसलिए अपने अन्दर, अपनी आत्मा को ही खोजना, समझना, पाना और बनाना चाहिए आत्मा के जागरण, विकास तथा विस्तार के उपलक्ष्य में ही यह कुरूप तथा क्लेश-पूर्ण संसार आनन्ददायक तथा आकर्षक बन सकता है। शाश्वत सुख और अक्षय आनन्द पाने का एक ही उपाय है, वह है आत्मीयता का भाव बढ़ाना। आनन्द की उत्पत्ति प्रियता से और प्रियता की उत्पत्ति आत्मीयता से होती है। जिस दिन मनुष्य का आत्म विस्तार संसार के अणु-अणु से आत्मीयता का सम्बन्ध बना लेगा। उस दिन उसके लिए यह सारा संसार आनन्द और सौन्दर्य का निधान बन जायगा और उसके लिए उसी प्रकार इस अनुभूति की कमी न रहेगी जैसे हमारे ऋषि मुनियों के लिए नहीं रहती थी।

शाश्वत आनन्द का अनुसंधान

आनन्द को पाना चाहते हो तो उसकी ओर कदम बढ़ाओ, लम्बी मंजिल पर एक-एक डग भरते चलने से ही उसकी समीपता का लक्ष्य पूरा हो सकेगा।

इसके लिए किसी साधन कुन्ज में एकान्त साधना की आवश्यकता न पड़ेगी। कर्म को त्यागकर कल्पना लोक में विचरने से कुछ काम न चलेगा। सत्कर्मों में निरत रहकर स्वेद बिन्दुओं के साथ-साथ आनन्द के मणि-मुक्तकों का संचय किया जा सकेगा। प्रभु को भेंट करने योग्य यही सर्वोत्तम हार-उपहार है। उसको सत्प्रयासों में बहने वाले स्वेद सीकरों से गूँथा गया है।

आनन्द की खोज बालकों के भविष्य चिन्तन जैसी काल्पनिकता के आधार पर नहीं हो सकती है। और न बूढ़ों की तरह उसे अतीत की स्मृतियों की चर्चा करते रहकर पाया जाता है। उसके लिए कर्मनिष्ठ तरुणों की तरह वर्तमान से जूझना पड़ेगा। आनन्द गहरे कुएं का जल है, जिसे ऊपर लाने के लिए देर तक प्रबल

पुरुषार्थ करना पड़ता है। मोती लाने वाले गहराई में उतरते और जोखिम उठाते हैं। आनन्द पाने के लिए गोताखोरों जैसा साहस और कुआँ खोदने वालों जैसा संकल्प होना चाहिए।

यदि सचमुच ही आनन्दित रहने की इच्छा हो तो फूलों से कुछ सीखो। वे स्वयं खिलते हैं और जो उधर से निकलता है, उसके होठों को खिलाते हैं। अपना सौरभ उदारतापूर्वक वायुमण्डल में बखेरते हैं। यह नीति अपनाकर कोई भी भीतरी आत्म-सन्तोष और बाहरी सम्मान का भाजन बन सकता है। मधु मक्षि- काएँ अनवरत श्रम करती हैं। वे उसका लाभ नहीं उठाती। उपभोग तो दूसरे ही करते हैं। पर इस श्रम में संलग्न उनकी कर्मनिष्ठा सहज ही आनन्द का उपहार देती रहती है। यदि ऐसा न होता तो दूसरों द्वारा मधु निचोड़ लिये जाने के उपरान्त वे दूसरे दिन फिर क्यों उसी प्रयास में संलग्न होतीं। उद्देश्यपूर्ण सत्कर्मों की प्रतिक्रिया ही आनन्द के रूप में अनुभव की जाती है। जिन्हें सरसता की खोज है, उन्हें इसी राह पर चलना पड़ता है।

आनन्द का चिन्तन बुरा नहीं, पर उसे बीज की तरह गलना और उगना चाहिये अन्यथा नयनाभिराम वट वृक्ष की छाया में बैठकर सरसता का आस्वादन सम्भव न हो सकेगा। ध्यान और योग की अपनी उपयोगिता है, पर उतने भरसे सच्चिदानन्द का सान्निध्य सम्भव नहीं। भगवान का कोई स्थिर रूप नहीं, वे सक्रियता के रूप में गतिशील हो रहे हैं। इस विश्व की शोभा, स्वच्छता जिस दिव्य गतिशीलता पर निर्भर है। हम उसका अनुसरण करके ही प्रभु प्राप्ति के राजमार्ग पर चल सकते हैं। चिन्तन इसके लिये प्रेरणा देता है। लक्ष्य तक पहुँचने के लिए चलना तो पैरों को ही पड़ेगा। भावनाओं में प्राणों की प्रतिष्ठापना कर्मनिष्ठा ही कर्म करती है। सत्कर्मों में निरत हुए बिना आनन्द की अनुभूति आज तक किसी को भी नहीं हो सकी है।

नीरसता क्या है? निष्क्रियता, उद्विग्नता क्या है? अनर्थ में अभिरुचि। हमारे जन्मजात आनन्द अधिकार को इन दोनों ने ही छीना है। जीवन नीरस लगता है। क्योंकि सत्प्रयोजन की दिशा में हम निष्क्रिय बने रहते हैं। हम उद्विग्न रहते हैं क्योंकि अकर्म और कुकर्म करके आत्मा को चिढ़ाते और बदले में चपत खाते हैं। यदि आनन्द अभीष्ट हो तो निरानन्द की दिशा में चल रही अपनी दिगभ्रान्त यात्रा का क्रम बदलना पड़ेगा। एक क्षण के लिए रुकें और देखें कि जो चाहते हैं उसे पाने की दिशा और चेष्टा सही भी है कि नहीं। चिन्तन के फलस्वरूप आनन्द की प्राप्ति का जो माहात्म्य बताया गया

है, उसका आधार यही है कि वस्तुस्थिति को नये सिरे से समझें और जीवन-नीति का नये सिरे से निर्धारण करें।

आत्मानुसंधान देगा सहजानन्द

‘आनन्द’ अध्यात्म की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। जो व्यक्ति इसे प्राप्त कर लेता है, उसकी अवस्था आध्यात्मिक दृष्टि से कफ़ी उच्च मानी जाती है। इस आनन्द का उद्घाटन हर एक में हो सकता है। पर सर्वसामान्य में इसका निमित्त कोई दूसरा होता है, इसलिए वह क्षणभंगुर है और भौतिक भी, जबकि आध्यात्मिक आनन्द चिरस्थायी और अभौतिक अर्थात् आत्मिक है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित है कि बाह्य वस्तुओं में हमें जहाँ-जहाँ, जब-जब सुख की अनुभूति होती है, वह वस्तुतः हमारे अंतः के आनन्द की ही छाया मात्र है, क्योंकि बाहरी उपादानों में सुख कभी होता नहीं। जो होता है, वह मात्र दुःख है। यदि भौतिक पदार्थ आनन्द के स्रोत रहे होते तो जिस चीज से एक को प्रसन्नता मिलती है। दूसरे के लिये भी वह उत्पुल्लतादायक ही होनी चाहिए थी। पर दैनिक जीवन में जो अनुभव होते हैं। वह इसके ठीक विपरीत हैं। देखा जाता है कि जो सामग्री हमारे जीवन में सुख और शान्ति बनकर आती है, दूसरे के लिए वही महान दुःख का कारण बन जाती है। जड़ पदार्थ सचमुच ही यदि प्रसन्नता के उद्गम हैं, तो आकुलता विपन्नता का निमित्त उन्हें क्यों बनना चाहिए। यदि बनते हैं, तो निश्चय ही समझने में कोई भूल हुई और हम कुछ के कुछ मान बैठे हैं। कुत्ता सुखी हड्डी चबाता है तो समझता है कि खून हड्डी से निकल रहा है। वह जोर-जोर से चूसता है और आनन्दित होता रहता है। जबकि वास्तविकता यह है कि रक्त उसके जबड़ों से निकलता रहता है। उसे वह अस्थि से बाहर आता मान चबाता रहता है। रस उसे मिलता है, यह सत्य है, पर आस्वादन उसके अपने ही रस-रक्त का है, हड्डी का नहीं-अन्दर का है, बाहर का नहीं। पानी से यदि प्यास बुझती है तो उससे सबकी बुझनी चाहिए, ऐसा नहीं कि किसी की बुझे और किसी की नहीं। कोई यदि यह कहे कि सभी की तो बुझती है, पर वह अतृप्त बना रहता है, तो इसमें त्रुटि उसकी अपनी है, पानी की नहीं।

आत्मगत सत्य और वस्तुगत सत्य में यही अंतर है। एक से सम्बन्धित सत्य की उपलब्धि दूसरे में नहीं की जा सकती और न यही संभव है कि एक सच दूसरे का पर्याय बने। द्रव्य का गुण आत्मा में ढूँढ़ना बेईमानी है और आत्मा का धर्म पदार्थ और संसार में तलाशना

नासमझी। संसार में सौन्दर्य भरा पड़ा है। कोई उसको निहार कर गद्गम होता रहता है, जबकि दूसरे को उससे वह सुख नहीं मिल पाता। यदि सौन्दर्य है, तो इसकी खोज करने वाले प्रत्येक अन्वेषक को इससे सुख मिलना चाहिए, पर ऐसा कहीं होता है। जिस सौन्दर्य से भोग और विलासिता से हमें आनन्द मिलता है, उसी से कोई 'बुद्ध' भाग खड़ा होता है, विरागी बन जाता है। यदि सौन्दर्य सच्चा है, तो यह विरोधाभास नहीं दिखाई पड़ना चाहिए। कोई नयनाभिराम सौन्दर्य के बीच रहकर भी अतृप्त बना रहता है, जबकि दूसरा घोर नरक जैसी परिस्थितियों में भी स्वर्गीय सुख की प्रतीति करता है। आखिर ऐसा क्यों?

गहराई से विचार करने पर यही ज्ञात होता है कि जिस शाश्वत संतोष की तलाश हम बाहर करते रहते हैं। वस्तुतः वह अन्दर की वस्तु है। बाहर यदि उसकी अनुभूति होती है, तो वह भी भीतर का ही विस्तार है। जैसे-जैसे हम गहराई में प्रवेश करते चलते हैं। वैसे-वैसे इस तथ्य की अनुभूति और अधिक स्पष्ट होती जाती है। हम सुख को बाहरी वस्तुओं में ढूँढ़ना चाहते हैं। सुख वहाँ है नहीं, इसलिए दुख भोगना पड़ता है। इतना जानते समझते हैं हुए भी व्यक्ति आज संसार में साधनों के पीछे शांति के लिए भागता फिर रहा है। कोई इसे किसी चीज में खोजने का प्रयास कर रहा है तो दूसरा किसी अन्य विषय में इसके अन्वेषण का प्रयत्न कर रहा है। सभी प्रयत्नशील हैं, पर आज तक इनमें से कोई भी इस सनातन सुख को उपलब्ध कर पाने में सफल न हो सका। पत्नी सोचती है कि उसे पति में सुख मिलेगा और पति सोचता है कि वह इसे पत्नी से प्राप्त कर लेगा। माँ, बेटे में सुख ढूँढ़ रही है, जबकि बेटे को इसकी तलाश माँ में है। पिता, पुत्र में-पुत्र पिता में, संसारी, संसार में और वैरागी विराग में इसे अपने-अपने ढंग से खोज रहे हैं। पर उनकी अब तक की यह खोज यात्रा पूरी न हो सकी है और न भविष्य में पूरी होने की आशा है, क्योंकि जिन्हें हम सुख का स्रोत मान बैठे हैं, वे इसके उद्गम हैं नहीं।

आश्चर्य तो तब होता है, जब यह विदित होता है कि जिनमें हमें शान्ति की तलाश है, वे इसकी खोज कहीं अन्यत्र कर रहे हैं। शरीर उनका कुछ कर रहा है, मन कुछ और ढूँढ़ रहा है। शरीर कहीं है और मन कहीं और है। अधिकांश व्यक्तियों की आज ऐसी ही स्थिति है। वे अपने में होते नहीं। उनका शरीर यन्त्रचालित सा चलता रहता है। काम करता रहता है। किन्तु संपूर्ण आपा वहाँ उपस्थिति नहीं होता। इसलिए उनसे भेंट सम्पूर्ण रूप से होती नहीं। मिलन मात्र शरीर से हो पाता है। जो

मन-प्राण के बिना अधूरा है। जो तृप्ति का अन्वेषण बाह्य विश्व में करते रहते हैं, उनकी सत्ता हर वक्त अधूरी बनी रहती है। ऐसे लोगों को थोड़ी भी ठोकर लगती है तो एकदम असंतुलित होकर गिर पड़ते हैं और फिर गिरते ही चलते हैं। गिरने पर या तो आत्महत्या कर लेते हैं या फिर पागल हो जाते हैं। जो तनिक बुद्धिमान हैं वे नाम मात्र के वैरागी बन कर इधर-उधर भटकने लगते हैं। यही कारण है कि इन दिनों विक्षिप्तों, अर्ध विक्षिप्तों और वैरागी कहे जाने वाले वेशाधारियों की संख्या कुकुरमुत्तों की तरह द्रुतगति से बढ़ती ही जा रही है, क्योंकि वर्तमान में लोगों की यात्रा भीतर से बाहर की ओर हो गई है, जबकि होना इसके विपरीत चाहिये।

कभी यही स्थिति भर्तृहरि के समक्ष भी उपस्थिति हो गई थी। उनका विश्वास था कि संतुष्टि बाहरी विषय-वासनाओं द्वारा संभव है। इसकी प्राप्ति के लिए न जाने वे कितने मार्गों में, विषयों में, वासनाओं और स्थानों में भटकते रहे, कुछ कहा नहीं जा सकता।

हर जगह उन्हें निराशा हाथ लगी, फिर भी वे हताश नहीं हुए। एक सामान्य व्यक्ति और उनमें यही मूलभूत अंतर था। वे सजग रहते हुए अन्वेषक भाव से उस बात की पुष्टि कर लेना चाहते थे, जिसमें आनन्द को संसार में बिखरा बताये गया। आरंभ में कुछ क्षण तो उन्हें बताया गये विषयों और वस्तुओं में आनन्द तो मिला, पर चिरस्थायी न रह सका। फिर दूसरे, तीसरे और चौथे में उनकी खोज आरम्भ हुई। हर बार स्थिति एक जैसी अनुभव हुई। इस प्रकार भटकाव भरी लम्बी जिन्दगी के उपरान्त उनमें जिस पुस्तक की रचना की, उसका नाम है— "श्रृंगार शतक" इस पुस्तक में उन्होंने बाह्य जगत में सुखोपलब्धि की व्यर्थता का विस्तार से उल्लेख किया है। इसके बाद उनकी अंतर्यात्रा शुरू हुई। इसके अनुभवों को अपने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "वैराग्य शतक" में लिपिबद्ध किया है और बताया है कि स्थिर आनन्द की उपलब्धि आंतरिक एवं मात्र आंतरिक है। लगभग मिलता-जुलता भाव प्रकट करते हुए मूर्धन्य मनीषी जुंग ने अपनी पुस्तक "मॉडर्न मैन इन सर्व ऑफ ए सोल" में कहा है कि आरंभ में मनुष्य सम्बन्धी मान्यता यह थी कि वह मात्र एक शरीर है और यह संसार उसके उपभोग के निमित्त है। ऐसी स्थिति में वह तृप्ति का संधान साधन-सामग्रियों में करता था और उसी के अधिकाधिक भोग में लिप्त रहता था। इसमें कइयों को संतुष्टि अनुभव हो भी जाती थी और कई अशांत बने इधर-उधर शांति की तलाश में करते रहते थे। अब जबकि शरीर के अन्दर आत्मा की उपस्थिति को विज्ञान ने भी करीब-करीब स्वीकार लिया है, संभव है उसकी उपलब्धि से व्यक्ति को संपूर्ण सुख की

उपलब्धि हो जाय और उसे पहले की तरह निरर्थक भटकना न पड़े। इसीलिये वे सलाह देते हुए कहते हैं कि यदि सचमुच ही मनुष्य के अन्दर वैसा कोई अदभुत तत्व है, जिसकी प्राप्ति ही चरम प्राप्ति साबित हो और जिसके उपलब्ध हो जाने से सब कुछ उपलब्ध हो जाता हो, तो मनुष्य को उसी परम तत्व की शोध में जुट जाना चाहिए।

“स्त्रिचुअल क्राइसिस ऑफ मैन” नामक ग्रंथ में विख्यात विचारक पाल ब्रण्टन लिखते हैं कि अध्यात्म की खोज वस्तुतः अपने ही अन्दर की खोज है, जबकि संसार जड़ पदार्थों के अनुसंधान की यात्रा है। विज्ञान जड़युक्त है। अध्यात्म चेतनायुक्त है। जड़ में जड़ की ही शोध की जानी चाहिए। उससे जो कुछ हस्तगत होगा, वह जड़वत् होगा, जबकि आनन्द चेतनामय है। यह आत्मा का गुण है। आत्मा चैतन्य है, अस्तु इसे प्राप्त कर ही उस अवस्था में प्रतिष्ठित हुआ जा सकता है, जिसे भारतीय अध्यात्म में “सच्चिदानन्द” कहकर निरूपित किया गया है। वे लिखते हैं कि इन दिनों भूल यह हो गई कि हम जड़ में चेतना को ‘आत्मा को खोजते’ फिर रहे हैं। परा प्रकृति को अपरा प्रकृति में ढूँढ़ रहे हैं, जबकि दोनों दो पृथक् विज्ञान हैं। जिस दिन यह निरर्थक प्रक्रिया बंद होगी, उसी दिन से मनुष्य की वास्तविक आध्यात्मिक यात्रा शुरू होगी। फिर उसे शांति और संतोष के लिए बाहर भटकना नहीं पड़ेगा।

इसके लिए उपाय यही है कि हम उपलब्ध साधनों में ही संतुष्ट रहें और धीरे-धीरे संतोष को बढ़ाते हुए साधन को घटाते चलें तो एक दिन उस अवस्था में पहुँच सकते हैं। जिसको “सहजानन्द” कहा गया है। शुरूआत यदि इससे उलटी हुई अर्थात् साधन को बढ़ाया और संतोष को घटाया गया, तो वह त्रासदायी अवस्था आ पहुँचेगी, जो आजकल चारों ओर छापी दिखाई पड़ती है। प्रथम स्थिति में हमारी यात्रा अंतर्जगत की ओर होती है। जबकि दूसरी अवस्था हमें बहिर्जगत की ओर ले जाती है। प्रथम सुखदायी है, दूसरी दुःखदायी। इस अर्थ में कि यदि हम बाहरी दुनिया और उसकी वस्तुओं से अपना सुख जुड़ा मानते हैं। तो उसके दुख भी हमसे संलग्न होते चले जायेंगे। यह पंचभौतिक विश्व नश्वर है। उसकी एक-एक चीज नाशवान है। हमारा मोह जिससे संयुक्त है, वह भी एक-न-एक दिन समाप्त होगा ही। इसीलिए तत्ववेत्ताओं ने प्रेम की वस्तु परमात्मा को बतलाया है। हमारी आत्मा उसी का अंशधर है। योग द्वारा आत्मा के माध्यम से परमात्मा को उपलब्ध करना ही अध्यात्म का उद्देश्य है। सर्वोच्च शांति एवं परमानन्द इसी अवस्था में

प्राप्त की जा सकती है। इसी के निमित्त हमारा प्रयत्न होना चाहिए।

अन्तःकरण की पुकार अनसुनी न करें

परमात्मा हमसे निरन्तर बात करना चाहता है—करता है—पर एक हम हैं जो उसकी स्नेह भरी वाणी सुनने तक से इन्कार करते रहते हैं। परमात्मा का सबसे निकटवर्ती निवास-स्थान हमारा अन्तःकरण ही है। वहाँ बैठकर वह हमारे हित का कल्याण का परामर्श निरन्तर देता रहा है। वह चाहता है उनका परमप्रिय पुत्र उसी के जैसा महान बने, अपनी महान गरिमा का परिचय दे और उसी तरह सत्-चित् आनन्द की अनुभूति का निरन्तर रसास्वादन करता रहे जैसा कि यह स्वयं करता है।

यदि ध्यानपूर्वक सुना तो प्रतीत होगा कि कोई अविज्ञात देव सत्ता हमारे अन्तःकरण में से ऐसी उमंगें उत्पन्न करती रहती है जिनमें देवत्व की ओर बढ़ चलने के स्पष्ट संकेत होते हैं। मनुष्य जीवन की गरिमा का, आत्मा के उच्चस्तर का बोध हो सके इसके लिए आवश्यक प्रकाश हृदय गुफा में निरन्तर टिम-टिमाते रहते हैं ताकि हम अपनी सत्ता और महत्ता के सम्बन्ध में यथार्थता से परिचित हो सकें हम क्षुद्र प्रयोजनों के लिए नहीं जन्मे हैं। कीट पतंगों से हमारी स्थिति कहीं ऊँची है उसी अनुपात से हमारा कार्यक्षेत्र एवं उत्तरदायित्व भी अत्यधिक है। कृमि-कीटक और पशु-पक्षी, पेट और प्रजनन की सीमित परिधि में आबद्ध हेय जीवन जीकर सन्तुष्ट रह सकते हैं, पर यदि मनुष्य ने भी उतनी ही संकीर्ण सीमा में मरना, खपना अंगीकार कर लिया तो फिर समझना चाहिए कि उस पर किया गया ईश्वर का विशेष परिश्रम निरर्थक ही चला गया।

ईश्वर ने मनुष्य को बड़े-बड़े स्वप्नों और अरमानों की पूर्ति के लिए बनाया है। प्रभु के सहायक के रूप में, सृष्टि में शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्धन करने के लिए मानव प्राणी का आविर्भाव हुआ है। शासन-सत्ता का केन्द्र राजा में निहित होता है। पर शासकीय सुव्यवस्था का उत्तरदायित्व तो मन्त्री तथा अधिकारी लोग ही वहन करते हैं। इसी प्रकार ईश्वर, सृष्टि का सूत्रधार अवश्य है। पर उसके सुसंचालन का कार्य उसने मनुष्य को ही सौंपा है। जो साधन अन्य किसी प्राणी को नहीं मिले वे केवल मनुष्य को इसीलिए दिये गये हैं कि उनकी सहायता से अपना प्रयोजन ठीक तरह पूरा कर सके। मंत्रिपरिषद के सदस्यों को मोटर, बँगला, सहायक कर्मचारी, टेलीफोन आदि के सुविधा-साधन तथा अतिरिक्त अधिकार इसीलिए

प्रदान किये जाते हैं कि वे सौंपे गये कर्तव्यों का निर्वाह उन उपकरणों की सहायता से अधिक अच्छी तरह कर सकें।

ईश्वर अन्तःकरण में बैठा हुआ अपनी मंद किन्तु स्पष्ट वाणी से उन तथ्यों का स्मरण कराता रहता है। जो मानव जीवन के साथ विशेष रूप से जुड़े हुए हैं। टेलीफोन की आवाज तब सुनाई देती है जब चोंगा कान पर लगाया जाय यदि चोंगा उठाकर दूर रख दिया जाय तो उससे आने वाली आवाज सुनी न जा सकेगी। अन्तःकरण एक तरह का ईश्वरीय टेलीफोन है। उसे समीप रखकर यदि ध्यानपूर्वक सुना जाय तो वहाँ ऐसे संकेत, निर्देशों की तरंगें निरन्तर उठ रही होंगी जो मनुष्य जन्म के साथ जुड़े हुए महान उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के लिए परामर्श देते हैं और सचेत करते हैं कि इस संदर्भ में उपेक्षा करते रहने से भयंकर अनर्थ का सामना करना पड़ेगा।

जो अनुदान अन्य किसी प्राणी को नहीं मिले, वे यदि मनुष्य को अकारण या अनायास ही दिये गये होते तो यह ईश्वर का अन्याय और पक्षपात ठहरता। हम सामान्य मनुष्य भी अपने बालकों को समान प्यार देने का प्रयत्न करते हैं। कूकरी और शूकरी तक अपने सभी बच्चों को समान उदारता से दूध पिलाती है। फिर ईश्वरीय सत्ता इतनी निर्दय कैसे हो सकती थी कि एक ही जाति के प्राणी को बोलने, सोचने, कमाने, उपभोग करने के अनेकानेक सुखद साधन प्रदान करे और शेष प्राणियों को उन सुविधाओं से सर्वथा वंचित कर दे। निस्संदेह परमेश्वर को सभी प्राणी समान रूप से प्यारे हैं, और उसने शरीर यात्रा के आवश्यक साधन सभी को समान रूप से प्रदान किये हैं। मनुष्य को जो अतिरिक्त मिला है वह तो विशुद्ध रूप से एक अमानत है।

बैंक के खजांची भी तो बैंक की विपुल सम्पदा अपने अधिकार में रखते हैं; पर वे उसका उपयोग बैंक के कार्य में ही करते हैं। उस सम्पत्ति को अपनी व्यक्तिगत समझलें और निजी सुविधा के लिए खर्च कर डालें तो उस अपराध में उन्हें कठोर कारावास भुगतना पड़ेगा। मनुष्य को मिला विशेष वैभव एक पवित्र धरोहर है जो लोक मंगल में नियोजित करने के लिए दी गई है। ईश्वर ने अपने ज्येष्ठ पुत्र पर यह विश्वास किया है कि उसे जो वस्तु जिस काम के लिए दी गई है वह उसी में खर्च करेगा। यदि ऐसा न करके उस सम्पदा को मनुष्य अपनी विलासिता, अहंता की पूर्ति में खर्च करने लगे, वासना और तृष्णा के क्षुद्र प्रयोजनों में नष्ट कर

डाले तो समझना चाहिए कि अनर्थ ही किया गया है और न्यायाधीश की प्रताड़ना से बचा न जा सकेगा।

अन्तःकरण में विराजमान परमेश्वर निरन्तर यही संकेत करता है कि जीवन सम्पदा के बहुमूल्य क्षण घटते चले जा रहे हैं, दीपक का तेल शनैः-शनैः चुकता जा रहा है। जो किया जाना था वह नहीं किया गया-इस भयावह भूल का समय रहते परिमार्जन कर लिया जाय अन्यथा कष्टकर पश्चात्ताप के अतिरिक्त और कुछ शेष न रह जायेगा। यह चेतावनी आसानी से सुनी जा सकती है कि मनुष्य जीवन इन्द्रिय लिप्सा और तृष्णा की बाल-क्रीड़ा में गँवा नहीं दिया जाना चाहिए। इसका वह उपयोग होना चाहिए जिसका अरमान लेकर सृजेता ने इस दिव्य अनुदान को उदारता पूर्वक प्रदान किया था। मनुष्य को विश्वस्त समझा गया है, इसीलिए इतनी बहुमूल्य अमानत उसके हाथ में थमा दी गई है। विश्वासघात की आशंका रही होती तब तो वह मिला ही न होता जिसे पाकर हम गर्वोन्मत्त हो रहे हैं और वह कर रहे हैं जिनके करने की कुछ भी आवश्यकता न थी।

जब हम अपने मस्तिष्क में उच्चस्तरीय विचारों को भरते हैं और हृदय में उच्च भावनाएँ सँजोये रहते हैं तो प्रतीत होता है अन्तःक्षेत्र में एक सन्तोष भरा निर्झर प्रवाहित हो रहा है। जब हम सत्कर्म-परायण होते हैं, पेट और प्रजनन के पशु-क्षेत्र से आगे बढ़कर परमार्थ प्रयोजन में निरत रहते हैं। तब अन्तःकरण की शान्ति एवं शीतलता देखते ही बनती है। लगता है अपना आपा सहस्र भुजाएँ उठाकर आशीर्वाद दे रहा है, सद्भावनाओं और सत्त्ववृत्तियों में जितने समय निमग्न रहा जाय उतने समय तक यह प्रतीत होता रहेगा मानो देवताओं द्वारा पुष्प वृष्टि की जा रही है और अमृत में स्नान करने की तरह अपना रोम-रोम पुलकित हो रहा है। कर्तव्य-पालन और सेवा साधन के लिए भले ही कष्ट उठाया गया है-भले ही हानि सही गई हो, अन्तःक्षेत्र में यही अनुभूति होती रहे मानो कोई बड़ा लाभ कमा लिया गया।

जब हम दुष्कर्म करते हैं तो पैर काँपते हैं, गला सूखता है, दिल धड़कता है यह आत्म-प्रताड़ना है जो भीतर ही भीतर कोंचती-कचोटती है। अवांछनीय स्वार्थ सिद्ध करके कोई भी चैन से नहीं बैठ सकता उसके भीतर ही विद्रोह की आग भड़केगी और लगेगा अन्तःक्षेत्र में देवासुर संग्राम छिड़ गया। असुर हमें पाप कर्म की ओर खींचता है इसके विपरीत देवता का आग्रह होता है कि कुमार्ग का अनुसरण करके विनाश के गर्त में न गिरा जाय न आत्म-गौरव का हनन किया जाय। जब तक हम अनौचित्य का परित्याग न करेंगे आन्तरिक विद्रोह के

कारण उत्पन्न घोर अशान्ति से छुटकारा न मिल सकेगा। प्रतीत यही होता रहेगा कि हम तुच्छ को पाने के लिए महान को बर्बाद करते चले जाने वाले पतित स्तर के नर-पशु बन रहे हैं। मानवी सौभाग्य से वंचित होते चले जा रहे हैं।

अन्तःकरण की वाणी सुनें, उसके परामर्श पर चले तो समझना चाहिए ईश्वर के स्नेह, दुलार का समझना, स्वीकार करना हमने सीख लिया। सर्वतोमुखी श्रेय प्राप्त करने के लिए एकमात्र यही राजमार्ग है।

प्रभु दर्शन की पूर्व-भूमिका

भगवान की कृपा मनुष्य पर बरसी या नहीं। इसकी पहचान क्या है? इस सम्बन्ध में ईश्वर विश्वासियों की इच्छा निरन्तर बनी रहती है। कई सोचते हैं कि ईश्वर जिस पर प्रसन्न होते हैं, उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा, आदि के रूप में उनके सामने आ खड़े होते हैं। साथ ही यह भी कहते हैं कि “वरदान माँग” अर्थात् “इच्छित मनोकामना को पूरी कराने के लिए जो सहायता चाहता हो उसे कह और लो” मोटी धारणा यही है।

कई हृदयाकाश में प्रकाश ज्योति का दर्शन करते हैं। समाधिस्थ एकाग्र हो जाते हैं। वैराग्य धारण करके ऐसा सोचते हैं कि संसार को कुटुम्ब परिवार को भवबन्धन समझकर उन्हें त्याग दिया तो जीवन-मुक्त हो गये। जन्ममरण के बंधन से छूट गये। कई ‘सोदम’ साधना में श्वास के साथ चलने वाली आवागमन की ध्वनियों को सुनते हैं। कड़ियों को कान बन्द कर लेने पर घंटा, शंख, मृदंग, मंजीर गर्जन आदि के शब्द सुनाई पड़ते हैं और लगता है कि ईश्वर के सांकेतिक वचन सुन रहे हैं। उसका अर्थ समझने लगेंगे तो त्रिकालदर्शी बन जायेंगे।

कुछ को षट्चक्रभेदन की कल्पना उभरती रहती है। चिर सेवित कल्पना भावना बन जाती है। इस भावना की मस्ती में वे चक्र आदि प्रगाढ़ ध्यानावस्था का पुट लगाकर यथार्थवत् दीखने लगते हैं। वस्तुतः वे सूक्ष्म शरीर में अवस्थित हैं। स्थूल शरीर में जहाँ-तहाँ नाड़ी गुच्छक ही हैं। उन्हें सूक्ष्म शरीर में चक्रों की उपस्थिति बताने वाले संकेत भर कहा जा सकता है। प्लेक्सस को ही चक्र मान लेना उचित नहीं।

ध्यान के लिए शरीर के भीतर ही कई महत्वपूर्ण स्थान हैं, जिनमें सघन एकाग्रता की साधना करके कई प्रसुप्त पड़े केन्द्र के सूक्ष्म प्राण को जगाया जा सकता है। मस्तिष्क के मध्य में सहस्रदल कमल है। उसे विष्णु

भगवान की शेष शैया की अलंकारिक महत्ता दी गयी है। उसी को कैलाश मान-सरोवर की भी उपमा दी गयी है। मस्तिष्क के ग्रे मैटर रूपी समुद्र में जहाँ-तहाँ पड़े नाभिक केन्द्र रूपी द्वीप भी होते हैं। जिनकी जागृति परामानसिक शक्तियों को जन्म देती है। मस्तिष्क में भरे द्रव्य सी० एस० एफ० को ही विष्णु भक्त क्षीरसागर की उक्ति देते हैं।

ध्यान की परिपक्वावस्था में यह सहस्रार कमल और ब्रह्मरंध्र शिव या विष्णु का निवास स्थान प्रतीत होता है। इस प्रतीति को श्रद्धा के समन्वय से और भी अधिक प्रगाढ़ बनाया जा सकता है। मस्तिष्क मध्य हृदय भाग और नाभि मध्य में ब्रह्म ग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि एवं शिव ग्रन्थि भी है, जिनके संबंध में कहा जाता है कि इन गाँठों के बंधनों में जीव बँधा है। यदि उन्हें खोला जा सके तो मुक्ति मिल सकती है।

नादयोग और सोहम् साधना के विषय में भी उनके बड़े-चढ़े माहात्म्यों की चर्चा की जाती है। कुण्डलिनी जागरण भी ऐसा ही प्रसंग है, जिसकी उपमा ज्वालामुखी फटने से दी जाती है। इतना सब होते हुए भी साधारणतया साधना क्षेत्र को जिज्ञासुओं में यही भ्रम बना रहता है कि यह शक्ति केन्द्र स्थूल शरीर में विद्यमान है और ध्यान, मर्दन, योगासन आदि करने से यही स्थान अपना चमत्कारी प्रतिफल दिखाने लगते हैं।

इस भ्रम से जितनी जल्दी उबरा जाय उतना ही उत्तम है। शरीर के अंग-अवयवों की संरचना और कार्य पद्धति काय विज्ञानी भली प्रकार जानते हैं। इस जानकारी के सम्बन्ध में कोई भ्रम हो तो उसे किसी मृत शरीर के शल्य क्रिया करके जाना जा सकता है। विशेषज्ञों के मतानुसार यह भी समझा जा सकता है कि किस अवयव की कार्य-पद्धति क्या है और उनमें क्या-क्या गुण-दोष उत्पन्न होते रहते हैं या हो सकते हैं इस कथन और अध्यात्मिक विवेचन का परस्पर कोई तालमेल नहीं खाता। आध्यात्म का आरम्भ सूक्ष्म शरीर से होता है। स्थूल शरीर तो रक्त, माँस, अस्थि, मज्जा आदि का समुच्चय है। वह तनिक सी बीमारी के चोट के आघात से कुम्हलाते, तिलमिलाते देखा गया है। वृद्धावस्था की जीर्णता भी ऐसी होती है। जिसमें कई साधनाएँ संभव नहीं रहतीं। आँख में दृष्टि दोष आने पर त्राटक नहीं हो सकता। कान में बहरापन छा जाने के उपरान्त नादयोग की साधना सम्भव नहीं। इसी प्रकार मनोबल घट जाने पर ध्यान की स्थिति अस्तव्यस्त जैसी रहने लगती है। घुटने जकड़ जाने पर वे पूरी तरह खुलते नहीं। ऐसी दशा में विभिन्न प्रकार के आसन लगाना असम्भव हो जाता है।

कमर झुक जाने पर वे प्राणायाम नहीं हो सकते, जिनके लिए कमर सीधी रखने की आवश्यकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि युवावस्था के नीरोग शरीर में ही शरीरगत साधनाएँ बन पड़ती हैं।

इन कठिनाइयों के रहते यह नहीं कहा जा सकता कि साधना का उपयुक्त काल तो आयुष्य की चौथी अवस्था में है। इसीलिए चतुर्थ आश्रम बनाया गया है, यह कहाँ तक ठीक है। यदि स्थूल शरीर ही साधना केन्द्र रहा होता तो बालकपन ढलती आयु-वृद्धावस्था से घिरा हुआ जीवन निरर्थक चला जाता। मात्र तरुणार्ध ही इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त काल माना जाता है। किन्तु बात ऐसी नहीं है। ध्रुव के बालकपन में, च्यवन ने वृद्धावस्था में, आद्य शंकराचार्य ने भगंदर के फोड़े से ग्रसित रहते हुए रुग्णावस्था में भी कठोर साधनाएँ की थीं। समाधि अवस्था में तो शरीरगत स्पंदन अधिकतम रुक जाते हैं। ऐसी दशा में शरीर के किन्हीं अंग विशेषों को प्रभावित करने की प्रक्रिया कैसे चल सकती है। वह तो मृत मूर्च्छित जैसी स्थिति होती है।

इन समस्त तथ्यों पर ध्यान देने से प्रतीत होता है कि स्थूल शरीर द्वारा उच्चस्तरीय साधनाएँ बन पड़ना असंगत है। वह तो सूक्ष्म शरीर में समाहित दिव्य केन्द्रों द्वारा ही बन पड़ती है। इसलिए उसे शरीर के साथ गुँथा नहीं रहने देना चाहिए। उसका शरीराभ्यास घटाना या मिटाना चाहिए। इसी उपाय से शरीर इस लायक बन पाता है कि वह समयानुसार सूक्ष्म शरीर को आवश्यक छूट देकर उसे साधनारत रह सकने की सुविधा प्रदान कर सके। लोभ, मोह और अहंकार के बंधनों को हथकड़ी-बेड़ी तक की उपमा दी जाती है। इन बंधनों के पूरी तरह कसे रहने पर सूक्ष्म शरीर के लिए इतना संकट भय नहीं रहता कि वह शरीर बोध से विरत होकर अपनी स्वतंत्र सत्ता में विकसित हो सके और उन उच्चस्तरीय साधनाओं का अभ्यास कर सके, जिन से दिव्य क्षमताओं, दिव्य विभूतियों की प्राणी को उपलब्धि होती है।

शरीर के स्वस्थ रहने से मन स्वस्थ रहता है और सोपे गये दायित्वों को पूरा कर सकता है। इसलिए उचित है कि साधना के प्रथम सोपान में प्रवेश करते हुए काया को बलिष्ठ और नीरोग रखा जाय इस प्रकार के नियमों का पालन, उपायों को अपनाकर साधना का प्रथम चरण कहा गया है। संयम, ब्रह्मचर्य, आहार-विहार की संतुलित, सात्विकता का अपनाया जाना आवश्यक है ताकि शरीर की नीरोगता और मन की सौम्यता अभ्युन्न रहे। राजयोग के आठ सोपानों में से प्रथम यम और नियम इसी निमित्त है कि शारीरिक सात्विकता अपनाकर चौथाई

योगाभ्यास किया जा सके। इसके बिना मन के कषाय-कल्मष न घटते हैं न मिटते हैं। साथ ही चंचलता भी उद्वेगों से भरी होती है। वह ध्यान धारणा की प्रधान बाधा है। आसन प्राणायाम में शारीरिक क्रियाओं को जितना करना पड़ता है। उनसे अधिक मनोयोग का नियोजन करना पड़ता है। मन यदि सांसारिक ताना-बाना बुनने में व्यस्त और मस्त रहे तो किसी समय विशेष पर एकाग्रताजन्य ध्यान धारणा में लगाना कठिन होता है। आकाश में उड़ते पंछी को हाथ पसारकर कैसे पकड़ा जाय? जाल में तो उसे तभी फँसाया जा सकता है जब जमीन पर बैठा हो। शरीर को सौम्य सात्विक और मन को सुसंस्कारी बना लेने के उपरान्त ही यह सम्भव है कि मन शान्ति का आश्रय लेने लगे और निर्धारित धारणा में किसी प्रकार जमे। इसलिए जहाँ तक शरीर साधना का सम्बन्ध है वहाँ तक समग्र संयम की साधना का ही पूर्वाद्ध समझा जा सकता है। उत्तरार्द्ध इसके उपरान्त ही सध पाता है। सूक्ष्म शरीर में जिन ऋद्धि-सिद्धियों के रत्न भण्डार भरे हुए बताये गये हैं। उन तक साधक की पहुँच तभी हो पाती है जब वह शरीर को साधने की प्राथमिक आवश्यकता पूरी करले, संयम साध ले। आहार-विहार में सात्विकता का समावेश कर ले। मन को सुसंस्कारी बनाले। उसमें घुसी हुई कीचड़ को तृष्णा लिप्सा, वासना, अहंता को निरस्त करके सच्चे अर्थों में सज्जन, सुसंस्कृत, सम्य बना ले।

गुटि सबसे बड़ी यही होती है कि वर्णमाला सीखे बिना लोग-बाग कलित्ज में पढ़ाया जाने वाला गणित पढ़ना आरम्भ कर देते हैं। ऐसी दशा में कोई कहने लायक सफलता कैसे मिले? किये गये अनेकों योगाभ्यास निष्फल चले जाते हैं। भव-बंधनों से जकड़ा मन आत्मिक उत्कर्ष के लिए कुछ करना चाहता है। मजबूरियों के निविड़ बंधन ऐसे बंधे रहते हैं कि उनके कारण कुछ करते धरते ठोस एवं स्थिर रूप से बन नहीं पाते, अतएव सफलता की दिशा में कुछ कहने लायक सफर नहीं बन पड़ता। यात्रा रास्ते में ही रुकी पड़ी रहती है।

सूक्ष्म शरीर की ही अधिकांश साधनाएँ हैं। कुण्डलिनी जागरण से लेकर ब्रह्मरन्ध्र, सहस्रकमल के प्रस्फुरण तक के सभी महान प्रयोजन सूक्ष्म शरीर में ही अवस्थित हैं। षटचक्रों से लेकर ग्रन्थि भेद तक की प्रक्रिया सूक्ष्म शरीर से ही सम्पन्न होती है। खेचरी मुद्राओं में अमृत पान किया जाता है। यह सूक्ष्म शरीर का ही अनुदान है। जिनने भी महत्वपूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। उनने चतुर्विधि मुक्त पाने के लिए यही प्रयास किया है कि शरीर और आत्मा के बीच बंधे हुए निविड़ बंधनों को शिथिल किया, खोला है। इस प्राथमिक मुक्ति के

मिलने पर दूसरी परोक्ष मुक्ति सरल हो सकती है। परमात्मा के साथ आत्मा को जोड़ने के लिए यह आवश्यक है कि भवबंधन से छुटकारा पाया जाय। इसकी उपेक्षा करके ऊँची छलांगें लगाना ऐसा ही है, जैसा पंखों के जकड़े रहने पर भी उन्मुक्त आकाश में विचरण करने के लिए मनोरथ करना।

भगवान की कृपा का प्रत्यक्ष दर्शन एक ही कसौटी पर कसा जा सकता है कि शरीर और आत्मा के बंधन ढीले हुए या नहीं? मनुष्य अन्तर्मुखी हुआ या नहीं? अपने स्वरूप महत्त्व एवं लक्ष्य को समझ पाया या नहीं? महत्त्व एवं लक्ष्य को समझ पाया या नहीं? ये अनुभूतियाँ यदि होने लगे तो समझना चाहिए कि भगवान की प्रत्यक्ष कृपा का दिव्य सत्ता का-दर्शन होने लगा और उसका चमत्कार प्रतिफल बंधनमुक्ति के रूप में ऊर्ध्वगमन के रूप में दीख पड़ने लगा।

ग्राह रूपी जीवात्मा की बंधनमुक्ति

गज और ग्राह की कथा है कि गज ग्राह के मुँह में फँस गया। एक पैर उसने निगल लिया और खींचकर जलाशय में ले गया। हाथी ने किनारे पर निकलने की बहुत कोशिश की, ग्राह की शक्ति गज से कम न थी। जब हाथी गहराई में चला गया और सूँड का सिरा मात्र बाहर रह गया तो उसने बचने की कोई सूरत न देखकर, भगवान को पुकार लगाई। भक्त-वत्सल आये और उनसे ग्राह के मुख से गज को छुड़ाया। इस प्रकार गजेन्द्र मोक्ष का कथानक पूरा हुआ।

इस कथा का आध्यात्मिक रहस्य यह है कि जीव रूपी गज शरीर रूपी ग्राह के मुँह में फँस गया। निकलने का प्रयत्न करने के रूप में वह पूजा-पाठ, जप-तप भी बहुत करता है। पर बाहर निकल नहीं पाता। पुरुषार्थ निरर्थक चला जाता है। अन्त में स्थिति यहाँ तक आ जाती है कि नाम मात्र को सूँड का अग्र भाग बाहर रह जाता है और उसकी अपनी समूची सत्ता ग्राह के क्षेत्र में सरोवर के कीचड़ फँस जाती है। ग्राह खींचता है। मायारूपी कीचड़ हाथी के भारी भरकम शरीर को और भी अधिक जकड़ती जाती है। फिर निकलना कैसे हो पाए?

आत्मा अपने स्वरूप, लक्ष्य, दायित्व को एक प्रकार से पूरी तरह भूल जाती है। उसकी सत्ता शरीराध्यास में पूरी तरह जकड़ जाती है। कहने को आत्मा और शरीर दो नामों से जाने जाते हैं। दोनों की भिन्नता भी सर्वविदित है। इस पृथकता पर आमतौर से चर्चा भी होती है। इतना ही नहीं, इसके प्रत्यक्ष प्रमाण भी आये दिन

मिलते रहते हैं। यदि थोड़ी देर भी लाश रखी रहे तो वह स्वयं सड़ने लगती है। सड़न तभी तक रुकी रहती है जब तक प्राण है। अन्यथा कायकलेवर उन्हीं तत्वों में मिल जाने के लिए व्यग्र हो उठता है। जिससे मिलकर वह बना था। स्पष्ट है कि काया और आत्मा की सत्ता पृथक्-पृथक् है। आत्मा प्रमुख है। काया उसका वाहन, आवरण, उपकरण। दोनों परस्पर मिल-जुलकर काम तो करते हैं पर उनकी पृथकता बनी ही रहती है।

आश्चर्य इस बात का है कि जीवात्मा अपनी मूलभूत सत्ता, महत्ता, गरिमा और दिशा-धारा को पूरी तरह भूल जाता है। शरीरगत इच्छाएँ, कामनाएँ, लिप्साएँ, जिधर भी चाहती हैं उधर ही उसे घसीट ले जाती हैं। यात्री नाव पर बैठता तो अपनी इच्छा से पर बैठने के बाद पराधीन हो जाता है। नाविक असावधान हो तो नाव-लहरे के साथ किसी भी दिशा में चल पड़ती है। लहरों की ठोकड़ों खाते-खाते किसी चट्टान से टकराकर उलट भी सकती है। किसी भँवर में फँसकर डूब भी सकती है। यात्री को तैरना न आता हो तो फिर बेचारे का ईश्वर ही मालिक है।

शरीर उन्हीं पंचतत्वों का बना है। जिनसे कि यह विचित्र आकृति और प्रकृति वाला संसार इसलिए सजातीय होने के कारण वे एक दूसरे को परस्पर खींचते और खिंचते हैं। शरीर को संसार में बहुरंगे स्वादों एवं आकर्षणों में बहुत रस आता है। उसका सोना-जागना सब इसी क्षेत्र में होता है। इसलिए असाधारण तन्मयता की डोर में वे गुँथ जाते हैं। मछली और पानी यद्यपि अलग-अलग हैं, फिर भी मछली उसके साथ इतनी तादात्म्य होती है कि साथी के बिना जीवित नहीं रह सकती। शरीर इन्द्रिय लिप्सा और ममताजन्य तृष्णा में पूरी तरह लिपटा रहता है। इन्हें न छोड़ना चाहता है और न साधारणतया यह बंधन टूटता है। भवबंधन इसी को कहा जाता है। उसका अर्थ है, मनुष्य का लिप्सा-लालसा के साथ पूरी तरह जकड़ जाना।

शरीर और संसार के प्रति यह बंधन अत्यधिक घनिष्ठ बन जाते हैं और दोनों की स्थिति अविच्छिन्न जैसी लगती है। इस स्थिति का दुर्विपाक यह है कि आत्मा अपने मूलभूत आधार परमात्मा की ओर से मुँह मोड़कर इस शरीर को ही अपना सर्वस्व मानने लगती है, जो स्वयं जड़ पदार्थों से बनता और उन्हीं में अहर्निश रमण करता रहता है।

मान्यता की दृष्टि से शरीर और आत्मा को पृथक् मानने में सैद्धान्तिक रूप से किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए। पर व्यवहारतः सब कुछ उलटा ही होता है। 'स्व'

परक सभी अनुभूतियाँ इस प्रकार होती हैं मानो 'अहम्' की समूची परिधि शरीर और इच्छा, इच्छाओं एवं मान्यताओं के साथ एकाकार हो गई है। दूध पानी की तरह घुलकर एकात्म स्थापित कर चुकी है। अनुभूतियाँ ही अभ्यास बन जाती हैं। मनुष्य जो कुछ सोचता, चाहता, मानता और करता है। वह समग्र रूप से शरीर से ही सम्बन्धित होता है। शरीरगत स्वार्थ ही इष्ट बन जाता है। आत्मकल्याण का प्रयोजन साधने वाले परमार्थ की पूरी तरह उपेक्षा करने लगते हैं।

आत्मा ईश्वर का अविनाशी अंश है। उसका सघन सम्पर्क ब्रह्म चेतना के साथ ही है। मनुष्य जन्म उसकी सर्वोपरि कलाकृति है जो इसलिए मिली है कि उसे धरोहर समझा जाय तो और परमार्थ प्रयोजन की सिद्धि की जाय। परमार्थ के दो भाग हैं सिक्के को दो पक्षों की तरह एक आत्म-कल्याण दूसरा लोक-मंगल। यही है जीवन लक्ष्य। इसी में इस जन्म की सार्थकता सन्निहित है। किन्तु इसके लिए प्रायः कुछ भी करते धरते नहीं बन पड़ता। शरीर की वासना, तृष्णा और अहंता की जकड़ इतनी मजबूत होती है कि उसे छोड़कर अन्य किसी कार्य के लिए अवकाश ही नहीं रहता। उत्साह ही नहीं जगता। जन्म से मरणपर्यन्त शरीर भाव ही छाया रहता है और उसी की कामना पूर्ति के लिए अर्हनिशि प्रयास चलता रहता है। आत्म-कल्याण के लिए, जीवन-लक्ष्य की पूर्ति के लिए जो किया जाना चाहिए उसे करने में पग-पग पर व्यस्तता आड़े आती रहती है। अरुचि और उपेक्षा का भाव भी बना रहता है। आत्म-प्रवचना के लिए-पूजा पाठ की औधी-सीधी लकीर भर पीटी जाती है। मानो ईश्वर मनुहार और उपहार पाने के लिए ही लालायित बैठा रहता हो। उसे उस प्रयोजन की चिन्ता एवं स्मृति ही नहीं है जिसके लिए इस सुर दुर्लभ जन्म को बड़ी आशाओं के साथ धरोहर रूप में सुपुर्द किया गया था।

शरीर भाव और आत्म-भाव का गुंथ जाना ही माया की ग्रन्थि है। यही हथकड़ी, बेड़ी और ताले की तरह भवबंधन में बाँधती है एवं भ्रम जंजाल में भटकती है। दोनों की पृथकता का भार जाग्रत होने पर कर्तव्य भी बँट जाते हैं। शरीर को कार्यरत रह सकने योग्य बनाये रखने के लिए रोटी, कपड़ा और मकान जैसी अनिवार्य आवश्यकताओं का प्रबंध करने पर काम चल जाता है और इसके उपरान्त इस कलेवर से उन कार्यों को करने के लिए योजनाबद्ध रूप से अग्रसर होना पड़ता है जो लक्ष्य एवं इष्ट है। स्वार्थ को सीमित करके परमार्थ को

असीम बनाना ही वह निर्धारण है, जिसे अपनाने पर उन विभूतियों की प्राप्ति होती है, जिन्हें स्वर्ग मुक्ति एवं ऋद्धि-सिद्धि के नाम से जाना जाता है।

परम पुरुषार्थ के नाम से एक ही सफलता को माना गया है कि शरीर और आत्मा की पृथकता एवं विधि व्यवस्था को भली प्रकार आत्मसात कर लिया जाय। उसी दृष्टि से सोचा और उसी विधि से योजनाबद्ध क्रिया-विधान बनाया जाय।

ऐसी सूझबूझ ही ईश्वर की वास्तविक अनुकम्पा है। गज की पुकार पर भगवान चक्र-सुदर्शन लेकर दौड़े थे और अपने भक्त को ग्राह के पाश से सरोवर के दलदल से उबार था। शरीराभ्यास ही ग्राह है और सांसारिक प्रलोभनों का आकर्षण ही दलदल भरा सरोवर। इससे त्राण पाने में गज सफल हुआ था। देखना है कि अपने जीवात्मा को यह सुयोग मिलता है या नहीं।

ईश्वर विकास का चरम बिन्दु है

प्रख्यात पश्चिमी विचारक एडमण्ड लुसेण्ड का कहना है कि "मनुष्य का पूरा जीवन ही एक 'इन्टेंशनलिटी"—अर्थात् एक गहन तीव्र इच्छा है। वह तीव्र इच्छा जिस भी दिशा में लग जाती है। उसी ओर मनुष्य की गति बन जाती है। यदि एक व्यक्ति चित्रकार होना चाहता है। मूर्तिकार होने की इच्छा रखता है अथवा उसकी प्रबल आकांक्षा वैज्ञानिक बनने की है। यदि वह अपनी समस्त प्राण ऊर्जा को अभीष्ट दिशा में नियोजित कर दे तो तदनुसार ढल भी जाता है पर जिसकी आकांक्षा प्रबल नहीं है अथवा जो कुछ बनना नहीं चाहता उसकी गति किसी भी दिशा में नहीं हो पाती। वह अपनी चैतन्य ऊर्जा को संग्रहीत करके किसी भी दिशा में गतिमान नहीं कर पाता। जिसके भीतर संकल्प का आविर्भाव ही नहीं होता, उसकी प्रगति कभी सम्भव नहीं हो पाती"। उप-निषदकारों ने समय-समय पर इसी अभिव्यक्ति को विभिन्न रूपों में उद्धृत किया है।

सृष्टि का स्वयं का अस्तित्व भी किसी सुदृढ़ संकल्प की परिणित ही है। उपनिषदकारों ने इसे 'एकोऽहं बहुस्यामि' के ब्राह्मी संकल्प के रूप में चित्रित किया है। सृष्टि के बाहर भी निरंतर विकास की प्रक्रिया सतत चल रही है। यहाँ प्रत्येक वस्तु विकास की प्रक्रिया से गुजर रही है। संसार 'स्टैटिक'— ठहरा हुआ नहीं—सतत चेतनशील—'डायनामिक' है। यहाँ प्रत्येक चीज बढ़ रही

है—क्रमशः उपर उठ रही है। जो ठहरा, गतिहीन प्रतीत हो रहा है, उसमें भी तीव्र वेग है। स्थिरता कहीं भी नहीं है। छोट-छोटे परमाणुओं में भी तीव्र हलचल है। प्रसुप्त शरीर में भी चेतना की असंख्यो दृश्य गतिविधियाँ चल रही हैं तथा जाने-अनजाने जीवन को गति दे रही हैं। निश्चेष्ट सोये शरीर के भीतर पाचन, परिवहन, श्वसन आदि के रूप में कितने ही तन्त्र हर क्षण सक्रिय हैं।

जगत का एक सुनिश्चित विकास क्रम है। जो सचेतन है। डार्विन ने भी इस सत्य को स्वीकार किया तथा अपने तथ्यों एवं प्रमाणों के आधार पर उस सत्य को वैज्ञानिक शब्दावली में प्रतिपादन किया। विकास, की प्रक्रिया यह दर्शाती है कि सारा जड़-चेतन जगत किसी निश्चित मंजिल पर पहुँचना चाहता है। जीवन का सतत् प्रवाह भी किसी गन्तव्य पर पहुँचने का इच्छुक है। निश्चित ही कोई ऐसी मंजिल है, जहाँ जीव की पहुँचने की आकांक्षा है। सम्भव है उस मंजिल का ही नाम परमात्मा हो। विकास प्रक्रिया के कारण ही यह पता चल पाता है। कि संसार किसी गहन इच्छा से प्रवाहित होकर गतिशील है।

विकास के चरण में ही मुक्ति का बोध मनुष्य को होता है। बच्चा जब पहली बार जमीन पर चलना शुरू करता है तो उसकी प्रफुल्लता देखते ही बनती है। हिलते-डुलते, काँपते पैर एक सुदृढ़ आधार की, आत्म विश्वास की खोज करते हैं। कदमों के सँभलते ही वह अर्जित हो जाता है। उसके विश्वास को एक बड़ा सम्बल मिलता है। जीवात्मा को अपनी शक्ति पहचानने का अवसर प्राप्त होता है। उसे पहली बार अनुभव होता है कि वह अपने पैरों चल सकता— अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है। विकास की एक मंजिल पूरी हुई। अर्जित विश्वास को तब और भी बल मिलता है जब बालक बोलना आरम्भ करता है तो तुतलाती भाषा में भावाभिव्यक्ति करते हुए आत्मा एक नयी शक्ति जुटा लेती है। बच्चे शब्दों की पुनराभिव्यक्ति करते रहते हैं। यह भोली तुतलाहट भी नयी उपलब्धि से अर्जित विश्वास की ही सहज अभिव्यक्ति होती है। उसमें वे प्रसन्न होते व उस प्रसन्नता को अन्यो को जताते हैं।

बचपने से लेकर प्रौढ़ावस्था तक ऐसे अनेकों अवसर आते हैं। जिनमें आत्म-विश्वास को सुदृढ़ आधार मिलता है। शारीरिक एवं मानसिक विकास के अनेक चरण पूरे होते हैं। व्यक्ति ही नहीं समस्त सृष्टि

विकासमान है। विकास की अनन्त धाराएँ स्वयं इस बात का प्रमाण हैं कि विकास का जो अन्तिम रूप है चरम परिणिति की जो हम कल्पना करते हैं, वह ईश्वर ही है।

विचारक टेल्हार्ड डि चार्डिन ने एक शब्द का इस सम्बन्ध में प्रयोग किया है। 'द ओमेगा पाइन्ट' शब्द माना जाता है। 'अल्फा का अर्थ है पहला तथा 'ओमेगा' का अर्थ है अन्तिम। डि चार्डिन ने कहा है, गॉड इ जि दि ओमेगा प्वाइन्ट। अर्थात् ईश्वर विकास का अन्तिम बिन्दु है।

हर विकासवान वस्तु में चेतना का ईश्वर का अस्तित्व मौजूद है। खिलता हुआ फूल कुरूप भी हो तो भी वह जड़ पत्थर से अधिक कीमती, अधिक अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह विकास की प्रक्रिया से गुजर रहा है, जीवन्त है। पत्थर में विकास की कोई सम्भावना नहीं है, जड़ता उसकी प्राकृति में समाहित है।

डि चार्डिन का यह भी कहना है कि "‘ओमेगा’ इज आल्सो दि अल्फा"—अर्थात् जो अन्तिम है, वह पहला भी है। यदि ईश्वर विकास की चरम अवस्था अनुभूति का परम शिखर है तो निश्चित ही वह आरम्भ में भी मौजूद होना चाहिए।

गीता में भगवान कृष्ण द्वारा कहे गये सत्य की ही उपरोक्त तथ्य वस्तुतः पुष्टि करते हैं।

**“सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृति यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तान् कल्पादी विमृजारभ्यहम्॥”**

अर्थात्— 'हे अर्जुन? कल्प के अनन्त में सभी प्राणी मेरी प्रकृति में विलीन हो जाते हैं और पुनः कल्प के प्रारम्भ में, मैं उन्हें उत्पन्न कर देता हूँ।'

जिस स्रोत से जीवन का आरम्भ होता अथवा जहाँ से वह आता है। एक चक्र में घूमने के बाद पुनः उसी में जाकर विलीन हो जाता है। वह चक्र जब तक चलता है। जीवन विभिन्न रूपों में अभिव्यक्ति पाता है। कर्मों का सम्बल पाकर वह विकास की अगणित अवस्थाओं में से होकर गुजरता है। अपनी पूर्णावस्था में उस चक्र को पार कर मूल स्रोत से जा मिलता है। अतृप्ति, असन्तुष्टि अपूर्णता के कारण अनुभव होता है मनुष्य अपूर्ण है। पूर्णता का बीज उसके भीतर ही विद्यमान है तथा वह विकसित होने के लिए भीतर भीतर छटपटाता है तथा अपनी स्थिति का आभास परोक्ष रूप में कराता रहता है। मनुष्य की चेतना अपूर्ण है। पामरों, पशुओं की स्थिति अपने में पूर्ण है। एक कुत्ता अपने में पूरा कुत्ता है। कोई

३.२३१ चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन

कुत्ता अपने में अधूरा नहीं है। प्रकृति एवं स्वभाव की विशेषता लगभग एकसी, एक वर्ग विशेष के जीवों के मिली हुई है। पर मनुष्य के साथ ऐसे बात नहीं है। अन्य जीवों को पास तो पूरा व्यक्तित्व है पर मनुष्य में पूर्णता की अनन्त सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। वह पशु की तरह पैदा होता पर विकसित भिन्न रूप में होता है। वह गिर भी सकता है तथा इतना ऊँचा भी उठ सकता है कि महानता के विकास के चरम शिखर को छू ले। मनुष्य मनुष्यता की परिधि तक सीमित रह सकता है। नीचे गिरकर पशु अथवा ऊपर उठकर देवता भी बन सकता है। वह दोनों ही दिशाओं में विकास अथवा पतन की ओर उन्मुख हो सकता है।

इस सत्य को सदैव स्मरण रखा जाना चाहिए कि मनुष्य जीवन में ठहराव कभी नहीं आता। ठहराव का, स्थिरता का अर्थ है, मृत्यु। यदि गति ईश्वर की ओर, महानता की ओर नहीं हो तो पतन का सिलसिला अपने आप शुरू हो जाता है। विकास कभी भी यथास्थिति में रुकता नहीं, वह सतत् गतिशील रहता है। पतन सरल है, स्वाभाविक है, उत्थान उतना ही कठिन है लेकिन सम्भाव्य भी है। मनुष्य यदि अपनी गरिमा के अनुरूप विकसित नहीं होता पूर्णता के लक्ष्य को प्राप्त नहीं करता तो इससे बढ़कर दुर्भाग्य कोई और क्या हो सकता है। मानवी चेतना के साथ जुड़ा सहज सौभाग्य वस्तुतः विकास ही है। मुक्ति जिसकी चरम स्थिति है एवं ईश्वरत्व की प्राप्ति अन्तिम लक्ष्य। यही पुरुषार्थ सतत् किया जाता रहे, यह परब्रह्म को, ब्रह्मी सत्ता को अभीष्ट भी है।



परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगदृष्ट के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के जीवनकाल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनो का निर्माण, उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युग निर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी, जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरती पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्र निर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़, पढ़ना-लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पाएँ, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद कांग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं-सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति-स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र आजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रंगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन बुनियादी आधार पर टिका- मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोवाजी के चले जाने के बाद अस्तित्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण, आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक, भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। १९११ में आज से ८४ वर्ष पूर्व वि.संवत् २०८६ में जन्मे, राष्ट्र की आजादी में उन्मत्त बने श्रीराममत्त कहलाने वाले, आचार्यश्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रान्ति के निर्माण का आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवन्दनीया माताजी के रूप में खड़ा किया, 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका अपनी लेखनी से लिखी, ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक लक्ष के २४ गायत्री महापुरुश्चरणों की पूर्णाहुति पर उन्होंने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३ में सोची। सबसे पहली मंत्र दीक्षा वहीं पर १९५३ में दी व यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाव लाये कोई क्रान्ति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्त्वदर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनो में पहले हुई- उनकी भाव संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में सम्पन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरुसत्ता को त्याग करने की, यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उन्होंने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेध के रूप में अपने आप को समाज के हित न्यौछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवन्दनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से सम्पन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी गायत्री तपोभूमि, मथुरा जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा सकता है जहाँ अखण्ड दीपक अपनी जन्मभूमि आँवलखेड़ा से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित किया गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी १२ वर्ष पूर्व आरम्भ हो गयी थी। इस प्रकार जन-जन के मनो का निर्माण उनके अंतःस्थल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व के जागरण की ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे भुतहा हवेली कहा

जाता था, में अखण्ड दीपक की स्थापना, उसके समक्ष तप, अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा के रूप में विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ जो कि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ में बनाई गई। १९५३ में क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों, प्रज्ञा संस्थानों, भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों, चरणपीठों का महत्त्व समझा जा सकता है। नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम-संस्थान बनते हैं, ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं। उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत् उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्यपूर्ण था।

परमपूज्य गुरुदेव की महत्त्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ इस प्रकार हैं—

(१) युगतीर्थ आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शान्तिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार।

युगतीर्थ आँवलखेड़ा का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन, ब्राह्ममुहूर्त में, जो अंग्रेजी तारीख से २० सितम्बर, १९११ के दिन आती थी, में जन्मा। एक श्रीमंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित, पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित, बहुत बड़ी जागीर के मालिक। आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलालेखों की स्थापना हुई है— वहाँ पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था। समीप बनी दो कोठरियाँ जो काल प्रवाह के क्रम में गिर सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं— जैसी उनके समय में थीं। जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है। उनके हाथ से खोदा कुँआ जिसे पूरे गाँव का एकमात्र मीठे जल वाला कुँआ माना गया— वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं। पास में ही दो कोठरियाँ हैं जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्म शरीरधारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशाधारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था। यह सब देखकर मस्तिष्क-पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना। आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित माता दानकुँवरि इण्टर कालेज है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धनराशि द्वारा विनिर्मित है। १९६३ से चल रहे इस इंटर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म-निर्भर बने हैं व उच्च पदों पर पहुँचे हैं।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ एवं कन्या इंटर कॉलेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा जो एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित, संस्कारवान, आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है। प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्भूत प्राण ऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव-निर्माण की सांस्कृतिक व भावनात्मक क्रान्ति की पृष्ठभूमि रख सके। यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये, जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं।

अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा में स्थित है। परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की जन-जन तक अपने क्रान्तिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरम्भ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ व अन्यान्य लेखों की पंक्तियों के माध्यम से सम्पन्न होने लगी। व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतःस्थल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा। यहीं पर अगणित दुःखी, तनावग्रस्त

व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परमवंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये। हाथ से बने कागज पर छोटी ट्रेडिल मशीनों द्वारा यहीं पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छपी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था। बगल की एक छोटी-सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजाघर विनिर्मित है। पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में १९४२-४३ में रही होगी। तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी घीयामण्डी के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता। तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ में सहस्र कुण्डी यज्ञ की आधारशिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत-गायत्री परिवार बनता चला गया। रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परमवंदनीया माताजी पढ़ती जातीं एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना। हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया। गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युग निर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं सम्पन्न हुआ। जनसम्मेलनों, छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट् यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन, विस्तार, डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्यास अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परमवंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन वहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है।

गायत्री तपोभूमि, मथुरा को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था। इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया। चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है। पू. गुरुदेव की साधनास्थली व प्रातःकाल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थी तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी। यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्र दीक्षा दी। यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्रकुण्डी यज्ञांश संस्कार सम्पन्न हुए। श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा सम्पन्न हुआ। हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्यश्री ने युग निर्माण योजना के शत-सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युग निर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरम्भ होने की घोषणा की। यह विधिवत् १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है। भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञाननगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युग निर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

शान्तिकुंज, हरिद्वार ऋषि परम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड ज्योति दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालय में चले गये। गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पुनः एक वर्ष बाद लौटे व तब शान्तिकुंज को उनसे एक बड़ा विराट रूप देने, सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय किया। इससे पूर्व परमवंदनीया माताजी ने २४. कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़

गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था। पूज्यवर ने प्राण प्रत्यावर्तन सत्र, जीवन साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्ता यहीं गढ़े। यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युग शिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का ताँता लगा रहता है। पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्तऋषियों की मूर्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को सम्पन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत् चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा, पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार सम्पन्न होते हैं। इस बीच परमवंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ सम्पन्न करना आरम्भ रखा। देव कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया। इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा।

शांतिकुंज का गायत्री नगर जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक एकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं, १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ। विलक्षण, दुर्लभ जड़ी-बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थस्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया। यहाँ उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को अग्नि समर्पित की जानी थी। स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता-जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता है, यहाँ की विशेषता है। www.awgp.org

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवीं स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोध कार्य चल रहा है। इसे १९७१ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था। वर्तमान शांतिकुंज- गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनो को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फलश्रुतियों सहित स्थापित हैं। द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं जो यह जाँच-पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये। इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है। यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों, जैव विद्युत आदि पर पड़ा, यह देखा जाता है। विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं। तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित है, जहाँ विश्वभर के शोध प्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं। यहाँ प्रायः ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं। यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण दृष्टांतर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीली संदोह रचकर चली गयी। प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञा संस्थान ४०००० से अधिक प्रज्ञामण्डल व स्वाध्याय मण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जाएँ तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर श्रद्धावन्त होने का मन करता है। □□□

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनसे अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन

समग्र वाङ्मय का परिचय

२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्त्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२ (सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्तन एवं लोकमानस का शिक्षण

३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?

३८. प्रज्ञोपनिषद्
 ३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
 ४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
 ४१. जीवेम शरदः शतम्
 ४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
 ४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
 ४४. मरकर भी अमर हो गये जो
 ४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवार्थ के उपासक
 ४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
 ४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
 ४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
 ४९. शिक्षा एवं विद्या
 ५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
 ५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
 ५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
 ५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
 ५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
 ५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
 ५६. ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
 ५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
 ५८. आत्मोत्कर्ष का आधार-ज्ञान
 ५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
 ६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
 ६१. गृहस्थ : एक तपोवन
 ६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
 ६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
 ६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
 ६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
 ६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
 ६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
 ६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
 ६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
 ७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)
- वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे—**
७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
 ७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय

७३. चिन्तन का विधेयात्मक-

निषेधात्मक स्वरूप

७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

